दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड पंद्रह

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं ? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं ? क्या भारत की प्रजा के पास इसका कोई समाधान नहीं है ? भारत के एक युगऋषि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन सवालों, इन खतरों को दशकों पहले ही भाँप लिया था और भारतीय परंपराओं के खजाने में ही इनके उत्तर भी खोज लिये थे। उन्होंने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।

पर विडंबना, उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका। प्रयास कुछ अधूरे रहे। दोष शायद परिस्थितियों का रहा। लेकिन इस शताब्दी के प्रारंभ में कुछ सामाजिक व अकादमिक कार्यकर्ताओं ने इस धारा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। इस समूह का अनुभव रहा कि गहन अनुसंधान एवं व्यावहारिक परियोजनाओं का सूत्रपात करने से ही इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। उसी विचार व अनुभव में से उत्पत्ति हुई 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की। इसके विभिन्न आयामों व पहलुओं पर नियमित परिचर्चाओं व प्रकाशनों के माध्यम से जो वातावरण बना, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। 'एकात्म मानवदर्शन' देश में वैचारिक बहस की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बन गया है। प्रतिष्ठान के सामने अब लक्ष्य है, उसे वैश्विक स्तर पर ले जाने का।

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्‌मय

संपादक मंडल

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

खंड पंद्रह

संपादक

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

प्रकाशक • प्रभात प्रकाशन
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002

संकलन व संपादन • डॉ. महेश चंद्र शर्मा
अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

संस्करण • प्रथम, 2016
लेआउट व आवरण • दीपा सूद
मूल्य • चार सौ रुपए (प्रति खंड)
छह हजार रुपए
(पंद्रह खंडों का सैट)
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

DEENDAYAL UPADHYAYA SAMPOORNA VANGMAYA (VOL. XV)
(Complete Works of Pandit Deendayal Upadhyaya)
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with
Research and Development Foundation for Integral Humanism,
Ekatm Bhawan, 37, Deendayal Upadhyaya Marg, New Delhi-2

Vol. XV ₹ 400.00 ISBN 978-93-86231-30-7
Set of Fifteen Vols. ₹ 6000.00 ISBN 978-93-86231-31-4

समर्पण
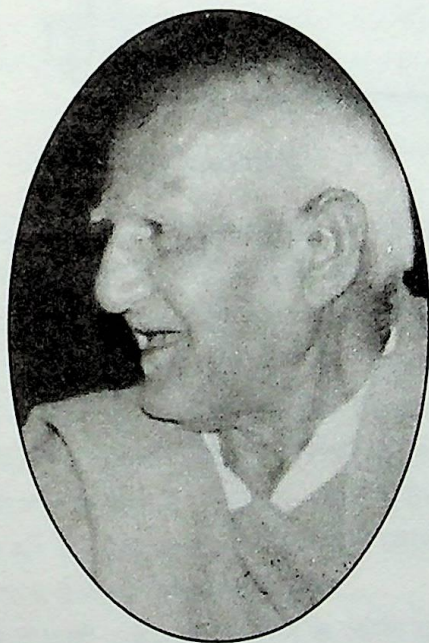
श्री धर्मपाल

(9 फरवरी, 1922-24 अक्तूबर, 2006)

गांधीवादी विचारक और इतिहासकार

को समर्पित
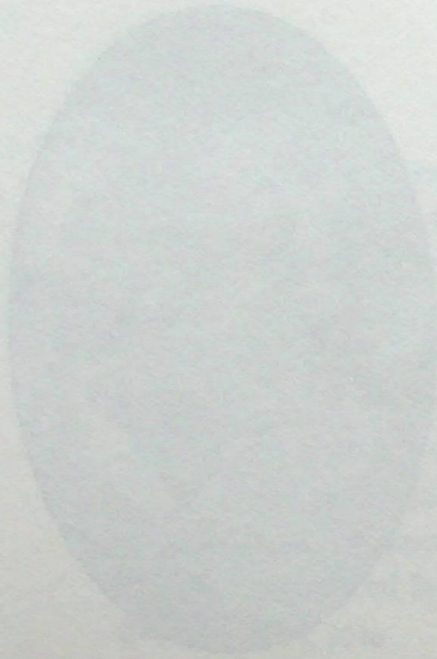
परिचय

श्री धर्मपाल

नौ फरवरी, 1922 को कांधला (मुज़फ़्फ़रनगर) में जन्मे धर्मपालजी स्वतंत्र भारत के उन विशिष्ट अध्येताओं में से थे, जिन्होंने भारत को और भारतेतर विश्व को भी भारतीय दृष्टि से देखने-समझने का प्रयास किया। उनके जीवन एवं कर्म में प्रारंभ से ही भारत के प्रति एक गहन निष्ठा दिखाई देती है। साथ ही उनमें एक अतीव उत्कंठा, एक जलन सी दिखती है कि अंग्रेज़ों ने भारतीय मनीषा को जो दिग्भ्रमित सा कर दिया है, भारतीयों में अपने को ही अन्यों वाली हेयदृष्टि से देखने का जो उन्माद सा उत्पन्न कर दिया है, उसका शीघ्रातिशीघ्र निवारण हो, भारत पुनः अपनी सुदीर्घ सभ्यता के सुदृढ एवं स्थिर आधार को प्राप्त करे और इस प्रकार अपने स्वरूप में स्वस्थ स्थित हो, वह एकदा पुनः विश्व को अपने परम वैभव से चकित करने लगे।

माध्यमिक शिक्षा डी.ए.वी. लाहौर से पूरी करने के उपरांत सन् 1940 में धर्मपालजी मेरठ कॉलेज में बी.एस-सी. (भौतिक विज्ञान) की पढ़ाई छोड़कर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ गए थे। आंदोलन में बढ़-चढ़कर अपनी सहभागिता को रखते हुए वे 1942 में बंबई में गांधीजी की भारत-छोड़ो वाली सभा में उपस्थित रहे। 1943 में भारत-छोड़ो अभियान के संदर्भ में तीन महीने कोतवाली दिल्ली की हवालात में बंद रहे। 1944 से 1947 तक वे हरिद्वार के पास मीराबेन के किसान आश्रम में रहे।

उनका विवाह 1949 में फिलिस एलन फोर्ड के साथ ब्रिटेन में संपन्न हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1950 में उन्होंने ऋषिकेश के पास मीराबेन के पशुलोक आश्रम की भूमि पर सामूहिक गाँव बापूग्राम की स्थापना की और 1954 तक वहाँ रहे। तत्पश्चात् 1954 से 1957 तक लंदन में 'पीस न्यूज़' में काम करते हुए अपने परिवार के साथ रहे। 1958 से 64 तक कमलादेवी चट्टोपाध्याय द्वारा श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में स्थापित ग्रामीण विकास संस्थाओं की शीर्ष संस्था 'अवार्ड' के महामंत्री रहे।

अपने मुखर विचारों, सत्यनिष्ठा व स्पष्टवादिता के कारण ही वे 1963 में भारत-चीन युद्ध के संदर्भ में जवाहरलाल नेहरू को एक खुला पत्र लिखने के दोष में तीन महीने तिहाड़ ज़ेल में भी बंद रहे।

इतिहास में शोध का उनका कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं था, इस क्षेत्र में कोई औपचारिक योग्यता उनके पास नहीं थी। महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन के चलते वे तो अपनी स्नातक तक की पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पाए थे। पर उन्होंने अत्यंत मनोयोग एवं परिश्रम से अपने को इस कार्य के अनुरूप गढ़ा; अंततः उन्होंने जो शोधपूर्ण ग्रंथ लिखे, उनसे हम सीख सकते हैं कि ऐतिहासिक-सामाजिक शोध क्या होता है, कैसे किया जाता है और उसके लिए कैसी एकाग्रता, निष्ठा एवं कठिन परिश्रम की अपेक्षा रहती है। उनके शोध संबंधी योगदान की चर्चा करें तो ध्यान आता है कि उन्होंने 1963 से 1965 तक अखिल भारतीय पंचायत परिषद् के शोध निदेशक रहते हुए तमिलनाडु की पारंपरिक एवं नई पंचायत संस्थाओं पर विस्तृत शोध किया। अपनी निष्ठा को सार्थक एवं अपनी उत्कंठा को शांत करने के लिए धर्मपाल ने वर्षों तक (1965-71) ब्रिटिश अभिलेखागारों में गहन शोध करते हुए अपने को खपाए रखा।

उनके द्वारा 1977 के पश्चात् मुख्यतः भारत में अनेक संस्थानों में भारत के स्वरूप और ब्रिटिश राज्य के प्रभाव पर की गई वार्त्ताएँ, इन संस्थानों के युवा अध्येताओं के साथ विस्तृत चर्चाएँ भी उल्लेखनीय हैं। 1987, 1991 और 1999 में तीन-तीन वर्ष के लिए भारतीय इतिहास परिषद् (ICHR) के सदस्य मनोनीत किए गए। 2001 में राष्ट्रीय गोरक्षा आयोग के अध्यक्ष बनाए गए। 1990-2006 तक समाजनीति समीक्षण केंद्र (Centre for Policy studies) के विशिष्ट और एमेरिटस अध्येता रहे। वर्ष 2006 में 24 अक्तूबर के दिन सेवाग्राम आश्रम वर्धा में उनका निधन हुआ।

जीवन भर उपरोक्त दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन करते हुए उन्होंने अनेक शोधग्रंथों की रचना की। जिनमें पंचायती राज एज द बेसिस ऑफ इंडियन पॉलिटी : एन एक्सप्लोरेशन इनटू द प्रोसीडिंग्स् ऑफ द कॉन्स्टिच्युएंट असेंबली (1962), इंडियन साइंस एंड टेक्नोलॉजी इन ऐट्टींथ सेंच्युरी (1971), सिविल डिसओबेडियंस एंड इंडियन ट्रेडिशन (1971), द मद्रास पंचायत सिस्टम, खंड-2 (1972), द ब्यूटीफुल ट्री : इंडिजेनस इंडियन एजुकेशन इन द ऐट्टींथ सेंचुरी (1983), अनडेमिंग द फ्लो, इन अयोध्या एंड द फ्यूचर इंडिया, संपा. जे.के. बजाज (1993),डेस्पॉलिएशन एंड डिफेमिंग ऑफ इंडिया : द अर्ली नाइनटींथ सेंच्युरी ब्रिटिश क्रूसेड (1999), ब्रिटिश ओरिजिन ऑफ काऊ स्लॉटर इन इंडिया (सहलेखक टी.एम. मुकुंदन, 2002), अंडरस्टैंडिंग गांधी एंड रिडिस्कवरिंग इंडिया (2003), आदि प्रमुख हैं।

उनके इन ग्रंथों से एक पूरी पीढ़ी को भारत के विभिन्न पहलुओं को भारतीय दृष्टि

से जानने-समझने का अवसर मिला। विज्ञान एवं तकनीक में, शिक्षा में, सामाजिक सौहार्द एवं सहयोग में, सहज आर्थिक समृद्धि में, लोकतांत्रिक एवं लोक-कल्याणकारी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाओं में, और राजकीय अति का प्रतिकार करने की अपनी सहज क्षमता में अंग्रेज़ों के पहले का भारत कैसा था और अंग्रेज़ों ने कैसे एक-एक कर उन क्षमताओं एवं व्यवस्थाओं को नष्ट किया, इसका विशद वर्णन उनके इन ग्रंथों में हुआ है। उन्हें पढ़कर भारत के प्रति एक नया विश्वास उत्पन्न होता है, अपने भारतीय होने के गर्व का आभास होता है, और भारत को पुनः अपनी उत्कृष्टता पर पहुँचाने के लिए पुनः समर्पित होने का भाव जागृत् होता है।

धर्मपालजी के शोध एवं लेखन में ऐसी गहनता है कि उसका प्रभाव मात्र भावनाओं तक सीमित नहीं रहता। उससे राजनीतिक-सामाजिक क्षेत्र में नहीं तो बौद्धिक क्षेत्र में कुछ करने का मार्ग भी प्रशस्त होता है। उनके लेखन से प्रभावित होकर देश के उच्च संस्थानों के अनेक वैज्ञानिक एवं तकनीकविद् स्वदेशोन्मुखी कार्य करने की दिशा में चलने लगे। अनेक समाजज्ञानियों ने देशानुकूल दृष्टि से सामाजिक विषयों को समझने एवं उस अनुसार अपने शोध को ढालने का प्रयास किया। अनेक शोधार्थी धर्मपाल के कार्य को अन्य अनेक दिशाओं में आगे बढ़ाने के कार्य में लग गए।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने राजनीति एवं समाजनीति को सनातन भारतीय सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में देखने एवं सनातन भारतीय मूल्यों के अनुसार चलाना सिखाया। धर्मपालजी ने उन सभ्यता एवं उन मूल्यों की विशद व्याख्या और उन पर आधारित विभिन्न भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी व्यवस्थाओं का स्वरूप हमारे समक्ष रखा। धर्मपालजी के लेखन एवं उनकी शोधदृष्टि का दीनदयालजी के कार्य को संपन्न करने में बड़ा योगदान हो सकता है। इसलिए हम दीनदयालजी के संपूर्ण वाङ्मय के इस अंतिम खंड को उनके प्रति समर्पित कर रहे हैं।

—डॉ. जितेंद्र कुमार बजाज

संपादकीय

कालक्रमानुसार उपलब्ध सामग्री तो चौदह खंडों में समाहित हो चुकी है। यह पंद्रहवाँ खंड क्या है? वस्तुत: संकलित सामग्री में ऐसी भी सामग्री थी, जिनका कालक्रम ज्ञात नहीं हो सका तथा दीनदयालजी की मृत्यु के बाद कुछ अप्रकाशित सामग्री विविध पत्र-पत्रिकाओं में तथा पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई। इस उपलब्ध सामग्री की मूल लेखन-तिथि इन प्रकाशनों में उपलब्ध नहीं है, अत: विविध शीर्षकांकित इस खंड का प्रणयन हुआ है।

यह खंड नितांत महत्त्वपूर्ण है। दीनदयालजी की मृत्यु के बाद उनके दो वरिष्ठ सहयोगियों श्री भानुप्रताप शुक्ल तथा श्री रामशंकर अग्निहोत्री ने 'राष्ट्रजीवन की दिशा' नाम से एक पुस्तक संपादित की। सामान्यत: इसके सभी अध्याय दीनदयालजी द्वारा दिए गए संघ शिक्षा वर्गों के बौद्धिक वर्गों को संपादित करके बनाए गए हैं। लेकिन इनमें तिथि व स्थानों का कहीं उल्लेख नहीं है। संघ शिक्षा वर्गों के जो बौद्धिक वर्ग हमने संकलित किए, उनमें केवल दो ही बौद्धिक वर्ग हमें तिथि व स्थान सहित प्राप्त हो सके। अत: शेष 13 अध्याय उस पुस्तक से ज्यों के त्यों प्राप्त कर इस खंड में शामिल किए गए हैं। योग्य प्रकार से संपादित होने के कारण इनकी प्रस्तुति अधिक प्रांजल है। अध्यायों में विषय की क्रमबद्धता को भी सँजोने का प्रयत्न किया गया है। इसलिए वैचारिक रूप से यह खंड नितांत समृद्ध है। इसी प्रकार 'राष्ट्रधर्म' ने उनके कुछ अप्रकाशित बौद्धिक वर्गों को प्रकाशित किया, लेकिन उन्होंने भी मूल तिथि एवं स्थान का उल्लेख नहीं किया, अत: वे आलेख भी इस खंड का हिस्सा बने हैं। वस्तुत: यह सामग्री केवल संकलित ही नहीं वरन् चयनित है।

राजनैतिक घटनाचक्र से जुड़ा हुआ केवल एक ही आलेख है, जिसका संबंध 'भाषा विधेयक' से है। यह आलेख भी उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ है,

उसकी ठीक-ठीक तिथि अज्ञात है, अत: वह इस खंड में है। संभवत: यह उनका अंतिम आलेख है। यह आलेख भाषा के संदर्भ में उनके आग्रह, संवेदनशीलता एवं तर्कशीलता का परिचायक है।

यह महत्त्वपूर्ण खंड उनकी अंतिम यात्रा की साक्षियों का भी खंड है। किस दुरभिसंधि का शिकार हुआ यह देश, तप:पूत दीनदयाल को नियति हमसे छीनकर ले गई। इस वक्त के अखबारों ने इस घटना को जैसा समझा, उसको हमने इस खंड में समाहित करने का प्रयत्न किया; हिंदुस्तान दैनिक, वाराणसी से प्रकाशित 'आज' तथा 'हिंदुस्तान टाइम्स' के समाचारों को संकलित किया है तथा 'ऑर्गनाइज़र' के अधिकांश समाचारों को भी इसमें सँजोया है।

15 खंडों की यह सामग्री, जो सामान्यत: 1947-1967 तक दो दशकों की है। राष्ट्र-जीवन में दो दशक ज़्यादा नहीं होते, लेकिन इतने लघुकाल खंड में दीनदयालजी का जो दाय हमारे देश को है, वह अप्रतिम है। यह कार्य यदि कुछ जल्दी होता तो शायद दुगुनी सामग्री प्राप्त हो सकती थी। आज का सार्वजनिक जीवन एवं दीनदयाल संपूर्ण वाङ्मय की सामग्री को देखकर कहा जा सकता है कि देश ने अभी उनको जाना नहीं है। आशा है, आनेवाली पीढ़ियाँ उनको जानेंगी तथा उनका दूरदर्शी चिंतन आनेवाली पीढ़ियों के लिए ज़्यादा प्रासंगिक रहेगा।

हर खंड का कोई न कोई भूमिका लेखक है, इस खंड की भूमिका लिखने का आग्रह वरिष्ठ स्वयंसेवक एवं पत्रकार श्री मा.गो. वैद्य से किया उन्होंने अनुग्रहपूर्वक स्वीकार किया, न केवल यथा समय भूमिका लिखकर दी, खंड का यथोचित संपादन भी किया, मैं श्रद्धावनत हूँ। प्रत्येक खंड में एक अध्याय है 'वह काल'। यह खंड कालक्रम से इतर है, अत: 'वह काल' अध्याय इसमें नहीं होगा। प्रथम खंड का 'वह काल' वरिष्ठ पत्रकार श्री रामबहादुर राय ने लिखा था। यह खंड दीनदयालजी के अवसान को रेखांकित करता है, अत: इसका अंतिम अध्याय है 'अवसान', यह अध्याय भी उन्होंने ही लिखा है। इस संपूर्ण वाङ्यम के संपादन में राय साहब की अतुलनीय भूमिका रही है, आभार।

शुभम्

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

भूमिका

पं. दीनदयालजी उपाध्याय के संपूर्ण वाङ्मय के इस 15वें खंड के दो स्पष्ट विभाग हैं। प्रथम विभाग में कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर पंडितजी के विचार संगृहीत हैं, तो दूसरे विभाग में उनके दुर्भाग्यपूर्ण निधन के संबंध में विविध माध्यमों एवं विविध संस्थाओं द्वारा अर्पित श्रद्धांजलियाँ तथा उनके आकस्मिक निधन की पृष्ठभूमि एवं उसके संबंध में उत्पन्न आशंकाओं का अंतर्भाव है।

प्रथम विभाग का स्वरूप विचारप्रधान है। राष्ट्र और राज्य, धर्म और संप्रदाय, व्यक्ति और समाज, इन विषयों के साथ ही नया आर्थिक दर्शन एवं चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के संबंध में पंडितजी के मौलिक विचारों का प्रकटीकरण इस विभाग में है।

आजकल की राजनीतिक व्यवस्था में सामान्यत: 'एक राष्ट्र-एक राज्य' यह वास्तविकता दिखाई देती है। अत: 'राष्ट्र' को भी केवल एक राजनीतिक अवधारणा मानने का प्रचलन है। किंतु हक़ीकत यह है कि एक राष्ट्र में अनेक राज्य रह सकते हैं। रहते भी आए हैं। प्राचीन भारत में यह स्थिति थी। अलेक्जेंडर का जब आक्रमण हुआ था, तब मगध में नंदवंश का साम्राज्य था, तो अनेक गणराज्य भी थे। 7वीं शताब्दी में हर्षवर्धन का राज्य नर्मदा के उत्तर में था, तो दक्षिण में पुलकेशी का शासन था। यानी राज्य दो थे किंतु 'राष्ट्र' एक ही था। उसी समय में जन्मे आद्य शंकराचार्य ने श्रृंगेरी, पुरी, बदरीनाथ-केदारनाथ तथा द्वारका में अपने मठों की स्थापना कर यह एक देश है, इस को अधोरेखित किया। उसके भी पूर्व के विष्णुपुराण में भारत के संबंध में एक श्लोक है। वह है—

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती तत्र सन्तति:॥

(समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो भूमि है, वह भारतवर्ष है और वहाँ रहनेवाले सारे भारती (भारतीय) उसकी संतान हैं। मतलब है, भारत एक देश है,

और वहाँ रहनेवाले एक जन हैं।)

जिस प्रकार एक राष्ट्र में अनेक राज्य रह सकते हैं, उसी प्रकार एक राज्य में अनेक राष्ट्र भी रह सकते हैं। यह स्थिति हमने आधुनिक काल में बीसवीं सदी में देखी है। यू.एस.एस.आर. (यूनियन ऑफ सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक्स) 1991 तक एक राज्य था। किंतु उसमें अनेक राष्ट्र अंतर्भूत थे। जैसे लेटेविया, ताजकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, आर्मेनिया, कजाकिस्तान आदि। रूस की ताक़त कम होते ही ये सारे राष्ट्र स्वतंत्र हो गए। मार्शल टीटो के तानाशाही शासन काल में युगोस्लाविया एक राज्य था, जिस में तीन राष्ट्र थे। केंद्रीय शासन कमज़ोर होते ही सर्बिया, स्लोवेनिया और बोस्निया-हार्जेगोविना, ये राष्ट्र स्वतंत्र हो गए।

सारांश यह है कि 'राज्य' और 'राष्ट्र', ये दो भिन्न अवधारणाएँ हैं। 'राज्य' यह एक राजनीतिक व्यवस्था है, जो क़ानून के द्वारा और क़ानून के बल पर चलती है। महाभारत में महाराज युधिष्ठिर भीष्म पितामह से पूछते हैं, ''यह राजा, राज्य, दंड (सज़ा), दांडिक (सज़ा देनेवाला) कब से पैदा हुए?'' भीष्म पितामह का उत्तर प्रसिद्ध है। उन्होंने कहा—

न वै राज्यं न राजाऽसीत् न दण्डयो न च दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम्॥

अर्थ है, उस समय न राज्य था, न राजा था, वैसे ही न दंड था और न दांडिक (सरकार) था। सारी प्रजा धर्म से चलती थी और परस्पर की रक्षा करती थी।

इस पर युधिष्ठिर ने पूछा कि यह व्यवस्था क्यों समाप्त हुई? भीष्म पितामह ने कहा कि धर्म क्षीण हो गया। बलवान लोग दुर्बलों को यातना देने लगे। महाभारत का शब्द है, 'मात्स्यन्याय' संचरित हुआ। यानी बड़ी मछली छोटी मछली को निगलने लगी। तब लोग ब्रह्माजी के पास गए और उन्होंने 'राजा' की माँग की, तब मनु पहला राजा हुआ। तात्पर्य यह कि राज्य क़ानून के बल पर चलता है और क़ानून यानी वे नियम होते हैं, जिन के पीछे दंड शक्ति याने सेना या पुलिस की शक्ति खड़ी रहती है और वे नियम इस दंड शक्ति के कारण परिणामकारक होते हैं। अर्नेस्ट बार्कर नाम के एक अंग्रेज तत्त्वज्ञ लिखते हैं—

"A state is a legal association, a juridical organized nation, or a nation organized for action under legal rules. It exists for law : it exists in and through law : we may even say that it exists as law, if by law we mean not only a sum of legal rules, but also, and in addition, an operative system of effective rules which are actually valid and regularly enforced. The essence of the State is a living body of effective rules, and in that sense the State is law." (Principles of Social and Political Theory, page 89)

राष्ट्र यानी लोग होते हैं। People are the Nation. अनेक बार 'राष्ट्र' का अर्थ प्रकट करने के लिए अंग्रेज़ी भाषा में 'पीपल' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। किंतु राष्ट्र यानी भीड़ नहीं। लोगों का राष्ट्र होने के लिए तीन शर्तें हैं : (1) जिस देश में लोग रहते हैं, उस भूमि के बारे में उनकी भावना, (2) अपने इतिहास तथा पुरखो के बारे में भावना और (3) समान संस्कृति या मूल्य-अवधारणा (Value system)। पंडितजी लिखते हैं—"राष्ट्र एक जीवमान इकाई है। ...किसी निश्चित भू-भाग में निवास करनेवाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है, जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करते हुए समान परंपरा और महत्त्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख-दु:ख की समान स्मृतियाँ और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियाँ प्राप्त कर परस्पर हित संबंधों में ग्रंथित होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है और इस परंपरा का निर्वाह करनेवाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान् तप, त्याग, परिश्रम करनेवाले महापुरुषों की शृंखला निर्माण होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावनात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है।" (पृष्ठ 12-13)

वे आगे लिखते हैं—" 'जन' और 'भूमि' का यह परस्पर संबंध पुत्र और माँ का संबंध है।" (पृ. 22) तब 'भारतमाता की जय' का नाद गूँजता है। हमारी राष्ट्रीयता का आधार 'भारतमाता' है। वे स्पष्ट रूप से बताते हैं—"वे लोग जो 'भारतमाता की जय' कहने से कतराते हैं, वे भारत में रहकर भी भारतीय जन नहीं बने हैं।" (पृ. 22) पंडितजी इजरायल का उदाहरण भी देते हैं। सब लोग जानते हैं कि यहूदी लोग अपनी मातृभूमि से 1800 वर्ष तक कट गए थे। भिन्न-भिन्न देशों में रहते थे, किंतु वे अपनी मातृभूमि को भूले नहीं। हर शुक्रवार को सायनेगॉग में प्रार्थना करते रहे कि अगले वर्ष जेरुसलेम पहुँचेंगे। 1948 में उनको उनकी मातृभूमि प्राप्त हुई।

देश के प्रति आदर की भावना के साथ इतिहास के बारे में भी समान भावना आवश्यक है। पंडितजी लिखते हैं—"जब हम महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी या गुरुगोविंद सिंह का स्मरण करते हैं तो हमारा मन उनके प्रति आदर और श्रद्धा से झुक जाता है। इसके विपरीत, जब हम औरंगज़ेब, अलाउद्दीन, क्लाइव या डलहौजी का नाम याद करते हैं, तो इनके प्रति एक विदेशी आक्रांता के प्रति जो भाव उत्पन्न होना चाहिए, वही भाव उत्पन्न होता है।" (पृ. 27)

तीसरी शर्त है—संस्कृति की समानता। संस्कृति यानी मूल्यव्यवस्था, यानी अच्छा और बुरा मापने के मानदंड। रावण बुरा। होगा वह जन्मना ब्राह्मण। होगा सोने की लंका का स्वामी। किंतु उसका आचरण, हमारे सांस्कृतिक मूल्यों के विपरीत हैं। कोई भी अपने पुत्र का नाम 'रावण' नहीं रखता। पंडितजी लिखते हैं— "संस्कृति ही राष्ट्र के

संपूर्ण शरीर में प्राणों के समान संचार करती है।...संस्कृति कभी गतिहीन नहीं होती। अपितु वह निरंतर गतिशील होती है। नदी के प्रवाह की भाँति निरंतर गतिशील होते हुए भी वह अपनी निजी विशेषता रखती है, जो उस सांस्कृतिक भावना से राष्ट्र के साहित्य, कला, दर्शन, स्मृति, शास्त्र, समाज रचना, इतिहास एवं सभ्यता के विभिन्न अंगों में व्यक्त होती है।" (पृ. 24)

अपनी संस्कृति की और एक विशेषता है। वह है विविधता का सम्मान। परमात्मा एक है किंतु उसके अनेक नाम और अनेक प्रतीक होते हैं। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' यह वेदवचन है। अनेक नए देवता आए हैं। वेदों में इंद्र, वरुण और अग्नि, ये प्रधान देवता हैं। किंतु आज भारत में न इंद्र का मंदिर है, न वरुण का; जिनके मंदिर हैं, उनके नाम तक वेदों में नहीं हैं, जैसे राम, कृष्ण, गणेश, हनुमान, दुर्गा, काली आदि। नए देवता भी आए हैं। नए साँई महाराज और संतोषी माता इनके मंदिर बने हैं। अपनी संस्कृति में ऐसी विविधता को मान्यता है। शर्त यही है कि श्रीराम का मंदिर तोड़कर न गणेश का मंदिर बनेगा, न साँई का।

अर्नेस्ट रेनाँ नाम के फ्रांसीसी दार्शनिक कहते हैं—

"The soil provides the substratum, the field for struggle and labour, man provides the soul. Man is everything in the formation of this sacred thing that we call a people. Nothing that is material suffices here. A nation is a spiritual principle, the result of the intricate workings of history, a spiritual family and not a group determined by the configuration of the earth."

He adds "Two things which are really one go to make this soul or spiritual principle. One of these things lies in the past, the other in the present. The one is the possession in common of a rich heritage of memories and the other is actual agreement, the desire to live together and the will to make the most of the joint inheritance. Man cannot be improvised. The nation like the individual is the fruit of a long past spent in toil, sacrifice and devotion.

संपूर्ण विश्वदृग में 'राष्ट्रत्व' के यही आधार हैं। अपने ही देश में सम्भ्रम है और उसके कारण मानसिक और व्यावहारिक भ्रांतियों का दर्शन होता है। वोटबैंक की राजनीति ने हमारे ही देश के कुछ लोगों को भौगोलिक राष्ट्रवाद का पक्षधर बना दिया है।

इस खंड में दूसरा महत्त्व का प्रतिपादन 'धर्म' के संबंध में है। 'धर्म' यह केवल हिंदुओं की संकल्पना है। अंग्रेज़ी भाषा में 'धर्म' के लिए यथार्थ पर्याय नहीं है। 'धर्म' का अनुवाद 'रिलिजन' किया जाता है, किंतु वह अपर्याप्त है। 'रिलिजन' धर्म का एक अंग है, संपूर्ण 'धर्म' नहीं है। अपनी ही भाषा के कुछ शब्द लीजिए। 'धर्मशाला', क्या

यह रिलिजस स्कूल होती है। 'धर्मार्थ अस्पताल'। क्या यह हॉस्पिटल फॉर रिलिजंस है? 'धर्मकांटा'। क्या इसपर रिलिजन का तोल होता है? 'राजधर्म'। क्या यह राजा का रिलिजन होता है, जो प्रजा का नहीं होता? अपने भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णनजी ने लिखा है—Hinduism is not a religion, it is a commonwealth of many religions. यह हिंदू ऐसा धर्म है कि जिसमें अनेक रिलिजंस का संघ अवस्थित होता है। पंडितजी भी लिखते हैं—"धर्म के संबंध में जो विकृति आज चारों ओर दिखाई पड़ती है, उसका अन्य कारणों के साथ एक बड़ा कारण विदेशी शिक्षा भी है। अंग्रेज़ी के शब्द 'रिलिजन' ने धर्म संबंधी शुद्ध अर्थ को ख़राब करने में बहुत भूमिका अदा की है।...हिंदू धर्म एक व्यापक शब्द है, जिसमें कई रिलिजन सम्मिलित होते हैं। रिलिजन को हमारे यहाँ उपासना पद्धति कहा गया है, यहाँ अनेक उपासना पद्धतियाँ प्रचलित हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिख, लिंगायत आदि कितनी ही प्रकार की भगवान् की उपासना पद्धतियाँ हैं। अनेक मत, अनेक संप्रदाय और अनेक प्रकार की आरती हैं, फिर भी धर्म एक है। (पृ. 38) दीनदयालजी आगे लिखते हैं—"धारणाद धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजा:" यानी जिस भाव, जिस व्यवस्था, जिन नियमों के कारण जिस वास्तु या व्यवहार की धारणा होती है, वह धर्म है।" (तत्रैव)

जब मनुष्य या समाज स्वयं को निसर्ग के साथ जोड़ता है, तब यह धारणा होती है। आप अपने लिए कितना भी भव्य मकान बनाइए, वह धर्म नहीं होता। जब औरों के निवास की व्यवस्था करते हैं, तब 'धर्मशाला' खड़ी होती है। अपने स्वयं के लिए दवाइयों का कितना भी प्रबंध करें, वह धर्म नहीं होता, जब औरों के आरोग्य की आप निःशुल्क व्यवस्था करते हैं, तब 'धर्मार्थ अस्पताल' बनता है। 'राजधर्म' यानी राजा के वे कर्तव्य, जो उसे प्रजा के साथ जोड़ते हैं। अपने से व्यापक अस्तित्व के साथ जोड़ना यह धर्म की पहली सीढ़ी है। मनुष्य कितना व्यापक हो सकता है, इसकी कोई सीमा नहीं। संपूर्ण मानव समाज के साथ भी वह स्वयं को जोड़ सकता है।

किंतु विश्व में केवल मानव ही नहीं रहते। पशु, पक्षी, वृक्ष, नदियाँ और पर्वत भी यहाँ होते हैं। ये भी हमारी ही सृष्टि के भाग हैं। इस सृष्टि के साथ स्वयं को जोड़ना यह भी धर्म है। अपनी संस्कृति बताती है कि सृष्टि को माता के स्वरूप में देखो। सृष्टिमाता। भूमाता यानी मातृभूमि। नदी भी माता यानी लोकमाता। गंगा केवल पानी का प्रवाह नहीं, गंगा मैया है। तुलसी केवल पेड़ नहीं, तुलसी मैया है। हिमालय को महाकवि कालिदास ने 'देवतात्मा' कहा है। वट की, पीपल की, औदुंबर (गूलर) की तथा शमी वृक्ष की पूजा बताई है। यह आदरभाव से सृष्टि के साथ अपने को जोड़ना और उसकी धारणा करना है। अत: विशेष देवता स्वरूप के साथ वृक्षों को भी जोड़ दिया है। वैसे ही पशु-पक्षियों को भी। गाय भगवान् श्रीकृष्ण के साथ। साँप को श्री शंकरजी के साथ। बैल को

भी उन्हीं के साथ। कुत्ते को दत्तात्रेय के साथ। चूहे को भी गणेशजी के साथ। यह विकास की दूसरी सीढ़ी है।

अंतिम सीढ़ी है चैतन्य के साथ जोड़ना। इसको कोई भगवान् कहे, गॉड कहे या अल्लाह कहे, सबको छूट है। ये सब परमात्मा के आविष्कार हैं। इनमें से किसी स्वरूप के साथ या निराकार, निर्गुण के साथ स्वयं को जोड़ना भी धर्म है। इस जोड़ने की विधि का नाम 'रिलिजन' है। 'धर्म' में अनेक रिलिजन रह सकते हैं, यह ऊपर बताया ही है। संक्षेप में कहना हो तो व्यष्टि (यानी व्यक्ति), समष्टि (यानी मानवसमाज), सृष्टि (यानी निसर्ग) और परमेष्ठी (यानी चैतन्यतत्त्व) इन चारों को जोड़नेवाला जो सूत्र है, उसका नाम धर्म है। यही धर्म संपूर्ण विश्व की धारणा कर सकता है। संघ में प्रतिदिन बोली जानेवाली प्रार्थना में 'परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्' यह पंक्ति है। यानी हमें अपने राष्ट्र को परम वैभव तक पहुँचाना है। किंतु पंडितजी कहते हैं कि उसके पहले एक शर्त है। वह है 'विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्' यानी इस धर्म का संरक्षण करते हुए। 'धर्म' की चर्चा ऊपर आई है। यह जो विश्व की धारणा करनेवाला अपना धर्म है, जो 'हिंदू धर्म' के नाम से जाना जाता है, उसका संरक्षण कर हमें परम वैभव पाना है। क्योंकि यह विश्व धर्म ही संपूर्ण मानवता को बचा सकता है। केवल परम वैभव पर्याप्त नहीं है।

इस लेख-संग्रह में 'विजय आकांक्षा' शीर्षक का एक लेख है। उसमें पंडितजी लिखते हैं, ''वास्तव में तो सहिष्णुता के समान ही जयिष्णुता का सिद्धांत भी आवश्यक है। यदि यह कहा जाए कि जयिष्णुता अधिक आवश्यक है तो अनुचित नहीं होगा। बिना जयिष्णुता की भावना के कोई समाज न तो जीवित ही रह सकता है और न वह अपने जीवन का विकास ही कर सकता है।'' (पृ. 87)

अपने देश का विगत एक हज़ार वर्षों का इतिहास देखते हुए ऐसा लगता है कि हम विजय ही भूल गए। किंतु विजिगीषा यानी विजय की आकांक्षा आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता कहती है कि 'द्वौ भूतसगौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च' (अध्याय 16, श्लोक 6) अर्थ है—इस विश्व में दो प्रकार के लोग रहते हैं। एक दैवी गुण संपदा वाले तो दूसरे आसुरी गुण संपदा वाले। दोनों का संघर्ष अपरिहार्य हो जाता है। हम नहीं चाहें तो भी संघर्ष होता ही है। रावण को श्रीराम की पत्नी सीता का अपहरण करने का मोह हो ही जाता है। कौरवों को कपट द्यूत में पांडवों को परास्त कर बारह वर्षों का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास को भेजने के बाद, द्यूत की शर्त के अनुसार पांडवों को लौटने पर उनका राज्य देना आवश्यक था। किंतु दुर्योधन इसको मानता नहीं। स्वयं भगवान् कृष्ण समझौते के लिए जाते हैं और कहते हैं कि पूरे राज्य की बात छोड़ दीजिए, केवल पाँच गाँव दे दो। तो दुर्योधन का उत्तर रहता है, सुई के नोंक के बराबर ज़मीन भी नहीं मिलेगी। फिर युद्ध अटल हो जाता है और जब युद्ध अटल हो जाता है, तब उसमें

विजय पाना आवश्यक है। अत: भीष्म पितामह के सामने शिखंडी को खड़ा किया जाता है, अश्वत्थामा नाम के हाथी को मारकर 'अश्वत्थामा मृत:' ऐसी घोषणा करनी पड़ती है और कर्ण के रथ का चक्र भूमि में धँसता है और वह उसको बाहर निकालने के लिए धनुष-बाण छोड़कर नीचे उतरता है और कहता है कि धर्मयुद्ध का नियम है कि नि:शस्त्र पर आघात नहीं किया जाता। तब उसके पापों का स्मरण दिलाकर उसका वध करना पड़ता है। वास्तव में भीष्म, द्रोण या कर्ण की विजय का यहाँ सवाल नहीं था, उनकी विजय के माध्यम से दुर्योधन की यानी आसुरी शक्ति की विजय होती। अत: धर्म की विजय के लिए पांडवों की विजय आवश्यक थी। इसलिए अपनी संस्कृति में विजिगीषा का महत्त्व वर्णित है। वह पाठ हम भूल गए इसलिए पृथ्वीराज चौहान की अंतिम विजय न हो सकी, न अलाउद्दीन से चित्तौड़ गढ़ बचाया जा सका। महाकवि कालिदास ने अपने 'रघुवंश' महाकाव्य में रघुवंश के राजाओं के जो अनेक गुण बताए हैं, उसमें 'विजिगीषूणाम' भी एक उनका विशेषण है।

पं. दीनदयालजी की विशेषता एक नया आर्थिक दर्शन प्रस्तुत करने में भी है। 'एकात्म मानवदर्शन' नाम से वह दर्शन विख्यात है। विश्व में चलनेवाली दो आर्थिक प्रणालियाँ हैं, वे पूँजीवाद और समाजवाद इन नामों से प्रचलित हैं। पूँजीवाद में अनिर्बंध वैयक्तिक स्वतंत्रता को मान्यता है, तो समाजवाद में संपूर्ण आर्थिक सत्ता समाज के हाथों में केंद्रित होती है। समाज का स्पष्ट और समग्र दर्शन न होने के कारण, समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाले राज्य के यानी राज्य चलानेवाले एक गुट के अधीन सब आर्थिक स्रोत केंद्रित हो जाते हैं। इन दोनों के कटु अनुभव हमने बीसवीं सदी में भोगे हैं। इस खंड के क्र. 5वें प्रकरण में इन बातों का संक्षिप्त विवरण है। मुझे लगता है कि 15 खंडों में इनका विस्तृत विवेचन करनेवाला कोई खंड होगा ही। अत: यहाँ इसका समग्र आलोड़न करने की आवश्यकता नहीं।

केवल और एक महत्त्व के मुद्दे की चर्चा यहाँ करना उचित होगा। वह मुद्दा है वर्णव्यवस्था का। इस खंड के 9वें प्रकरण में उसका विवेचन है। पंडितजी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के समर्थक दीखते हैं। यह बात सही है कि वह व्यवस्था अनेक सहस्राब्दियों तक चली थी। किंतु बाद में उसमें विकृति आई। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:' यानी गुण और कर्म के आधार पर मैंने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की निर्मिति की। किंतु इन आधारों पर वह आगे चली नहीं। 'गुणकर्मविभागश:' के स्थान पर 'जन्मश:' चली, वह आज कालबाह्य हो गई है। उस व्यवस्था का गुणवर्णन बौद्धिक स्तर पर किया जा सकता है। किंतु उसे वैसे ही प्रचलित करना असंभव है। रा. स्व. संघ की भी यही भूमिका है।

अस्तु। तात्पर्य यह कि इस 15वें खंड में, पं. दीनदयालजी के विविध लेखों के

माध्यम से, जो श्री भानुप्रताप शुक्ल और श्री रामशंकर अग्निहोत्री द्वारा संपादित 'राष्ट्रजीवन की दिशा' इस शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक में तथा 'राष्ट्रधर्म' मासिक में प्रकाशित साहित्य के द्वारा, जो पंडितजी के निधन के बाद प्रकाशित हुए हैं, पंडितजी की सूक्ष्म तथा व्यापक जीवन-दृष्टि का सामान्य वाचकों को परिचय होगा और एक प्रतिभाशाली तथा राष्ट्रभक्त व्यक्तित्व भारतीय जनों के दुर्भाग्य से अकस्मात् तिरोहित हो गया, इसका आज भी सभी को दु:ख है, किंतु नियति की लीला के सामने मनुष्य की कुछ चलती नहीं, यही सनातन सत्य है और उसे स्वीकार कर ही हमें आगे बढ़ना है। इति शम्।

—मा. गो. वैद्य

नागपुर
दि. 28-04-2016

अवसान

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या एक अबूझ पहेली बनी हुई है। वह शायद ही हल की जा सके। अब तो हाल यह है कि उसे अतीत का एक विस्मृत और दु:खद अध्याय मान लिया गया है। सबसे बड़ी भूल यही है। उस हत्या का रहस्य उनके एक लेख से और अधिक गहरा हो जाता है। 'प्रेग नगर का ख़ूनी खेल।' यह वह लेख है, जिसे पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा था, अपनी हत्या से सात साल पहले। वह लेख 'पाञ्चजन्य' में 20 फरवरी, 1961 को छपा है। क्या विचित्र दुर्योग है! उनकी हत्या भी सात साल बाद उसी महीने में हुई।

उस लेख का आमुख इन शब्दों में था—'प्रेग नगर चेकोस्लोवाकिया में स्थित है। यद्यपि यह कांगो से हज़ारों मील दूर है, परंतु सोवियत संघ के गुप्तचर विभाग द्वारा स्थापित वह ख़ूनी स्कूल यहीं पर चालू किया गया, जिसमें प्रशिक्षण प्राप्त युवकों ने कांगो में अराजकता निर्माण कर दी। पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत पंक्तियों में उस स्कूल की अविस्मरणीय कहानी दी जा रही है।' इस तरह संपादक ने लेख के बारे में सूचना दी। उस लेख में तथ्यों सहित वर्णन था कि किस तरह कम्युनिस्ट अपने राजनीतिक मंसूबे को पूरा करने के लिए हत्या के तौर-तरीक़ों की ट्रेनिंग का बाक़ायदे स्कूल चला रहे हैं। वह लेख एक चेतावनी थी, उनके लिए जो कम्युनिस्ट खेल को जानना और विफल करना चाहते थे। क्या उस चेतावनी को सरकार, समाज और बौद्धिक वर्ग ने सुना? ऐसा नहीं लगता।

अगर सुना होता तो पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या का षड्यंत्र सफल नहीं होता। विडंबना देखिए कि अदालत, जाँच आयोग और सी.बी.आई. ने अपने-अपने स्तर पर हत्या के रहस्य को खोलने के आधे-अधूरे प्रयास किए और जो बताया, वह किसी के गले नहीं उतरता। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सहयोगी रहे नानाजी देशमुख ने उनकी हत्या के पाँच साल बाद लिखा—'आज हम दीनदयाल उपाध्याय की 55वीं

जयंती मना रहे हैं, परंतु हमारी आँखों में आँसू हैं। पंडितजी की न केवल हत्या की गई, अपितु उनके हत्यारों का पता भी न लगाया जा सका। न तो सी.बी.आई. और न चंद्रचूड़ जाँच आयोग ही यह बता सके कि दीनदयालजी की किसने हत्या की और क्यों? ऐसा लगता है कि इस डर से कि सरकार के लिए इसके राजनीतिक परिणाम अच्छे नहीं होंगे, वह चाहती ही नहीं थी कि हत्यारे तथा संरक्षक पकड़े जाएँ।'

इस कथन में ही पूरी कहानी समाई हुई है। इसे समझने पर हर बात साफ़ हो जाती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय को माननेवाले अनुभव करते हैं कि हत्या का राज़ छिपाया गया। उसे दुर्घटना का दुःखद नतीज़ा साबित करने के लिए सरकार ने तीर और तुक्के बेतुके ढंग से जुड़वाए। हालाँकि केंद्र की इंदिरा गांधी सरकार उसमें पूरी तरह सफल नहीं हुई। क्यों और कैसे? इससे पहले हत्या से जुड़ी घटनाओं को जानना ज़रूरी है। इस बारे में काफ़ी कुछ लिखा गया है। यानी घटनाक्रम के दस्तावेज़ हैं। कुछ पुस्तकें भी हैं। कई पत्रिकाओं में लेख हैं। घटना के विवरण हैं। उन्हें ही यहाँ एक क्रम में बताने की कोशिश है।

बात 11 फरवरी, 1968 की है। मुग़लसराय स्टेशन रेलवे का बड़ा जंक्शन है। उसी के यार्ड में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मृत शरीर मिला। हुआ यह कि रात क़रीब साढ़े तीन बजे रेलवे के एक कर्मचारी ने वह दृश्य देखा। वह 'लीवरमेन' था। उसका नाम था, ईश्वर दयाल। उसने पाया कि रेलवे लाइन के पास लोहे और कंकड़-पत्थर पर एक निर्जीव शरीर पड़ा है। वह नहीं जानता था कि जिसे वह देख रहा है, वह भारत का एक महापुरुष है। उसने अपना फ़र्ज निभाया। सहायक स्टेशन मास्टर को रेलवे के फ़ोन से सूचना दी। उससे पहले शंटिंग पोर्टर दिग्पाल ने देख लिया था। ग़फ़ूर ड्राइवर इंजन की शंटिंग कर रहा था। गनर किशोर मिश्र उसके साथ था। दिग्पाल ने किशोर मिश्र को कहा और उसने ईश्वर दयाल को बताया।

इस तरह मुग़लसराय के सहायक स्टेशन मास्टर को ख़बर मिली। उसने बनी-बनाई पद्धति अपनाई। रेलवे पुलिस को सूचना दी। रेलवे पुलिस ने अपने एक जवान को पहले भेजा और बाद में दो सिपाही फिर भेजे गए। उन्हें शव की वहाँ निगरानी करनी थी। वे करते रहे। थोड़ी देर बाद रेलवे पुलिस का दरोगा पहुँचा। उसका नाम था, फ़तेहबहादुर। हलचल शुरू हुई। ऐसे अवसर पर अगला काम होता है, डॉक्टर को बुलाना। डॉक्टर को पहुँचने में देर लगी। उसी के आस-पास फ़ोटोग्राफ़र पहुँचा। अँधेरा होने के कारण सूर्योदय का उसने इंतज़ार किया। फिर फ़ोटो खींचा।

फ़ोटो बताता है कि शव पीठ के बल सीधा लेटा हुआ था। पैर पश्चिम की दिशा में थे। क़मर से मुँह तक का हिस्सा दुशाले से ढका हुआ था। घड़ी बाँधे बाँया हाथ दुशाले के ऊपर सीने पर था। दाँया हाथ मुड़कर सिर की ओर चला गया था। मुट्ठी में पाँच रुपए का नोट था। चेहरे की साफ़ तसवीर लेने के लिए फ़ोटोग्राफ़र ने सिर के नीचे ईंट

रख दी। फ़ोटो के बाद शव की तलाशी ली गई। जिसमें रेलवे का पहले दर्ज़े का टिकट और आरक्षण की परची मिली। घड़ी पर नानाजी देशमुख लिखा था। ज़ेब में 26 रुपए मिले। ये सूचनाएँ पुलिस को सतर्क करने के लिए काफ़ी थीं। फिर भी वह काहिल बनी रही। उसने पंडित दीनदयाल उपाध्याय की पहचान करने का कष्ट नहीं उठाया। उनके शरीर को 'अज्ञात' व्यक्ति का माना। पोस्टमार्टम की तैयारी शुरू की। पुलिस ने इस तरह छह घंटे लगाए। फिर शव को प्लेटफार्म पर रखा गया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जो धोती पहने हुए थे, उससे ही उन्हें ढका गया था।

मुग़लसराय स्टेशन हमेशा भीड़ से भरा रहता है। उसका यार्ड सबसे बड़ा माना जाता है। रोज़ उस बड़े यार्ड से चोरियों का पुराना सिलसिला चल रहा है। कह सकते हैं कि हत्या की साजिश रचनेवालों ने सोच-समझकर मुग़लसराय को चुना। ऐसे स्टेशन के प्लेटफार्म पर रखे एक शव ने हर देखनेवाले में उत्सुकता जगाई। बात फैली। लोग उस तरफ़ आने लगे। उनमें ही रेलवे का एक कर्मचारी था, वनमाली भट्टाचार्य। उसने ही पहचाना। इससे 'अज्ञात' व्यक्ति का शव अपनी पहचान में वापस आया। वे व्यक्ति थे, भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पंडित दीनदयाल उपाध्याय। उस कर्मचारी ने जनसंघ के स्थानीय नेताओं को सूचना दी। फिर क्या था। अविलंब जनसंघ के कार्यकर्ता स्टेशन पहुँचे। तब तक रेलवे पुलिस ने टिकट नंबर के आधार पर लखनऊ से पुष्टि कर ली कि उस पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय ही यात्रा कर रहे थे।

एक दिन पहले वे लखनऊ में थे। तारीख़ थी, 10 फरवरी, 1968। उसी दिन उनसे पटना आने के लिए आग्रह किया गया। कारण कि वहाँ बिहार प्रदेश जनसंघ की कार्यसमिति बैठ रही थी। आग्रह किया, अश्वनी कुमार ने। वे राज्य जनसंघ के संगठन मंत्री थे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एक शर्त पर उन्हें मंजूरी दी। वह यह कि उन्हें दिल्ली में रहने के लिए आग्रह न आ जाए। महामंत्री सुंदर सिंह भंडारी अगर दिल्ली में रहने के लिए कहते तो वे पटना नहीं जा सकते थे। दिल्ली में संसद् का बजट अधिवेशन शुरू हो रहा था। उसके लिए संसदीय दल की बैठक 11 फरवरी को होनेवाली थी। उनसे उसमें रहने के लिए आग्रह नहीं किया गया, इसलिए वे पटना की यात्रा पर निकले। पठानकोट-सियालदह एक्सप्रेस से चले। ट्रेन लखनऊ से शाम सात बजे चली।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पास थोड़ा सा सामान था। जीवन उनका सादा और सरल था। उसी के अनुरूप था उनका सामान। एक बिस्तरा, एक अटैची, किताबों का झोला और रात का भोजन। उन्हें सर्दी ज़्यादा लगती थी। इसी हिसाब से वे गरम कपड़े पहने हुए थे। कंधे पर ऊनी शॉल थी। उन्हें जो लोग विदा करने स्टेशन आए थे, उनमें उप मुख्यमंत्री रामप्रकाश गुप्त और विधान परिषद् सदस्य पीतांबर दास प्रमुख थे। वे जिस बोगी में यात्रा कर रहे थे, उसका आधा हिस्सा तीसरी श्रेणी का था और आधा

पहली श्रेणी का। रेलवे की भाषा में वह एफ.सी.टी. बोगी थी। पहली श्रेणी के हिस्से में तीन कूपे थे। ए,बी और सी। ए में चार, बी में दो और सी में चार बर्थ थीं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की बर्थ ए में थी, जिसे उन्होंने बदलवाकर बी कूपे में करवा लिया। वे उसमें अकेले यात्री थे। उन्होंने अपनी बर्थ विधान परिषद् सदस्य गौरी शंकर राय से अदला-बदली की। ए कूपे में दूसरे यात्री एम.पी. सिंह थे। वे सरकारी अफ़सर थे। सी कूपे में मेजर एस.एल. शर्मा का आरक्षण था। लेकिन उन्होंने लखनऊ से गोमोह की यात्रा उस बोगी में न करके ट्रेन सर्विस कोच में की। क्यों? इसका खुलासा नहीं किया गया। एक यह भी रहस्य है, जो आज भी बना हुआ है।

रात बारह बजे ट्रेन जौनपुर पहुँची। जनसंघ के नेता और जौनपुर के राजा यादवेंद्र दत्त दुबे का पत्र लेकर उनके सचिव कन्हैया आए। उस समय पंडित दीनदयाल उपाध्याय गहरी नींद में थे। दरवाज़ा खटखटाने पर थोड़ी देर बाद उठे। वे ट्रेन से उतरे। पत्र लिया। लेकिन चश्मा अंदर था, इसलिए कन्हैया को अपने साथ बर्थ पर ले आए। पत्र पढ़ा और जल्दी ही जवाब देने का वादा किया। गाड़ी छूटने का समय हो रहा था। वे दरवाज़े तक कन्हैया को पहुँचाने आए थे। वह ट्रेन पटना नहीं जाती थी। उसकी एक बोगी दिल्ली-हावड़ा में जुड़कर पटना पहुँचती थी। उस रात वह ट्रेन 2 बजकर 15 मिनट पर प्लेटफार्म नंबर एक पर पहुँची। उसकी वह बोगी दिल्ली-हावड़ा डाउन में जोड़ी गई और वह ट्रेन 2 बजकर 50 मिनट पर रवाना हुई।

बिहार जनसंघ के एक नेता कैलाशपति मिश्र पटना स्टेशन पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय की अगवानी में सुबह पहुँचे थे। उन्होंने उस बोगी में खोजा। उन्हें पंडितजी नहीं मिले। सोचा कि हो सकता है, न आए हों। समय का पहिया तेजी से धूम रहा था। ट्रेन मुकामा पहुँची। वहाँ पंडित दीनदयाल उपाध्याय की बर्थ के नीचे पड़ी अटैची देखी गई। उसे रेल अधिकारियों ने ट्रेन से उतरवाकर सुरक्षित रखा। इससे प्रकट हुआ कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ट्रेन में सवार थे। कहाँ गए और क्या हुआ? यह तो बाद में पता चला।

विलक्षण महापुरुष थे पंडित दीनदयाल उपाध्याय। इसे उनके जाने के बाद ही ज़्यादा समझा और माना गया। उनकी महानता को अनुभव किया गया। जब वे गए, तब उनके सामने भरा-पूरा भविष्य था। उम्र भी क्या थी, सिर्फ़ 51 साल। हमारे इतिहास में अनेक महापुरुष ऐसे हुए हैं, जिनकी महानता कम उम्र में ही प्रकट हुई। पंडित दीनदयाल उपाध्याय उनमें से एक हैं। यह सच है कि महानता का उम्र से कोई सीधा नाता नहीं होता। उसका नाता तो ज्ञान और गुण के वैभव से होता है। जो पंडित दीनदयाल उपाध्याय में था। उन्हें जो मानते हैं, वे भी और जो नहीं मानते वे भी, यह तो सभी जानते हैं कि उनकी निर्मम हत्या हुई। जिसके वे कहीं से भी पात्र नहीं थे। लेकिन लठैत बने हत्यारे भला इसे कैसे जानें! वे तो हत्या का धंधा कर रहे थे। जो उन्हें इस्तेमाल कर रहे थे,

वे ही षड्यंत्रकारी थे। वे ही षड्यंत्र के सूत्रधार थे। उन्होंने भरसक कोशिश की कि उनके निधन को मामूली दुर्घटना साबित कर दिया जाए। इसमें वे सफल नहीं हुए। लेकिन षड्यंत्र पर परदा डालने में वे अवश्य सफल हो गए। यह जितना सच है, उससे ज़्यादा गहरा रहस्य आज भी बना हुआ है कि हत्या के षड्यंत्रकारी आख़िरकार कौन थे? केंद्र में सरकारें आईं और गईं, लेकिन इस रहस्य का भेद जानना शेष है। क्या यह भेद जाना जा सकेगा?

मुग़लसराय प्लेटफार्म पर वनमाली भट्टाचार्य ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के मृत शरीर को पहचाना। इससे षड्यंत्रकारियों की मंशा धरी रह गई। वे उन्हें लावारिस बनाने के जुगाड़ में थे। जैसे ही पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शव पहचाना गया, देशभर में सनसनी फैली। आकुलता बढ़ी। शोक की लहर व्याप्त हो गई। बात 11 फरवरी, 1968 की है। इसे भी याद कर लेना चाहिए कि वह समय राजनीतिक संक्रमण का था। कांग्रेस जा रही थी और ग़ैर-कांग्रेस की हवा बन रही थी। भारतीय जनसंघ उसका नेतृत्व कर रहा था। उस जनसंघ का नेतृत्व पंडित दीनदयाल उपाध्याय कर रहे थे। उनके जाने का अर्थ था कि जनसंघ अपने सबसे प्रखर बौद्धिक पुरुष को गँवा बैठा। भारतीय जनसंघ में पूरा विकल्प दे पाने की संभावनाएँ प्रकट हो रही थीं। उसे ही समाप्त करने के लिए हत्या का षड्यंत्र रचा गया। ऐसा ही मत ज़्यादातर राजनीतिक नेताओं ने तब व्यक्त किया था।

हत्या की स्तब्ध कर देनेवाली सूचना दिल्ली पहुँची। उस समय अटल बिहारी वाजपेयी के निवास पर 10 बजे लखनऊ से फ़ोन आया। लेकिन वे 1 फ़िरोज शाह रोड पर जनसंघ संसदीय दल की कार्यकारिणी बैठक में थे। उन्हें वहाँ सूचना दी गई। जो स्वाभाविक था, वही हुआ। बैठक स्थगित कर दी गई। जनसंघ के नेता उस सूचना से सदमे में आ गए। उस सूचना की पुष्टि के लिए फ़ोन किए जाने लगे। जब पक्का हो गया कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या कर दी गई है, तब रेल राज्य मंत्री के निवास पर जाकर उसका विवरण प्राप्त करने का प्रयास हुआ। मुग़लसराय स्टेशन पर संपर्क कर रेल राज्य मंत्री ने विवरण दिया। इसी तरह वाराणसी के ज़िलाधिकारी से संपर्क किया गया। उनसे भी समाचार की पुष्टि हुई। इन विवरणों के आधार पर जनसंघ के नेताओं ने तत्क्षण दो निर्णय किए। एक कि वाराणसी तुरंत पहुँचना है। दूसरा कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दाह संस्कार दिल्ली में होगा।

वाराणसी पहुँचने के लिए विशेष विमान की ज़रूरत थी। जनसंघ के नेताओं ने गृहमंत्री यशवंत राव चव्हाण और विमानन मंत्री डॉ. कर्ण सिंह से संपर्क साधा। थोड़ी देर बाद गृह मंत्री के यहाँ से सूचना आई कि विशेष विमान का प्रबंध कर दिया गया है। उस विमान से अटल बिहारी वाजपेयी, बलराज मधोक और जगदीश प्रसाद माथुर

वाराणसी पहुँचे। वह विशेष विमान दोपहर बाद सवा चार बजे के आस-पास वाराणसी पहुँचा। जहाँ जनसंघ के कार्यकर्ता और वाराणसी के पुलिस अधीक्षक उनके पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें पोस्टमार्टम स्थल पर ले जाया गया।

मुग़लसराय से पंडित दीनदयाल उपाध्याय का पार्थिव शरीर पुलिस एंबुलेंस में एक बेंच पर रखकर लाया गया था। लापरवाही की वह हद थी। जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष के लिए पुलिस ने स्ट्रेचर का प्रबंध करने की समझ भी नहीं दिखाई। क्या ऐसा हड़बड़ी के कारण हुआ? सवा पाँच बजे के आस-पास दिल्ली से पहुँचे नेताओं को पोस्टमार्टम स्थल पर ले जाया गया। उसी समय लखनऊ से राज्य के उप मुख्यमंत्री राम प्रकाश गुप्त और दूसरे मंत्री गंगा भक्त सिंह भी वाराणसी पहुँचे। उन्हें थोड़ी देर बाद पोस्टमार्टम स्थल ले जाया गया। इन नेताओं के पहुँचने के बाद पोस्टमार्टम शुरू किया जा सकता था। लेकिन वह शुरू नहीं किया जा सका।

कारण कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक गुरुजी गोलवलकर (माधव सदाशिव गोलवलकर) उस समय प्रयाग में ही थे। यह एक संयोग ही था। वहाँ से वे चल पड़े थे। उनकी और संघ के दूसरे प्रमुख व्यक्तियों की प्रतीक्षा हो रही थी। गुरुजी के साथ संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, भाऊराव देवरस, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया), माधव राव देशमुख तथा आबा थट्टे आए। उनके पहुँचते ही सन्नाटा टूटा। हलचल मची। भावनाओं ने संयम का बाँध तोड़ा। उपस्थित समूह अपने को रोने-बिलखने से रोक नहीं सका। गुरुजी के साथ आए सभी प्रमुख व्यक्ति पोस्टमार्टम कक्ष में गए। उनके पीछे जनसंघ के नेता, मंत्री और सरकारी अफ़सर हो लिये। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पार्थिव शरीर के पास पहुँचकर मंत्रोच्चार किया। गुरुजी ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शव को देखा। शोकाकुल तो वे थे ही। उनके श्रीमुख से वाक्य निकला—'अरे, इसे क्या हो गया।' इसे उन्होंने कई बार दोहराया। वे रोवाँसे हो गए थे। पर भावनाओं को जज़्ब किया। इसके लिए उन्हें गहरी आंतरिक पीड़ा से गुज़रना पड़ा। वह आघात असाधारण जो था। अगले दिन उन्होंने जौनपुर के शिविर में स्वयंसेवकों को संबोधित करते हुए कहा, 'मैंने आँसू नहीं बहाए। मन पर नियंत्रण रखने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ा।'

उनके वहाँ से निकलने के बाद पोस्टमार्टम शुरू हुआ। बाहर प्रतीक्षा हो रही थी। एक-एक क्षण भारी पड़ रहा था। वहाँ और उसी तरह पूरे देश के मानस में एक ही प्रश्न बार-बार उभरता रहा। क्या यह दुर्घटना है या हत्या? पोस्टमार्टम शुरू होने पर बलराज मधोक और राम प्रकाश गुप्त दुर्घटना स्थल गए। वहाँ का मौक़ा मुआयना किया। घंटे भर बाद पोस्टमार्टम समाप्त हुआ। शव जनसंघ के नेताओं को अफ़सरों ने सौंप दिया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का पार्थिव शरीर एक स्ट्रेचर पर लिटाया गया था।

सत्ताईस

स्ट्रेचर पर रखा उनका शरीर जैसे ही बाहर आया, भारी भीड़ उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ी। माल्यार्पण हुआ। फूलों की वर्षा हुई। वातावरण शोक संतप्त था। स्ट्रेचर पर रखे उनके शरीर को एक ट्रक पर रखा गया। ट्रक पर जनसंघ के कई नेता थे। ट्रक हवाई अड्डे के लिए रवाना हुआ। उसे शोक संतप्त जनसमूह के बीच से रास्ते भर गुज़रना पड़ा। हवाई अड्डे पहुँचकर ट्रक से स्ट्रेचर सावधानीपूर्वक उतारा गया। जिसे जहाज़ में रख दिया गया। स्ट्रेचर जहाज़ में इस तरह रखा गया कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का सिर पायलट की ओर रहे और पैर दूसरी तरफ़। जहाज़ में 18 सीटें थीं। जिन्हें जहाज़ से जाना था, वे वहाँ उपस्थित थे। जहाज़ उड़ने के लिए तैयार था। वह रुका रहा जब तक गुरुजी गोलवलकर और उनके साथ भाऊराव देवरस वहाँ नहीं पहुँचे।

उनके पहुँचते ही लोग दो क़तार में खड़े हो गए। उसमें से होकर वे दोनों सीढ़ियाँ चढ़कर जहाज़ में पहुँचे। पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी को श्रद्धांजलि दी। लेकिन भाऊराव देवरस भावविह्वल हो गिर पड़े। उन्हें सँभालना पड़ा। गुरुजी ने अपने शोक को मानो पी लिया। आध्यात्मिक पुरुष जो थे। उनके उतरते ही जहाज़ रात सवा नौ बजे दिल्ली के लिए रवाना हुआ। उसमें अटल बिहारी वाजपेयी, बलराज मधोक, जगदीश प्रसाद माथुर सहित उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक मंत्री थे। कुल संख्या 12 थी।

उन दिनों राजेंद्र प्रसाद रोड की 30 नंबर की कोठी में अटल बिहारी वाजपेयी का निवास था। वहीं पंडित दीनदयाल उपाध्याय दिल्ली में आने पर ठहरते थे। उसी कोठी में उनके पार्थिव शरीर को लाकर दर्शनार्थ रखने का निर्णय पहले ही कर लिया गया था। उसके लिए व्यवस्था हो गई थी। उन्हें लेकर जहाज़ रात सवा ग्यारह बजे पहुँचा। हवाई अड्डे पर जनसंघ के नेता और बड़ी संख्या में नागरिक प्रतीक्षा कर रहे थे। जहाज़ में पहुँचकर मुख्य कार्यकारी पार्षद विजय कुमार मल्होत्रा, महानगर परिषद् के अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी और नगर निगम के उपाध्यक्ष बलराज खन्ना ने अपने दिवंगत नेता को पुष्पांजलि अर्पित की। थोड़ी देर बाद साथ आए नेतागण पंडित दीनदयाल उपाध्याय की अरथी लिये जहाज़ से बाहर निकले। उनका बाहर निकलना था कि वहाँ उपस्थित समूह ने नारे लगाए। 'अमर शहीद पंडित दीनदयाल उपाध्याय, अमर रहें।' साथ-साथ रोने-बिलखने की आवाज़ भी तेज होने लगी।

हवाई अड्डे से बाहर एक एंबुलेंस खड़ी थी। उसमें स्ट्रेचर को रखा गया। एंबुलेंस में ड्राइवर के बगल की सीट पर अटल बिहारी वाजपेयी बैठे और पीछे बच्छराज व्यास, जगदीश प्रसाद माथुर, नानाजी देशमुख और प्रभुदयाल शुक्ल बैठे। वे पहले पड़ाव के लिए चल पड़े। आगे-आगे मोटरसाइकिल, स्कूटर और उसके पीछे कारों की क़तारें थीं। जिसके पीछे एंबुलेंस चल रही थी। रात करीब एक बजे पंडित दीनदयाल उपाध्याय का पार्थिव शरीर 30 राजेंद्र प्रसाद रोड पहुँचा। वहाँ उन्हें ऊँचे मंच पर पूरी व्यवस्था के साथ

दर्शनार्थ रखा गया। गीता का सस्वर पाठ पहले से ही चल रहा था। अगले दिन वहाँ सबसे पहले उप प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई पहुँचे। श्रद्धांजलि दी। उसके बाद राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, लोकसभा अध्यक्ष नीलम संजीव रेड्डी, उपराष्ट्रपति वी.वी गिरी, केंद्रीय मंत्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद के अलावा आचार्य ज़े.बी. कृपलानी, सुचेता कृपलानी, हुमायूँ कबीर, जम्मू कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद, चौधरी चरण सिंह, जयप्रकाश नारायण और उनकी पत्नी प्रभावती देवी, सरदार स्वर्ण सिंह आदि नेताओं ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पार्थिव शरीर पर फूलमालाएँ चढ़ाईं और श्रद्धांजलि दी। हज़ारों लोगों ने वहाँ लगी हुई लंबी क़तार में प्रतीक्षा कर अपनी बारी का देर तक इंतज़ार किया और फिर वे दीनदयालजी का अंतिम दर्शन कर सके। शोक खुद को वहाँ सार्थक कर रहा था।

उसी शाम शवयात्रा प्रारंभ हुई। दो नारे गूँज रहे थे—'अमर शहीद पंडित दीनदयाल उपाध्याय अमर रहें' और 'भारत माता की जय।' हज़ारों लोग शोकाकुल मनोभाव में शवयात्रा के साथ रोते-बिलखते चल रहे थे। राजेंद्र प्रसाद रोड से जनपथ होते हुए कनॉट प्लेस का चक्कर लगाकर मिंटो ब्रिज से अजमेरी गेट होते हुए चावड़ी बाज़ार, और नई सड़क से चाँदनीचौक, घंटाघर के रास्ते ऐतिहासिक शीशगंज गुरुद्वारा से निगम बोध घाट की उस शवयात्रा में पाँच घंटे से ज़्यादा लगे। जगह-जगह हज़ारों लोग खड़े थे। फूलमालाओं की वर्षा हो रही थी। बाज़ार बंद थे, लेकिन लोग उमड़ पड़े थे। निगम बोध घाट पर जनसंघ और संघ के नेताओं के अलावा बड़ी संख्या में सांसद और अन्य दलों और राज्यों के नेता उपस्थित थे।

शाम क़रीब छह बजे पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शव उतारकर चबूतरे पर बनाई गई चिता पर रखा गया। श्रद्धांजलि का क्रम प्रारंभ हुआ। सबसे पहले तत्कालीन सरकार्यवाह बाला साहब देवरस आए। उनके बाद उपस्थित ख़ास-ख़ास नेताओं को बुलाया गया। फिर चंदन की लकड़ी रखी गई। हवन सामग्री छिड़की गई। तब ममेरे भाई प्रभु दयाल शुक्ल ने मंत्रोच्चार के बीच मुखाग्नि दी। इस तरह अंतिम संस्कार संपन्न हुआ। उस दौरान अपने प्रिय नेता के असमय जाने की वेदना वहाँ विविध रूपों में प्रकट हो रही थी। एक हफ्ते बाद अस्थियाँ संगम में विसर्जित की गईं। अस्थि कलश लेकर अटल बिहारी वाजपेयी और सुंदर सिंह भंडारी सहित सैकड़ों नेता प्रयाग पहुँचे थे।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या के दिन ही भारत सरकार ने जाँच सी.बी.आई. को सौंप दी। उस समय सी.बी.आई. के निदेशक जान लोबो थे। उन्हें ईमानदार अफ़सर माना जाता था। वे थे भी। जैसे ही जाँच सी.बी.आई. को सौंपी गई, वे अपनी टीम के साथ मुग़लसराय पहुँचे। जाँच में जुट गए। वे अपना काम पूरा कर पाते, उससे पहले ही उन्हें वापस बुला लिया गया। पहली आशंका उसी समय व्यक्त की गई कि जाँच की

दिशा बदली जा रही है। वह फ़ैसला राजनीतिक था। केंद्र सरकार के उस रवैये से साफ़ हुआ कि वह राजनीतिक नफ़ा-नुक़सान को ध्यान में रखकर सी.बी.आई. को निर्देश दे रही है। इंदिरा गांधी नहीं चाहती थीं कि हत्या का रहस्य खुले और षड्यंत्रकारी बेनक़ाब हों। सी.बी.आई. ने अपनी जाँच रिपोर्ट में बहुत हैरानी की बात कही। उसने हत्या को साधारण अपराध बताया। रिपोर्ट दी कि दो चोर-उचक्कों ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या कर दी। इरादा उनका चोरी का था। इस पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। विश्वास करने का कोई कारण भी नहीं था।

क्योंकि तथ्य दूसरी तरफ़ इशारा कर रहे थे। सी.बी.आई. की जाँच के आधार पर विशेष सत्र न्यायाधीश की अदालत में मुक़दमा चला। अदालत ने अपना फ़ैसला सुनाया। सज़ा दी। विशेष सत्र न्यायाधीश ने एक तरफ़ सी.बी.आई. की रिपोर्ट पर बिना संदेह किए फ़ैसला सुना दिया। दूसरी तरफ़ उसने यह कहकर सनसनी पैदा कर दी कि 'असली सच को अभी खोजा जाना है।' वह फ़ैसला 9 जून, 1969 को आया। इससे कम से कम दो बातें साफ़ होती हैं। पहली यह कि अदालत को भी सी.बी.आई. की रिपोर्ट पर भरोसा नहीं था। लेकिन उसके हाथ बँधे हुए थे। वह साक्ष्य कानून के अधीन ही सुनवाई कर सकते थे। दूसरी बात यह कि सी.बी.आई. ने मामले की सतही जाँच की। लोगों की आँखों में धूल झोंकी। अपने राजनीतिक आक़ाओं को ख़ुश रखा। सच खोजने की कोशिश ही नहीं की।

अदालत के फ़ैसले में जो टिप्पणी थी, उससे फिर एक बार गेंद इंदिरा गांधी की सरकार के पाले में आ गई। वे उस समय प्रधानमंत्री थीं। कम्युनिस्टों के समर्थन से सरकार चला रही थीं। उनकी राजनीतिक मजबूरियाँ थीं। लेकिन अदालत की टिप्पणी ऐसी थी कि सरकार को आख़िरकार जाँच आयोग बनाना पड़ा। उस पर जनदबाव भी ज़बरदस्त था। रोज़ आवाज़ तेज होती जा रही थी कि सरकार जाँच आयोग बनाए। उस माँग ने केंद्र को मजबूर किया। जाँच आयोग की नियुक्ति 23 अक्तूबर, 1969 को हुई। अदालत के फ़ैसले के पाँच महीने बाद जाँच आयोग गठित किया गया। वाई.वी. चंद्रचूड़ जाँच आयोग ने सी.बी.आई. की रिपोर्ट को ही आधार बनाया।

पहले यहाँ याद करना चाहिए कि अदालत ने अपना फ़ैसला जो सुनाया, वह क्या था? विशेष सत्र न्यायाधीश ने सी.बी.आई. के इस कथन को फ़ैसले का आधार बनाया— 'जनसंघ, उसके सूत्रों और अन्य स्रोतों से प्राप्त उन सभी इशारों और वैकल्पिक संभावनाओं की जाँच की गई है। लेकिन उन्हें या तो आधारहीन पाया गया है या फिर निरर्थक। इसी कोण से उस आरोप की भी बारीकी से जाँच की गई कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या में किसी चरम वामपंथी निर्देश की भूमिका रही होगी।'

'इस संदर्भ में कई आरोपों की जाँच की गई, उदाहरणार्थ, (क) कालीकट में

जनसंघ के अधिवेशन के दौरान उसमें और वामपंथियों में कड़वाहट। (ख) हत्या से पहले लखनऊ और राँची में वामपंथियों की गुप्त बैठकें, जहाँ कथित रूप से हत्या की साजिश रची गई। (ग) हत्यारों की तथाकथित कम्युनिस्ट पृष्ठभूमि और वामपंथ की ओर झुकाव। (घ) कई तथाकथित कम्युनिस्टों की उन दिनों में आवाजाही और हरकतों की भी जाँच की गई।'

लेकिन उसमें से भी कुछ नहीं निकला। इनमें से प्रमुख थे मुग़लसराय के पुलिस अफ़सर तलाल मेहता, वाराणसी के मुन्नीलाल गुप्त, एस.एन. तिवारी व आर.एस. यादव। टिकट चेकर रामदास, वैगन कार्यशाला में फिटर गंगा प्रसाद शर्मा और रुद्रपुर के राजेंद्र रस्तोगी। अमरोहा के डॉ. तनवीर के उन आरोपों की जाँच भी की गई, जिनमें उन्होंने दावा किया था कि उन्हें इस घृणित कृत्य के मुख्य पात्रों की जानकारी थी। उनका मानना था कि इसके पीछे कुछ सांप्रदायिक ताक़तों का हाथ था। ये वो शक्तियाँ थीं, जो जनवरी 1968 में मेरठ में शेख़ अब्दुल्ला के दौरे के बाद सक्रिय हो गई थीं। लेकिन ये सभी आरोप भी आधारहीन पाए गए।

जनसंघ के आपसी विवादों की कहानियों के संदर्भ में सांसद भदोरिया और जौनपुर के राजा से भी पूछताछ की गई। लेकिन कोई नतीज़ा नहीं निकला।

इस खंड के परिशिष्ट 6, 7 और 8 में क्रम से तीन दस्तावेज़ हैं। पहला टाइम्स ऑफ़ इंडिया का वह समाचार है, जो 9 जून, 1969 में लिखा गया और अगले दिन अख़बार में छपा। यही होता भी है। इस तरह ख़बर 10 जून को छपी। इसमें बताया गया है कि अभियुक्त भरत और रामअवध को हत्या के आरोप से बरी कर दिया गया। हालाँकि भरत ने हत्या करने का अपना अपराध क़बूल किया। लेकिन उस पर विश्वास नहीं किया गया। स्पष्ट है कि सी.बी.आई. हत्या के प्रमाण नहीं दे सकी। क्या वह प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के मौखिक निर्देशों का पालन कर रही थी? यह सवाल अब तक अनुत्तरित है।

परिशिष्ट 7 में पोस्टमार्टम रिपोर्ट दी गई है। परिशिष्ट 8 में विशेष सत्र न्यायाधीश के आदेश का कार्यात्मक अंश दिया गया है। जिसमें विशेष सत्र न्यायाधीश ने राम अवध को बरी कर दिया। भरत को चोरी करने के आरोप में चार साल की सज़ा इसलिए सुनाई कि वह सुधर जाए। विशेष सत्र न्यायाधीश ने नानाजी देशमुख के संदेह पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा था कि सी.बी.आई. ने जाँच को भटका दिया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या राजनीतिक षड्यंत्र थी। रामअवध और भरत पेशेवर चोर थे। वे मुग़लसराय यार्ड में छोटी-मोटी चोरी करते रहते थे। इस जुर्म में कई बार ज़ेल की सज़ा भी काट चुके थे। सी.बी.आई. को अगर ईमानदारी से अपना काम करने दिया जाता तो वह उस षड्यंत्र को बेपरदा कर सकती थी। यह कहने का एक ठोस आधार है।

जैसा कि ऊपर आप पढ़ चुके हैं। विशेष सत्र न्यायाधीश ने भरत को चार साल की सज़ा सुनाई। जिससे उसका सुधार हो सके। वह अपनी चोरी की आदत ज़ेल में रहते हुए सोच-विचार कर छोड़ दे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। उसकी सज़ा 1973 में समाप्त हो गई होगी। लेकिन इमरजेंसी के दौरान वे दोनों (भरत और रामअवध) वाराणसी के शिवपुर स्थित सेंट्रल ज़ेल में किसी दूसरे अपराध में सज़ा काट रहे थे। शातिर अपराधियों के साथ उन्हें अपराधी बंदियों के बैरक में रखा गया था। वहाँ जाने पर हमें उनका पता चला।

उन दिनों हम 17 राजनीतिक बंदियों को उसी ज़ेल में अलग एक बड़ी बैरक में ज़िला ज़ेल से स्थानांतरित किया गया था। उन 17 लोगों में मेरे अलावा एक लालमुनी चौबे भी थे। जिन्होंने जे.पी. आंदोलन के एक चरण में बिहार विधानसभा की सदस्यता छोड़ी थी। हम लोग ज़िला ज़ेल चौका घाट से एक शिकायत के आधार पर वहाँ कड़े पहरे में भेजे गए। वहाँ कुछ दिन गुजारने के बाद मैंने ज़ेल अधीक्षक से कहा कि अगर हो सके तो पुस्तकालय में आने-जाने की सुविधा करा दें और वहीं कुछ बंदियों को पढ़ाना भी चाहता हूँ। अधीक्षक ने अनिच्छापूर्वक इसकी अनुमति दी। उसके लिए एक व्यवस्था बनाई। जिससे हमारा पुस्तकालय में आना-जाना शुरू हुआ। उसी सिलसिले में वे दोनों खोजे जा सके। फिर हमने उन दोनों से बातचीत शुरू की।

सी.बी.आई. ने भी अपनी रिपोर्ट में बताया था कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या से तीन दिन पहले भरत वाराणसी के ज़िला ज़ेल से छूटा था। वहीं रामअवध उस समय के बिहार के आरा ज़िले की भबुवा ज़ेल से दो दिन पहले ही छूटा था। भबुवा ज़ेल में रहने के कारण लालमुनी चौबे के नाम से वह परिचित था। जहाँ चौबेजी को लोग बाबा कहकर बुलाते थे। बातचीत में वे दोनों भी उन्हें 'बाबा' कहकर ही आदरपूर्वक संबोधित करते थे। जब वे खुलने लगे तब एक दिन दोनों ने कहा, 'हमसे महापाप हो गया।' घटना के बाद वे जान सके थे कि हत्या जिनकी उन सबने की, वे एक महापुरुष थे। अपना कुकर्म क़बूलते हुए पश्चात्ताप का भाव उनके चेहरे पर उतर आता था। हत्या को भरत ने अदालत में भी क़बूला था। लेकिन उसके सबूत सी.बी.आई. को जुटाने थे, जो उसने नहीं जुटाए।

क्या उन्हें कुछ दिन पहले इसी काम के लिए ज़ेल से छुड़वाया गया था? अगर ऐसा था तो इसके सूत्रधार कौन थे? इसकी तह में जितना दूर तक जाने की ज़रूरत थी, उतना न सी.बी.आई. ने छानबीन की और न चंद्रचूड़ आयोग ने। जहाँ तक उन अपराधियों का सवाल है, वे यह नहीं बोलते थे कि इस्तेमाल हो गए। पर उनका हाव-भाव यही बताता था। सी.बी.आई. और जाँच आयोग दोनों इस नतीज़े पर अपनी रिपोर्ट में पहुँचते हैं कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय को मुग़लसराय में चलती ट्रेन से बाहर धक्का दिया

गया। वे खंबे से टकराए। उन्हें जो चोट लगी उससे मृत्यु हो गई।

इस निष्कर्ष को कहीं से भी तार्किक नहीं ठहराया जा सकता। अदालत और आयोग की सुनवाई के दौरान जनसंघ के वक़ील और आपराधिक मुक़दमों के माहिर चरण दास सेठ ने जो सवाल उठाए, वे आज भी जस के तस बने हुए हैं। पहला सवाल यही है कि खंबे से टकराने और भयानक चोट लगने के बावजूद मौक़े पर ख़ून का एक भी क़तरा क्यों नहीं पाया गया? पोस्टमार्टम रिपोर्ट में पाया गया कि उनके सिर पर इतनी चोट थी कि खोपड़ी टूट गई थी। सात पसलियाँ टूटी थीं। इसी तरह टखनों के ऊपर दोनों पैरों की हड्डियाँ टूट गई थीं। ऐसी चोटें जिस शरीर में लगी हों, उससे ख़ून का एक क़तरा भी न बहे, ऐसा कैसे हो सकता है?

इसलिए जनसंघ के वकील चरण दास सेठ का यह कहना सही लगता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या एफ.सी.टी. बोगी के कूपे में की गई। उसके बाद उन्हें ट्रेक्शन खंबा नंबर 1276 के नज़दीक रख दिया गया। जिस कूपे में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने यात्रा की, उसमें फिनायल की एक बोतल मिली। साधारण समझ से भी कोई छानबीन करे तो उसे तुरंत ख़याल में आएगा कि कूपे में लगे ख़ून के छींटों को साफ़ करने के लिए उसका उपयोग किया गया होगा। इस आधार पर हत्या की कहानी बदल जाती है।

इसी तरह यह रहस्य भी बना ही रहा कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या यात्रा के दौरान कहाँ पर की गई। भरत और रामअवध से इस कोण पर सी.बी.आई. ने पूछताछ क्यों नहीं की। ज़ेल में बातचीत जो हुई, उससे हमारा मत यह बना कि वाराणसी और मुग़लसराय के बीच में पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या की गई। चंद्रचूड़ आयोग ने इतना तो माना कि वाराणसी में कोई अजनबी उस बोगी में मौजूद था। आयोग की रिपोर्ट में है कि 'अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि ऐसा होने की संभावना अधिक है।' इसकी भी चंद्रचूड़ ने पूरी जाँच नहीं की। निष्कर्ष यह सुनाया कि 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय अंतिम बार केवल जौनपुर में ही जीवित देखे गए। वाराणसी में उनका जीवित रहना सिद्ध नहीं होता।'

न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ आयोग की रिपोर्ट के एक अंश में यह तो माना गया कि हत्या बहुत रहस्यमय थी, लेकिन उसके निष्कर्ष उससे ज़्यादा हैरतअंग्रेज़ बन गए। पहले रिपोर्ट के इस हिस्से को पढ़ें—"मुग़लसराय पर जो कुछ हुआ, वह अंशों में कहानी से भी ज़्यादा अनोखी है। मुग़लसराय स्टेशन पर अनेक व्यक्तियों ने संदेह उत्पन्न करनेवाला असामान्य बरताव किया। जो कुछ उन्होंने किया, ऐसी तुलनात्मक परिस्थितियों में सामान्य मानवीय बरताव की आशा के विपरीत था। इसी प्रकार, मुग़लसराय की कुछ घटनाएँ असामान्य संरचना में बुनी हुई हैं। जब मानव और घटनाओं के बारे में सामान्य आशाएँ झुठलाई जाती हैं, संदेह उठ खड़े होते हैं।" "इस मामले में ऐसे संदेहास्पद

यह रिलिजस स्कूल होती है। 'धर्मार्थ अस्पताल'। क्या यह हॉस्पिटल फॉर रिलिजंस है? 'धर्मकांटा'। क्या इसपर रिलिजन का तोल होता है? 'राजधर्म'। क्या यह राजा का रिलिजन होता है, जो प्रजा का नहीं होता? अपने भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णनजी ने लिखा है—Hinduism is not a religion, it is a commonwealth of many religions. यह हिंदू ऐसा धर्म है कि जिसमें अनेक रिलिजंस का संघ अवस्थित होता है। पंडितजी भी लिखते हैं—"धर्म के संबंध में जो विकृति आज चारों ओर दिखाई पड़ती है, उसका अन्य कारणों के साथ एक बड़ा कारण विदेशी शिक्षा भी है। अंग्रेज़ी के शब्द 'रिलिजन' ने धर्म संबंधी शुद्ध अर्थ को ख़राब करने में बहुत भूमिका अदा की है।...हिंदू धर्म एक व्यापक शब्द है, जिसमें कई रिलिजन सम्मिलित होते हैं। रिलिजन को हमारे यहाँ उपासना पद्धति कहा गया है, यहाँ अनेक उपासना पद्धतियाँ प्रचलित हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिख, लिंगायत आदि कितनी ही प्रकार की भगवान् की उपासना पद्धतियाँ हैं। अनेक मत, अनेक संप्रदाय और अनेक प्रकार की आरती हैं, फिर भी धर्म एक है। (पृ. 38) दीनदयालजी आगे लिखते हैं—"धारणाद धर्म इत्याहु: धर्मो धारयते प्रजा:" यानी जिस भाव, जिस व्यवस्था, जिन नियमों के कारण जिस वास्तु या व्यवहार की धारणा होती है, वह धर्म है।" (तत्रैव)

जब मनुष्य या समाज स्वयं को निसर्ग के साथ जोड़ता है, तब यह धारणा होती है। आप अपने लिए कितना भी भव्य मकान बनाइए, वह धर्म नहीं होता। जब औरों के निवास की व्यवस्था करते हैं, तब 'धर्मशाला' खड़ी होती है। अपने स्वयं के लिए दवाइयों का कितना भी प्रबंध करें, वह धर्म नहीं होता, जब औरों के आरोग्य की आप निःशुल्क व्यवस्था करते हैं, तब 'धर्मार्थ अस्पताल' बनता है। 'राजधर्म' यानी राजा के वे कर्तव्य, जो उसे प्रजा के साथ जोड़ते हैं। अपने से व्यापक अस्तित्व के साथ जोड़ना यह धर्म की पहली सीढ़ी है। मनुष्य कितना व्यापक हो सकता है, इसकी कोई सीमा नहीं। संपूर्ण मानव समाज के साथ भी वह स्वयं को जोड़ सकता है।

किंतु विश्व में केवल मानव ही नहीं रहते। पशु, पक्षी, वृक्ष, नदियाँ और पर्वत भी यहाँ होते हैं। ये भी हमारी ही सृष्टि के भाग हैं। इस सृष्टि के साथ स्वयं को जोड़ना यह भी धर्म है। अपनी संस्कृति बताती है कि सृष्टि को माता के स्वरूप में देखो। सृष्टिमाता। भूमाता यानी मातृभूमि। नदी भी माता यानी लोकमाता। गंगा केवल पानी का प्रवाह नहीं, गंगा मैया है। तुलसी केवल पेड़ नहीं, तुलसी मैया है। हिमालय को महाकवि कालिदास ने 'देवतात्मा' कहा है। वट की, पीपल की, औदुंबर (गूलर) की तथा शमी वृक्ष की पूजा बताई है। यह आदरभाव से सृष्टि के साथ अपने को जोड़ना और उसकी धारणा करना है। अत: विशेष देवता स्वरूप के साथ वृक्षों को भी जोड़ दिया है। वैसे ही पशु-पक्षियों को भी। गाय भगवान् श्रीकृष्ण के साथ। साँप को श्री शंकरजी के साथ। बैल को

भी उन्हीं के साथ। कुत्ते को दत्तात्रेय के साथ। चूहे को भी गणेशजी के साथ। यह विकास की दूसरी सीढ़ी है।

अंतिम सीढ़ी है चैतन्य के साथ जोड़ना। इसको कोई भगवान् कहे, गॉड कहे या अल्लाह कहे, सबको छूट है। ये सब परमात्मा के आविष्कार हैं। इनमें से किसी स्वरूप के साथ या निराकार, निर्गुण के साथ स्वयं को जोड़ना भी धर्म है। इस जोड़ने की विधि का नाम 'रिलिजन' है। 'धर्म' में अनेक रिलिजन रह सकते हैं, यह ऊपर बताया ही है। संक्षेप में कहना हो तो व्यष्टि (यानी व्यक्ति), समष्टि (यानी मानवसमाज), सृष्टि (यानी निसर्ग) और परमेष्ठी (यानी चैतन्यतत्त्व) इन चारों को जोड़नेवाला जो सूत्र है, उसका नाम धर्म है। यही धर्म संपूर्ण विश्व की धारणा कर सकता है। संघ में प्रतिदिन बोली जानेवाली प्रार्थना में 'परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्' यह पंक्ति है। यानी हमें अपने राष्ट्र को परम वैभव तक पहुँचाना है। किंतु पंडितजी कहते हैं कि उसके पहले एक शर्त है। वह है 'विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्' यानी इस धर्म का संरक्षण करते हुए। 'धर्म' की चर्चा ऊपर आई है। यह जो विश्व की धारणा करनेवाला अपना धर्म है, जो 'हिंदू धर्म' के नाम से जाना जाता है, उसका संरक्षण कर हमें परम वैभव पाना है। क्योंकि यह विश्व धर्म ही संपूर्ण मानवता को बचा सकता है। केवल परम वैभव पर्याप्त नहीं है।

इस लेख-संग्रह में 'विजय आकांक्षा' शीर्षक का एक लेख है। उसमें पंडितजी लिखते हैं, ''वास्तव में तो सहिष्णुता के समान ही जयिष्णुता का सिद्धांत भी आवश्यक है। यदि यह कहा जाए कि जयिष्णुता अधिक आवश्यक है तो अनुचित नहीं होगा। बिना जयिष्णुता की भावना के कोई समाज न तो जीवित ही रह सकता है और न वह अपने जीवन का विकास ही कर सकता है।'' (पृ. 87)

अपने देश का विगत एक हज़ार वर्षों का इतिहास देखते हुए ऐसा लगता है कि हम विजय ही भूल गए। किंतु विजिगीषा यानी विजय की आकांक्षा आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता कहती है कि 'द्वौ भूतसगौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च' (अध्याय 16, श्लोक 6) अर्थ है—इस विश्व में दो प्रकार के लोग रहते हैं। एक दैवी गुण संपदा वाले तो दूसरे आसुरी गुण संपदा वाले। दोनों का संघर्ष अपरिहार्य हो जाता है। हम नहीं चाहें तो भी संघर्ष होता ही है। रावण को श्रीराम की पत्नी सीता का अपहरण करने का मोह हो ही जाता है। कौरवों को कपट द्यूत में पांडवों को परास्त कर बारह वर्षों का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास को भेजने के बाद, द्यूत की शर्त के अनुसार पांडवों को लौटने पर उनका राज्य देना आवश्यक था। किंतु दुर्योधन इसको मानता नहीं। स्वयं भगवान् कृष्ण समझौते के लिए जाते हैं और कहते हैं कि पूरे राज्य की बात छोड़ दीजिए, केवल पाँच गाँव दे दो। तो दुर्योधन का उत्तर रहता है, सुई के नोंक के बराबर ज़मीन भी नहीं मिलेगी। फिर युद्ध अटल हो जाता है और जब युद्ध अटल हो जाता है, तब उसमें

विजय पाना आवश्यक है। अत: भीष्म पितामह के सामने शिखंडी को खड़ा किया जाता है, अश्वत्थामा नाम के हाथी को मारकर 'अश्वत्थामा मृत:' ऐसी घोषणा करनी पड़ती है और कर्ण के रथ का चक्र भूमि में धँसता है और वह उसको बाहर निकालने के लिए धनुष-बाण छोड़कर नीचे उतरता है और कहता है कि धर्मयुद्ध का नियम है कि नि:शस्त्र पर आघात नहीं किया जाता। तब उसके पापों का स्मरण दिलाकर उसका वध करना पड़ता है। वास्तव में भीष्म, द्रोण या कर्ण की विजय का यहाँ सवाल नहीं था, उनकी विजय के माध्यम से दुर्योधन की यानी आसुरी शक्ति की विजय होती। अत: धर्म की विजय के लिए पांडवों की विजय आवश्यक थी। इसलिए अपनी संस्कृति में विजिगीषा का महत्त्व वर्णित है। वह पाठ हम भूल गए इसलिए पृथ्वीराज चौहान की अंतिम विजय न हो सकी, न अलाउद्दीन से चित्तौड़ गढ़ बचाया जा सका। महाकवि कालिदास ने अपने 'रघुवंश' महाकाव्य में रघुवंश के राजाओं के जो अनेक गुण बताए हैं, उसमें 'विजिगीषूणाम' भी एक उनका विशेषण है।

पं. दीनदयालजी की विशेषता एक नया आर्थिक दर्शन प्रस्तुत करने में भी है। 'एकात्म मानवदर्शन' नाम से वह दर्शन विख्यात है। विश्व में चलनेवाली दो आर्थिक प्रणालियाँ हैं, वे पूँजीवाद और समाजवाद इन नामों से प्रचलित हैं। पूँजीवाद में अनिर्बंध वैयक्तिक स्वतंत्रता को मान्यता है, तो समाजवाद में संपूर्ण आर्थिक सत्ता समाज के हाथों में केंद्रित होती है। समाज का स्पष्ट और समग्र दर्शन न होने के कारण, समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाले राज्य के यानी राज्य चलानेवाले एक गुट के अधीन सब आर्थिक स्रोत केंद्रित हो जाते हैं। इन दोनों के कटु अनुभव हमने बीसवीं सदी में भोगे हैं। इस खंड के क्र. 5वें प्रकरण में इन बातों का संक्षिप्त विवरण है। मुझे लगता है कि 15 खंडों में इनका विस्तृत विवेचन करनेवाला कोई खंड होगा ही। अत: यहाँ इसका समग्र आलोड़न करने की आवश्यकता नहीं।

केवल और एक महत्त्व के मुद्दे की चर्चा यहाँ करना उचित होगा। वह मुद्दा है वर्णव्यवस्था का। इस खंड के 9वें प्रकरण में उसका विवेचन है। पंडितजी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के समर्थक दीखते हैं। यह बात सही है कि वह व्यवस्था अनेक सहस्राब्दियों तक चली थी। किंतु बाद में उसमें विकृति आई। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:' यानी गुण और कर्म के आधार पर मैंने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की निर्मिति की। किंतु इन आधारों पर वह आगे चली नहीं। 'गुणकर्मविभागश:' के स्थान पर 'जन्मश:' चली, वह आज कालबाह्य हो गई है। उस व्यवस्था का गुणवर्णन बौद्धिक स्तर पर किया जा सकता है। किंतु उसे वैसे ही प्रचलित करना असंभव है। रा. स्व. संघ की भी यही भूमिका है।

अस्तु। तात्पर्य यह कि इस 15वें खंड में, पं. दीनदयालजी के विविध लेखों के

माध्यम से, जो श्री भानुप्रताप शुक्ल और श्री रामशंकर अग्निहोत्री द्वारा संपादित 'राष्ट्रजीवन की दिशा' इस शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक में तथा 'राष्ट्रधर्म' मासिक में प्रकाशित साहित्य के द्वारा, जो पंडितजी के निधन के बाद प्रकाशित हुए हैं, पंडितजी की सूक्ष्म तथा व्यापक जीवन-दृष्टि का सामान्य वाचकों को परिचय होगा और एक प्रतिभाशाली तथा राष्ट्रभक्त व्यक्तित्व भारतीय जनों के दुर्भाग्य से अकस्मात् तिरोहित हो गया, इसका आज भी सभी को दु:ख है, किंतु नियति की लीला के सामने मनुष्य की कुछ चलती नहीं, यही सनातन सत्य है और उसे स्वीकार कर ही हमें आगे बढ़ना है। इति शम्।

—मा. गो. वैद्य

नागपुर
दि. 28-04-2016

अवसान

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या एक अबूझ पहेली बनी हुई है। वह शायद ही हल की जा सके। अब तो हाल यह है कि उसे अतीत का एक विस्मृत और दुःखद अध्याय मान लिया गया है। सबसे बड़ी भूल यही है। उस हत्या का रहस्य उनके एक लेख से और अधिक गहरा हो जाता है। 'प्रेग नगर का ख़ूनी खेल।' यह वह लेख है, जिसे पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा था, अपनी हत्या से सात साल पहले। वह लेख 'पाञ्चजन्य' में 20 फरवरी, 1961 को छपा है। क्या विचित्र दुर्योग है! उनकी हत्या भी सात साल बाद उसी महीने में हुई।

उस लेख का आमुख इन शब्दों में था—'प्रेग नगर चेकोस्लोवाकिया में स्थित है। यद्यपि यह कांगो से हज़ारों मील दूर है, परंतु सोवियत संघ के गुप्तचर विभाग द्वारा स्थापित वह ख़ूनी स्कूल यहीं पर चालू किया गया, जिसमें प्रशिक्षण प्राप्त युवकों ने कांगो में अराजकता निर्माण कर दी। पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत पंक्तियों में उस स्कूल की अविस्मरणीय कहानी दी जा रही है।' इस तरह संपादक ने लेख के बारे में सूचना दी। उस लेख में तथ्यों सहित वर्णन था कि किस तरह कम्युनिस्ट अपने राजनीतिक मंसूबे को पूरा करने के लिए हत्या के तौर-तरीक़ों की ट्रेनिंग का बाक़ायदे स्कूल चला रहे हैं। वह लेख एक चेतावनी थी, उनके लिए जो कम्युनिस्ट खेल को जानना और विफल करना चाहते थे। क्या उस चेतावनी को सरकार, समाज और बौद्धिक वर्ग ने सुना? ऐसा नहीं लगता।

अगर सुना होता तो पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या का षड्यंत्र सफल नहीं होता। विडंबना देखिए कि अदालत, जाँच आयोग और सी.बी.आई. ने अपने-अपने स्तर पर हत्या के रहस्य को खोलने के आधे-अधूरे प्रयास किए और जो बताया, वह किसी के गले नहीं उतरता। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सहयोगी रहे नानाजी देशमुख ने उनकी हत्या के पाँच साल बाद लिखा—'आज हम दीनदयाल उपाध्याय की 55वीं

जयंती मना रहे हैं, परंतु हमारी आँखों में आँसू हैं। पंडितजी की न केवल हत्या की गई, अपितु उनके हत्यारों का पता भी न लगाया जा सका। न तो सी.बी.आई. और न चंद्रचूड़ जाँच आयोग ही यह बता सके कि दीनदयालजी की किसने हत्या की और क्यों? ऐसा लगता है कि इस डर से कि सरकार के लिए इसके राजनीतिक परिणाम अच्छे नहीं होंगे, वह चाहती ही नहीं थी कि हत्यारे तथा संरक्षक पकड़े जाएँ।'

इस कथन में ही पूरी कहानी समाई हुई है। इसे समझने पर हर बात साफ़ हो जाती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय को माननेवाले अनुभव करते हैं कि हत्या का राज़ छिपाया गया। उसे दुर्घटना का दुःखद नतीज़ा साबित करने के लिए सरकार ने तीर और तुक्के बेतुके ढंग से जुड़वाए। हालाँकि केंद्र की इंदिरा गांधी सरकार उसमें पूरी तरह सफल नहीं हुई। क्यों और कैसे? इससे पहले हत्या से जुड़ी घटनाओं को जानना ज़रूरी है। इस बारे में काफ़ी कुछ लिखा गया है। यानी घटनाक्रम के दस्तावेज़ हैं। कुछ पुस्तकें भी हैं। कई पत्रिकाओं में लेख हैं। घटना के विवरण हैं। उन्हें ही यहाँ एक क्रम में बताने की कोशिश है।

बात 11 फरवरी, 1968 की है। मुग़लसराय स्टेशन रेलवे का बड़ा जंक्शन है। उसी के यार्ड में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मृत शरीर मिला। हुआ यह कि रात क़रीब साढ़े तीन बजे रेलवे के एक कर्मचारी ने वह दृश्य देखा। वह 'लीवरमेन' था। उसका नाम था, ईश्वर दयाल। उसने पाया कि रेलवे लाइन के पास लोहे और कंकड़-पत्थर पर एक निर्जीव शरीर पड़ा है। वह नहीं जानता था कि जिसे वह देख रहा है, वह भारत का एक महापुरुष है। उसने अपना फ़र्ज निभाया। सहायक स्टेशन मास्टर को रेलवे के फ़ोन से सूचना दी। उससे पहले शंटिंग पोर्टर दिग्पाल ने देख लिया था। ग़फूर ड्राइवर इंजन की शंटिंग कर रहा था। गनर किशोर मिश्र उसके साथ था। दिग्पाल ने किशोर मिश्र को कहा और उसने ईश्वर दयाल को बताया।

इस तरह मुग़लसराय के सहायक स्टेशन मास्टर को ख़बर मिली। उसने बनी-बनाई पद्धति अपनाई। रेलवे पुलिस को सूचना दी। रेलवे पुलिस ने अपने एक जवान को पहले भेजा और बाद में दो सिपाही फिर भेजे गए। उन्हें शव की वहाँ निगरानी करनी थी। वे करते रहे। थोड़ी देर बाद रेलवे पुलिस का दरोगा पहुँचा। उसका नाम था, फ़तेहबहादुर। हलचल शुरू हुई। ऐसे अवसर पर अगला काम होता है, डॉक्टर को बुलाना। डॉक्टर को पहुँचने में देर लगी। उसी के आस-पास फ़ोटोग्राफ़र पहुँचा। अँधेरा होने के कारण सूर्योदय का उसने इंतज़ार किया। फिर फ़ोटो खींचा।

फ़ोटो बताता है कि शव पीठ के बल सीधा लेटा हुआ था। पैर पश्चिम की दिशा में थे। क़मर से मुँह तक का हिस्सा दुशाले से ढका हुआ था। घड़ी बाँधे बाँया हाथ दुशाले के ऊपर सीने पर था। दाँया हाथ मुड़कर सिर की ओर चला गया था। मुट्ठी में पाँच रुपए का नोट था। चेहरे की साफ़ तसवीर होने के लिए फ़ोटोग्राफ़र ने सिर के नीचे ईंट

रख दी। फ़ोटो के बाद शव की तलाशी ली गई। जिसमें रेलवे का पहले दर्ज़े का टिकट और आरक्षण की परची मिली। घड़ी पर नानाजी देशमुख लिखा था। ज़ेब में 26 रुपए मिले। ये सूचनाएँ पुलिस को सतर्क करने के लिए काफ़ी थीं। फिर भी वह काहिल बनी रही। उसने पंडित दीनदयाल उपाध्याय की पहचान करने का कष्ट नहीं उठाया। उनके शरीर को 'अज्ञात' व्यक्ति का माना। पोस्टमार्टम की तैयारी शुरू की। पुलिस ने इस तरह छह घंटे लगाए। फिर शव को प्लेटफार्म पर रखा गया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जो धोती पहने हुए थे, उससे ही उन्हें ढका गया था।

मुग़लसराय स्टेशन हमेशा भीड़ से भरा रहता है। उसका यार्ड सबसे बड़ा माना जाता है। रोज़ उस बड़े यार्ड से चोरियों का पुराना सिलसिला चल रहा है। कह सकते हैं कि हत्या की साजिश रचनेवालों ने सोच-समझकर मुग़लसराय को चुना। ऐसे स्टेशन के प्लेटफार्म पर रखे एक शव ने हर देखनेवाले में उत्सुकता जगाई। बात फैली। लोग उस तरफ़ आने लगे। उनमें ही रेलवे का एक कर्मचारी था, वनमाली भट्टाचार्य। उसने ही पहचाना। इससे 'अज्ञात' व्यक्ति का शव अपनी पहचान में वापस आया। वे व्यक्ति थे, भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पंडित दीनदयाल उपाध्याय। उस कर्मचारी ने जनसंघ के स्थानीय नेताओं को सूचना दी। फिर क्या था। अविलंब जनसंघ के कार्यकर्ता स्टेशन पहुँचे। तब तक रेलवे पुलिस ने टिकट नंबर के आधार पर लखनऊ से पुष्टि कर ली कि उस पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय ही यात्रा कर रहे थे।

एक दिन पहले वे लखनऊ में थे। तारीख़ थी, 10 फरवरी, 1968। उसी दिन उनसे पटना आने के लिए आग्रह किया गया। कारण कि वहाँ बिहार प्रदेश जनसंघ की कार्यसमिति बैठ रही थी। आग्रह किया, अश्वनी कुमार ने। वे राज्य जनसंघ के संगठन मंत्री थे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एक शर्त पर उन्हें मंजूरी दी। वह यह कि उन्हें दिल्ली में रहने के लिए आग्रह न आ जाए। महामंत्री सुंदर सिंह भंडारी अगर दिल्ली में रहने के लिए कहते तो वे पटना नहीं जा सकते थे। दिल्ली में संसद् का बजट अधिवेशन शुरू हो रहा था। उसके लिए संसदीय दल की बैठक 11 फरवरी को होनेवाली थी। उनसे उसमें रहने के लिए आग्रह नहीं किया गया, इसलिए वे पटना की यात्रा पर निकले। पठानकोट-सियालदह एक्सप्रेस से चले। ट्रेन लखनऊ से शाम सात बजे चली।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पास थोड़ा सा सामान था। जीवन उनका सादा और सरल था। उसी के अनुरूप था उनका सामान। एक बिस्तरा, एक अटैची, किताबों का झोला और रात का भोजन। उन्हें सर्दी ज़्यादा लगती थी। इसी हिसाब से वे गरम कपड़े पहने हुए थे। कंधे पर ऊनी शॉल थी। उन्हें जो लोग विदा करने स्टेशन आए थे, उनमें उप मुख्यमंत्री रामप्रकाश गुप्त और विधान परिषद् सदस्य पीतांबर दास प्रमुख थे। वे जिस बोगी में यात्रा कर रहे थे, उसका आधा हिस्सा तीसरी श्रेणी का था और आधा

पहली श्रेणी का। रेलवे की भाषा में वह एफ.सी.टी. बोगी थी। पहली श्रेणी के हिस्से में तीन कूपे थे। ए,बी और सी। ए में चार, बी में दो और सी में चार बर्थ थीं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की बर्थ ए में थी, जिसे उन्होंने बदलवाकर बी कूपे में करवा लिया। वे उसमें अकेले यात्री थे। उन्होंने अपनी बर्थ विधान परिषद् सदस्य गौरी शंकर राय से अदला-बदली की। ए कूपे में दूसरे यात्री एम.पी. सिंह थे। वे सरकारी अफ़सर थे। सी कूपे में मेजर एस.एल. शर्मा का आरक्षण था। लेकिन उन्होंने लखनऊ से गोमोह की यात्रा उस बोगी में न करके ट्रेन सर्विस कोच में की। क्यों? इसका खुलासा नहीं किया गया। एक यह भी रहस्य है, जो आज भी बना हुआ है।

रात बारह बजे ट्रेन जौनपुर पहुँची। जनसंघ के नेता और जौनपुर के राजा यादवेंद्र दत्त दुबे का पत्र लेकर उनके सचिव कन्हैया आए। उस समय पंडित दीनदयाल उपाध्याय गहरी नींद में थे। दरवाज़ा खटखटाने पर थोड़ी देर बाद उठे। वे ट्रेन से उतरे। पत्र लिया। लेकिन चश्मा अंदर था, इसलिए कन्हैया को अपने साथ बर्थ पर ले आए। पत्र पढ़ा और जल्दी ही जवाब देने का वादा किया। गाड़ी छूटने का समय हो रहा था। वे दरवाज़े तक कन्हैया को पहुँचाने आए थे। वह ट्रेन पटना नहीं जाती थी। उसकी एक बोगी दिल्ली-हावड़ा में जुड़कर पटना पहुँचती थी। उस रात वह ट्रेन 2 बजकर 15 मिनट पर प्लेटफार्म नंबर एक पर पहुँची। उसकी वह बोगी दिल्ली-हावड़ा डाउन में जोड़ी गई और वह ट्रेन 2 बजकर 50 मिनट पर रवाना हुई।

बिहार जनसंघ के एक नेता कैलाशपति मिश्र पटना स्टेशन पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय की अगवानी में सुबह पहुँचे थे। उन्होंने उस बोगी में खोजा। उन्हें पंडितजी नहीं मिले। सोचा कि हो सकता है, न आए हों। समय का पहिया तेजी से घूम रहा था। ट्रेन मुकामा पहुँची। वहाँ पंडित दीनदयाल उपाध्याय की बर्थ के नीचे पड़ी अटैची देखी गई। उसे रेल अधिकारियों ने ट्रेन से उतरवाकर सुरक्षित रखा। इससे प्रकट हुआ कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ट्रेन में सवार थे। कहाँ गए और क्या हुआ? यह तो बाद में पता चला।

विलक्षण महापुरुष थे पंडित दीनदयाल उपाध्याय। इसे उनके जाने के बाद ही ज़्यादा समझा और माना गया। उनकी महानता को अनुभव किया गया। जब वे गए, तब उनके सामने भरा-पूरा भविष्य था। उम्र भी क्या थी, सिर्फ़ 51 साल। हमारे इतिहास में अनेक महापुरुष ऐसे हुए हैं, जिनकी महानता कम उम्र में ही प्रकट हुई। पंडित दीनदयाल उपाध्याय उनमें से एक हैं। यह सच है कि महानता का उम्र से कोई सीधा नाता नहीं होता। उसका नाता तो ज्ञान और गुण के वैभव से होता है। जो पंडित दीनदयाल उपाध्याय में था। उन्हें जो मानते हैं, वे भी और जो नहीं मानते वे भी, यह तो सभी जानते हैं कि उनकी निर्मम हत्या हुई। जिसके वे कहीं से भी पात्र नहीं थे। लेकिन लठैत बने हत्यारे भला इसे कैसे जानें! वे तो हत्या का धंधा कर रहे थे। जो उन्हें इस्तेमाल कर रहे थे,

मुगलसराय स्टेशन पर पं. दीनदयाल उपाध्यायजी की रहस्यमय दर्दनाक मौत
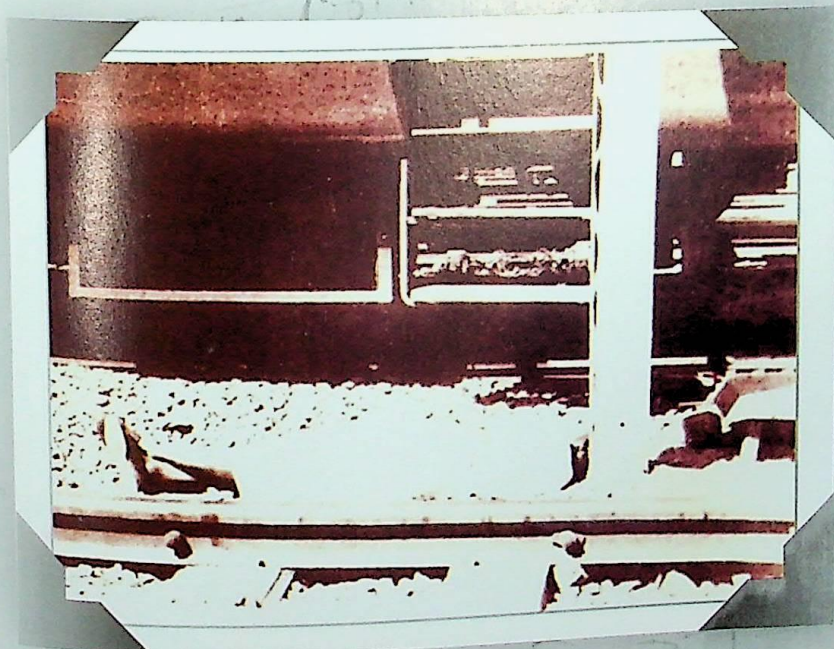
पं. दीनदयालजी के माथे पर लगी चोट को दिखाते चिकित्सक

शवगृह में रखा उनका पार्थिव शरीर

अंतिम दर्शन करते संघ महासचिव श्री बाला साहेब देवरस और श्रद्धेय नानाजी देशमुख

डॉ. जाकिर हुसैन श्रद्धांजलि देते हुए

आम जन के दर्शनार्थ रखा पार्थिव शरीर

अंतिम संस्कार में उमड़ा जन-सैलाब
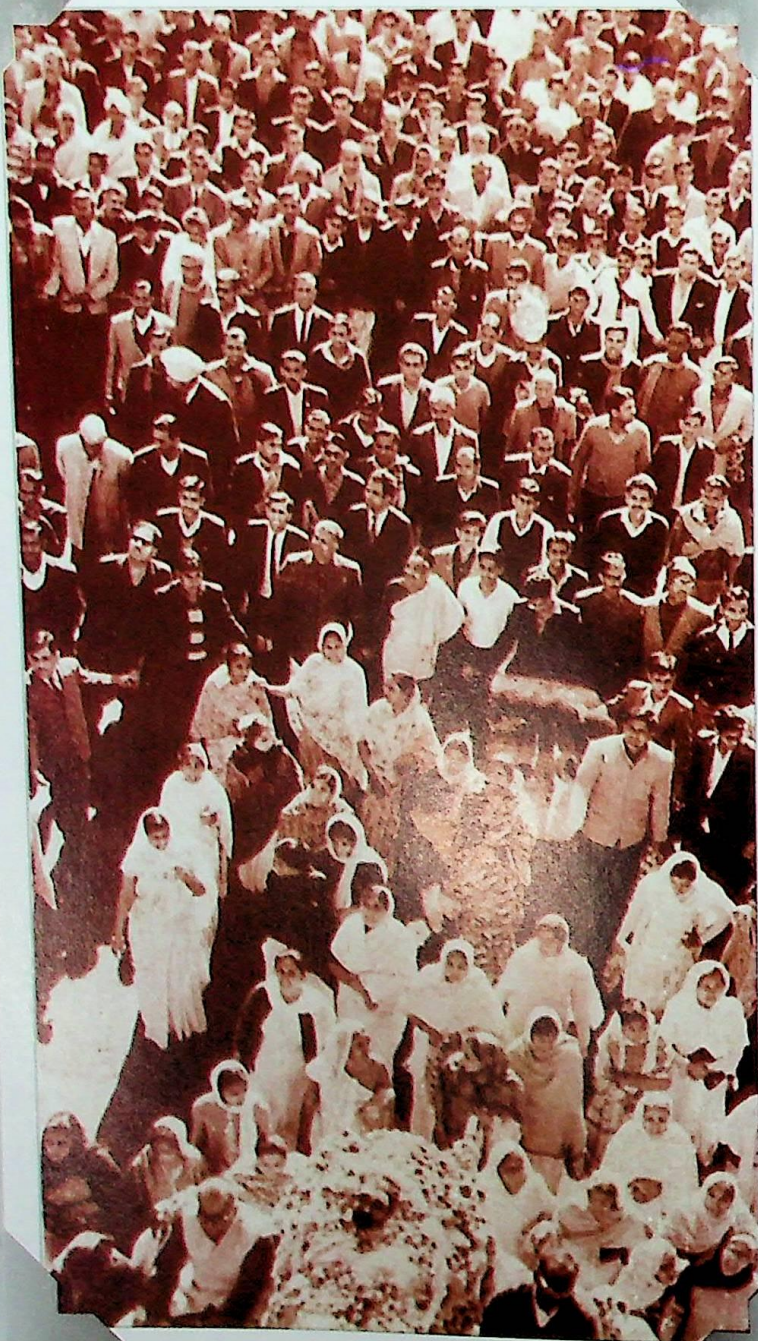
दिल्ली के चाँदनी चौक से निकली अंतिम यात्रा का दृश्य

वे ही षड्यंत्रकारी थे। वे ही षड्यंत्र के सूत्रधार थे। उन्होंने भरसक कोशिश की कि उनके निधन को मामूली दुर्घटना साबित कर दिया जाए। इसमें वे सफल नहीं हुए। लेकिन षड्यंत्र पर परदा डालने में वे अवश्य सफल हो गए। यह जितना सच है, उससे ज़्यादा गहरा रहस्य आज भी बना हुआ है कि हत्या के षड्यंत्रकारी आख़िरकार कौन थे? केंद्र में सरकारें आईं और गईं, लेकिन इस रहस्य का भेद जानना शेष है। क्या यह भेद जाना जा सकेगा?

मुग़लसराय प्लेटफार्म पर वनमाली भट्टाचार्य ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के मृत शरीर को पहचाना। इससे षड्यंत्रकारियों की मंशा धरी रह गई। वे उन्हें लावारिस बनाने के जुगाड़ में थे। जैसे ही पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शव पहचाना गया, देशभर में सनसनी फैली। आकुलता बढ़ी। शोक की लहर व्याप्त हो गई। बात 11 फरवरी, 1968 की है। इसे भी याद कर लेना चाहिए कि वह समय राजनीतिक संक्रमण का था। कांग्रेस जा रही थी और ग़ैर--कांग्रेस की हवा बन रही थी। भारतीय जनसंघ उसका नेतृत्व कर रहा था। उस जनसंघ का नेतृत्व पंडित दीनदयाल उपाध्याय कर रहे थे। उनके जाने का अर्थ था कि जनसंघ अपने सबसे प्रखर बौद्धिक पुरुष को गँवा बैठा। भारतीय जनसंघ में पूरा विकल्प दे पाने की संभावनाएँ प्रकट हो रही थीं। उसे ही समाप्त करने के लिए हत्या का षड्यंत्र रचा गया। ऐसा ही मत ज़्यादातर राजनीतिक नेताओं ने तब व्यक्त किया था।

हत्या की स्तब्ध कर देनेवाली सूचना दिल्ली पहुँची। उस समय अटल बिहारी वाजपेयी के निवास पर 10 बजे लखनऊ से फ़ोन आया। लेकिन वे 1 फ़िरोज शाह रोड पर जनसंघ संसदीय दल की कार्यकारिणी बैठक में थे। उन्हें वहाँ सूचना दी गई। जो स्वाभाविक था, वही हुआ। बैठक स्थगित कर दी गई। जनसंघ के नेता उस सूचना से सदमे में आ गए। उस सूचना की पुष्टि के लिए फ़ोन किए जाने लगे। जब पक्का हो गया कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या कर दी गई है, तब रेल राज्य मंत्री के निवास पर जाकर उसका विवरण प्राप्त करने का प्रयास हुआ। मुग़लसराय स्टेशन पर संपर्क कर रेल राज्य मंत्री ने विवरण दिया। इसी तरह वाराणसी के ज़िलाधिकारी से संपर्क किया गया। उनसे भी समाचार की पुष्टि हुई। इन विवरणों के आधार पर जनसंघ के नेताओं ने तत्क्षण दो निर्णय किए। एक कि वाराणसी तुरंत पहुँचना है। दूसरा कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दाह संस्कार दिल्ली में होगा।

वाराणसी पहुँचने के लिए विशेष विमान की ज़रूरत थी। जनसंघ के नेताओं ने गृहमंत्री यशवंत राव चव्हाण और विमानन मंत्री डॉ. कर्ण सिंह से संपर्क साधा। थोड़ी देर बाद गृह मंत्री के यहाँ से सूचना आई कि विशेष विमान का प्रबंध कर दिया गया है। उस विमान से अटल बिहारी वाजपेयी, बलराज मधोक और जगदीश प्रसाद माथुर

वाराणसी पहुँचे। वह विशेष विमान दोपहर बाद सवा चार बजे के आस-पास वाराणसी पहुँचा। जहाँ जनसंघ के कार्यकर्ता और वाराणसी के पुलिस अधीक्षक उनके पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें पोस्टमार्टम स्थल पर ले जाया गया।

मुग़लसराय से पंडित दीनदयाल उपाध्याय का पार्थिव शरीर पुलिस एंबुलेंस में एक बेंच पर रखकर लाया गया था। लापरवाही की वह हद थी। जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष के लिए पुलिस ने स्ट्रेचर का प्रबंध करने की समझ भी नहीं दिखाई। क्या ऐसा हड़बड़ी के कारण हुआ? सवा पाँच बजे के आस-पास दिल्ली से पहुँचे नेताओं को पोस्टमार्टम स्थल पर ले जाया गया। उसी समय लखनऊ से राज्य के उप मुख्यमंत्री राम प्रकाश गुप्त और दूसरे मंत्री गंगा भक्त सिंह भी वाराणसी पहुँचे। उन्हें थोड़ी देर बाद पोस्टमार्टम स्थल ले जाया गया। इन नेताओं के पहुँचने के बाद पोस्टमार्टम शुरू किया जा सकता था। लेकिन वह शुरू नहीं किया जा सका।

कारण कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक गुरुजी गोलवलकर (माधव सदाशिव गोलवलकर) उस समय प्रयाग में ही थे। यह एक संयोग ही था। वहाँ से वे चल पड़े थे। उनकी और संघ के दूसरे प्रमुख व्यक्तियों की प्रतीक्षा हो रही थी। गुरुजी के साथ संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, भाऊराव देवरस, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया), माधव राव देशमुख तथा आबा थट्टे आए। उनके पहुँचते ही सन्नाटा टूटा। हलचल मची। भावनाओं ने संयम का बाँध तोड़ा। उपस्थित समूह अपने को रोने-बिलखने से रोक नहीं सका। गुरुजी के साथ आए सभी प्रमुख व्यक्ति पोस्टमार्टम कक्ष में गए। उनके पीछे जनसंघ के नेता, मंत्री और सरकारी अफ़सर हो लिये। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पार्थिव शरीर के पास पहुँचकर मंत्रोच्चार किया। गुरुजी ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शव को देखा। शोकाकुल तो वे थे ही। उनके श्रीमुख से वाक्य निकला—'अरे, इसे क्या हो गया।' इसे उन्होंने कई बार दोहराया। वे रोवाँसे हो गए थे। पर भावनाओं को जज़्ब किया। इसके लिए उन्हें गहरी आंतरिक पीड़ा से गुज़रना पड़ा। वह आघात असाधारण जो था। अगले दिन उन्होंने जौनपुर के शिविर में स्वयंसेवकों को संबोधित करते हुए कहा, 'मैंने आँसू नहीं बहाए। मन पर नियंत्रण रखने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ा।'

उनके वहाँ से निकलने के बाद पोस्टमार्टम शुरू हुआ। बाहर प्रतीक्षा हो रही थी। एक-एक क्षण भारी पड़ रहा था। वहाँ और उसी तरह पूरे देश के मानस में एक ही प्रश्न बार-बार उभरता रहा। क्या यह दुर्घटना है या हत्या? पोस्टमार्टम शुरू होने पर बलराज मधोक और राम प्रकाश गुप्त दुर्घटना स्थल गए। वहाँ का मौक़ा मुआयना किया। घंटे भर बाद पोस्टमार्टम समाप्त हुआ। शव जनसंघ के नेताओं को अफ़सरों ने सौंप दिया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का पार्थिव शरीर एक स्ट्रेचर पर लिटाया गया था।

सत्ताईस

स्ट्रेचर पर रखा उनका शरीर जैसे ही बाहर आया, भारी भीड़ उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ी। माल्यार्पण हुआ। फूलों की वर्षा हुई। वातावरण शोक संतप्त था। स्ट्रेचर पर रखे उनके शरीर को एक ट्रक पर रखा गया। ट्रक पर जनसंघ के कई नेता थे। ट्रक हवाई अड्डे के लिए रवाना हुआ। उसे शोक संतप्त जनसमूह के बीच से रास्ते भर गुज़रना पड़ा। हवाई अड्डे पहुँचकर ट्रक से स्ट्रेचर सावधानीपूर्वक उतारा गया। जिसे जहाज़ में रख दिया गया। स्ट्रेचर जहाज़ में इस तरह रखा गया कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का सिर पायलट की ओर रहे और पैर दूसरी तरफ़। जहाज़ में 18 सीटें थीं। जिन्हें जहाज़ से जाना था, वे वहाँ उपस्थित थे। जहाज़ उड़ने के लिए तैयार था। वह रुका रहा जब तक गुरुजी गोलवलकर और उनके साथ भाऊराव देवरस वहाँ नहीं पहुँचे।

उनके पहुँचते ही लोग दो क़तार में खड़े हो गए। उसमें से होकर वे दोनों सीढ़ियाँ चढ़कर जहाज़ में पहुँचे। पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी को श्रद्धांजलि दी। लेकिन भाऊराव देवरस भावविह्वल हो गिर पड़े। उन्हें सँभालना पड़ा। गुरुजी ने अपने शोक को मानो पी लिया। आध्यात्मिक पुरुष जो थे। उनके उतरते ही जहाज़ रात सवा नौ बजे दिल्ली के लिए रवाना हुआ। उसमें अटल बिहारी वाजपेयी, बलराज मधोक, जगदीश प्रसाद माथुर सहित उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक मंत्री थे। कुल संख्या 12 थी।

उन दिनों राजेंद्र प्रसाद रोड की 30 नंबर की कोठी में अटल बिहारी वाजपेयी का निवास था। वहीं पंडित दीनदयाल उपाध्याय दिल्ली में आने पर ठहरते थे। उसी कोठी में उनके पार्थिव शरीर को लाकर दर्शनार्थ रखने का निर्णय पहले ही कर लिया गया था। उसके लिए व्यवस्था हो गई थी। उन्हें लेकर जहाज़ रात सवा ग्यारह बजे पहुँचा। हवाई अड्डे पर जनसंघ के नेता और बड़ी संख्या में नागरिक प्रतीक्षा कर रहे थे। जहाज़ में पहुँचकर मुख्य कार्यकारी पार्षद विजय कुमार मल्होत्रा, महानगर परिषद् के अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी और नगर निगम के उपाध्यक्ष बलराज खन्ना ने अपने दिवंगत नेता को पुष्पांजलि अर्पित की। थोड़ी देर बाद साथ आए नेतागण पंडित दीनदयाल उपाध्याय की अरथी लिये जहाज़ से बाहर निकले। उनका बाहर निकलना था कि वहाँ उपस्थित समूह ने नारे लगाए। 'अमर शहीद पंडित दीनदयाल उपाध्याय, अमर रहें।' साथ-साथ रोने-बिलखने की आवाज़ भी तेज होने लगी।

हवाई अड्डे से बाहर एक एंबुलेंस खड़ी थी। उसमें स्ट्रेचर को रखा गया। एंबुलेंस में ड्राइवर के बगल की सीट पर अटल बिहारी वाजपेयी बैठे और पीछे बच्छराज व्यास, जगदीश प्रसाद माथुर, नानाजी देशमुख और प्रभुदयाल शुक्ल बैठे। वे पहले पड़ाव के लिए चल पड़े। आगे-आगे मोटरसाइकिल, स्कूटर और उसके पीछे कारों की क़तारें थीं। जिसके पीछे एंबुलेंस चल रही थी। रात करीब एक बजे पंडित दीनदयाल उपाध्याय का पार्थिव शरीर 30 राजेंद्र प्रसाद रोड पहुँचा। वहाँ उन्हें ऊँचे मंच पर पूरी व्यवस्था के साथ

दर्शनार्थ रखा गया। गीता का सस्वर पाठ पहले से ही चल रहा था। अगले दिन वहाँ सबसे पहले उप प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई पहुँचे। श्रद्धांजलि दी। उसके बाद राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, लोकसभा अध्यक्ष नीलम संजीव रेड्डी, उपराष्ट्रपति वी.वी गिरी, केंद्रीय मंत्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद के अलावा आचार्य ज़े.बी. कृपलानी, सुचेता कृपलानी, हुमायूँ कबीर, जम्मू कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद, चौधरी चरण सिंह, जयप्रकाश नारायण और उनकी पत्नी प्रभावती देवी, सरदार स्वर्ण सिंह आदि नेताओं ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पार्थिव शरीर पर फूलमालाएँ चढ़ाईं और श्रद्धांजलि दी। हज़ारों लोगों ने वहाँ लगी हुई लंबी क़तार में प्रतीक्षा कर अपनी बारी का देर तक इंतज़ार किया और फिर वे दीनदयालजी का अंतिम दर्शन कर सके। शोक खुद को वहाँ सार्थक कर रहा था।

उसी शाम शवयात्रा प्रारंभ हुई। दो नारे गूँज रहे थे—'अमर शहीद पंडित दीनदयाल उपाध्याय अमर रहें' और 'भारत माता की जय।' हज़ारों लोग शोकाकुल मनोभाव में शवयात्रा के साथ रोते-बिलखते चल रहे थे। राजेंद्र प्रसाद रोड से जनपथ होते हुए कनॉट प्लेस का चक्कर लगाकर मिंटो ब्रिज से अजमेरी गेट होते हुए चावड़ी बाज़ार, और नई सड़क से चाँदनीचौक, घंटाघर के रास्ते ऐतिहासिक शीशगंज गुरुद्वारा से निगम बोध घाट की उस शवयात्रा में पाँच घंटे से ज़्यादा लगे। जगह-जगह हज़ारों लोग खड़े थे। फूलमालाओं की वर्षा हो रही थी। बाज़ार बंद थे, लेकिन लोग उमड़ पड़े थे। निगम बोध घाट पर जनसंघ और संघ के नेताओं के अलावा बड़ी संख्या में सांसद और अन्य दलों और राज्यों के नेता उपस्थित थे।

शाम क़रीब छह बजे पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शव उतारकर चबूतरे पर बनाई गई चिता पर रखा गया। श्रद्धांजलि का क्रम प्रारंभ हुआ। सबसे पहले तत्कालीन सरकार्यवाह बाला साहब देवरस आए। उनके बाद उपस्थित ख़ास-ख़ास नेताओं को बुलाया गया। फिर चंदन की लकड़ी रखी गई। हवन सामग्री छिड़की गई। तब ममेरे भाई प्रभु दयाल शुक्ल ने मंत्रोच्चार के बीच मुखाग्नि दी। इस तरह अंतिम संस्कार संपन्न हुआ। उस दौरान अपने प्रिय नेता के असमय जाने की वेदना वहाँ विविध रूपों में प्रकट हो रही थी। एक हफ्ते बाद अस्थियाँ संगम में विसर्जित की गईं। अस्थि कलश लेकर अटल बिहारी वाजपेयी और सुंदर सिंह भंडारी सहित सैकड़ों नेता प्रयाग पहुँचे थे।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या के दिन ही भारत सरकार ने जाँच सी.बी.आई. को सौंप दी। उस समय सी.बी.आई. के निदेशक जान लोबो थे। उन्हें ईमानदार अफ़सर माना जाता था। वे थे भी। जैसे ही जाँच सी.बी.आई. को सौंपी गई, वे अपनी टीम के साथ मुग़लसराय पहुँचे। जाँच में जुट गए। वे अपना काम पूरा कर पाते, उससे पहले ही उन्हें वापस बुला लिया गया। पहली आशंका उसी समय व्यक्त की गई कि जाँच की

दिशा बदली जा रही है। वह फ़ैसला राजनीतिक था। केंद्र सरकार के उस रवैये से साफ़ हुआ कि वह राजनीतिक नफ़ा-नुक़सान को ध्यान में रखकर सी.बी.आई. को निर्देश दे रही है। इंदिरा गांधी नहीं चाहती थीं कि हत्या का रहस्य खुले और षड्यंत्रकारी बेनक़ाब हों। सी.बी.आई. ने अपनी जाँच रिपोर्ट में बहुत हैरानी की बात कही। उसने हत्या को साधारण अपराध बताया। रिपोर्ट दी कि दो चोर-उचक्कों ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या कर दी। इरादा उनका चोरी का था। इस पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। विश्वास करने का कोई कारण भी नहीं था।

क्योंकि तथ्य दूसरी तरफ़ इशारा कर रहे थे। सी.बी.आई. की जाँच के आधार पर विशेष सत्र न्यायाधीश की अदालत में मुक़दमा चला। अदालत ने अपना फ़ैसला सुनाया। सज़ा दी। विशेष सत्र न्यायाधीश ने एक तरफ़ सी.बी.आई. की रिपोर्ट पर बिना संदेह किए फ़ैसला सुना दिया। दूसरी तरफ़ उसने यह कहकर सनसनी पैदा कर दी कि 'असली सच को अभी खोजा जाना है।' वह फ़ैसला 9 जून, 1969 को आया। इससे कम से कम दो बातें साफ़ होती हैं। पहली यह कि अदालत को भी सी.बी.आई. की रिपोर्ट पर भरोसा नहीं था। लेकिन उसके हाथ बँधे हुए थे। वह साक्ष्य कानून के अधीन ही सुनवाई कर सकते थे। दूसरी बात यह कि सी.बी.आई. ने मामले की सतही जाँच की। लोगों की आँखों में धूल झोंकी। अपने राजनीतिक आक़ाओं को ख़ुश रखा। सच खोजने की कोशिश ही नहीं की।

अदालत के फ़ैसले में जो टिप्पणी थी, उससे फिर एक बार गेंद इंदिरा गांधी की सरकार के पाले में आ गई। वे उस समय प्रधानमंत्री थीं। कम्युनिस्टों के समर्थन से सरकार चला रही थीं। उनकी राजनीतिक मजबूरियाँ थीं। लेकिन अदालत की टिप्पणी ऐसी थी कि सरकार को आख़िरकार जाँच आयोग बनाना पड़ा। उस पर जनदबाव भी ज़बरदस्त था। रोज़ आवाज़ तेज होती जा रही थी कि सरकार जाँच आयोग बनाए। उस माँग ने केंद्र को मजबूर किया। जाँच आयोग की नियुक्ति 23 अक्तूबर, 1969 को हुई। अदालत के फ़ैसले के पाँच महीने बाद जाँच आयोग गठित किया गया। वाई.वी. चंद्रचूड़ जाँच आयोग ने सी.बी.आई. की रिपोर्ट को ही आधार बनाया।

पहले यहाँ याद करना चाहिए कि अदालत ने अपना फ़ैसला जो सुनाया, वह क्या था? विशेष सत्र न्यायाधीश ने सी.बी.आई. के इस कथन को फ़ैसले का आधार बनाया— 'जनसंघ, उसके सूत्रों और अन्य स्रोतों से प्राप्त उन सभी इशारों और वैकल्पिक संभावनाओं की जाँच की गई है। लेकिन उन्हें या तो आधारहीन पाया गया है या फिर निरर्थक। इसी कोण से उस आरोप की भी बारीकी से जाँच की गई कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या में किसी चरम वामपंथी निर्देश की भूमिका रही होगी।'

'इस संदर्भ में कई आरोपों की जाँच की गई, उदाहरणार्थ, (क) कालीकट में

जनसंघ के अधिवेशन के दौरान उसमें और वामपंथियों में कड़वाहट। (ख) हत्या से पहले लखनऊ और राँची में वामपंथियों की गुप्त बैठकें, जहाँ कथित रूप से हत्या की साजिश रची गई। (ग) हत्यारों की तथाकथित कम्युनिस्ट पृष्ठभूमि और वामपंथ की ओर झुकाव। (घ) कई तथाकथित कम्युनिस्टों की उन दिनों में आवाजाही और हरकतों की भी जाँच की गई।'

लेकिन उसमें से भी कुछ नहीं निकला। इनमें से प्रमुख थे मुग़लसराय के पुलिस अफ़सर तलाल मेहता, वाराणसी के मुन्नीलाल गुप्त, एस.एन. तिवारी व आर.एस. यादव। टिकट चेकर रामदास, वैगन कार्यशाला में फिटर गंगा प्रसाद शर्मा और रुद्रपुर के राजेंद्र रस्तोगी। अमरोहा के डॉ. तनवीर के उन आरोपों की जाँच भी की गई, जिनमें उन्होंने दावा किया था कि उन्हें इस घृणित कृत्य के मुख्य पात्रों की जानकारी थी। उनका मानना था कि इसके पीछे कुछ सांप्रदायिक ताक़तों का हाथ था। ये वो शक्तियाँ थीं, जो जनवरी 1968 में मेरठ में शेख़ अब्दुल्ला के दौरे के बाद सक्रिय हो गई थीं। लेकिन ये सभी आरोप भी आधारहीन पाए गए।

जनसंघ के आपसी विवादों की कहानियों के संदर्भ में सांसद भदोरिया और जौनपुर के राजा से भी पूछताछ की गई। लेकिन कोई नतीज़ा नहीं निकला।

इस खंड के परिशिष्ट 6, 7 और 8 में क्रम से तीन दस्तावेज़ हैं। पहला टाइम्स ऑफ़ इंडिया का वह समाचार है, जो 9 जून, 1969 में लिखा गया और अगले दिन अख़बार में छपा। यही होता भी है। इस तरह ख़बर 10 जून को छपी। इसमें बताया गया है कि अभियुक्त भरत और रामअवध को हत्या के आरोप से बरी कर दिया गया। हालाँकि भरत ने हत्या करने का अपना अपराध क़बूल किया। लेकिन उस पर विश्वास नहीं किया गया। स्पष्ट है कि सी.बी.आई. हत्या के प्रमाण नहीं दे सकी। क्या वह प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के मौखिक निर्देशों का पालन कर रही थी? यह सवाल अब तक अनुत्तरित है।

परिशिष्ट 7 में पोस्टमार्टम रिपोर्ट दी गई है। परिशिष्ट 8 में विशेष सत्र न्यायाधीश के आदेश का कार्यात्मक अंश दिया गया है। जिसमें विशेष सत्र न्यायाधीश ने राम अवध को बरी कर दिया। भरत को चोरी करने के आरोप में चार साल की सज़ा इसलिए सुनाई कि वह सुधर जाए। विशेष सत्र न्यायाधीश ने नानाजी देशमुख के संदेह पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा था कि सी.बी.आई. ने जाँच को भटका दिया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या राजनीतिक षड्यंत्र थी। रामअवध और भरत पेशेवर चोर थे। वे मुग़लसराय यार्ड में छोटी-मोटी चोरी करते रहते थे। इस जुर्म में कई बार ज़ेल की सज़ा भी काट चुके थे। सी.बी.आई. को अगर ईमानदारी से अपना काम करने दिया जाता तो वह उस षड्यंत्र को बेपरदा कर सकती थी। यह कहने का एक ठोस आधार है।

जैसा कि ऊपर आप पढ़ चुके हैं। विशेष सत्र न्यायाधीश ने भरत को चार साल की सज़ा सुनाई। जिससे उसका सुधार हो सके। वह अपनी चोरी की आदत ज़ेल में रहते हुए सोच-विचार कर छोड़ दे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। उसकी सज़ा 1973 में समाप्त हो गई होगी। लेकिन इमरजेंसी के दौरान वे दोनों (भरत और रामअवध) वाराणसी के शिवपुर स्थित सेंट्रल ज़ेल में किसी दूसरे अपराध में सज़ा काट रहे थे। शातिर अपराधियों के साथ उन्हें अपराधी बंदियों के बैरक में रखा गया था। वहाँ जाने पर हमें उनका पता चला।

उन दिनों हम 17 राजनीतिक बंदियों को उसी ज़ेल में अलग एक बड़ी बैरक में ज़िला ज़ेल से स्थानांतरित किया गया था। उन 17 लोगों में मेरे अलावा एक लालमुनी चौबे भी थे। जिन्होंने जे.पी. आंदोलन के एक चरण में बिहार विधानसभा की सदस्यता छोड़ी थी। हम लोग ज़िला ज़ेल चौका घाट से एक शिकायत के आधार पर वहाँ कड़े पहरे में भेजे गए। वहाँ कुछ दिन गुजारने के बाद मैंने ज़ेल अधीक्षक से कहा कि अगर हो सके तो पुस्तकालय में आने-जाने की सुविधा करा दें और वहीं कुछ बंदियों को पढ़ाना भी चाहता हूँ। अधीक्षक ने अनिच्छापूर्वक इसकी अनुमति दी। उसके लिए एक व्यवस्था बनाई। जिससे हमारा पुस्तकालय में आना-जाना शुरू हुआ। उसी सिलसिले में वे दोनों खोजे जा सके। फिर हमने उन दोनों से बातचीत शुरू की।

सी.बी.आई. ने भी अपनी रिपोर्ट में बताया था कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या से तीन दिन पहले भरत वाराणसी के ज़िला ज़ेल से छूटा था। वहीं रामअवध उस समय के बिहार के आरा ज़िले की भबुवा ज़ेल से दो दिन पहले ही छूटा था। भबुवा ज़ेल में रहने के कारण लालमुनी चौबे के नाम से वह परिचित था। जहाँ चौबेजी को लोग बाबा कहकर बुलाते थे। बातचीत में वे दोनों भी उन्हें 'बाबा' कहकर ही आदरपूर्वक संबोधित करते थे। जब वे खुलने लगे तब एक दिन दोनों ने कहा, 'हमसे महापाप हो गया।' घटना के बाद वे जान सके थे कि हत्या जिनकी उन सबने की, वे एक महापुरुष थे। अपना कुकर्म क़बूलते हुए पश्चात्ताप का भाव उनके चेहरे पर उतर आता था। हत्या को भरत ने अदालत में भी क़बूला था। लेकिन उसके सबूत सी.बी.आई. को जुटाने थे, जो उसने नहीं जुटाए।

क्या उन्हें कुछ दिन पहले इसी काम के लिए ज़ेल से छुड़वाया गया था? अगर ऐसा था तो इसके सूत्रधार कौन थे? इसकी तह में जितना दूर तक जाने की ज़रूरत थी, उतना न सी.बी.आई. ने छानबीन की और न चंद्रचूड़ आयोग ने। जहाँ तक उन अपराधियों का सवाल है, वे यह नहीं बोलते थे कि इस्तेमाल हो गए। पर उनका हाव-भाव यही बताता था। सी.बी.आई. और जाँच आयोग दोनों इस नतीज़े पर अपनी रिपोर्ट में पहुँचते हैं कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय को मुग़लसराय में चलती ट्रेन से बाहर धक्का दिया

गया। वे खंबे से टकराए। उन्हें जो चोट लगी उससे मृत्यु हो गई।

इस निष्कर्ष को कहीं से भी तार्किक नहीं ठहराया जा सकता। अदालत और आयोग की सुनवाई के दौरान जनसंघ के वक़ील और आपराधिक मुक़दमों के माहिर चरण दास सेठ ने जो सवाल उठाए, वे आज भी जस के तस बने हुए हैं। पहला सवाल यही है कि खंबे से टकराने और भयानक चोट लगने के बावजूद मौक़े पर ख़ून का एक भी क़तरा क्यों नहीं पाया गया? पोस्टमार्टम रिपोर्ट में पाया गया कि उनके सिर पर इतनी चोट थी कि खोपड़ी टूट गई थी। सात पसलियाँ टूटी थीं। इसी तरह टखनों के ऊपर दोनों पैरों की हड्डियाँ टूट गई थीं। ऐसी चोटें जिस शरीर में लगी हों, उससे ख़ून का एक क़तरा भी न बहे, ऐसा कैसे हो सकता है?

इसलिए जनसंघ के वकील चरण दास सेठ का यह कहना सही लगता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या एफ.सी.टी. बोगी के कूपे में की गई। उसके बाद उन्हें ट्रेक्शन खंबा नंबर 1276 के नज़दीक रख दिया गया। जिस कूपे में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने यात्रा की, उसमें फिनायल की एक बोतल मिली। साधारण समझ से भी कोई छानबीन करे तो उसे तुरंत ख़याल में आएगा कि कूपे में लगे ख़ून के छींटों को साफ़ करने के लिए उसका उपयोग किया गया होगा। इस आधार पर हत्या की कहानी बदल जाती है।

इसी तरह यह रहस्य भी बना ही रहा कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या यात्रा के दौरान कहाँ पर की गई। भरत और रामअवध से इस कोण पर सी.बी.आई. ने पूछताछ क्यों नहीं की। ज़ेल में बातचीत जो हुई, उससे हमारा मत यह बना कि वाराणसी और मुग़लसराय के बीच में पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या की गई। चंद्रचूड़ आयोग ने इतना तो माना कि वाराणसी में कोई अजनबी उस बोगी में मौजूद था। आयोग की रिपोर्ट में है कि 'अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि ऐसा होने की संभावना अधिक है।' इसकी भी चंद्रचूड़ ने पूरी जाँच नहीं की। निष्कर्ष यह सुनाया कि 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय अंतिम बार केवल जौनपुर में ही जीवित देखे गए। वाराणसी में उनका जीवित रहना सिद्ध नहीं होता।'

न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ आयोग की रिपोर्ट के एक अंश में यह तो माना गया कि हत्या बहुत रहस्यमय थी, लेकिन उसके निष्कर्ष उससे ज़्यादा हैरतअंग्रेज़ बन गए। पहले रिपोर्ट के इस हिस्से को पढ़ें—"मुग़लसराय पर जो कुछ हुआ, वह अंशों में कहानी से भी ज़्यादा अनोखी है। मुग़लसराय स्टेशन पर अनेक व्यक्तियों ने संदेह उत्पन्न करनेवाला असामान्य बरताव किया। जो कुछ उन्होंने किया, ऐसी तुलनात्मक परिस्थितियों में सामान्य मानवीय बरताव की आशा के विपरीत था। इसी प्रकार, मुग़लसराय की कुछ घटनाएँ असामान्य संरचना में बुनी हुई हैं। जब मानव और घटनाओं के बारे में सामान्य आशाएँ झुठलाई जाती हैं, संदेह उठ खड़े होते हैं।" "इस मामले में ऐसे संदेहास्पद

1

परम सुख का मार्ग

मनुष्य की सभी क्रियाओं का उद्‌देश्य एक ही है—आनंद अथवा सुख की प्राप्ति। वैसे तो संपूर्ण सृष्टि ही आनंदमय है। प्रत्येक प्राणी वही कार्य करता है, जो उसके लिए सुखकारक है। प्राणी ही क्यों, जड़ पदार्थों में भी जितना कुछ होता है, वह सभी आनंद प्राप्ति के लिए है। संपूर्ण चराचर सृष्टि में एक ही आनंद का नाम गुंजित हो रहा है। साधारण जीवधारी अन्य प्राणी भी सुख के लिए ही क्रियाएँ करते हैं। कुत्ते को डंडा दिखाया तो वह भागता है और रोटी दिखाई तो वह समीप आता है। एक समय भागने और दूसरे समय समीप आने की यह क्रिया उसकी सुख कामना ही है। तब मनुष्य तो विकसित प्राणी है। इसलिए इस संबंध में कोई विशेष तर्क देने की आवश्यकता नहीं है कि मनुष्य की समस्त क्रियाओं का उद्‌देश्य सुख-प्राप्ति ही है।

विचारणीय प्रश्न है कि सुख क्या है? इस संबंध में मनोविज्ञान शास्त्र के विद्वानों ने एक प्रयोग किया। एक ऐसी परखनली के एक रास्ते के छोर पर एक कीड़ा रख दिया। शेष बचे दो रास्तों में से बाईं ओर से रास्ते पर बिजली का करंट जोड़ दिया। यह कीड़ा आगे बढ़कर जब बाईं ओर जाता था तो उसे बिजली के प्रवाह का धक्का लगता था। वह वापस आता था। बार-बार उस कीड़े ने बिजली का धक्का खाया और दाहिनी ओर के रास्ते पर मुड़ा। दस-बारह बार ऐसा होने पर उस कीड़े ने बाईं ओर के रास्ते पर जाना ही बंद कर दिया। जब परखनली के एक रास्ते के छोर पर उसे छोड़ा जाता तो वह सावधानी से बाईं ओर का रास्ता छोड़कर दाहिनी ओर आगे बढ़ता। वैज्ञानिकों ने इस पर से निष्कर्ष निकाला कि अनुकूल वेदना ही सुख है। सर्वसाधारण प्राणिमात्र की यही प्रकृति है, सुख की ओर बढ़ना और दुःख से दूर हटना है।

किंतु इस सुख की अनुभूतियों में भी बड़ा अंतर है। सुख की अनुभूतियाँ भिन्न-

भिन्न प्रकार की होती हैं। मनुष्य को भोजन करने, पानी पीने, ठंड, गरमी, वर्षा से शरीर को बचाने, सुगंधित पुष्प की गंध लेने, रंग-बिरंगे दृश्यों का अवलोकन करने आदि कितनी ही प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। वह इनमें आनंद का अनुभव करता है। ये इंद्रियजन्य सुख हैं। इंद्रियों से इनका उपभोग किया जाता है। इन सुखों के संबंध में हमारे यहाँ कहा गया है कि ये मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में समान ही होते हैं। आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि से जो अनुकूल वेदना होती है, उसे मनुष्य और पशु में समान पाया जानेवाला सुख कहा गया है।

मनुष्य और पशु में अंतर केवल यही है कि मनुष्य का कुछ-न-कुछ जीवन लक्ष्य होता है। पशु का लक्ष्य नहीं होता। लक्ष्य ही मनुष्य में मनुष्यत्व समझा जाता है। लक्ष्यहीन मनुष्य तो निरा पशु ही है। इस लक्ष्य के कारण ही मनुष्य की विशेषता है। इसलिए इंद्रिय तथा उनके विषयों के संयोग से प्राप्त सुख को मनुष्य के लिए राजस सुख माना गया है। यह इंद्रियजन्य सुख क्षणिक होता है। किंतु यह सुख भी कई बार फ़ीका लगता है।

एक कम्युनिस्ट ने अपने एक मित्र से अत्यंत ही आग्रहपूर्वक कहा कि दुनिया में सबसे बड़ा सवाल रोटी का है। मित्र ने उससे पूछा कि क्या दुनिया का सबसे बड़ा सवाल यही मानते हो? उसने जब हाँ कहा तो मित्र बोला कि ठीक है, मैं इसे सुलझाऊँगा। कल से मेरे घर आना। आपको रोज़ भरपेट स्वादिष्ट भोजन कराऊँगा। किंतु एक शर्त है कि रोज़ शाम को इसी स्थान पर खड़ा कर चार जूते भी लगाऊँगा। कम्युनिस्ट सज्जन द्वारा इसका कारण पूछने पर मित्र ने कहा, इसमें आपका क्या बिगड़ता है? आपका सवाल रोटी का है। वह पूरा होना चाहिए। यह दूसरा सवाल मेरा है, इसे मुझ पर छोड़ दो। इस विनोद में भी बड़ा महत्त्वपूर्ण रहस्य छिपा है। रहस्य यह है कि सुख इंद्रियों तक ही सीमित नहीं है। इसका संबंध किसी अन्य वस्तु से भी है।

एक सज्जन नासिक जाकर तर्पण कर रहे थे। उनके एक मित्र भी साथ थे, जिनका तर्पण में विश्वास नहीं था। इसलिए उन्होंने मज़ाक करते हुए कहा कि यह क्या कर हो हो? उक्त सज्जन ने कहा कि पितरों को पानी दे रहा हूँ। मित्र ने पूछा, भला यहाँ दिया हुआ पानी उन्हें किस प्रकार मिलेगा? तो उक्त सज्जन ने इसका बिना कुछ उत्तर दिए मित्र के पिताजी को ज़ोर-ज़ोर से ग़ाली देना शुरू कर दिया। इस पर मित्र भी बहुत क्रोधित हो उठा। वह बोला, यदि तुम्हें तर्क नहीं सूझता तो मुझे ग़ाली दे दो, मेरे पिता को ग़ाली देना मैं सहन नहीं कर सकता। तब उक्त सज्जन ने शांत भाव से कहा, ''मित्र, तुम्हारे पिता तो घर पर हैं, यहाँ दी हुई ग़ालियाँ उनके पास तक तो नहीं पहुँच सकतीं। तब व्यर्थ में क्यों उत्तेजित होकर चिंता करते हो?'' इस प्रकार मित्र को प्रश्न का सही उत्तर मिल गया था कि यह सब मन को अच्छा लगने की बात है। भावना का प्रश्न है।

उद्धव चरित में कहा गया है, ''उद्धव मन माने की बात।'' गोपियों को उद्धव समझाने लगे तो गोपियों ने इनकार कर दिया। वे बोलीं कि भाई, यह अपने-अपने मन का प्रश्न है। हम निराकार निर्गुण की आराधना करके प्रसन्न नहीं हो सकतीं। हमें तो हमारा खेलने-कूदने, लीला करनेवाला कृष्ण ही चाहिए। इसलिए केवल इंद्रियजन्य सुख से काम नहीं चलता, मन का भी सुख ज़रूरी होता है। अन्यथा सामने थाली में रखा हुआ स्वादिष्ट भोजन भी विष के समान लगने लगता है और व्यक्ति उसे ठोकर मारकर उठ जाता है।

इसके साथ मनुष्य के पास बुद्धि भी है। वह चिंतन करता है। चिंतन का भी सुख है। अन्य प्राणियों के पास इतनी विकसित बुद्धि नहीं, जितनी मनुष्य के पास है। वह क्षणिक और शाश्वत सुख के भेद को समझना चाहता है। कौन सा सुख स्थायी एवं चिरंतन होगा, जो अधिक समय तक मिलता रहेगा। और कौन सा सुख क्षणिक एवं परिणाम में महान् दुःखदायी होगा? इसका विचार मनुष्य कर लेना चाहता है। वह विवेक का प्रयोग करने लगता है। व्यक्ति सोचता है कि हीरा छोड़कर काँच का टुकड़ा क्यों ले? जिस मुख से अमृत चख लिया, उसमें करील के कड़वे फल क्यों डाले? इसलिए वह बुद्धि का भी सुख चाहता है।

जीवन लक्ष्य, जिसे अपनी बुद्धि द्वारा स्वयं स्वीकृत किया है, उसके सुख-दुःख की वेदनाओं का निकष बनता है। लक्ष्य की ओर बढ़ते समय मार्ग के काँटे भी उसे सुखकर लगते हैं। सत्य के लिए वह लाख कष्ट झेलने में आनंद का अनुभव करता है। अपनी मान्यताओं को स्थापित करने के लिए वह चाहे जिस वस्तु का त्याग कर सकता है। केवल मन का सुख उसे संतुष्ट नहीं कर पाता। मन तो चंचल है। हज़ार प्रकार की बातों में रमते रहने का काम मन का है। इस मन को वश में कर एकाग्र करने से मनुष्य लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है। इसलिए उसे बुद्धि का सुख भी अनुभव होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी के संबंध में ऐसी ही एक शिक्षाप्रद कथा है। वे अपनी पत्नी को इतना अधिक चाहते थे कि उसके बिना रह नहीं सकते थे। एक बार पत्नी अपने पिता के घर गई। मोह-अवस्था में व्याकुल होकर तुलसीदासजी भी भागे-भागे ससुराल पहुँच गए। कहा जाता है कि वर्षा के दिन थे, नदी उफन रही थी तो उसमें बहते हुए एक मुरदे को ही पकड़कर वे नदी पार हो गए। इधर ससुराल पहुँचने पर दरवाजे बंद थे तो खिड़की से लटकते हुए एक साँप को रस्सी मानकर पकड़ अंदर पहुँच गए। पत्नी को जगाया। पत्नी ने उन्हें धिक्कारा। बस, तब उनके मन के ऊपर छाया हुआ मोह छँट गया। बुद्धि ने प्रकाश पाया। सचमुच पत्नी के इन शब्दों में बड़ा सुख भरा हुआ दिखाई दिया कि हाड़-मांस के इस शरीर से इतना प्यार करते हो, वैसा ही यदि श्री रघुवीर के प्रति होता तो कल्याण हो जाता। वे इस सुख की ओर बढ़े और रामचरित मानस की रचना कर अपार

आनंद को प्राप्त हुए।

तथापि बुद्धि का सुख भी अंतिम चिरानंद सुख नहीं है। बुद्धि से भी ऊपर आत्मा का सुख है। माँ बच्चे को गोद में लेकर आत्मिक सुख का अनुभव करती है। यह आत्मा की विशालता का सुख है। इसके सामने अन्य सभी सुख तुच्छ हैं। भयमुक्त और स्वार्थमुक्त होने पर सिवाय आनंद के अन्य कुछ रह ही नहीं जाता। इसलिए व्यक्ति इसकी खोज में विशालता स्वीकार करता जाता है।

इस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा चारों प्रकार के सुख की प्राप्ति ही जीवन लक्ष्य है।

तथापि इस सुख की प्राप्ति कोई भी मानव अकेले नहीं कर सकता। स्वयं के परिश्रम से वह पूर्ण सुखी नहीं हो सकता। इसके लिए समाज के साथ उसके संबंधों का प्रश्न आ उपस्थित होता है। जैसे हम जो भोजन करते हैं, वह केवल हमारे परिश्रम का ही फल नहीं है। अनेक बंधुओं का उसमें सहयोग है। रोटी पकानेवाले रसोइए से लेकर, दुकानदार, मंडी के नौकर-चाकर और किसान तक कितने ही लोग हैं, जो हमारे सुख के लिए कारण बने हैं। इसी प्रकार हमारे प्रत्येक सुख में अनेक लोगों का हाथ है।

इतना ही क्यों, यदि समस्त सुखोपयोग के साधन हों और व्यक्ति अकेला हो, तो भी वह दुःखी हो उठता है। कभी-कभी बहुत साधन संपन्न लोगों के मुँह से निकली हुई यह आह सुनी होगी कि "भाई, सबकुछ है किंतु इसका क्या उपयोग? हृदय भारी रहता है कि कोई अपना हो तो इसका उपभोग करे।" इसलिए सुख के लिए परोपकार का बड़ा यश गाया है। आपस में एक-दूसरे के साथ समरस होना, काम आना, आत्मीय जनों को सुख पहुँचाने का यत्न करना ही परोपकार है। यही परस्परानुकूलता है। जब एक-दूसरे सभी आपस में सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सचेत होते हैं तो आनंद नाच उठता है।

इसलिए सुख का आधार परस्परानुकूलता है, संघर्ष नहीं। अपने-अपने सुख की कामना पर संघर्ष करने से ईर्ष्या पूर्ण प्रतिद्वंद्विता तैयार होती है। उसमें सुख का आभास भले ही निर्माण हो, तैयार होता है दुःख। इसीलिए कहा गया है कि सुख आत्मनिष्ठ है, वस्तुनिष्ठ नहीं। किसी वस्तु में सुख होता तो वस्तु पास में रहने तक सदैव सुख ही देती रहती। किंतु हम अनेक बार पाते हैं कि जो वस्तु सुखकर लगती थी, वही कुछ कारण से अब दुःख देने लगी है, इसलिए सुख आत्मनिष्ठ है, जिसका आधार परस्परानुकूलता है।

सृष्टि का भी सब व्यवहार इसी प्रकार आपस की पूरकता में से ही प्रकट होता है। समुद्र की भाप ऊपर उठकर बादल बनती है, बादल घुमड़-घुमड़कर बरस जाते हैं। नदियाँ उफनती हैं और फिर समुद्र में जा मिलती हैं। यही आनंद है। व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि, ये चार तत्त्व हमारे सामने उपस्थित होते हैं, जो परस्पर सहकार्य से

सुखदायी होते हैं। व्यक्ति समाज पर अवलंबित है, समाज सृष्टि पर निर्भर है और सृष्टि का संचालन परमेष्टी द्वारा हो रहा है। व्यक्ति उसे परमेष्टि की इच्छा की पूर्ति का साधन बनाने में धन्यता अनुभव करता है। जब तक इनमें परस्पर तालमेल बना है, सबकुछ ठीक चलता है।

यही यज्ञचक्र कहा गया है। भगवद्गीता में कहा गया है कि प्राणी अन्न से, अन्न पर्जन्य से, पर्जन्य यज्ञ से और यज्ञ ब्रह्मा से निर्मित हुए हैं। इस तरह का चक्र पूर्ण होता बताया गया है। यह अखंड चक्र ही सब सुखों की धारणा करता है। इसे ही हमने दूसरे शब्दों में धर्म नाम से जाना है। अर्थात् परस्पर कर्तव्य करने से धारणा रूप जो धर्म प्रकट होता है, वही सुख है।

व्यक्ति जीवन में इस सुख की प्राप्ति के लिए चार बातों की आवश्यकता है— शिक्षा, स्वतंत्रता, शांति और पौरुष।

जिस यज्ञचक्र का उल्लेख ऊपर किया गया है, उसे व्यवस्था के साथ और निष्ठापूर्वक संचालित बनाए रखने के लिए शिक्षा की ज़रूरत है। सब प्रकार की शिक्षा व्यक्ति को देने की व्यवस्था समाज में होनी चाहिए। किंतु यह तभी संभव है कि जब व्यक्ति तथा समाज का जीवन स्वतंत्र हो। मानसिक स्वतंत्रता ही नहीं, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता भी ज़रूरी है। जाति-चिति के अभियान प्रबल रहने से ही यह स्वतंत्रता रह सकती है। जहाँ स्वाभिमान नहीं, वहाँ स्वतंत्रता भी नहीं रह सकती। इनके लिए शक्ति और पौरुष की भी आवश्यकता है। इन चारों साधन चतुष्ट्य का निर्माण तथा संरक्षण करने के कार्य के लिए सक्षम सत्ताओं की रचना होती है। स्वतंत्रता रक्षण के लिए राज्य, शिक्षण के लिए गुरुकुल, अन्य सब प्रकार की शांति और पौरुष निर्माण के लिए समाज की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था है।

प्रत्येक व्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए चार आश्रम हैं। इस प्रकार चतुर्विध वर्णाश्रम के आधार पर, चतुर्विध साधनों के सहारे, चतुर्विध सिद्धांत को लेकर परमसुख की प्राप्ति का व्यावहारिक ढाँचा खड़ा किया गया। ये सब साधन चिति से ही साध्य होते हैं। इसलिए राष्ट्र को चैतन्य प्रदान करना ही सब कार्यों की मूल प्रेरणा है। राष्ट्र का चैतन्य निर्माण होने से ये सब कार्य संपन्न होते हैं।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

2

राष्ट्र की जीवनदायिनी शक्ति

विश्व का प्रत्येक प्राणी इस बात का सतत प्रयत्न करता रहता है कि उसका अस्तित्व बना रहे, वह जीवित रहे। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए वह दूसरे अनेक प्राणियों को अस्तित्वहीन करने का प्रयत्न करता रहता है तथा स्वयं उसको अस्तित्वहीन करनेवाली शक्तियों से निरंतर अपनी रक्षा करता रहता है। विनाश और रक्षा के इन प्रयत्नों की समष्टि का ही नाम जीवन है। इन प्रयत्नों की भिन्नता ही भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवनों का कारण है तथा इनकी सफलता या असफलता ही विभिन्न प्राणियों के विकास या विकार का मापदंड है।

मानव भी इन नियमों का अपवाद नहीं है। आदिमानव की सृष्टि और तब से अब तक का इतिहास इन प्रयत्नों का ही इतिहास है। किंतु मनुष्य विश्व के अन्य प्राणियों से अधिक विकसित है। उसका अस्तित्व केवल प्राथमिक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही निर्भर नहीं रहता, किंतु उसके जीवन में भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिक तत्त्वों का भी समावेश होता है। मनुष्य के जीवन का ध्येय श्वासोच्छ्वास तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया को बनाए रखना ही नहीं है, किंतु इससे भिन्न है। वह तो श्वासोच्छ्वास को मात्र जीवन का साधन मानता है, साध्य नहीं। उसका साध्य तो उपनिषदों के शब्दों में है—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यां श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"।

वह आत्मा की अनुभूति करना चाहता है, उसे समझना चाहता है, अपनी संपूर्ण क्रियाओं को उस अनुभूति के प्रति लगाता है।

यह आत्मा क्या है, जिसके लिए मानव इतना तड़पता है? इस संबंध में अनेक मतभेद हैं और इन्हीं मतभेदों के कारण विश्व में अनेक मनीषियों ने इस आत्मा को

विश्व का आदि कारण, उसका कर्ता-धर्ता एवं हर्ता, सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी परब्रह्म परमेश्वर को ही माना है। उनका कथन है कि वही एकमेव शक्ति है, जो संपूर्ण विश्व को चला रही है तथा प्रत्येक प्राणी उसकी ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। वह उसी में मिल जाना चाहता है। इसलिए मानव का प्रयत्न उस परब्रह्म का साक्षात्कार ही है। उस परब्रह्म में ही पूर्णता होने के कारण 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' की पूर्णाभिव्यक्ति होने के कारण मनुष्य इन गुणों की ओर आकर्षित होता है तथा जीवन के हर क्षेत्र में इन गुणों की आंशिक अनुभूति करता हुआ पूर्ण साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील रहता है।

कुछ विद्वान् इस अदृश्य शक्ति में विश्वास न करते हुए केवल दृश्य जगत् में ही विश्वास रखते हैं तथा उसमें भी मानव विकास को उसके सुख-साधन संपन्न जीवन को ही परमलक्ष्य मानकर सुख के प्राप्ति-प्रयत्नों को ही मानव जीवन का एकमेव कर्तव्य समझते हैं। उनके विचारों में ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है, किंतु यदि गहराई से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि मानव की एकता की अनुभूति तथा उसको सुखमय बनाने की इच्छा की प्रेरकशक्ति निश्चित ही दृश्य सृष्टि से भिन्न कोई सूक्ष्म तत्त्व है, जो इस दृश्य जगत् को परिव्याप्त किए हुए प्रत्येक वाणी के अंतःकरण में संपूर्णता की एकात्मकता की भावना उत्पन्न करता है। उस शक्ति को आप चाहे जो नाम दें, किंतु यह निश्चित है कि उसकी ओर प्रत्येक मानव अग्रसर है तथा मानवता के कल्याण की भावना किसी स्वार्थ का परिणाम नहीं, किंतु आत्मानुभूति की इच्छा का परिणाम है। अज्ञानवश मानव आत्मा के स्वरूप को संकुचित करने का प्रयत्न करता है, किंतु सत्य का ज्ञान सतत अज्ञानपटल को भेदने के लिए प्रयत्नशील होता है।

संपूर्ण सृष्टि की एकात्मकता के साक्षात्कार का ध्येय सम्मुख रखते हुए भी मानव अपनी प्रकृति के अनुसार ही उसकी ओर अग्रसर होता है। उसी प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न भागों में रहनेवाला मानव भी संपूर्ण मानवता की आंतरिक एकता की भावना रखते हुए तथा उसकी पूर्णानुभूति की इच्छा रखते हुए भी, प्रकृति के साधनों एवं उनको अपने नियंत्रण में करके आगे बढ़ने के प्रयत्नों में, अपनी एक विशिष्ट दिशा निश्चित कर लेता है। उसकी कुछ विशेषताएँ हो जाती हैं, उसकी अपनी निजी प्रतिभा का विकास हो जाता है।

यद्यपि संपूर्ण पृथ्वी एक है, किंतु उसके ऊपर स्थित पहाड़-पर्वत, सागर और वन, उसके भिन्न-भिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की जलवायु और वनस्पति उस प्रदेश के मानव पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहते तथा उस विशिष्ट भूभाग के मनुष्य पूर्णानुभूति के प्रयत्नों में अपना विकास निश्चित दिशा में करते हैं। उनका अपना एक निजी स्वत्व हो जाता है, जो कि उसी प्रकार की दूसरी इकाइयों से उसी प्रकार भिन्न होता है, जैसे कि एक ही सेना के विभिन्न अंग। जल, थल और वायु सेना में कार्य करने में सैनिकों की

अपनी विशेष प्रतिभा का विकास होता है तथा वे अपनी निजी पद्धति से शत्रु को पराजित करने का प्रयत्न करते रहते हैं। तीनों सेनाओं में सामंजस्य रहना तो अच्छा है, किंतु यदि किसी सेना के सैनिक अपनी पद्धति को ही सत्य मानकर दूसरी सेना के सैनिकों पर प्रभाव जमाने का प्रयत्न करें, अथवा उनकी प्रतिभा को नष्ट करना चाहें तो उनका यह प्रयत्न अंतिम ध्येय की पूर्ति में बाधक होगा तथा आक्रमित सेना के सैनिकों का कर्तव्य होगा कि वे आक्रमणकारी सैनिकों से ही प्रथम युद्ध करके उनकी बुद्धि को ठिकाने पर ला दें। इसी प्रकार यदि किसी सेना के विशेष प्रभाव को देखकर अथवा किसी विशेष क्षेत्र में उनकी विजय को देखकर अथवा आक्रमणकारी सेना की सामर्थ्य का अनुभव करते हुए कोई सेना अपनी पद्धति, अपने प्रयत्न तथा अपनी प्रतिभा को तिलांजलि देकर उस दूसरी सेना की विशेषताओं को और उसमें भी विशेषकर उसके बाह्य स्वरूप को अपनाने का प्रयत्न करती है तो वह तो स्वतः ही नष्ट हो ही जाएगी अपितु मानव की अंतिम विजय में भी अपना दायित्व नहीं निभा पाएगी।

विश्व के अनेक राष्ट्रों का इतिहास उपर्युक्त उदाहरण की भावना को ही परिलक्षित करता है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशिष्ट पद्धति को ही सत्य समझने लगता है तथा अपने को एकमेव प्रतिभावान मानकर दूसरे राष्ट्रों पर अपनी पद्धतियों को लादने का प्रयत्न करता है। यदि यह प्रयत्न शांतिमय होता तो भी कुछ बात नहीं, किंतु वह ज़बरदस्ती अपने सत्य को दूसरों के गले उतारना चाहता है। मानव के सुख और वैभव को भी वह अपने राष्ट्र के सुख और वैभव तक ही सीमित करके दूसरे राष्ट्रों के सुख और शांति को नष्ट करता है; उसके प्राकृतिक विकास में बाधा डालता है। फलतः एक राष्ट्र दूसरे पर विजय प्राप्त कर लेता है और उसे ग़ुलाम बना लेता है।

परंतत्र राष्ट्र का जीवन प्रवाह रुद्ध हो जाता है। उसके घटक किसी-न-किसी प्रकार श्वासोच्छ्वास तो करते रहते हैं, किंतु वे अपने जीवन में सुख और शांति का अनुभव नहीं कर पाते। भौतिक दृष्टि से सुखोपभोग करनेवाले व्यक्ति भी परतंत्रता का ताप अनुभव करते रहते हैं, क्योंकि उनका आत्मसम्मान नष्ट हो जाता है, उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचती है तथा उनकी प्रतिभा कुंठित होने लगती है, उनकी आत्मानुभूति का मार्ग बंद हो जाता है। युग-युगों में उनकी प्रतिभा ने प्रस्फुटित होकर जिन विशेष वस्तुओं का निर्माण किया! होता है, उसकी अवमानना होने लगती है तथा उनके विनाश का पथ प्रशस्त हो जाता है। उस राष्ट्र की भाषा, संस्कृति, साहित्य और परंपरा नष्ट होने लगती है, उसके महापुरुषों के प्रति अश्रद्धा निर्माण की जाती है तथा उसके नैतिक मापदंडों को निम्नतर ठहराया जाता है। उसके जीवन की पद्धतियाँ विदेशी पद्धतियों से आक्रांत हो जाती हैं तथा विदेशी आदर्श उसके अपने आदर्शों का स्थान ले लेते हैं। फलतः उस राष्ट्र के व्यक्तियों की दशा विक्षिप्त व्यक्ति के समान हो जाती है; अपनी प्रकृति, स्वभाव और

प्रतिभा के अनुसार कार्य करने की सुविधा न रहने के कारण वे प्रगति के पथ पर अग्रसर होने से ही वंचित नहीं रह जाते, अपितु पतन की ओर भी अग्रसर हो जाते हैं।

ऐसी दशा में उस राष्ट्र के घटकों का प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि विजेता राष्ट्र के प्रभुत्व को नष्ट करके अपने राष्ट्र को स्वतंत्र किया जाए। उस राष्ट्र की संपूर्ण शक्ति विदेशी राष्ट्र के प्रति विद्रोह की भावना लेकर खड़ी हो जाती है और अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार अवसर प्राप्त होने पर स्वतंत्रता को प्राप्त करती है। विश्व के इस नियम के अनुसार भारतवर्ष ने भी अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध बगावत का झंडा खड़ा किया और अंत में एक राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ही ली।

15 अगस्त, 1947 को हमने एक मोरचा जीत लिया। हमारे देश से अंग्रेज़ी राज्य विदा हो गया। उस राज्य के कारण हमारी प्रतिभा के विकास में जो बाधाएँ उपस्थित की जा रही थीं, उनका कारण हट गया, हम अपना विकास करने के लिए स्वतंत्र हो गए। अपनी आत्मानुभूति का मार्ग खुल गया।

किंतु आज हमको विचार करना होगा कि अंग्रेज़ों के चले जाने मात्र से तो हमारे ध्येय की सिद्धि नहीं हो गई। वह तो हमारे मार्ग में बाधा मात्र थी और आज वह दूर हो गई है। किंतु अभी भी मानव की प्रगति में हमको सहायता करनी है। मानव द्वारा छेड़े गए युद्ध में जिन-जिन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग हमने अब तक किया है, जिनको चलाने में हम निपुण हैं तथा जिन पर सहस्राब्दी में ज़ंग लग गई थी, उन्हें पुन: तीक्ष्ण करना है तथा अपने युद्ध-कौशल का परिचय देकर मानव को विजयी बनाना है। आज यदि हमारे मन में उन पद्धतियों के विषय में ही मोह पैदा हो जाए, जिनके पुरस्कर्ताओं से हम अब तक लड़ते रहे तो यही कहना होगा कि हम न तो स्वतंत्रता का सच्चा स्वरूप समझ पाए हैं और न अपने जीवन के ध्येय को ही पहचान पाए हैं।

हमारी आत्मा ने अंग्रेज़ी राज्य के प्रति विद्रोह केवल इसलिए नहीं किया कि दिल्ली में बैठकर राज्य करनेवाला एक अंग्रेज़ था, अपितु इसलिए भी हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में, हमारे जीवन की गति में विदेशी पद्धतियाँ और रीति-रिवाज, विदेशी दृष्टिकोण और आदर्श अड़ंगा लगा रहे थे, हमारे संपूर्ण वातावरण को दूषित कर रहे थे, हमारे लिए साँस लेना भी दूभर हो गया था। आज यदि दिल्ली का शासनकर्ता अंग्रेज़ के स्थान पर हममें से ही एक, हमारे ही रक्त और मांस का एक अंश हो गया है तो हमको इसका हर्ष है, संतोष है, किंतु हम चाहते हैं कि उसकी भावनाएँ और कामनाएँ भी हमारी भावनाएँ और कामनाएँ हों। जिस देश की मिट्टी से उसका शरीर बना है, उसके प्रत्येक रजकण उसके शरीर के कण-कण से प्रतिध्वनित होना चाहिए, तीस कोटि हृदयों की समष्टिगत भावनाओं से उसका हृदय उद्वेलित होना चाहिए तथा उनके जीवन के विकास के अनुकूल, उनकी प्रकृति और स्वभाव के अनुसार तथा

उनकी भावनाओं और कामनाओं के अनुरूप पद्धतियों की सृष्टि उसके द्वारा होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो कहना होगा कि अभी भी स्वतंत्रता की लड़ाई बाक़ी है। अब भी हम अपनी आत्मानुभूति में आनेवाली बाधाओं को दूर नहीं कर पाए हैं।

अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद आवश्यक है कि हमारा देश आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी स्वतंत्रता का अनुभव करे। जब तक भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से परमुखापेक्षी है तथा भारत की तीस कोटि संतान के आर्थिक उन्नति के द्वार खुले नहीं हैं तथा उसके साधन प्रस्तुत नहीं हैं, तब तक भारतवर्ष विश्व की प्रगति में कदापि सहायक नहीं हो सकता। न तो वह जीवन के सत्य का साक्षात्कार कर सकेगा और न मानव की स्वतंत्रता का ही।

आर्थिक स्वाधीनता के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता की भी आवश्यकता है। आत्मानुभूति के प्रयत्नों में जिन सामाजिक व्यवस्थाओं एवं पद्धतियों की राष्ट्र अपनी सहायता के लिए सृष्टि करता है अथवा जिन रीति-रिवाज़ों में उसकी आत्मा की अभिव्यक्ति होती है, वे ही यदि कालावपात से मार्ग में बाधक होकर उसके ऊपर भार रूप हो जाएँ तो उनसे मुक्ति पाना भी प्रत्येक राष्ट्र के लिए आवश्यक है। यात्रा की एक मंज़िल में जो साधन उपयोगी सिद्ध होंगे, यह आवश्यक नहीं कि अगली मंज़िल के लिए भी वे ही साधन उपयोगी हों। साधन तो प्रत्येक मंज़िल के अनुरूप ही चाहिए, प्राचीन साधनों का मोह परतंत्रता का ही कारण हो सकता है। क्योंकि स्वतंत्रता केवल उन तंत्रों का समष्टिगत नाम है, जो स्वानुभूति में सहायक होते हैं।

राष्ट्र की सांस्कृतिक स्वतंत्रता तो अत्यंत महत्त्व की है, क्योंकि संस्कृति ही राष्ट्र के संपूर्ण शरीर में प्राणों का संचार करती है। प्रकृति के तत्त्वों पर विजय पाने के प्रयत्न में तथा मानवानुभूति की कल्पना में मानव जिस जीवनदृष्टि की रचना करता है, वह उसकी संस्कृति है। संस्कृति कभी गतिहीन नहीं होती, अपितु वह निरंतर गतिशील है; फिर भी उसका अपना एक अस्तित्व है। नदी के प्रवाह की भाँति निरंतर गतिशील होते हुए भी वह अपनी निजी विशेषताएँ रखती है, जो उस सांस्कृतिक भावना से अन्य राष्ट्र के साहित्य, कला, दर्शन, स्मृति, शास्त्र, समाज-रचना, इतिहास एवं सभ्यता के विभिन्न अंग-अंगों में व्यक्त होती हैं। परतंत्रता के काल में इन सब पर प्रभाव अवरुद्ध हो जाता है। आज स्वतंत्र होने पर आवश्यक है कि हमारे प्रवाह की संपूर्ण बाधाएँ दूर हों तथा हम अपनी प्रतिभा के अनुरूप राष्ट्र के संपूर्ण क्षेत्रों में विकास कर सकें। राष्ट्रभक्ति की भावना का निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव की एकात्मकता का अनुभव कराती है। अतः संस्कृति की स्वतंत्रता परमावश्यक है। बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं, टिकाऊ भी नहीं रह सकेगी।

हम स्वतंत्रता के इन मूल्यों को समझें। स्वतंत्रता को कुछ व्यक्ति समूह की स्वार्थसिद्धि का साधन बनाना, फिर वह व्यक्ति समूह 50 करोड़ का ही क्यों न हो, स्वतंत्रता को उसके महान् आसन से गिराकर धूल में मिलाना होगा। इस प्रकार के दृष्टिकोण से कार्य करने पर न तो स्वतंत्रता की हम अनुभूति ही कर पाएँगे और न हम विश्व की ही कुछ सेवा कर पाएँगे। अपितु इस प्रकार का स्वार्थी और अहंकारी भाव लेकर कार्य करने पर हम उसी इतिहास की पुनरावृत्ति करेंगे, जो कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर प्रभाव जमाने में निर्माण करता है। यहाँ पात्र भिन्न होंगे, वे एक ही राष्ट्र के घटक होंगे, पास-पास रहनेवाले पड़ोसी होंगे और इसलिए उनके कृत्य और भी भयंकर हो जाते हैं तथा उसका परिणाम भी सर्वव्यापी विनाश हो सकता है। किंतु हमारा विश्वास है कि राष्ट्र की जीवनदायिनी शक्ति अपने सच्चे स्वरूप और कार्य को समझेगी व विनाश के स्थान पर विकास के मार्ग पर अग्रसर होती हुई भारत की 50 कोटि संतान अपने परम लक्ष्य परब्रह्म की प्राप्ति करेगी तथा मानव को विश्वात्मा की अनुभूति कराएगी।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

3

राष्ट्र और राज्य

आज जिस अर्थ में शासन की ओर से राष्ट्रीयकरण की माँग गुंजाई जा रही है, हम आँख बंद करके इसके समर्थक नहीं हो सकते। एक सज्जन कहने लगे कि "आप राष्ट्र के प्रति संपूर्ण समर्पण के लिए कृत संकल्प हैं, फिर राष्ट्रीयकरण में मर्यादा की बात आप क्यों करते हैं?" निस्संदेह यह प्रश्न जितना सरल है, उसका उत्तर उतना ही गंभीर है। राष्ट्रकार्य के व्रती प्रत्येक व्यक्ति को 'राष्ट्र' और 'राज्य' का अंतर भली-भाँति समझ लेना चाहिए। चारों ओर व्याप्त राजनीति के कोलाहल में आज 'राष्ट्र' और 'राज्य' के बीच मूलगामी और सूक्ष्म अंतर को समझ पाना कठिन होता जा रहा है। यही कारण है, जो हम राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय प्रगति, राष्ट्रीय लक्ष्य आदि कितने ही महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का समाधानकारक उत्तर खोज पाने में असमर्थ हो रहे हैं। यहाँ तक कि हम अपने राष्ट्र जीवन की शुद्ध सांस्कृतिक धारा के संबंध में भी भ्रमित चित्त हो गए हैं।

वास्तव में 'राष्ट्र' और 'राज्य' दो अलग-अलग सत्ताएँ हैं। बहुत से लोग इस अंतर को नहीं समझ पाते। वे राज्य और राष्ट्र को एक ही समझकर चलते हैं और सदा ही प्रयोग करते हैं। राज्य के लिए राष्ट्र या राष्ट्र के लिए राज्य? इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर पाना है तो हमें इन दोनों के वास्तविक महत्त्व को समझना होगा।

राष्ट्र एक जीवमान इकाई है। वर्षों-शताब्दियों लंबे कालखंड में इसका विकास होता है। किसी निश्चित भू-भाग में निवास करनेवाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ तादात्म्य का अनुभव करने लगता है, जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परंपरा और महत्त्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख-दुःख की समान स्मृतियाँ और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियाँ प्राप्त कर परस्पर हित संबंधों में ग्रंथित होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है, और इस

परस्परा का निर्वाह करनेवाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान्, तप, त्याग, परिश्रम करनेवाले महापुरुषों की शृंखला निर्माण होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावनात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है। जब तक यह राष्ट्रीय अस्मिता बनी रहती है, राष्ट्र जीवित रहता है। इसके क्षीण होने से राष्ट्र क्षीण होता है और नष्ट होने से राष्ट्र नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार 'राष्ट्र' एक स्थायी सत्य है। राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए 'राज्य' पैदा होता है। 'राज्य' की उत्पत्ति के दो कारण बताए जाते हैं। यानी 'राज्य' की आवश्यकता दो स्थितियों में होती हैं : पहली आवश्यकता तब होती है, जब राष्ट्र के लोगों में कोई विकृति आ जाए। उसके कारण उत्पन्न समस्याओं का नियमन करने के लिए राज्य उपस्थित किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी मोहल्ले में यदि कोई झगड़ा न हो और न ही ऐसी कोई संभावना हो तो पुलिस कहीं दिखाई नहीं पड़ती। किंतु यदि झगड़ा हो जाए तो झट पुलिस को बुलाया जाता है। दूसरी आवश्यकता तब पड़ती है, जब समाज में कोई जटिलता आ उपस्थित हुई हो। सार्वजनिक जीवन में व्यवस्था निर्माण करना ज़रूरी हो। निर्बलता, असहायता और दरिद्रता का लाभ शक्तिशाली, संपन्न और साधनयुक्त वर्ग न उठा सके, सब न्याय की सीमाओं में बाँधकर चल सकें, इसके लिए राज्य का निर्माण किया जाता है। वास्तव में इन दो कारणों से ही 'राज्य' उत्पन्न होता है। समाज में आई हुई विकृति का नियमन करने के लिए विकृत व्यक्तियों को दंडित करना यानी शांति स्थापित करना और समाज में आई हुई जटिलता को सुलझाकर प्रत्येक व्यक्ति के लिए न्यायपूर्ण, सम्मानित जीवन सुकर बना देना यानी सुव्यवस्था करना ही 'राज्य' के कार्य माने गए हैं। तीसरा एक कार्य जो इन्हीं दोनों कार्यों की पूर्ति का महत्त्वपूर्ण अंग है, वह विश्व के अन्य राज्यों के साथ संबंध स्थापित करना है। यानी बाह्य आक्रमण से रक्षा करने का कार्य भी राज्य करता है।

इसके लिए 'राज्य' राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरणार्थ, जिसे हम संयुक्त राष्ट्र संघ कहते हैं, वास्तव में वह राष्ट्रों का संघ नहीं, राज्यों का संघ है। राष्ट्रों के प्रतिनिधि के रूप में वहाँ राज्य उपस्थित हैं। किंतु यदि राज्य में विकृति आ जाए अथवा वह अपने दायित्व को निभाने में असमर्थ सिद्ध हो तो 'राष्ट्र' ऐसे राज्य को बदल डालता है। 'राष्ट्र' अपने प्रतिनिधि को बदल डालता है। साधारण अर्थ में कहते हैं कि अमुक देश में सरकार बदल गई। जिसे हम प्रजातंत्र कहते हैं, वह भी राज्य को उपयोगी बनाए रखने की आवश्यकता पड़ने पर उसे बदल डालने की प्रक्रिया का ही नाम है। राज्य बदला जा सकता है, किंतु कोई भी प्रजातंत्र 'राष्ट्र' को नहीं बदल सकता। राष्ट्र का अस्तित्व बहुमत और अल्पमत पर आधारित नहीं रहता। राष्ट्र की एक स्वयं भू सत्ता है। वह स्वयं प्रकट होती है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक,

आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में विभिन्न इकाइयों की स्थापना करती है। ये विभिन्न इकाइयाँ, जिनमें 'राज्य' भी एक है, आपस में परस्पर अनुकूल होकर कार्य करें और राष्ट्र की शक्ति को मज़बूत करने के लिए अथक प्रयत्नशील हों, इसके लिए आवश्यक होता है कि राष्ट्र को सदैव जाग्रत् रखा जाए।

'राष्ट्र' के सुप्त होने से ही सब ख़राबियाँ घर करती हैं। राष्ट्र सुप्त होने से उसकी विभिन्न इकाइयों का प्रतिनिधित्व करनेवाली सत्ताएँ, जैसे राज्य, पंचायत, परिवार आदि सभी अनियंत्रित और उच्छृंखल हो जाती हैं। राज्य भ्रष्ट हो सकता है। 'प्रभुता पाय काहि मद नाहीं' वाली चौपाई सही उतरती है। किंतु यदि राष्ट्र जाग्रत् और दक्ष हो तो राज्य की प्रभुता मर्यादित रहती है। राज्य तो राष्ट्र का वक़ील है, वह कई बार अपने मुवक्किल की ओर से पैरवी करते समय ऐसी भाषा में बातचीत करता है, मानो वही प्रार्थी है। ऐसा करना ज़रूरी होता है। वक़ालतनामा लिख दिया जाता है किंतु यदि वक़ील ठीक काम न करे तो वक़ालतनामा बदला जा सकता है। यही बात राज्य के साथ भी है। राज्य के समस्त अधिकार राष्ट्र द्वारा ही प्रदान किए जाते हैं, और यदि राष्ट्र जाग्रत् न रहा तो राज्य इन अधिकारों का दुरुपयोग कर सकता है। राज्य यदि अनियंत्रित होकर राष्ट्र से समस्त सत्ताओं का अपहरण कर ले तो तानाशाही स्थापित हो जाती है और राष्ट्र पंगु हो जाता है।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि 'राज्य' का महत्त्व कम है। राज्य का महत्त्व विवादातीत है। राष्ट्र की अभिवृद्धि करना, संरक्षण करना, वैभवशाली बनाना, राष्ट्र के आवश्यकतानुसार निर्णय लेकर विश्व संबंधों में पग उठाना आदि कार्य 'राज्य' के हैं। इतना होते हुए भी 'राज्य' सदा स्थायी नहीं रहता। ऐसे अवसर भी आ सकते हैं, जब 'राज्य' न हो परंतु राष्ट्र विद्यमान रहता है। सतयुग का ऐसा ही वर्णन करते हुए कहा गया है, "न राज्यं न च राजाऽसीत न दण्ड्यो न च दाण्डिक:" यानी तब न राज्य था, न राजा, न दंड था, न दंड देनेवाला। किंतु तब भी राष्ट्र तो था ही। इसी प्रकार की कल्पना साम्यवादी उद्घोषक कार्ल मार्क्स ने भी 'विदरिंग अवे ऑफ दी स्टेट' राज्य के क्षीण हो जाने के माध्यम से स्वीकार की है। उसकी भी कल्पना है कि अंत में राज्य नहीं रहेगा। तब क्या रहेगा? निश्चित ही किन्हीं सर्वमान्य सिद्धांतों के आधार पर राष्ट्र रहेगा। भले ही 19वीं शती में मार्क्स ने 'राष्ट्र' को नहीं माना किंतु विगत 50 वर्षों के कम्युनिस्ट अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि 'राष्ट्र' की प्रेरणा महज़ पूँजीवादी व्यवस्था की उपज नहीं है, अपितु कम्युनिस्ट व्यवस्था में भी वही जीवन की सबसे शक्तिदायी प्रेरणा है।

जब कोई राष्ट्र ग़ुलाम हो जाता है या उस राष्ट्र की भूमि का कोई हिस्सा ग़ुलाम हो जाता है, यानी पराया स्थापित हो जाता है, तब भी राष्ट्र रहता है। जैसे कि जब अंग्रेज़ यहाँ आए उनका शासन हुआ, देश ग़ुलाम हुआ तो गवर्नमेंट कही जाने लगी। उस समय भारतीय

राज्य नष्ट हो गया था अथवा भारतीय राजाओं की संकुचित सीमाओं में कुंठित होकर पराए राज्य का आश्रित बन गया था। लेकिन क्या कोई कह सकता है कि तब भारतीय राष्ट्र नहीं रहा था? यदि भारत का राष्ट्र जीवन न रहा होता तो आज़ादी के प्रयत्न ही नहीं होते। 'राज्य' नष्ट होने पर भी 'राष्ट्र' विद्यमान था। इसीलिए राष्ट्रीय जागरण का मंत्र फूँका गया। चेतना जागी। राष्ट्र अपनी अभिव्यक्ति के लिए 'स्वराज्य' का घोष करने लगा। वह कौन था, जो राज्य न होते हुए भी स्वराज्य की प्राप्ति के लिए फाँसी के फंदों को चूमने या काले पानी की सज़ा भुगतने के समय हृदय में विश्वास और आनंद की सृष्टि करता था? उस समय भी 'राष्ट्र' विद्यमान था। साहित्य, कला, दर्शन, वाणिज्य के विविध क्षेत्रों में इसी के प्रतिबिंब मुखरित हो रहे थे। वंदे मातरम् के घोष पर वह किसकी प्रेरणा थी, जो बलिदान के लिए उद्यत करती थी? कौन था, जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक भाव का अलख गुँजा रहा था? निश्चित ही वह 'राष्ट्र' था, 'राज्य' नहीं।

ऐसे ही जब 'राष्ट्र' पूर्ण विकसित होता है तो उसके अंतर्गत अनेक राज्य हो सकते हैं। ये राज्य भिन्न-भिन्न रूप और पद्धतियों के भी हो सकते हैं। भारतीय इतिहास में हम ऐसे कई राजवंशों का वर्णन पाते हैं। ये राज्य भिन्न-भिन्न पद्धतियों का भी पालन करते हैं। कहीं गणराज्य थे तो कहीं संघराज्य, कहीं वैराज्य था तो कहीं राजतंत्र। इनके आकार भी भिन्न थे। ये सब राज्य सत्ताएँ उभरती और विलीन होती रहीं। किंतु राष्ट्र सर्वकाल विद्यमान रहा और इन परिवर्तनों का नियमन करता रहा। राज्य स्थायी नहीं रहते। जैसे शरीर पर कपड़े आवश्यतानुसार बदलते रहते हैं, वैसे राज्य भी राष्ट्र की आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रकट होते हैं और आवश्यकतानुसार उनके विविध स्वरूप हो सकते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राष्ट्र के लिए राज्य है, राज्य के लिए राष्ट्र नहीं। इसी प्रकार राजनीति के लिए राष्ट्रीयता नहीं, राष्ट्रीयता के पोषण के लिए राजनीति होनी चाहिए। वह राजनीति जो राष्ट्र को क्षीण करे, अवांछनीय रहेगी। यही बात सुराज्य और स्वराज्य में भी भेद स्पष्ट करती हैं। स्वराज्य में यदि कष्ट हो तो भी वह उचित है, बजाय उस सुराज्य के, जो पराया हो। स्वराज्य की व्याख्या में तीन बातें प्रमुख रूप से आती हैं। पहली बात तो यह है कि राज्य उन लोगों के द्वारा संचालित हो, जो राष्ट्र के अंग हैं। दूसरी विशेषता यह है कि ऐसा राज्य राष्ट्र के हित में चलना चाहिए, यानी राष्ट्रीय हित में नीतियों का संचालन होना चाहिए। और तीसरी बात यह है कि ऐसे राज्य में राष्ट्र का हित साधने का सामर्थ्य अपना स्वयं का होना चाहिए, यानी स्वावलंबन के बिना स्वराज्य की कल्पना करना ही ग़लत है। राज्य अपने राष्ट्र के घटकों के हाथ में रहने पर भी यदि आर्थिक अथवा वैदेशिक मामलों में किसी अन्य राष्ट्र का पिछलग्गू बन गया या दबाव में आने लगा तो स्वराज्य निरर्थक हो जाता है। सुरक्षा के मामले में यदि

राज्य आत्मनिर्भर नहीं, नीतियों के मामले में स्वतंत्र नहीं और आर्थिक योजना में स्वयंपूर्ण नहीं तो वह राष्ट्र के लिए अहितकर कार्य करने की ओर प्रेरित हो जाता है। ऐसा परावलंबी राज्य विनाश का कारण बनता है।

इसलिए स्वराज्य भी तभी तक उपयोगी और सार्थक है, जब तक स्वराष्ट्र की आवश्यकता की पूर्ति करता है। यह तभी हो सकता है, जब राष्ट्रीय समाज 'राज्य' से बढ़कर 'राष्ट्र' की आराधना करे। सच्चा सामर्थ्य राज्य में नहीं 'राष्ट्र' में ही रहता है। इसलिए जो राष्ट्र के प्रेमी हैं, वे राजनीति के ऊपर राष्ट्रभाव की आराधना करते हैं। राष्ट्र ही एकमेव सत्य है। इस सत्य की उपासना करना सांस्कृतिक कार्य कहलाता है। राजनीतिक कार्य भी तभी सफल हो सकते हैं, जब इस प्रकार के प्रखर राष्ट्रभाव से युक्त सांस्कृतिक कार्य की शक्ति उसके पीछे सदैव विद्यमान रहे।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

4

राष्ट्र का स्वरूप–चिति

राष्ट्र का वास्तविक स्वरूप समझने के लिए उस मूल तत्त्व की ठीक-ठीक पहचान करनी होगी, जिसके आविर्भाव से राष्ट्र का उदय होता है, जिसके कारण राष्ट्र की धारणा होती है और जिसके क्षीण पड़ने से राष्ट्र विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। यह मूल तत्त्व है—राष्ट्र की प्रकृति, जिसे शास्त्रीय ढंग से 'चिति' नाम से संबोधित किया गया है। 'चिति' ही वह मापदंड है, जिससे हर वस्तु को मान्य अथवा अमान्य किया जाता है। उदाहरण के लिए हम रामायण का प्रसंग देखें।

विभीषण ने अपने भाई रावण का साथ छोड़कर भगवान् रामचंद्रजी का पक्ष ग्रहण किया। इसके लिए विभीषण की सराहना की गई है। वैसे रावण वेदों का ज्ञाता और उच्च कुल का ब्राह्मण था। किंतु रावण की जय-जयकार नहीं होती। प्रभु रामचंद्रजी ही हमारे इष्ट और आदर्श देवता हैं। उसी प्रकार महाभारत में हम श्रीकृष्ण को अवतार के नाते पूजते हैं। जिन्होंने अपने सगे मामा कंस को पछाड़ा, कितने ही कौरव सेनापतियों के विनाश के लिए प्रयत्न किया। इस संबंध में प्रत्येक भारतीय पांडवों की विजय को धर्म का और कौरवों को अनीति का पक्ष मानता है। इसी प्रकार अन्य कई बातों के संबंध में हम भारत के राष्ट्रीय मानस की अद्भुत एकता का दृश्य देखते हैं। आत्मा-परमात्मा का संबंध, मानव-जीवन का लक्ष्य, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ चारित्रिक गुण-संपदा का चयन और ऐसे आचरणों को चरितार्थ करनेवाले महापुरुषों के प्रति समान श्रद्धा-आदर का भाव आदि कितनी ही ऐसी बातें दिखाई पड़ती हैं, जिनके संबंध में समान मूल्यांकन, विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध ग्रंथों के विपुल साहित्य में, एक जैसी चिंतनधारा की विविध झाँकियाँ मिलती हैं। निःसंदेह इस एकरूपता को देखकर हम एक क्षण अवाक् होकर सोचने लगते हैं कि इस एक जैसे नीर-क्षीर विवेक का आधार क्या है? यह आधार कब, कैसे निर्माण हुआ? राष्ट्र के नाते हमने किस समय ये मापदंड

निर्धारित किए? और शताब्दियों लंबे इस कालखंड में भरे अनगिनत परिवर्तनों के बावजूद वह कौन सी निर्णायक वस्तु है, जो प्रत्येक बाहरी हलचल को अपनी आंतरिक इच्छाशक्ति की अनुगामिनी बनाकर रखने में समर्थ होती है? राष्ट्र की यह चिर-जीवन-शक्ति, जिसे 'चिति' कहा गया है, क्या है?

इसे समझने के लिए हमें उन सभी भूलों से सर्वप्रथम बचना होगा, जो 'राष्ट्र' के नाम पर आजकल प्रचलित हैं। पूर्व अध्याय में 'राष्ट्र' और 'राज्य' का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि सामान्यत: राज्य को ही राष्ट्र समझकर जो लोग चलते हैं, वे ग़लती करते हैं। 'राज्य' राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाला एक अंग है। राज्य अनेक अवसरों पर राष्ट्र का प्रतिनिधित्व भी करता है और इसी कारण 'राज्य' को ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान भी प्राप्त है कि उसकी उपेक्षा करके नहीं चला जा सकता, फिर भी इन कारणों से हम 'राज्य' को ही राष्ट्र समझ बैठने की भूल नहीं कर सकते; क्योंकि राष्ट्र एक जीवमान इकाई है, जो स्वयं प्रकट होता है और जो अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए राज्य सहित अनेक छोटी-बड़ी इकाइयों का निर्माण करता है। ये विभिन्न इकाइयाँ राष्ट्र के लिए पोषक बनकर कार्य करें, और इनमें कभी किसी प्रकार का टकराव निर्माण न हो, इसके लिए आवश्यक होता है कि राष्ट्र को जाग्रत् रखा जाए। यजुर्वेद में 'वयं राष्ट्र जागृयाम पुरोहिता:' मंत्र द्वारा यही मनीषा व्यक्त की गई है कि हम जागते रहेंगे, यानी राष्ट्र को जाग्रत् रखेंगे।

इसी प्रकार हमें यह बात भी भली-भाँति समझ लेनी होगी कि 'देश' और 'राष्ट्र' भी अलग-अलग हैं। यद्यपि 'राज्य' से 'देश' अधिक विशाल और स्थायी सत्ता है और इसी कारण बहुधा देश और राष्ट्र समानार्थी शब्दों के रूप में ही प्रयोग में आते हैं। 'भारत-देश हमारा प्यारा' गीत जब हम गुनगुनाते हैं तो वास्तव में हम राष्ट्र का ही ध्यान करते हैं। इस प्रकार 'देश' और 'राष्ट्र' शब्द एक जैसे ही बोले जाते हैं। फिर भी राष्ट्र की जिस चिरंतन शक्ति का सूक्ष्म अध्ययन हमें करना है, उसके लिए आवश्यक है कि हम देश और राष्ट्र के अंतर को भी ध्यान में रखें।

जिस प्रकार 'राष्ट्र' की 'राज्य' से भिन्न सत्ता है, उसी प्रकार 'राष्ट्र' और 'देश' भी एक नहीं है। भूमि और जन को मिलाकर देश बनता है। एक निश्चित भूमिखंड और उसमें निवास करनेवाला मानव समुदाय मिलकर देश कहा जाता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि भूमिखंड और जनसमुदाय दोनों ऐसी बातें हैं, जिन्हें हम भली प्रकार देख, सुन, समझ सकते हैं। यानी देश दृश्यमान सत्ता है। देश दिखाई पड़ता है, इसलिए जब हम राष्ट्र का वर्णन करने लगते हैं तो हमें इसी दृश्यमान देश का वर्णन करना पड़ता है। यही कारण है कि जिससे देश और राष्ट्र समानार्थी बनकर उपस्थित होते हैं। जिस प्रकार 'राज्य' राष्ट्र का प्रतिनिधि बनकर हमें दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार देश भी, राष्ट्र

की अभिव्यक्ति का ठोस आधार बनकर हमारे सामने उपस्थित होता है। यहाँ तक कि बिना देश के हम किसी राष्ट्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। बिना भूमिखंड और बिना किसी मानव समुदाय के राष्ट्र भला कैसे कहा जा सकता है। फिर भी यह सूक्ष्म रहस्य हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिस प्रकार देश एक दृश्यमान सत्ता है, उसी प्रकार 'राष्ट्र' एक अदृश्यमान सत्ता है। देश दिखाई पड़ता है, राष्ट्र दिखाई नहीं पड़ता। ठीक वैसे ही जैसे शरीर दिखाई पड़ता है, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती और यह भी कि बिना शरीर के आत्मा का प्रकटीकरण नहीं हो सकता, साथ ही बिना आत्मा के शरीर मुरदा ही गिना जाएगा। देश और राष्ट्र अभिन्न होते हुए भी अलग-अलग सत्ताएँ हैं। राष्ट्र एक अदृश्य सत्ता होने के साथ-साथ अधिक गूढ़ और चिरंतन भी है। इस संबंध में हम अपने भारत का ही ध्यान करें। हम भारत के प्रति अनन्य भक्तिभाव लेकर कार्य करते हैं। देश के नाते 'भारत' पृथ्वी पर एक भू-भाग का ही नाम है। तीन ओर समुद्र और उत्तर में हिमालय की शाखा-प्रशाखा पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ भू-भाग ही हमारा भारत देश है। इस अर्थ में भारत देश पृथ्वी पर ज़मीन के एक टुकड़े का नाम है। किंतु क्या ज़मीन का टुकड़ा ही यह राष्ट्र है, जिसकी हम आराधना करते हैं? निस्संदेह कोई भी राष्ट्रभक्त इसे स्वीकार नहीं करेगा। ज़मीन का टुकड़ा मात्र होने से कोई राष्ट्र नहीं बन जाता। दुनिया में कई ऐसे भू-खंड हैं, जिन्हें हम राष्ट्र नहीं कह सकते। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव में भूमिखंडों को क्या हम राष्ट्र कह सकेंगे? इसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका में कई भूमिखंड हैं, जो राष्ट्र नहीं हैं। कई द्वीप भी ऐसे हैं, जो भूमि के टुकड़े हैं, वहाँ लोग भी रहते हैं, किंतु वहाँ कोई राष्ट्र जीवन विकसित नहीं हुआ। इस तथ्य को अधिक सरलता से समझना हो तो हम अपने भारत के विभिन्न प्रदेशों का उदाहरण ले सकते हैं। उत्तर प्रदेश एक भौगोलिक इकाई है, बंगाल भी ज़मीन का एक टुकड़ा है। किंतु राष्ट्र का बोध होता है? 'भारत' कहने से जिस प्रकार राष्ट्रबोध होता है, वैसा केवल उत्तर प्रदेश अथवा बंगाल जैसे किसी प्रदेश का नाम लेने से नहीं होता। इसलिए यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि निश्चित भू-भाग यद्यपि राष्ट्र के लिए एक अनिवार्य और प्रथम आवश्यकता है, फिर भी केवल भू-भाग राष्ट्र नहीं बन पाता। राष्ट्र का स्वरूप जिस तत्त्व के अस्तित्व पर निर्भर करता है, वह अदृश्यमान होते हुए भी विलक्षण तत्त्व है, जिसका अनुभव सर्वाधिक तीव्रता से होता है। जो महत्त्व व्यक्ति जीवन में व्यक्ति की अस्मिता का है, वैसा ही राष्ट्रीय अस्मिता का भी है। राष्ट्रीय अस्मिता रहने से राष्ट्र जीवित रहता है, उसके क्षीण पड़ने से राष्ट्र कमज़ोर होता है और उसके लोप अथवा विस्मरण होने से संपूर्ण राष्ट्र का ही विनाश होने लगता है। विश्वपटल पर कितने ही राष्ट्र आज अतीत की स्मृति मात्र बनकर रह गए। इसका कारण भी यही है। वहाँ का भूमिखंड और लोग आज भी हैं, फिर भी प्राचीन ईरान, यूनान, मिस्र सब समाप्त हो गए।

यानी राष्ट्र की अस्मिता, उसकी मूल प्रकृति नष्ट हो गई। राष्ट्र का स्वरूप उसकी इस अस्मिता में ही निवास करता है।

जब हम कहते हैं कि व्यक्ति के समान राष्ट्र की भी एक अस्मिता होती है तो हमारे समक्ष भूमिखंड में निवास करनेवाला एक मानव समुदाय उपस्थित होता है। वास्तव में 'राष्ट्र' जिसकी अस्मिता के अर्थ को समझने का हम प्रयत्न कर रहे हैं, एक समूहवाची शब्द ही है। जैसे 'कक्षा' कहने से किसी एक विद्यार्थी का नहीं, विद्यार्थियों के पूरे समूह का बोध होता है, उसी प्रकार राष्ट्र कहते ही समूह का बोध होता है। राष्ट्र के इस समूह को सामान्यत: जो नाम दिया जाता है, वह है 'जन', जिसे आजकल हम जनता कहते हैं। जनसमूह ही निश्चित भू-भाग में राष्ट्र के नाम से पुकारा जाता है। किंतु वह कौन सा जनसमूह है? कौन से जन समूहबद्ध होकर राष्ट्र बनते हैं? क्या कैसे भी लोगों के समूह को हम राष्ट्र कहेंगे? कितने जन, किस प्रकार के जन? क्योंकि जिस राष्ट्रीय अस्मिता के कारण 'राष्ट्र' शब्द सार्थक होता है, वह कैसी भी भीड़ के एकत्र होने मात्र से प्रकट नहीं होती। इन प्रश्नों के उत्तर कठिन नहीं हैं, फिर भी कई लोग गड़बड़ा जाते हैं। अधिकतर लोग इस मामले में राज्य को आधार मानकर बोल उठते हैं कि राज्य में रहनेवाले सभी व्यक्ति 'राष्ट्र' के जन हैं। जो लोग इससे ऊपर उठकर सोच पाते हैं, वे देश को आधार मानकर जन की कल्पना करते हैं। उनके मत में वे सभी लोग आ जाते हैं, जो उस भूमि में निवास करनेवाले हैं। ये दोनों तरीक़े राष्ट्र संबंधी विचार करने के स्थूल तरीक़े हैं। राष्ट्र के जिस 'जन' का भाव अभिप्रेत है, उसे ये दोनों विचार ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर पाते। इसलिए हमें राज्य अथवा देश के आधार पर 'जन' की कल्पना करने के पहले राष्ट्र के 'एक जन' का सम्यक् विचार कर लेना होगा। तभी हम राष्ट्रीय अस्मिता की सच्ची गहराई तक पहुँच सकेंगे।

'राष्ट्र' से जिस समूह का बोध होता है, उसे हम 'एक जन' कहते हैं। किंतु 'जन' एक जीवमान इकाई है, जिस प्रकार व्यक्ति पैदा होता है, बनाया नहीं जाता, उसी प्रकार 'जन' की भी एक स्वतंत्र स्वयंभू सत्ता है।

यह सच है कि व्यक्तियों के समूह में लोग एकत्र होते हैं, नामकरण करते हैं, संस्था बनती है, संविधान तैयार होता है। जिस प्रकार ये बनाए जाते हैं, उसी प्रकार आवश्कतानुसार तोड़े भी जाते हैं। इनके बनानेवाले, तोड़नेवाले भी होते हैं। उसी प्रकार बड़े-बड़े मज़हब भी बनते हैं। कई प्रकार के संप्रदाय चलते हैं। राजनीतिक पार्टियाँ बनती और बिगड़ती हैं।

व्यवसायों में समूहों की अलग-अलग यूनियनें बनती हैं। सफलता के लिए इनमें लोग मिलकर काम करते हैं, परस्पर सहयोग देते हैं। चाहे ताश खेलने में दो-चार का हो अथवा हज़ारों-लाखों का, आपस में मेलजोल होता है। किंतु ये सब समूह बनाए जाते

हैं, स्वयंभू प्रकट नहीं होते। किसी निश्चित आवश्यकता के लिए सीमित और निर्देशित उद्देश्य के कारण ये समूह बनते हैं और आवश्यकता पूर्ण होने पर अथवा बीच में ही इन्हें विसर्जित भी कर दिया जाता है।

किंतु जिस 'जन' सत्ता की हम बात कर रहे हैं, वह इस प्रकार कृत्रिम रूप से नहीं बनाया जा सकता। ऐसा नहीं होता कि पाँच-पचास अथवा पचास-सौ करोड़ लोग एकत्र हुए, उन्होंने अपना 'आर्टिकल ऑफ़ एसोसिएशन' घोषित किया, सबकी सभा बुलाई गई, नामकरण हुआ, पंजीकरण कर लिया गया और वे सब 'जन' राष्ट्र कहलाने लगे। 'जन' का कोई रजिस्टर नहीं होता। न ही उनका कोई निर्माता, जनक अथवा सर्जक होता है। 'जन' कृत्रिम नहीं होता। यह जीवमान चीज़ है और स्वयं पैदा होती है। इसके अंदर एक जीवन है, एक प्राणशक्ति है। कृत्रिम समूह और जीवंत सत्ता में यह बहुत बड़ा अंतर है। ऊपर से देखने में यह अंतर समझ में आना कठिन है। मोटर भी दौड़ती है और घोड़ा भी दौड़ता है, किंतु दोनों में अंतर यह है कि मोटरगाड़ी बनाई जाती है और घोड़ा किसी फैक्टरी में तैयार नहीं किया जा सकता। घोड़ा पैदा होता है। दोनों दौड़ते हैं, इसलिए यदि हम दोनों को एक जैसा ही समझकर व्यवहार करेंगे तो काम नहीं चलेगा। मोटर कृत्रिम है, इसलिए उसकी दौड़ने की शक्ति बाहर से गति नियंत्रित कर कम या अधिक की जा सकती है, किंतु घोड़े की तो अपनी ही शक्ति होगी। इसी प्रकार सभी जीवंत और जड़ वस्तुओं का अंतर है। पेड़ ज़मीन से पैदा होते हैं। उनका विकास बाहर से डाली, फूल, पत्ती जोड़कर नहीं किया जा सकता। जीवंत का विकास कोई भी बाहरी वस्तु नहीं कर सकती। जीवमान का यही लक्षण है कि वह स्वयं विकसित होता है। 'जन' भी एक जीवंत सत्ता है, जो स्वयं विकसित होती है। पुष्ट होकर बलशाली होती है। यह पुष्ट होना ही संगठित होना कहा जाता है। संगठन का आधार प्रेम है। यह परस्पर का प्रेमभाव भी 'जन' रूपी समूह-राष्ट्र में स्वाभाविक उत्पन्न होता है।

हमं जब राष्ट्र निर्माण शब्द का प्रयोग करते हैं, तब उसका भी यह अर्थ नहीं होता कि हम कृत्रिम रूप से राष्ट्र को बना सकते हैं। जैसे मकान बनाया जा सकता है, वैसे राष्ट्र नहीं बन सकता। राष्ट्र निर्माण के पीछे का भाव है, उसे मज़बूत करना। राष्ट्र उत्पन्न होना एक लंबी प्रक्रिया है, जो स्वयं संपन्न होती है। सृष्टि की रचना ही इसका निर्धारण करती है कि किस राष्ट्र का सृजन, अभ्युदय, पुनरुत्थान अथवा पतन हो। क्योंकि सृष्टि में राष्ट्र का भी जीवनोद्देश्य होता है। सृष्टि द्वारा निर्धारित जीवनोद्देश्य को जब तक राष्ट्र निभाता रहता है, वह अस्तित्व में बना रहता है। हम अपने ही राष्ट्र को लें। क्या हम बता सकते हैं कि किस दिन यह राष्ट्र बनाया गया? इतिहास के पन्ने उलटते जाएँगे। एक समय आएगा, जब इतिहास के पृष्ठ भी समाप्त हो जाएँगे, तब भी

हमें यही कहना पड़ेगा कि उस समय भी राष्ट्र था। ऐसा कोई दिन, मुहूर्त या घटना नहीं बताई जा सकती, जब हमने राष्ट्र बनाया। विश्व के अनेक राष्ट्रों का यही क्रम है। एक लंबी और अनवतरत प्रक्रिया में से पीढ़ियाँ-दर-पीढ़ियाँ एक विशिष्ट प्रकृति लेकर वह 'जन' प्रकट होता है। इस 'जन' की यह मूल प्रकृति ही उसका जीवनाधार रहती है। यही 'जन' अपनी मूल प्रकृति के पोषण के लिए किसी भूमिखंड से संबंधित होता है। उस भूमिखंड के साथ उसका संबंध माँ और पुत्र के समान रहता है। अपनी जीवनाधार मूल प्रकृति के समस्त पोषण तत्त्व उसे इस भूमि से ही मिलते हैं। यह मातृभूमि ही उसका सब भाँति पोषण संवर्द्धन करती है। यानी भूमिखंड केवल भूमि का टुकड़ा न होकर जीवंत मातृशक्ति के रूप में उपस्थित रहता है। इधर इस पुत्र रूप समाज 'जन' की अपनी स्वतंत्र जीवंत शक्ति होते हुए भी वह बिना मातृभूमि के प्रकट नहीं हो सकता। उसका लालन-पालन-पोषण और वृद्धि नहीं हो सकती, यदि जननी न हो। 'जन' भी इस सबके लिए भूमि से आबद्ध रहता है। एक के बिना दूसरे की कल्पना करना ही कठिन है। पुत्र के बिना माँ का अस्तित्व निरर्थक है। कौन है, जो उसकी गरिमा गाए, कण-कण से प्यार करे, इतिहास पढ़े, उसे गौरवान्वित करे? यह पुत्र रूप समाज न हो तो कौन है, जो चप्पा-चप्पा धरती के संरक्षण के लिए चुनौतियाँ स्वीकार करे? यह भूमि के स्नेह की ही गरमी है, जो जीवन का संचार करती है। 'जन' और 'भूमि' का यह परस्पर संबंध पुत्र और माँ का संबंध है। यह संबंध महत्त्वपूर्ण है अन्यथा केवल उस भूमि पर निवास करने के तो अन्य प्रकार के संबंध भी हो सकते हैं। जैसे दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया आदि की स्थितियाँ हैं। उस भू-खंड के मूल निवासियों को समाप्त कर वहाँ यूरोप की जातियाँ जा बसी हैं। इसे 'कॉलोनी' कहा जाता है। इन जातियों का उस भूमि से संबंध उपभोग का है। पृथ्वी पर कई भाग अथवा टापू हैं, जहाँ ऐसे लोग बसते हैं, जिनके चित्त में सुदूर किसी अन्य भूमि के प्रति अनुराग रहता है। वे उसी भूमि की संतान के नाते वहाँ नहीं बसते। उन्हें किसी दूसरे देश के सपने आते रहते हैं। ऐसे लोग तब उस भूमि के 'जन' नहीं कहला सकते, जब तक कि वे उस अन्य भूमि से अपना संबंध विच्छेद नहीं कर लेते। देश शब्द वहीं पर प्रयोग में आएगा, जहाँ पर उसका संबंध किसी एक जन के साथ हो और वह मातृवत् हो।

इसलिए जब हम राष्ट्र की बात कहते हैं तो अकेले भारत कहने से काम नहीं चलता। भारत कहने के बाद ज़मीन से एक विशिष्ट संबंध स्थापित होता है, जो एक जन की भावना को स्पष्ट करता है। इसलिए वे लोग जो भारतमाता की जय कहने से क़तराते हैं, भारत में रहकर भी भारतीय जन नहीं बने हैं। धूर्त अंग्रेज़ इस सच्चाई को भली-भाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने भारत के इस 'एक जन' को नष्ट करने के लिए भारत को 'इंडिया' कहना शुरू किया। उनकी यह चाल कितनी सफल हुई, यह तो इसी बात से

स्पष्ट है कि हम अपने संविधान में 'इंडिया दैट इज़ भारत' हो गए हैं। अंग्रेज़ 'भारत' शब्द का उच्चारण नहीं कर सकते थे, सो बात नहीं, असल में वे भारत को भुला देना चाहते थे। भारत में पुत्र रूप रहनेवाले जन का मातृक महत्त्व समाप्त करने की उनकी यह चाल थी। अंग्रेज़ों ने सोचा कि इंडिया कहने पर कोई इंडिया माता नहीं कह सकेगा और तब भारतमाता की जय का लोप सहज हो जाएगा।

तथापि सौभाग्य से इसका लोप नहीं हो पाया। भारतमाता की जय का नाद गूँजता रहा। हमारी राष्ट्रीयता का आधार 'भारतमाता' है, केवल भारत नहीं। माता शब्द को हटा दीजिए तो भारत केवल ज़मीन का एक टुकड़ा मात्र रह जाएगा। इस भूमि का और हमारा महत्त्व तब आता है जब मातावाला संबंध जुड़ता है। कोई भी भूमि तब तक देश नहीं कहला सकती, जब तक कि उसमें किसी जाति का मातृक ममत्व, यानी ऐसा ममत्व जैसा पुत्र का माता के प्रति होता है, न हो। यही देशभक्ति है। तथापि देशभक्ति का मतलब ज़मीन के टुकड़े के साथ प्रेम होना मात्र नहीं है। अन्यथा कई पशु-पक्षी भी तो अपने घर से बहुत प्रेम करते हैं। साँप अपना बिल नहीं छोड़ता, शेर माँद में ही निवास करता है, पक्षी अपने घोंसले में रोज़ लौट आते हैं। किंतु ये देशभक्त हैं, ऐसा नहीं कहा जाता। मानव भी जहाँ रहता है, वहाँ से उसका कुछ-न-कुछ लगाव हो ही जाता है। फिर भी इतने मात्र से देशभक्ति नहीं आती। उन लोगों का प्रेम ही देशभक्ति कही जाएगी, जो देश में एक जन के नाते संबद्ध हैं। पुत्र रूप एक जन और माता रूप भूमि के मिलन से ही देश की सृष्टि होती है। यही देशभक्ति है, जो अमर है। उसका सबसे ताजा उदाहरण हमारे सामने इज़राइल का है। इज़राइल का पहले भी 'जन' और भूमिखंड, फिलिस्तीन के साथ उनका संबंध मातृत्व का था। परंतु वे फिलिस्तीन में थे नहीं। दुनिया भर में ख़ानाबदोश के समान घूमते थे। वे जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड में रहे। उन्होंने बड़े-बड़े काम भी किए, किंतु सदा अपनी भूमि के लिए तड़पते रहे। माता के लिए जैसा पुत्र तड़प सकता है, वैसे ही वे वर्षों रहे। इतने वर्षों तक वे अपने राष्ट्रत्व को जीवित रख सके और आज अपनी मातृस्वरूप भूमि में पहुँच गए। एक जन की मातभूमि के प्रति यह चेतना ही वह वस्तु है, जो अक्षय शक्ति प्रदान करती है।

अस्तु, राष्ट्र का स्वरूप इस 'एक जन' की सामूहिक मूल प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है। यही 'चिति' है। काल और परिस्थिति के अनुसार बाहरी ढाँचे में चाहे जो परिवर्तन होते रहें, किंतु राष्ट्र की मूल प्रकृति नहीं बदलती। जिन सिद्धांतों को चरितार्थ करने के लिए राष्ट्र का आविर्भाव हुआ है, उनका पालन होते रहने तक 'चिति' विद्यमान रहती है। राष्ट्र में चैतन्य बना रहता है। राष्ट्र बड़े से बड़ा त्याग करने को उद्यत रहता है। गंभीर से गंभीर संकट में भी विजयी होकर आगे बढ़ता है। जिस प्रकार व्यक्ति जीवन में बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक अनेक परिवर्तन होते हैं, कई प्रकार से सुख-दुःख,

संपत्ति-विपत्ति, उन्नति-अवनति के क्षण आते हैं। फिर भी व्यक्ति अपनी अस्मिता को जाग्रत् रख अपनी जीवनयात्रा पूर्ण करता है और सदा अपनी अस्मिता के आधार पर अच्छी-बुरी, ग्राह्य-अग्राह्य, मान्य-अमान्य का निर्णय करता हुआ प्रत्येक अच्छे-बुरे प्रसंग एवं वस्तु का ठीक-ठीक उपयोग करता है, इसी प्रकार 'एक जन' रूपी यह राष्ट्र मातृभूमि के प्रति जाग्रत् रहता हुआ समर्थ, स्वावलंबी, कार्यक्षम, विजयी और सर्वकाल नवोन्मेषकारी शक्ति से युक्त जीवित रहता है।

यह 'चिति' जनसमूह के प्रत्येक व्यक्ति में मातृभूमि के प्रति परमसुख की भावना रूप में रहती हैं। वह सर्वोत्कृष्ट सुख जिसके समक्ष अन्य सब बातें फ़ीकी लगें, इस 'चिति' द्वारा स्थापित होता है। इसकी झलक व्यक्ति के सब प्रकार के कार्यों में दिखाई पड़ती है। उसके समस्त व्यापार, नि:शेष चेष्टाएँ, अखिल कर्म इसी 'चिति' के प्रकाश से चैतन्य रहते हैं। जब तक 'चिति' जाग्रत् और निरामय रहती है, तब तक राष्ट्र का अभ्युदय होता रहता है। इसी चेतना के आधार पर राष्ट्र संगठित होता है। 'चिति' से जाग्रत् और एकीभूत हुई समष्टि की प्राकृतिक क्षात्र शक्ति अर्थात् अनिष्टों से रक्षा करनेवाली शक्ति 'विराट्' कही जाती है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। सामूहिक जीवन जीने के लिए उसे सहानुभूति का भाव प्रकृति से प्राप्त होता है। यह सहानुभूतियुक्त तेज ही व्यक्ति को समाज के हितार्थ आत्मत्याग के लिए प्रेरित करता है। परस्पर सहानुभूति की यह भावना समष्टि की रक्षा के लिए व्यक्तिगत शक्ति को न्यूनाधिक रूप से एकीभूत कर केंद्रस्थ करती है। यही विराट् है, जो चिति के प्रकाश से जाग्रत् होता है और हम कहते हैं कि राष्ट्र जाग उठा है। विराट् राष्ट्र का प्राण है तो चिति आत्मा है।

'चिति' के प्रकाश से जाग्रत् 'एक जन' की संगठित कार्यशक्ति 'विराट्' से संचालित जीवन मातृभूमि की आराधना में इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन सभी प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति करता हुआ विश्व में अजेय बनकर खड़ा होता है। यही राष्ट्र के संबंध में चिरंतन सत्य सिद्धांत है और इसी सत्य का प्रकटीकरण भारत में हिंदू राष्ट्र है।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

5

राष्ट्र : प्रकृति और विकृति

अपने राष्ट्र जीवन की प्रकृति, विकृति और संस्कृति पर विचार करने से पूर्व इन तीनों शब्दों के अर्थ समझना आवश्यक है। हम पहले प्रकृति का विचार करें। प्रकृति वह गुण है, जिसको लेकर कोई जीवमान वस्तु पैदा होती है। निर्जीव वस्तुओं की भी प्रकृति होती है। पर उसका विचार करना यहाँ अभीष्ट नहीं। हम लोग पूर्व जन्म में विश्वास रखते हैं। इस जन्म में हमें जो प्रकृति प्राप्त होती है, वह हमारे पूर्व जन्म से संचित कर्मों का परिणाम है। यह हमारी मूल प्रकृति होती है। इसमें परिवर्तन नहीं होता। बाहरी वातावरण तथा समाज की परिस्थितियाँ प्रकृति को प्रभावित अवश्य करती हैं, पर आमूल परिवर्तन नहीं कर सकतीं।

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र प्रकृति होती है। वह अपनी प्रकृति के अनुरूप विकास करके ही जीवन में उन्नति कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति में साहित्यिक प्रतिभा हो, तो वह एक सफल कवि या साहित्यकार हो सकता है, इंजीनियर या वैज्ञानिक नहीं। इसी प्रकार शिल्प अथवा विज्ञान में अभिरुचि रखनेवाला सफल साहित्यकार नहीं बनता। इसीलिए कहा भी जाता है कि कवि जन्मजात होते हैं, बनाए नहीं जाते।

जैसे प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न होती है, वैसे ही प्रत्येक राष्ट्र की प्रकृति भी भिन्न होती है। भारत की भी अपनी एक प्रकृति है। हमारे इतिहास का अध्ययन करने से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि हमारे यहाँ सम्राटों या लक्ष्मीपुत्रों की तुलना में ऋषि-महर्षियों को अधिक महत्त्व दिया गया। बड़े-बड़े राजा भी इन महर्षियों के सम्मुख नतमस्तक होते थे। हमारे राष्ट्र की मूल प्रकृति अध्यात्म प्रधान रही है। हम भौतिक समृद्धि के आकर्षक नारों की ओट में इसे बदल नहीं सकते। यदि हमने अपनी मूल प्रकृति की अवहेलना करने की चेष्टा की तो हमारे राष्ट्र जीवन में अनेक प्रकार की

विकृतियाँ उत्पन्न होंगी।

हमने भौतिकता का विचार नहीं किया, ऐसी बात नहीं है। हमारे यहाँ अतीत काल में अनन्य भौतिक समृद्धि थी। इसी समृद्धि से आकृष्ट होकर विदेशी आक्रमणकारी यहाँ आए। हमने भौतिकता को दुर्लक्ष्य नहीं किया, पर हमारी वृत्तियाँ धर्म, आध्यात्मिकता या परमात्मचिंतन में ही अधिक रमती रहीं। दुर्भाग्य से आज हमारा राष्ट्र जीवन अपनी मूल प्रकृति से हटता जा रहा है। हम एकांगी भौतिक प्रगति की दौड़ में अग्रसरत्व प्राप्त करने के लिए व्यग्र दिखाई पड़ते हैं। परिणामस्वरूप संकीर्ण प्रादेशिकता, जातीयता, भाषावाद आदि अनेक रूपों में हमारे राष्ट्र जीवन में विकृतियाँ आ रही हैं। हमारे राष्ट्र का इतिहास ऋषि-मुनियों की साधना का, तपश्चर्या का एवं त्यागमय जीवन का इतिहास है। विश्वविजय की कामना लेकर आनेवाले सिकंदर की पराजय[1] का इतिवृत्त हमारे पुराणों में कहीं नहीं मिलता। राजा जनक,[2] हरिश्चंद्र, शिवि[3] या युधिष्ठिर जैसे आदर्श राजाओं का ही वर्णन उपलब्ध है।

अपने राष्ट्र जीवन का विचार करने से पूर्व राष्ट्र शब्द पर कुछ विचार करना समीचीन होगा। राष्ट्र शब्द की शास्त्रीय व्याख्या में हम न जाएँ तो भी इतना तो मानना ही होगा कि राष्ट्र बनाने के लिए एक भूमि विशेष में रहनेवाले लोगों के हृदय में उसके प्रति अविचल श्रद्धा का भाव होना आवश्यक है। राष्ट्र केवल मात्र नदियों, पहाड़ों, मैदानों, कंकड़ों के ढेर से नहीं बनता। यह केवल भौतिक इकाई नहीं। इसके लिए देश में रहनेवाले लोगों के हृदयों में उसके प्रति असीम श्रद्धा की अनुभूति होना प्रथम आवश्यकता है। इसी श्रद्धा की भावना के कारण हम अपने देश को मातृभूमि कहते हैं।

मातृभूमि के प्रति श्रद्धा का कुछ आधार होता है। अनेक वर्षों तक एक देश में रहने

---

1. ग्रीक शासक सिकंदर (356 ई.पू.-323 ई.पू.), 20 वर्ष की उम्र में सम्राट् बनने के बाद विश्वविजय की आकांक्षा लिए सबसे पहले ग्रीक राज्यों, फिर एशिया माइनर (आधुनिक तुर्की) मिस्र, तज़ाकिस्तान को पराजित करते हुए भारतीय अभियान पर 326 ई.पू. में तक्षशिला पहुँचा। यहाँ झेलम के तट पर उसका सामना पुरू सम्राट् पौरस से हुआ। युद्ध में सिकंदर बुरी तरह घायल हो गया। सैनिकों का मनोबल बुरी तरह टूट गया और वह आगे मगध के नंद शासक की विशाल सेना का सामना करने को तैयार नहीं हुए। इन स्थितियों में हार मानकर सिकंदर वापस चला गया था।

2. भारतीय पौराणिक मान्यताओं के अनुसार जनक निमि के पुत्र तथा मिथिला नगरी जनकपुर के राजा थे। तत्कालीन समय में राजा जनक अपने अध्यात्म तथा तत्त्वज्ञान के लिए बहुत ही प्रसिद्ध थे। देवताओं ने राजा जनक के पूर्वजों के पास शिव-धनुष धरोहरस्वरूप सुरक्षित रखा था, जिसे सीता के स्वयंवर में राम ने भंग किया था।

3. पुरूवंशी नरेश शिवि, उशीनर देश (ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार मध्य देश में स्थित एक जनपद) के राजा थे। वे प्रजा-पालक, दीन वत्सल, न्यायप्रिय होने के साथ-साथ जीव-दया के लिए प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि एक बार देवताओं ने इनके बलिदान की परीक्षा ली, जिसमें राजा शिवि ने एक निर्दोष पक्षी को बचाने के लिए अपने शरीर के टुकड़े काटकर भक्षक को सौंप दिए थे।

के कारण एक साहचर्य एवं आत्मीयता के भाव का जन्म होता है। धीरे-धीरे राष्ट्र का इतिहास बनता है। कुछ बातें राष्ट्रीय गौरव की और कुछ लज्जा का कारण बनती हैं। गौरव की बातों का स्मरण कर हम गौरवान्वित होते हैं और लज्जा की बातों को याद कर लज्जित होते हैं। मोहम्मद गौरी या महमूद गज़नवी ने भारत पर आक्रमण किया, इस घटना का हम विचार करते हैं, तो हमारे मन में स्वभावत: एक आक्रोश उत्पन्न होता है। हमारी आत्मीयता पृथ्वीराज[4] तथा इस देश के अन्य देशभक्तों के प्रति होती हैं। यदि किसी की आत्मीयता अपने देश के प्रति न होकर परकीय आक्रमणकारियों के प्रति हो तो यह मानना होगा कि उस व्यक्ति में राष्ट्रीयता का भाव नहीं है। जब हम महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी या गुरुगोविंद सिंह का स्मरण करते हैं तो हमारा मन उनके प्रति आदर, श्रद्धा से झुक जाता है। इसके विपरीत जब हम औरंगज़ेब, अलाउद्दीन, क्लाइव या डलहौज़ी का नाम याद करते हैं, तो इनके प्रति एक विदेशी आक्रांता के प्रति जो भाव उत्पन्न होना चाहिए, वही भाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक भूमि विशेष में रहनेवाले लोगों से जिनके हृदयों में मातृभूमि के प्रति असंदिग्ध श्रद्धा का भाव हो, जिनके जीवनादर्शों में साम्य हो, जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टि हो, शत्रु-मित्र समान हों, ऐतिहासिक महापुरुष एक हों, एक राष्ट्र का निर्माण होता है।

हमारे राष्ट्र जीवन का प्रवाह हज़ारों वर्षों से चल रहा है। इसमें अनेक प्रकार की विविधता की धाराएँ आकर मिली हैं। जैसे गंगा में अनेक छोटे-मोटे नदी-नाले आकर मिलते हैं, पर वे मिलने के बाद गंगा के अखंड प्रवाह में आत्मसात् हो जाते हैं, वैसे ही हमारे राष्ट्र जीवन प्रवाह में भी शक-हूण आदि अनेक जातियाँ आकर मिली हैं, और एकरस हो चुकी हैं। यदि कोई जाति इस मूल जीवन प्रवाह से पृथक् रहने की चेष्टा करती है तो उससे विकृति का जन्म होगा, जो आंतरिक कलह का कारण बनेगा।

हमारा राष्ट्र जीवन एक विस्तृत भू-प्रदेश पर परिव्याप्त है। इसमें अनेकविध विविधताएँ हैं। यह विविधता स्वाभाविक है। इससे हमारे जीवन में सौंदर्य का भाव ही परिपुष्ट होता है। जैसे विविध प्रकार के फूलों के द्वारा भी एक सुंदर माला गूँथी जा सकती है, वैसे ही विविधताओं का एक विशिष्ट माध्यम के द्वारा समन्वय स्थापित किया जा सकता है। जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि ही वह समन्वय का माध्यम है। पर यह समन्वय समान प्रकृति की वस्तुओं में ही हो सकता है। विकृति के साथ यह समन्वय नहीं हो सकता। विविध प्रकार के अन्नों से मिलकर खिचड़ी बन सकती है, पर उसमें

---

4. पृथ्वीराज चौहान (शासनकाल 1178-1192) दिल्ली की राजगद्दी पर बैठनेवाले 'अंतिम भारतीय सम्राट्' थे। पृथ्वीराज चौहान और आक्रमणकारी मुहम्मद गौरी के बीच हुए युद्धों में प्रथम तराईन के युद्ध (1191) में पृथ्वीराज विजयी तथा द्वितीय युद्ध (1192) में गौरी विजयी हुआ था। कवि चंदरबरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने गौरी को 17 बार पराजित किया था।

कंकड़ मिलाने से विकृति उत्पन्न हो जाएगी। शरीर में फोड़ा हो जाने पर उसका ऑपरेशन करना पड़ता है, उसके साथ समझौता करने का अर्थ स्वयं को विकारयुक्त या अस्वस्थ बनाना होगा। राष्ट्र के जीवन में भी यही सिद्धांत लागू होता है। हमारी भाषाएँ भिन्न हो सकती हैं, उपासना पद्धति भिन्न हो सकती है, वेशभूषा का अंतर हो सकता है, खान-पान में भिन्नता हो सकती है, पर इन सब प्रकार की विविधताओं में भी समन्वय प्रस्थापित किया जा सकता है। यदि हमारे अंत:करण में मातृभूमि के प्रति अडिग श्रद्धा है, यदि हमारी हृदयतंत्री कुछ समान आदर्शों एवं जीवन मूल्यों से झंकृत होती है तो समन्वय प्रस्थापित करना कोई कठिन बात नहीं। यदि श्रद्धा का यह भाव नहीं है, सब भिन्नताएँ विघटन को ही जन्म देंगी।

समन्वय के भाव को परिपुष्ट बनाने के लिए सहिष्णुता का होना आवश्यक है। सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता है। इसी विशेषता के कारण यहाँ अनेक समुदाय चले। कोई शिव की उपासना करे या विष्णु की, शक्ति की आराधना करे या गणपति की, इससे कोई संघर्ष नहीं हुआ।

यूरोपीय देशों में जैसा रक्तिम संघर्ष धर्म के नाम पर हुआ, वैसा यहाँ नहीं हुआ। हम यह नहीं कहते कि इस पैगंबर और इस पुस्तक को मानने से तो बहिश्त मिलेगा और नहीं मानने से दोज़ख। यह मज़हबी असहिष्णुता भारत की प्रकृति नहीं। बलपूर्वक किसी का धर्म परिवर्तन करना हमारी परंपरा नहीं। हमारा दृष्टिकोण यही रहा कि सब लोग अपनी-अपनी उपासना का पालन करते हुए स्वभाव प्राप्त कर्तव्य आचरित करके सिद्धि को प्राप्त करें। हमने साधक की मन:स्थिति, योग्यता और परिस्थिति का विचार कर उसके लिए सिद्धि मार्ग का निश्चय किया। जिसमें ज्ञान की प्रखरता है, वह ज्ञान मार्ग का अवलंबन करके लक्ष्य सिद्धि करे। ज्ञान के समान पवित्र अन्य कुछ नहीं, ऐसा कहकर इस मार्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया। भावुक हृदयों के लिए भक्ति मार्ग का अनुसरण करना उचित बताया गया। भक्त तर्क से नहीं श्रद्धा से भगवान् को पा सकता है। जिसमें कर्म की प्रबलता हो, वह निष्काम भाव से कर्मयोगी बने। ज्ञानमार्गी एवं भक्तिमार्गी से भी कर्ममार्गी की विशिष्टता स्वीकार की गई। ज्ञान, भक्ति एवं कर्म के उचित समन्वय का आदर्श प्रस्थापित किया गया। ज्ञानरक्षित भक्ति ढोंग है, कर्मरहित ज्ञान व्यर्थ है, भक्तिरहित कर्म नीरस होता है और ज्ञानरहित कर्म अंधा होता है। इस प्रकार भक्ति समन्वित, ज्ञानयुक्त, निष्काम कर्म ही हमारा आदर्श है। भारतीय चिंतन का यह सार न केवल त्रिकालाबाधित है, वरन् सार्वलौकिक भी है। विश्व के समस्त मानव समुदाय को श्रेष्ठ लाभप्रद है। इसकी आराधना भारतवासियों की विशेषता है। सद्गुण-संपन्न और पूर्ण समर्पित विकसित जीवन का यह सार भारत में प्रकट हुआ।

कुछ लोग मानवता का विचार सबसे पहले करने की बात करते हैं। उनकी दृष्टि में

एक देश या राष्ट्र का विचार करना संकीर्णता है। पर यह दृष्टिकोण शुद्ध नहीं। देशभक्ति और मानवता की सेवा में कहीं कोई विरोध नहीं। मानवता की सेवा करने के लिए देशभक्ति प्रथम सोपान है। जिसे अपनी जननी और जन्मभूमि के प्रति ही प्रेम नहीं, वह मानवता की क्या सेवा करेगा? जो व्यक्ति नारी मात्र को माता के रूप में मानकर सबकी सेवा करने का प्रयत्न करे, वह अपनी माँ की सेवा को संकीर्णता कहे तो उसे क्या कहा जाए? सबकी सेवा करते हुए भी अपनी माँ तो अपनी माँ ही रहेगी। माता का जो स्वाभाविक स्नेह अपनी संतान के प्रति होगा, वैसा अन्य किसी स्त्री की संतान के प्रति नहीं हो सकता। जो व्यक्ति अपनी माँ को संकटापन्न अवस्था में देखकर भी दूसरों की माताओं की सेवा करता फिरे, वह चाहे कितने ही ऊँचे आदर्शवाद से अनुप्रेरित क्यों न हो, व्यावहारिकता के तो प्रतिकूल ही माना जाएगा। अपनी माँ चाहे कुरूप हो या सुंदर, इसका विचार नहीं किया जाता। यह अपनी माँ है, इसी नाते से वह वंदनीय है, आदरणीय है और अभिनंदनीय है। इसमें माँ की अथवा उसके किसी अंग की उपयोगिता का हिसाब लगाकर कोई विचार नहीं होता। यदि माँ के स्वाभिमान को चोट पहुँचती है तो उसका पुत्र माँ के किसी अंग की उपयोगिता का विचार कर उसके स्वाभिमान को चोट पहुँचाने के निमित्त को दूर नहीं करता। माँ के अंगों की उपयोगिता और अनुपयोगिता का विचार ही मातृभक्ति की भावना के प्रतिकूल है। हमारे प्रधानमंत्री का यह कथन कि चीन ने जिस भूमि पर अधिकार कर लिया है, वह बंजर है, जनशून्य है, वहाँ घास भी नहीं उगती, अत: उसके लिए संघर्ष नहीं किया जा सकता, मातृभक्ति की भावना के प्रतिकूल है। हमने भारत को माता के रूप में माना है। इसका कण-कण हमारे लिए पवित्र है। इसके कण-कण में पावित्र्य की शक्ति छिपी हुई है। स्वामी विवेकानंद जब विश्व भर में भारतीय धर्म, संस्कृति एवं दर्शन की विजय-वैजयंती फहराकर भारत में लौटे तो वे मद्रास में भूमि पर उतरते ही स्वदेश की रेत-मिट्टी में लोट-पोट हो गए। एक वेदांती के इस प्रकार भाव-विह्वल आचरण से सभी चकित हुए। बाद में उपस्थित जनता के आश्चर्य का शमन करने के लिए उन्होंने कहा— ''मैं काफ़ी समय से विदेशों में प्रवास पर था, इस अवधि में अनेक प्रकार के लोगों के संसर्ग में आया, अनेक देशों में घूमा, उससे संभव है मेरे शरीर में कुछ विकृति आई हो, मैं उन सब विकृतियों को दूर कर रहा हूँ।''

कितनी श्रद्धा थी उनके हृदय में भारत के प्रति। हम ज़रा इंग्लैंड का उदाहरण लें। वहाँ सूर्य के दर्शन भी वर्ष में 10-20 बार से अधिक नहीं होते। लोग सर्दी के कारण ठिठुरते रहते हैं। इतना अन्न भी उत्पन्न नहीं होता कि वे अपना पेट भर सकें। उन्हें अन्न के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है, फिर भी किसी अंग्रेज़ से पूछो, तुम्हें दुनिया में कौन सा देश सर्वाधिक प्रिय है, वह बिना रुके उत्तर देगा, ''इंग्लैंड मुझे सर्वाधिक प्रिय है।''

दुर्भाग्य से हमारे राष्ट्रीय जीवन में मातृभक्ति के अभाव के कारण अनेक विकृतियाँ आई हैं। पाकिस्तान का निर्माण उसी विकृति का गहरा उदाहरण है। मुसलमानों का यह दृष्टिकोण कि 'मुसलमानों के अलग राज्य की भूमि ही केवल पाक है और शेष नापाक', राष्ट्रभक्ति के गहरे अभाव का ही सूचक है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में इस विकृति को दूर नहीं किया गया। इसीलिए भारत माता का अंग काटकर पाकिस्तान बना दिया। भारत स्वतंत्र होने के बाद भी दुर्भाग्य से राष्ट्रभक्ति की शुद्ध भावना का जागरण नहीं किया गया। पृथक् नागालैंड का निर्माण[5] इसी का फल है। नागाओं के साथ शांतिपूर्ण वार्त्ता के प्रति समाधान व्यक्त करते हुए हमारे प्रधानमंत्री ने कहा था, "नागाओं को भारतीय संघ का सहभागी बना लिया गया है।" इस उक्ति में क्या यह भाव नहीं छिपा है कि इसके पहले नागा सहभागी नहीं थे। नागालैंड को संसद् की स्वीकृति मिली कि आसाम के पहाड़ी इलाक़ों में भिन्न-भिन्न पहाड़ी राज्यों की माँग ज़ोर पकड़ने लगी। चीन ने हज़ारों वर्गमील भूमि पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस तथ्य की ओर दुर्लक्ष्य कर देश के कुछ लोग बहुत समय तक यही निर्णय न कर पाए कि चीन ने आक्रमण किया है या नहीं। यह सब दुरवस्था सच्ची मातृभक्ति के अभाव के ही कारण है।

इन विकृतियों को दूर करने का उपाय हमारी संस्कृति के पास है। हमारी संस्कृति का आधार भोग नहीं अपितु त्याग रहा। त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। भगवान् राम ने लंका को जीतकर उसका राज्य विभीषण को दे दिया, उन्हें उस स्वर्णमयी लंका की तुलना में अपनी मातृभूमि अयोध्या ही अधिक पसंद आई, क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से ही बढ़कर होती है। छत्रपति शिवाजी ने जयसिंह को लिखा कि तुम मुग़लों का साथ छोड़ दो, फिर यह सारा राज्य तुम करो। मुझे राज्य की भूख नहीं है। भरत ने भगवान् राम की पादुकाओं को राज्य सिंहासन पर विराजमान कर स्वयं नंदीग्राम में तपस्वी के रूप में जीवन यापन करते हुए राज्य कार्य का संचालन किया। चाणक्य ने चंद्रगुप्त के लिए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, पर स्वयं निस्पृह कर्मयोगी की भाँति राज्य से निरासक्त रहे। आज हमारे राजनीतिक जीवन में जो विकृतियाँ दिखाई दे रही हैं, वे आसक्ति के कारण उत्पन्न हुई हैं। सेवा का स्थान अधिकार ने ले लिया है। जीवन के प्रति अतिशय अर्थवादी दृष्टिकोण के कारण भी अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। मानवीय भावनाओं एवं जीवन मूल्यों का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं रहा। व्यक्ति

5. भारत की आज़ादी के दौरान नागा प्रदेश आसाम के अंतर्गत था। नागा लोग अंगमी जपू फिजो के नेतृत्व में वर्षों से एक अलग राज्य की माँग कर रहे थे। 1957 में इसे केंद्रशासित प्रदेश बना दिया गया और आसाम के राज्यपाल द्वारा इसका प्रशासन देखा जाने लगा। यह प्रशासन नागरिकों की उम्मीदों पर खरा नहीं उतरा और यहाँ असंतोष पनपने लगा, जिसके बाद कई हिंसक आंदोलन हुए। भारत सरकार ने इन हिंसाओं के आगे झुकते हुए 1961 में इसका नाम बदलकर 'नगालैंड' रखा और इसे 'भारतीय संघ' के राज्य का दर्ज़ा दिया, भारत के 16वें राज्य के रूप में इसका विधिवत् उद्घाटन 1 दिसंबर, 1963 को हुआ था।

की प्रतिष्ठा का आधार उसका चरित्र नहीं, उसकी योग्यता नहीं, उसके गुण नहीं रहे। पैसा ही प्रतिष्ठा का आधार बन गया है। यह स्थिति विकृतिमूलक है। हमें यह मानकर चलना होगा कि अर्थ हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र है, साध्य नहीं। अस्तु, जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदलना होगा। दृष्टिकोण का यह परिवर्तन भारतीय संस्कृति के आदर्शों के आधार पर ही हो सकता है। इस गौरवमयी संस्कृति की पुन: प्रतिष्ठापना से ही राष्ट्र जीवन में चतुर्दिक् परिव्याप्त विकृतियों का शमन एवं निराकरण हो सकता है।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

6

परं वैभवंनेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्*

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रतिदिन शाखा के कार्यक्रम में जिस प्रार्थना को सामूहिक रीति से कहा जाता है, उसमें राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के लिए कटिबद्ध होने की बात है। 'परं वैभवंनेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्' की पंक्ति में इसका समावेश है। वर्तमान दुरवस्था दूर हो और राष्ट्र उन्नतिशील बने, यह आकांक्षा प्रत्येक देशभक्त नागरिक के हृदय में जाग्रत् होना स्वाभाविक है।

फिर भी कई लोग संघ के स्वयंसेवकों से पूछते हैं कि उन्नति की आपकी कल्पना किस प्रकार की है? सच तो यह है कि जो लोग राष्ट्रोन्नति के लिए सक्रिय हैं, उन्हें इस संबंध में विस्तृत रूप से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती। दुरवस्था देखकर जो सहज आंतरिक व्यथा होती है, वह भावना में प्रकट होती है और उस व्यथा को दूर करने के लिए जो प्रयत्न होते हैं, वे प्रत्यक्ष कार्य में प्रकट होते हैं। इसलिए कार्य करनेवालों के आचरण से ही परिस्थितियों का भावनापूर्ण सूक्ष्म विश्लेषण और उनका निराकरण करने के लिए निर्धारित कार्य एवं उद्देश्य, दोनों बातों का पता ठीक-ठीक लग जाता है। पूछनेवालों को अलग से उत्तर देने की तब न आवश्यकता ही रहती है और न ही सतत कार्य करनेवालों को इसका अवकाश ही रहता है। वे व्यर्थ के वाद-विवाद में उलझना नहीं चाहते। केवल कार्य पर ही उनकी दृष्टि केंद्रित रहती है। यह सत्य होते हुए भी राष्ट्रोत्थान के व्रती कार्यकर्ताओं को सदा जागरूक रहकर सोचते रहने की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। कई बार इतिहास में ऐसा हुआ है कि केवल भावावेश में आगे बढ़नेवाले अपने उद्देश्य से भटक गए। भावावेश में विवेक छोड़ देने से ग़लत मार्ग पर ही अग्रसर होना, भटकाव का कारण बनता है।

इसलिए असली और नक़ली प्रगति का अंतर सदैव आँखों के समक्ष रहना चाहिए।

* देखें परिशिष्ट VIII, पृष्ठ 245।

असलियत को पहचानने की शक्ति सदैव बनाए रखना ज़रूरी है। यह नहीं भूलना चाहिए कि कई बार काँच का टुकड़ा भी हीरा जैसा चमकता दिखाई देता है। इस समय यदि काँच और हीरा का सूक्ष्म भेद अवगत नहीं हुआ तो भूल हो सकती है। एक किस्सा है। एक राजा था। उसके पास एक सौदागर आया। उसने चमकते हुए दो टुकड़े राजा के सामने रखे और कहा कि इनमें एक हीरा है और दूसरा काँच का टुकड़ा। ठीक-ठीक पहचानने का काम राजा का है। वह एक टुकड़ा ले लें। चाहे असली ले या नक़ली, दाम हीरे के मूल्य के ही देने होंगे। अब राजा असमंजस में पड़ गया। उस राजा के यहाँ एक साधु था। साधु की आँखें नहीं थीं। वह अंधा था किंतु था बुद्धिमान। राजा ने उस बुद्धिमान साधु को यह कार्य सौंपा कि वह असली हीरा चुन ले। साधु ने थोड़ी देर में असली हीरा चुनकर राजा को दे दिया और काँच का टुकड़ा सौदागर के हाथ में वापस रख दिया। राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने साधु से पूछा कि आख़िर उसने किस प्रकार सच्चे हीरे का पता लगाया? इस कहानी में साधु ने हीरे की असलियत पहचानने का जो तरीक़ा बताया, मुझे नहीं मालूम वह ठीक है या ग़लत। किंतु कहानी ऐसी है कि साधु ने उन दोनों टुकड़ों को कुछ देर धूप में रखा। काँच का टुकड़ा हीरे की अपेक्षा जल्दी और अधिक ग़रम हो गया था। बस इसी तरीक़े से उसने असली हीरे को पहचान लिया। इस कहानी का तात्पर्य हमारे लिए केवल इतना ही है कि असली और नक़ली को पहचानने के अवसर जीवन में अनेक बार उपस्थित होते हैं। ऊपर से जो शीघ्र प्रगति का रास्ता दिखाई देता है, परिणाम में वह भूलभुलैया का खेल बनकर हमें कहीं का कहीं पहुँचा सकता है। जब हमें भटकाव का पता लगता है, तब तक सब गुड़ मट्टी हो जाता है। उद्देश्य पर पानी फिर जाता है! इसलिए सर्वांगीण उन्नति के लिए कटिबद्ध होना ही पर्याप्त नहीं है। लक्ष्य का ठीक-ठीक ज्ञान होना भी ज़रूरी है। उन्नति का स्वरूप और उसकी दिशा का सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान करते रहने की जो वैज्ञानिक पद्धति है, वह हमें विदित रहे तो सफलता निश्चित है। भूगोल शास्त्र में ग्लोब पर किसी शहर का ठीक-ठीक स्थान निर्धारित करने के लिए जिस प्रकार अक्षांश और देशांतर रेखाएँ निर्धारित कर दी जाती हैं, उसी प्रकार उन्नति के संबंध में भी उसका स्वरूप और दिशा दोनों पूर्व निर्धारित होना चाहिए।

इसलिए हम पाते हैं कि संघ की प्रार्थना में, जहाँ 'परं वैभवंनेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्' उद्देश्य घोषित करनेवाली पंक्ति है, वहाँ उसी के साथ कुछ और बातें भी कही गई हैं। 'राष्ट्र का परम वैभव' लक्ष्य अवश्य है किंतु किसी भी कोटि का वैभव परम वैभव नहीं कहला सकता। उधार माँगी हुई संपन्नता अथवा परिस्थितियों के दबाव में आकर उठाए गए क़दमों की प्रगति को ही यदि हम वैभवपूर्ण स्थिति समझ बैठें तो परिणाम दुःखदायी ही होंगे। भारतवर्ष के अति प्राचीन सनातन राष्ट्र जीवन की आधारभूत मान्यताओं को

ठुकराकर यदि हम बढ़ते चलें, ऐतिहासिक प्रमाणों और तर्कशुद्ध वैचारिक निष्कर्षों को तिलांजलि देकर हम कार्यरत रहे तो क्या निश्चित स्थान पर पहुँच सकेंगे? केवल यात्री ही बने और काशी न पहुँचकर लंदन, मॉस्को या वाशिंगटन पहुँच गए तो क्या हमें काशी के गंगास्नान का पुण्य मिल सकेगा? इसलिए जिस प्रकार यात्रा ज़रूरी है, उसी प्रकार प्रत्येक क़दम की दिशा निर्धारित करनेवाली शर्त भी अपरिहार्य ही है। इसलिए इस प्रार्थना की 'परं वैभवंनेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्' वाली पंक्ति तब तक पूर्ण नहीं है जब तक हम उसके पूर्व कही गई पंक्ति 'विजेत्री च न: संहता कार्यशक्तिर' और 'विद्यायास्य धर्मस्य संरक्षणम्' का अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझ लेते। केवल वैभव ही काम का नहीं है। इन पंक्तियों में कहा गया है कि 'धर्म का संरक्षण करते हुए हमारी यह संगठित कार्य शक्ति राष्ट्र को परम वैभव पर ले जाने में समर्थ हो।' यानी राष्ट्र को परम वैभव पर ले जाने के लिए दो शर्तें हमारे सामने पूर्ण करने के लिए हैं। तब ही वह वैभव राष्ट्र का सच्चा वैभव सिद्ध होगा। पहली बात तो यह है कि वह वैभव हमारे अपने राष्ट्रीय पुरुषार्थ से प्राप्त होना चाहिए। इसके लिए संपूर्ण राष्ट्र की संगठित कार्यशक्ति होना ज़रूरी है। यह शर्त पूरी होगी तो ही उस वैभव को हम भारत का सच्चा वैभव कह सकेंगे। साथ ही दूसरी बात कही गई है कि संगठित कार्यशक्ति के द्वारा वैभव प्राप्त करने की यह सफलता धर्म का संरक्षण करते हुए होना चाहिए। केवल संगठित शक्ति ही पर्याप्त नहीं है। चार चोर भी आपस में मज़बूत संगठन बना सकते हैं। किंतु वह संगठन न तो स्थायी होगा और न ही कल्याणकारी। इसलिए यह ज़रूरी है कि धर्म का संरक्षण करते हुए 'संहता' यानी हमारी संगठित कार्यशक्ति 'विजेत्री' यानी विजयशालिनी हो।

धर्म का आधार हो, हम सब राष्ट्रीय जनों की संगठित शक्ति हो और यह कार्यशक्ति विजयी हो तो हम राष्ट्र के परम वैभव को प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इन तीनों बातों को एक साथ ध्यान में रखना होगा। केवल किसी एक का विचार करने मात्र से काम नहीं चलेगा। ये तीनों एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं, परस्पर पूरक हैं, एक ही हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना ही नहीं की जा सकती। परम वैभव प्राप्त करना है तो सफल प्रयत्न ज़रूरी ही हैं। प्रयत्नों की सफलता संगठन पर ही निर्भर है। बिना धर्म के कोई स्थायी संगठन खड़ा ही नहीं हो सकता। उसी प्रकार धर्म तब ही प्रकट हो सकता है, जब संगठन रूपी कार्य दक्ष ढाँचा हो। संगठन भी उन्हीं लोगों का हो सकता है, जो स्वाभाविक रूप से एक हों और एक अंग-अंगी का घनिष्ठ संबंध होने के कारण समूह के नाते एक ही नाम से जाने जाते हों। जिस प्रकार शरीर और आत्मा का संबंध है। आत्मा ज़रूरी है अन्यथा केवल शरीर का ढाँचा किस काम का? तथापि शरीर का ढाँचा कम महत्त्व का है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। शरीर ही नहीं होगा तो आत्मा कहाँ प्रकट होगी? शरीर और आत्मा दोनों हों, फिर भी यदि स्मृति का नाश हुआ हो, स्वअस्तित्व का ज्ञान न हो,

व्यवहार जगत् में विभिन्न मानव समुदायों के साथ आनेवाले भले-बुरे संबंधों के बीच अपनी विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला नाम न हो तो भी सबकुछ व्यर्थ ही है। पागल अथवा अविकसित व्यक्ति हो, चाहे जिस नाम से पुकारिए, कोई अंतर नहीं पड़ता। इसलिए नाम का भी महत्त्व है।

इसी प्रकार परम वैभव के लिए तीनों बातों की आवश्यकता है। शरीर में आत्मा का जितना महत्त्व है, उतना ही संगठन यानी समाज में धर्म का स्थान है। धर्म के आधार पर ही समाज कार्य करता है। इसी कारण संगठित कार्य-शक्ति स्वाभाविक रूप से जो परिणाम देती है, वही प्रगति है। वही परम वैभव है। शरीर और आत्मा का मेल ठीक-ठीक बना रहे तो प्रगति स्वाभाविक ही है। शरीर वही काम करेगा, जो आत्मा के अनुकूल होंगे। तब कुछ भी अलग से बताना नहीं पड़ेगा। हर क़दम पर सफलता और उन्नति होती जाएगी। अड़चन नहीं होगी। किंतु अड़चन तब उपस्थित होगी, जब शरीर और आत्मा के बीच कोई अंतर आकर खड़ा हो जाएगा। शरीर आत्मा की अवहेलना करता हुआ कार्य करने लगे तो हाथ-पैर ज़रूर चलेंगे, किंतु उस आंतरिक संघर्ष में दोनों कमज़ोर पड़ जाएँगे। शरीर क्षीण और आत्मा मलिन होती जाएगी। ये क्रियाएँ अवनति की ओर ले जानेवाली क्रियाएँ होंगी। शरीर भटकेगा, ज़बान चटपटी चीज़ें पसंद करेगी और पेट उस बोझ को उठाने में असमर्थ, तब बारी-बारी से प्रत्येक अंग मनमानी करेगा। ऐसे ध्वस्त शरीर में आत्मा कितने दिन रह सकेगी? इन सब बातों का मेल बैठाकर ही सोचना ठीक है। इसी प्रकार सामाजिक अस्तित्व का बोध, उसे क्रियान्वित करने के लिए संगठित कार्यशक्ति और इन सबका आधार स्वरूप धर्म, तीनों का मेल ही परम वैभव प्राप्त करा सकता है।

समाज की स्थिति और विकास में जिस धर्म का अत्यधिक महत्त्व है, उसे भी भली-भाँति समझ लेना चाहिए। परम वैभव के लिए धर्म की अनिवार्यता का जो प्रतिपादन उपरोक्त पंक्तियों में हुआ है, उससे उसके स्वरूप का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो जाता है।

'धर्म' आजकल ऐसा शब्द है, जिसका प्रयोग खूब हो रहा है। पक्ष या विपक्ष में धर्म की चर्चा चलती रहती है। धर्म की इस खींच-तान में बहुधा यह देखा जाता है कि उसके अर्थ का अनर्थ ही चारों और फैला है।

जो बातें धर्म के अंतर्गत वास्तविक रूप से कभी आती ही नहीं, उन्हें ही धर्म के माथे चढ़कर लोग स्वयं को धर्मात्मा मान बैठते हैं। जैसे मंदिर, मसजिद, गिरजाघर में ज़ाना धर्म का एक रंग अवश्य है, किंतु कई बार धर्म की व्यापकता का विचार न करते हुए मान लिया जाता है कि जो व्यक्ति मंदिर, मसजिद में जाता है धर्मात्मा है। धर्म के नाम पर ऐसी कई चीज़ें चला दी गई हैं, जिनसे धर्म अनुपयोगी, हेय और त्याज्य ही माना जाने लगा है। स्वार्थी और धूर्त लोग जो दुनिया भर में हर सामाजिक कमज़ोरी का लाभ

उठाने से नहीं चूकते, ऐसी कमज़ोरियों को ढाँक रखने के लिए समाज में सदैव अज्ञान फैलते रहते हैं। इस कारण धर्म के नाम पर अत्यंत विकृत धारणाएँ प्रचलित हैं। जैसे कुछ लोग छुआछूत को ही धर्म समझ बैठे हैं। इस संबंध में मुझे एक घटना का स्मरण होता है। अपने सुपरिचित एक विख्यात वक़ील हैं। उनके पास एक मुक़दमा आया। फौज़दारी का मामला था। भयंकर डाका डालने का मामला था। जो व्यक्ति इस मामले में फँसा था, उसने वक़ील साहब के पास आकर प्रार्थना की कि वे उसके वक़ील बनें। वक़ील ने देखा कि पुराना पापी है, इसने कई बार डाके आदि डाले हैं, फिर भी इस मामले में निर्दोष है। उन्होंने उसका मुक़दमा लड़ा। मुक़दमा जीत गए। यह व्यक्ति अदालत से छोड़ दिया गया। छूटने के बाद वह व्यक्ति वक़ील के पास आभार प्रकट करने के लिए आया और पैर पकड़कर बोला, ''महाराज, आपकी कृपा से छूट गया। मैंने कई डाके डाले, चोरी भी की, लोगों को सताने के सब बुरे कर्म किए। किंतु महाराज जनेऊ की क़सम खाकर कहता हूँ कि मैंने कभी अपना धर्म नहीं छोड़ा।'' वक़ील ने आश्चर्य भरे शब्दों में पूछा, ''सो कैसे?'' वह बोला, ''महाराज इतनी उमर गुज़र गई, किंतु दूसरों का छुआ हुआ भोजन नहीं किया, अपना धर्म नहीं छोड़ा।'' यानी उस व्यक्ति की मान्यता में धर्म-पालन का मतलब है बिना छुआ हुआ भोजन करना। वैसे ही एक स्थान पर मैं गया तो वहाँ मुझे बताया गया, ''देखिए उपाध्यायजी, आप जो कुछ धर्म की कल्पना लोगों के सामने रखते हो, यहाँ तो धर्म का मतलब यही माना जाता है कि हरिजनों के कान में यदि वेदमंत्र पड़ जाए तो शीशा गलाकर कान में डाल देना चाहिए।'' मैंने कहा कि यह तो धर्म नहीं है। वे बोले, ''यहाँ तो यही समझा जाता है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म के नाम पर ऐसी कई चीज़ें चल गई हैं, जो वास्तव में धर्म नहीं हैं। किंतु ऐसी बातें चल पड़ी हैं और लोग उत्तेजनावश कहते भी हैं कि यही धर्म है। इसलिए जो इनसे पीड़ित होते हैं, वे चिल्लाते हैं कि बाबा धर्म से हमें बचाओ। जो लोग उनके प्रति द्रवित होते हैं, वे भी धर्म से दूर भागने में ही भला मानते हैं। इस नियति में धर्म समझना टेढ़ी खीर ही है; सचमुच टेढ़ी खीर। क्या है कि एक सूरदास थे। यानी भक्त सूरदास नहीं। जन्म से अंधे व्यक्ति को सूरदास कहकर ही बुलाया जाता है।

एक सज्जन ने उस सूरदास से पूछा, ''बाबा, खीर खाओगे?'' सूरदास ने इसके पहले कभी खीर नहीं चखी थी। इसलिए उसने पूछा, ''खीर? कैसी खीर?'' यह किस प्रकार की वस्तु है?''

खीर समझाने के लिए वार्त्ता चल पड़ी—''तुम्हें खीर नहीं मालूम?''

''नहीं।''

''अरे सूरदास, खीर सफ़ेद होती है।''

''सफ़ेद कैसी?''

"बगुले जैसी।"

"बगुला कैसा?"

उक्त सज्जन ने अपने हाथ को बगुले जैसा बनाकर उस सूरदास के हाथ के नीचे रखा और कहा, "बगुला ऐसा होता।"

सूरदास ने उस सज्जन के हाथ को भली प्रकार टटोलकर देखा और फिर कहा, "न भाई, यह खीर हम नहीं खाएँगे। यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है।"

इस प्रकार अच्छी स्वादिष्ट खीर भी उस अंधे व्यक्ति के लिए टेढ़ी खीर हो गई। उसी प्रकार आज धर्म को समझना भी कई लोगों के लिए बड़ी टेढ़ी खीर है। ठीक वैसे ही जैसे चारों ओर यदि घिसे हुए और खोटे सिक्के चलने लगे तो सच्चा रुपया खोजना कठिन हो जाता है।

एक स्थान पर मैं गया था। वहाँ 10 पैसे का सिक्का काफ़ी मात्रा में ख़राब चल गया था। मैंने रिक्शे वाले को 10 पैसे का सिक्का दिया तो वह बोला, "बाबूजी, यह नहीं चाहिए।" मैंने कहा, क्यों भाई, इसमें क्या ख़राबी है? तो वह बोला, "ख़राबी तो मुझे मालूम नहीं किंतु यह चलता नहीं है आजकल।" मैंने कहा, "ख़राब नहीं चलता होगा, खोटा नहीं चलेगा परंतु यह तो अच्छा है।" मैंने उसे यहाँ तक कहा कि इसे यदि तुम लेने से इनकार करोगे तो यह जुर्म होगा, तुम्हें लेना पड़ेगा। तो वह हाथ जोड़कर कहने लगा, "बाबूजी, हम क़ानून-वानून तो जानते नहीं, आप हमें चवन्नी दे दीजिए, हम आपको बाक़ी पैसे वापिस कर देंगे।" यानी खोटा सिक्का चल पड़ा। ऐसा सिद्धांत है कि ख़राब सिक्का अच्छे सिक्के की चलन रोक देता है। क्योंकि खोटा सिक्का ही सब लोग चलाने का प्रयत्न करते हैं। अधिक लोग ऐसा ही सोचते हैं कि यदि मैं बेवक़ूफ़ बना तो मैं दूसरों को भी वैसा ही मूर्ख बनाऊँ। मनुष्य के मन में सवाया बनने का जो भाव रहता है, इस कारण दूसरों को मूर्ख बनाने में ही शांति का अनुभव करता है। बस ऐसे ही खोटा चलता रहता है और अच्छे का चलन रुक जाता है। ठीक यही बात शायद धर्म के संबंध में हो गई है। धर्म के संबंध में विकृतियों के चलन की ही भरमार है। इस स्थिति में लोग कहते हैं कि ऐसा धर्म नहीं चाहिए। समूचे धर्म को ही लोग तिलांजलि दे बैठते हैं। धर्म की विकृत अवस्था से घबराकर सच्चे धर्म को भी छोड़ बैठने की भयंकर बातें होने लगती हैं।

किंतु इस स्थिति में से बात बनती नहीं, बिगड़ती ही जाती है। इससे काम भी नहीं चलता। आख़िर कितने धर्म से इनकार किया जाएगा। कुछ-न-कुछ करना पड़ता ही है। मान लीजिए, कहीं हैज़ा फैलने की बात हो गई और किसी ने यह निर्णय कर लिया कि अब वह कुछ खाएगा-पिएगा ही नहीं। तो यह बात कितनी देर चलेगी? मनुष्य ज़िंदा कैसे रहेगा? उसे विवेकपूर्ण ठीक और ख़राब का भेद समझकर ही व्यवहार करना

उत्तम है। इसी प्रकार हो सकता है कि लोगों ने धर्म को विकृत किया होगा। दुरुपयोग हुआ होगा। इस कारण कुछ लोग ऐसा मानने भी लगे होंगे कि धर्म बड़ी ख़तरनाक चीज़ है। तो भी धर्म के सत्य स्वरूप को पहचानकर प्रस्थापित करना ही होगा। यह नहीं हो सकता कि धर्म को ही तिलांजलि दे दी जाए। खाट पर किसी की मृत्यु होती है, केवल इसीलिए कोई खाट पर सोना बंद नहीं कर देता। सड़क पर दुर्घटना हो गई, इसलिए लोग सड़क पर चलना बंद नहीं करते। बुद्धिमानी इसी में है कि ख़राबी, विकृति, अहितकारी बातों को दूर कर योग्य वस्तु को ग्रहण करें।

धर्म के संबंध में जो विकृति आज चारों और दिखाई पड़ती है, उसका अन्य कारणों के साथ एक बड़ा कारण विदेशी शिक्षा भी है। अंग्रेज़ी के शब्द 'रिलीजन' ने धर्म संबंधी शुद्ध अर्थ को ख़राब करने में बहुत सहायता की है। अंग्रेज़ जब भारत में आए तो उन्होंने भारत में धर्म शब्द सुना। धर्म जैसा व्यापक शब्द उनके पास नहीं था। उन्होंने धर्म का अनुवाद कर दिया 'रिलीजन।' अनुवाद के कारण ऐसा अर्थ का अनर्थ कई भारतीय शब्दों के साथ हुआ है। जैसे अंग्रेज़ी में सिस्टर-इन-ला शब्द है। अंग्रेज़ी में चाहे साली हो या भाभी, एक ही शब्द प्रयोग है। उसी प्रकार दादी हो या नानी, दोनों को ग्रैंड-मदर ही कहा जाता है। अब हिंदी और अंग्रेज़ी के इन शब्दों के अर्थ जो भारतीय प्रकृति, सभ्यता, परंपरा के अनुकूल नहीं पड़ते, फिर भी अनुवाद में ठूँस दिए गए हैं। धर्म का भी यही हाल हुआ। हिंदू धर्म एक व्यापक शब्द है, जिसमें कई रिलीजन सम्मिलित होते हैं। रिलीजन को हमारे यहाँ उपासना-पद्धति कहा गया है। इस प्रकार तो यहाँ अनेक उपासना-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिख, लिंगायत, आदि कितनी ही प्रकार की भगवान् की उपासना पद्धतियाँ हैं। अनेक मत, अनेक संप्रदाय प्रार्थनाएँ हैं फिर भी धर्म एक है। धर्म वही है, जो सबके लिए लाभकर हो, मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता हो। धर्म की व्याख्या की गई है, "धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।" धारणा से धर्म का संबंध है। यानी जिस चीज़ के कारण, जिस शक्ति के कारण, जिस भाव, जिस व्यवस्था, जिन नियमों के कारण धारणा होती हो, वही धर्म है। मनुष्य की धारणा जिससे होती हो, वह मनुष्य-धर्म, शरीर की धारणा जिससे होती हो, वह शरीर-धर्म, इसी प्रकार जनता की, प्रजा की और इससे आगे बढ़कर जड़-चेतन-युक्त संपूर्ण सृष्टि की धारणा के भी निश्चित नियम हैं। धर्म ही सब की धारणा है। धर्म हट जाए तो कोई वस्तु नहीं टिकेगी, नष्ट हो जाएगी। इसीलिए हमारे यहाँ धर्म का प्रतीक बैल माना गया है। धर्म के चार चरण बताए गए हैं, जिस प्रकार बैल के लिए आधार उसके चारों पैर हैं। यदि उसके पैर टूट जाएँ तो बैल खड़ा नहीं रह सकता। ठीक उसी प्रकार धर्म के चार चरणों पर ही सबकुछ टिका हुआ है। हम अपना ही उदाहरण लें। हमारा जीवन शरीर पर निर्भर है। यदि शरीर ठीक न हो तो कुछ भी

कार्य नहीं हो सकता। किंतु शरीर भोजन पर टिका हुआ है। भोजन करना शरीर-धर्म का पालन करना है। फिर भोजन वही करना होगा, जो शरीर को टिका सके। इसलिए शरीर की अलग-अलग स्थितियों में अलग-अलग नियम लागू होंगे। जो भोजन स्वस्थ आदमी के लिए है, वही यदि किसी बीमार व्यक्ति को दे दिया जाए तो घोर अधर्म हो जाएगा। इसलिए हर परिस्थिति के लिए आचार-धर्म है। कहते हैं कि मोर कंकड़ खाता है, किंतु मनुष्य यदि कंकड़ खाएगा तो काम नहीं चलेगा। मनुष्य में भी जो भोजन छोटे बच्चे के लिए ठीक है, वही बड़ी आयु के नौजवान के लिए नहीं है। कोई यदि कहे कि भोजन के संबंध में सबके लिए एक नियम बना दो तो यह असंभव बात है। इसलिए भिन्न वस्तुओं के लिए एक जैसे नियम नहीं हो सकते। फिर मनुष्य के लिए केवल शरीर की ही बात नहीं है। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मन भी स्वस्थ चाहिए। उसके बाद बुद्धि भी है, जो आवश्यक है। शरीर और मन स्वस्थ हो, किंतु बुद्धि गड़बड़ हो, काम न करे तो व्यक्ति पागल माना जाएगा। पागल व्यक्ति कौन सा कार्य कर सकता है? पागल न भी हो, यदि भ्रमित बुद्धि हो तो भी काम नहीं चल सकता। मृग के समान मरीचिका के पीछे दौड़ता रहे तो कुछ भी हाथ नहीं आएगा। इसलिए शरीर और मन के साथ बुद्धि भी ठीक चाहिए। बुद्धि के ऊपर उठकर हमारा 'अहं' भी है, जो संतुष्ट होना चाहता है। और सबसे अंत में एक और तत्त्व है, जिसे आत्मतत्त्व कहा गया है। वह भी ठीक होना चाहिए। इस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि आत्मा से युक्त मनुष्य की जो धारणा कर सके, वही धर्म है। धर्म धारणा करता है और सामंजस्य प्रस्थापित करता है, इसलिए नियम तैयार होते हैं। ये नियम देश, काल परिस्थिति और वस्तु के हिसाब से अलग-अलग होते हैं। कुछ नियम ऐसे हैं, जो सामान्य रीति से सब पर लागू होते हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियानिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। (मनुस्मृति)

धर्म के धृति, क्षमा, दम, चोरी न करना, शुद्धता, इंद्रियनिग्रहः, धीः, विद्या, सत्य और अक्रोध—दस लक्षण बताए गए हैं। इन नियमों को जानने के लिए स्मृति, शास्त्र, श्रुति हैं। इनकी रचना मानसिक और सामाजिक शास्त्र के ज्ञाता तत्त्वदर्शी लोगों द्वारा होती रही है। धर्म की उत्पत्ति इसीलिए श्रुति से मानी गई है। श्रुति यानी वेद। वेद किसी एक मनुष्य के किसी विशेष समय में बनाए हुए नहीं हैं। वे भिन्न-भिन्न समय में पृथक्-पृथक् ऋषियों के समाधिजन्य ज्ञान के संग्रह हैं। जब श्रुति बहुत बढ़ गई और उसमें अनेक शास्त्र और अनंत विद्याओं का संकुल हो गया तो श्रुति का समष्टिगत प्रचार होना असंभव हो गया। अतः उसमें से भिन्न-भिन्न विषयों के पृथक्-पृथक् शास्त्र निकाले गए। सबसे अधिक और पहली आवश्यकता हुई धर्म शास्त्र की अर्थात् मनुष्य के प्रत्यार्थी भावों की साम्य-धारणा करनेवाले शास्त्र की। अतः भगवान् मनु की आज्ञानुसार

श्रुति-सागर का मंथन होना प्रारंभ हुआ। उससे प्रथम रत्न जो प्राप्त हुआ, वह मानव धर्म-शास्त्र था। वह शास्त्र सूत्रबद्ध किया गया। सब इसको कंठस्थ करने लगे, ताकि उनको इस शास्त्र की स्मृति सदा बनी रहे। अतएव यह शास्त्र मनुस्मृति के नाम से कहा जाने लगा। मनुस्मृति में अनेक धर्मों की मीमांसा की गई। तत्पश्चात् मरीचि आदि अनेक ऋषियों ने मानव धर्म शास्त्र में से उपदेश किए हुए एक-एक धर्म को लेकर अलग-अलग स्मृतियाँ रचीं। किसी ने जाति धर्म पर, किसी ने दैशिक धर्म पर, किसी ने वर्णाश्रम धर्म पर, किसी ने व्यवस्था धर्म पर, किसी ने आचार धर्म पर। ये सब स्मृतियाँ सूत्रबद्ध थीं। कालांतर में इन सब स्मृतियों का लोप हो गया तो पंडितों ने स्मृति परंपरा से प्राप्त हुई उन पूर्व स्मृतियों की छाया लेकर और कुछ सामयिक बातों का समावेश कर पूर्व स्मृतियों के नाम से श्लोकबद्ध स्मृतियों की रचना की। पीछे बनी हुई स्मृतियों में मनुस्मृति का सबसे अधिक गौरव है। इस प्रकार धर्म हमारे यहाँ एक अति व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है, जिसका कार्य धारण करना और परस्पर सामंजस्य स्थापित करना है।

यही वह व्यापक 'धर्म' है, जो भारत की संपूर्ण छोटी-बड़ी व्यवस्थाओं के आधार पर दृष्टिगत होता है। धारणा करने का नाम धर्म होने के कारण ही इसकी व्यापकता अनंतर है। यह संपूर्ण मानव समाज का ही नहीं, चराचर सृष्टि का आधार है। इसीलिए भारत का धर्म यानी 'हिंदू-धर्म' सच्चे अर्थ में मानव-धर्म है। इसी के द्वारा विश्व के समस्त मानवों का कल्याण हो सकता है। स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, श्री रवींद्रनाथ ठाकुर आदि अर्वाचीन महर्षियों ने विश्व के विभिन्न देशों में जाकर यही संदेश दिया और विश्व ने श्रद्धावनत होकर इस तथ्य को स्वीकार किया कि हिंदू धर्म ही वास्तव में मानव धर्म है। इसी के आधार पर विश्व की एकता अथवा मानव-कल्याण हो सकता है।

धर्म की इस धारणा शक्ति को पुष्ट और व्यवहार्य बनाने के लिए भारत में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र आदि से संबद्ध विभिन्न स्तरों पर व्यवस्थाएँ भी की गईं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक सभी क्षेत्रों का समन्वित विचार सर्वांगीण प्रगति का रास्ता खोजा गया। व्यक्ति जीवन के लिए चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास तथा चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की रचना हुई। धर्म इन चारों पैरों पर सुस्थिर किया गया। इन चार पैरों में कोई छोटा, बड़ा, ऊँचा-नीचा नहीं है। धर्म चारों पर समान रूप से निर्भर बताया गया। इनके नियम निर्धारित किए गए। इन नियमों को देश, काल, परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनीय मानकर नूतन अभिव्यक्ति और समयानुकूल व्यवस्थाओं का मार्ग प्रशस्त किया गया। इसलिए यह सनातन हुआ। धर्म के कारण संबंधी शाश्वत सिद्धांत के आधार पर प्रत्येक वस्तु तथा क्रिया का हित-अहित विचार होने के कारण धर्म की सीमाएँ इतनी विस्तारपूर्वक रखी गई हैं कि उनका समग्र लेखा-जोखा करना ही असंभव है। इसलिए कहा गया कि

'धर्मस्य तत्त्वंनिहितं गुहाय्य' धर्मतत्त्व बड़ा गूढ़ है। सारांश में कहा गया, जो अपनी आत्मा के लिए सुलभ सूत्र भी बताया गया कि 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।' किंतु हर क्षण में हर व्यक्ति के लिए ठीक-ठीक धर्म का निश्चय कर पाना भी तो कठिन है। इसलिए सरल मार्ग भी प्रस्तुत हुआ कि 'महाजनो येन गतः स पन्थाः।' यदि उलझन में हो तो वैसा आचरण करो, जैसा श्रेष्ठ जन करते रहे हैं, आदि-आदि कितने ही स्तरों पर धर्म के इस स्वरूप का आकलन हुआ।

इस सर्वव्यापी, विशाल, व्यापक और संपूर्ण रचना के मूलाधार धर्म का संरक्षण करते हुए ही परम वैभव की ओर बढ़ा जा सकता है। इसके संरक्षण के लिए महान् शक्ति की आवश्यकता है। इसीलिए राष्ट्र की संगठित कार्यशक्ति की भी कामना की गई है। यही वह एकमेव मार्ग है, जिससे राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति संभव है।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

7

संगठन का आधार : राष्ट्रवाद

मिलकर रहने का नाम संगठन है। 'संगठन' का अर्थ है—पारस्परिक सहकार्य का सूत्र स्थापित होना। संगठन की स्वाभाविक आवश्यकता का कारण भी यही है कि कोई व्यक्ति अकेला कुछ नहीं कर सकता। भौतिक हो चाहे आत्मिक, जीवन का सुख प्राप्त करना है तो अनेक लोगों का सहकार्य ज़रूरी है। कहने को हम भले ही कह दें कि अमुक कार्य मैंने अकेले ही किया है किंतु यदि थोड़ा विचार करें तो पता चलेगा कि हमारी प्रत्येक कृति और उस कृति के कारण हुई उपलब्धि के पीछे समाज के अनेक बंधुओं के हाथ हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को संगठित समाज जीवन का अंग बनकर ही रहना चाहिए। यही स्वाभाविक है। इसी में सुख, समृद्धि और प्रगति निहित है। संगठन और शक्ति से विश्व में सबकुछ प्राप्त किया जा सकता है। संगठन की ही यह महिमा है कि इसके सहारे सुख के समय सुख में कई गुणा वृद्धि हो जाती है और दुःख आ पड़ने पर दुःख का आघात भी बँटकर कम हो जाता है।

किंतु कोई भी भीड़ संगठन नहीं होती। अकसर इस संबंध में लोग धोखा खा जाते हैं। भीड़ को ही संगठन समझ बैठते हैं। भीड़ और संगठन में अंतर यह है कि भीड़ में प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको अकेला समझता, अनुभव करता है। अनेक व्यक्ति होते हुए भी प्रत्येक अलग-अलग हैं। सबकी कृतियाँ अलग हैं, सबके लक्ष्य और हित भी अलग हैं। उनमें से किसी को भी यह पता नहीं कि वहाँ कब क्या हो गुज़रेगा? हो-हल्ला में कोई किसी की नहीं सुनता। सभी आपस में अजनबी हैं। हलचल तो है, किंतु अनुभूति के स्तर पर प्रत्येक अकेला है। संगठन में ऐसा नहीं रहता। अनेक होने के बाद भी संगठन में सबका मिलकर अस्तित्व है। लक्ष्य, दिशा और विचार एक हैं। इस कारण सबके हित समान हैं। उनकी क्रिया में सौगुनी, हज़ारगुनी, लाखगुनी शक्ति प्रकट होती

है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी इकाई होते हुए भी वह अब संपूर्ण का अभिन्न घटक है। इसलिए सफलता, आनंद, उत्साह है।

संगठन की इस महिमा को समझकर ही अनेक प्रकार के संगठन बनाने का यत्न मानव करता है। संगठन बनाने के लिए विभिन्न आधार खोजे जाते हैं। उद्देश्य और आवश्यकता ही संगठन निर्माण का आधार बनते हैं। उद्देश्य और उसकी आवश्यकता का जैसा स्वरूप होगा, वैसा ही संगठन का व्याप और उसकी काल मर्यादा तय होती है। उद्देश्य तात्कालिक और क्षणिक होगा तो आवश्यकता भी वैसी ही होगी, संगठन का रूप भी वैसा ही बनेगा। उतने ही दिन टिकेगा, फिर बिखर जाएगा। खेल के मैदान में भी दो दल अपना-अपना संगठन बनाकर खड़े होते हैं। हार-जीत की होड़ लगती है। किंतु यह संगठन खेल समाप्त होने तक ही रहेगा। ठीक उसी प्रकार से हम देखते हैं कि अनेक समस्याओं को लेकर संगठन बनते हैं। परिस्थितियाँ उनका उद्देश्य निर्धारित करती हैं। ढाँचा खड़ा होता है। किंतु इस बीच यदि परिस्थिति बदल गई तो संगठन में गतिरोध उपस्थित हो जाता है। विभिन्न स्तरों पर प्रश्न खड़े हो जाते हैं कि संगठन का मूल स्वरूप ही हिल उठा। अध्यापक एक संगठन बनाते हैं। किंतु कुछ समय बाद उन्हीं अध्यापकों में से एक प्रधानाध्यापक बन जाता है तो लगता है कि उसके हित अब अलग हो गए। पचड़ा खड़ा हो गया। विवाद शुरू गया। संगठन की आवश्यकता पर ही शंका प्रकट की जाने लगी। इसी प्रकार अमीर, ग़रीब का मामला है। जो साधनहीन था, वह यदि साधन-संपन्न हो गया, अमीर बन गया तो उसे संगठन में से निकाल बाहर करने का प्रश्न उपस्थित हुआ। फिर सामाजिक जीवन में हम एक विशाल घेरे में खड़े रहते हैं। घेरे में हम किसी के दाहिनी ओर हैं तो किसी के बाईं ओर भी हैं। जाड़े में आज हमारे पास पहनने को जूता नहीं, किंतु बाद में हम अधिक संपन्न हो गए, इस प्रकार ऐसे संगठनों में स्तर की विभाजक रेखा खींचना भी व्यावहारिक नहीं होता। लेकिन इस प्रकार अमीरों के विरुद्ध ग़रीबों के संगठन बनते हैं। जातियों के अपने संगठन बनते हैं। डॉक्टर, वक़ील, व्यापारी, दुकानदार, ठेलेवाले, फुटपाथ वाले अनेक प्रकार के पेशे के अनुसार भी संगठन बनते हैं। आदतों की समानता भी संगठन बनाने का आधार प्रदान करती है। गीत गानेवाले, नृत्य करनेवाले, कवि ही नहीं, भ्रमण यात्री भी संगठन बना लेते हैं। धार्मिक विश्वास और उपासना के आधार पर संगठन खड़ा करने का अवसर मिल जाता है। राजनीतिक आकांक्षाएँ, भाषा, खान-पान, रुचि कितने ही उद्देश्यों से संगठन बनते हैं। व्यक्ति अपने जीवन में अनेक स्तरों पर व्यवहार करता है, इसलिए वह एक साथ कई संगठनों में भी बना रहता है। जीवन की जो आवश्यकता उस पर अधिक दबाव डालती हैं, वह उसी प्रकार के संगठन को वरीयता देता है। व्यक्ति की यह वरीयता विभिन्न प्रश्नों के कम-अधिक दबाव से सदा बदलती रहती है। इस प्रकार

संगठन बनते हैं, उभरते हैं, क्षीण पड़ते हैं, नष्ट होते हैं और फिर नए बनते हैं।

इन सब प्रकार के संगठनों की अपनी-अपनी उपयोगिता है। किंतु फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि परिस्थितियों पर निर्भर संगठन स्थायी स्वरूप के नहीं हो सकते। आवश्यकता की तराज़ू पर वे नीचे-ऊँचे होते रहते हैं। बाह्य कारणों पर, बाह्य प्रतिक्रियाओं पर वे निर्भर रहते हैं। उनका ढाँचा स्वयंपूर्ण नहीं रहता। कई तो इसलिए भी व्यर्थ घिसटते रहते हैं, क्योंकि उनका लक्ष्य ही व्यावहारिक नहीं होता। मानो कई लोग मिलकर क्षितिज को छूनेवालों का संगठन बनाएँ तो क्या कभी क्षितिज उनके हाथ में आ सकेगा। जैसे-जैसे वे आगे बढ़ेंगे, क्षितिज भी हटता जाएगा। मानव मात्र को संगठित करने की घोषणा करनेवाले जो संगठन हैं, वे प्रायः इस अव्यावहारिक कोटि में आ खड़े होते हैं। इस संबंध में विश्व की जो सबसे अधिक चर्चित संयुक्त राष्ट्र संघ संस्था है, सबसे अधिक राष्ट्रों के पारस्परिक संघर्ष का अखाड़ा बनकर उपस्थित हुई है। कारण, यहाँ विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सत्ताएँ जम बैठी हैं। मानव के नाम पर ही राष्ट्रों के संघर्ष चले हैं। राष्ट्र को ही आधार मानकर संपूर्ण विश्व का व्यवहार हो रहा है। नाम विश्व संगठन का और तैयार होते हैं राष्ट्रों के झगड़े।

प्रश्न उपस्थित होता है कि एक और संपूर्ण विश्व के संगठन की इस अव्यावहारिकता को देखते हुए और दूसरी ओर बाह्य कारणों एवं परिस्थितियों पर निर्भर अल्पजीवी संगठनों को देखते हुए क्या किसी ठोस, स्थायी व्यावहारिक दृष्टि से कल्याणकारी संगठन का कोई मार्ग उपलब्ध नहीं है?

मार्ग एक ही शेष है। आज ऐसा संगठन राष्ट्र के आधार पर ही व्यावहारिक और स्थायी हो सकता है। आवश्यकता की दृष्टि से राष्ट्र के आधार पर होनेवाला संगठन सदा सर्वदा के लिए ज़रूरी ही माना जाएगा। स्थायित्व की दृष्टि से संगठन में विभिन्न घटकों की परस्पर पूरकता का जो स्थान है, वह राष्ट्र में सहज प्राप्त है। राष्ट्र का बहुविध जीवन होने के कारण यह संगठन एकांगी भी नहीं होगा। आत्मनिर्भरता किसी भी संगठन की जीवन-शक्ति होती है और राष्ट्र इस दृष्टि से सदा सर्वदा कालजयी ही कहा जाएगा। जहाँ तक व्यावहारिक रूप से सक्षम होने का प्रश्न है, आज के विश्व में यही एकमेव और सब प्रकार के आदान-प्रदान में मान्य इकाई है। इसलिए राष्ट्र को आधार मानकर संगठन का सच्चा स्वरूप उभरता है।

संगठन के संबंध में इस निर्णय पर पहुँचते समय हमें एक और विचार भी करना चाहिए। संगठन के कृत्रिम और स्वाभाविक भेद का अंतर समझ लेना ज़रूरी है। पचास चीज़ों को एकत्र कर स्वार्थ के आधार पर जो संगठन बनाया जाता है, उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। वास्तव में इसे संगठन न कहकर एकत्रीकरण कहना ठीक होगा। अंग्रेज़ी में इसे 'एसोसिएशन' कहते हैं। यह कृत्रिम संगठन है एवं तभी तक टिका

है, जब तक स्वार्थ हल होते हैं। किंतु जहाँ स्वाभाविक संगठन होगा, वहाँ स्वार्थ नहीं रहेगा। परस्पर अनुकूलता का भाव ऐसे स्वाभाविक में ऊपर से नहीं थोपा जाता, स्वाभाविक ही निर्माण होता है। अर्थात् जो कृत्रिम नहीं बनाया गया, स्वाभाविक ही प्रकट हुआ है, वही संगठन है। राष्ट्र के संबंध में हम विचार करें तो हम पाते हैं कि राष्ट्र भी एक स्वाभाविक इकाई है। जीवमान संज्ञा है। इसीलिए उसमें चैतन्य है। राष्ट्र का संगठन किन्हीं स्वार्थों की पूर्ति के लिए नहीं होता। मनुष्य शरीर में जिस प्रकार प्रत्येक अवयव स्वाभाविक ही क्रियाशील है। इसके लिए उन्हें प्रलोभन या शाबासी नहीं देनी पड़ती। उसी प्रकार राष्ट्र के घटक भी राष्ट्र की सेवा के लिए परस्पर अनुकूल व्यवहार करते हुए इसके संगठन को बनाए रखते हैं। एक राष्ट्र-भाव की विस्मृति के कारण घटक अंग शिथिल पड़ते हैं और यदि पूरी तरह निष्क्रिय हो गए तो संपूर्ण राष्ट्र के विनाश का कारण भी बनते हैं। किंतु यदि इन घटकों में राष्ट्र-भाव का जागरण हो जाए तो वे पुनः स्वाभाविक क्रिया में संलग्न हो उठते हैं।

अत: हमें कालजयी, स्थायी, सक्षम, आत्मनिर्भर, व्यावहारिक और स्वाभाविक संगठन के लिए राष्ट्र को ही आधार मानना होगा। राष्ट्र का संगठन दृढ हुआ तो सामर्थ्य निर्माण होगा और विभिन्न अंग पुष्ट हो सकेंगे। कश्मीर से कन्याकुमारी तक प्रत्येक व्यक्ति के अंत:करण में भारत के अनादि, अनंत एवं अति प्राचीन राष्ट्र जीवन को जाग्रत् करना ही मूलगामी कार्य है। भारत का राष्ट्र जीवन हिंदू जीवन है, इस सत्य को ध्यान में रखकर ही भारत में राष्ट्रीय संगठन की आराधना करनी होगी।

अब इस संबंध में कुछ लोग ऐसा प्रश्न कर सकते हैं कि राष्ट्र का संगठन मानव समाज की दृष्टि से छोटा है, इसलिए संकुचित है। यह बात सैद्धांतिक दृष्टि से ग़लत है। क्योंकि कोई वस्तु छोटी होने के कारण ही संकुचित नहीं हो जाती। शरीर में मस्तिष्क अथवा हृदय संपूर्ण शरीर की तुलना में छोटे आकार का होता है, क्या इसीलिए उसे संकुचित करना योग्य है? सच तो यह है कि सभी अंग एक-दूसरे के पूरक हैं। वास्तविकता यही है कि राष्ट्र और विश्व भी एक-दूसरे के पोषक हैं।

फिर कुछ लोगों का यह भी कहना है कि राष्ट्र मानवता का विरोधी है। इसका कारण बताया जाता है कि विश्व में ऐसे कितने ही राष्ट्र हैं, जिन्होंने मानव का अहित किया है। किंतु क्या किसी वस्तु के दुरुपयोग से ही वस्तु ख़राब हो जाती है? आग से मकान जल गए तो क्या यह बुद्धिमानी होगी कि आग का उपयोग करना ही छोड़ दिया जाए। ऐसा यदि हम करते चलेंगे तो कितनी चीज़ें छोड़ते जाएँगे? यह दृष्टिकोण ठीक नहीं कहा जा सकता। हमें विवेक से काम लेना होगा।

यह सही है कि विश्व में कुछ राष्ट्र ऐसे हैं, जिन्होंने राष्ट्रीयता के नाम पर मानवता के लिए संकट पैदा किया। इन राष्ट्रों का इतिहास यदि हम बारीक़ी से देखें तो हमें पता

चलेगा कि इसके लिए राष्ट्रीयता का विचार दोषी नहीं है। वहाँ का संपूर्ण जीवन-चिंतन ही दोषी है। मानव संबंधी पृष्ठभूमि में विचार करने की जो स्वस्थ दिशा है, वह वहाँ नहीं रही। वहाँ जीवन का विकास ही ग़लत ढंग से हुआ। पश्चिम के जीवन में संघर्ष को ही विकास माना गया। पश्चिम ने मान लिया कि मानव तथा अन्य प्राणियों का विकास परस्पर संघर्ष में से हुआ है। डार्विन के विकासवाद[1] में इस प्रकार के संघर्ष का भरपूर उल्लेख मिलता है। कहा गया है कि इस संघर्ष में जो दूसरे का विनाश कर ले जाते हैं, वही बचते हैं, इस कारण वहाँ प्रतिस्पर्धा को जीवन माना गया। अर्थव्यवस्था, समाज-व्यवस्था सभी में इसी प्रतिद्वंद्विता को विकास का मुख्य सूत्र पश्चिम द्वारा स्वीकार किया गया। वहाँ मनुष्य को मूलतः स्वार्थी माना गया। संपूर्ण प्रकृति और सब प्राणी उसके उपभोग के लिए ही स्वीकार किए गए। इसी भीषण संघर्ष में वहाँ राष्ट्रवाद का उदय हुआ। जो भी राष्ट्र बलशाली हुआ, वह दूसरों को खा डालने के लिए ही खड़ा हुआ। वहाँ सामूहिक स्वार्थ के नाते ही राष्ट्रीयता पनपी। एक पाश्चात्य विचारक ने इसी भाव के अनुसार व्याख्या दी कि "नेशनलिज़्म ऑर पेट्रियाटिज़्म इज सेलफिशनेस एक्सटेंडेड," यानी राष्ट्रवाद या राष्ट्रभक्ति स्वार्थ को उद्दीपित करने का ही नाम है। स्वार्थ के कारण एकत्र होकर दूसरों से लड़ने के लिए प्रस्तुत होना ही उनके यहाँ राष्ट्रीयता का आधार बना। इस निषेधात्मक विचार में राष्ट्र की भावात्मक भूमिका ही छिन्न-छिन्न हो गई। परस्पर सहयोग के आधार पर राष्ट्रवाद का विकास वहाँ नहीं हुआ। विरोध में से पैदा हुई राष्ट्रीयता घातक तो होगी ही। वही वहाँ हुआ।

योरोप के देशों में राष्ट्र नाम की सत्ता हज़ार-बारह सौ वर्ष पूर्व निर्माण हुई। उसका विशेष विकास चार-पाँच सौ वर्षों में हुआ। उनके उस इतिहास के आधार पर ही जो लोग राष्ट्रीयता संबंधी निष्कर्ष निकालते हैं, वे निस्संदेह राष्ट्रीयता को घातक समझते हैं। पहले वहाँ मज़हब के आधार पर लोग एकत्र हुए। ईसाइयों और यहूदियों में संघर्ष हुआ। बाद में ईसाई और मुसलमानों में धर्मयुद्ध होने लगे। विभिन्न समूह अपनी-अपनी सत्ता के विस्तार के लिए युद्ध करते थे। भारी रक्तपात हुआ। इंग्लैंड की राष्ट्रीयता रोमन विरोध में से प्रकट हुई। स्थान-स्थान पर रोमन-कैथोलिक के प्रति विरोध की भावनाएँ उठीं। आर्थिक शक्ति हाथ में लेने के लिए अंग्रेज़ और फ्रेंच लड़ें। फ्रेंच और जर्मन के बीच लड़ाइयाँ हुई। इंग्लैंड, फ्रांस और स्पेन में जिस प्रकार राष्ट्रवाद उठा इसी प्रकार बाद

---

1. चार्ल्स डार्विन (1809-1882) ने क्रमविकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया, विकासवाद कहलानेवाला यही सिद्धांत आधुनिक जीवविज्ञान की नींव बना। डार्विन का मत था कि जीवन के क्रमिक विकास में वही प्राणी जीवित रह पाता है, जो परिस्थितियों के साथ संघषं करने में सर्वाधिक सक्षम होता है। इसे ही योग्यतम की विजय कहा गया है। जो प्राणी इस जीवन संघर्ष में निर्बल या अक्षम साबित हुए, वो विलुप्त हो गए। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'ऑरिजिन ऑफ़ स्पिशीज़' है।

में जर्मनी और इटली में उसका विकास हुआ। इस विकास-क्रम में जिसके हाथों अधिक सत्ता आई, वह बाक़ी को पीड़ित करने, दुःख देने लगा। दुनिया में संकट उत्पन्न हुआ। जो मज़हब को नहीं मानते, उन कम्युनिस्टों ने भी विचारधारा का आधार वर्ग-संघर्ष ही माना है। पहले मज़हब के आधार पर लड़ते थे। ज़बरदस्ती दूसरों पर मज़हब लादा जाता था। जो राजा का मज़हब होता था, सारी प्रजा उसे मानने के लिए बाध्य की जाती थी। जो राजा के मज़हब को न माने, उस प्रजा को देश से बाहर निकाल देने का यत्न हुआ। जो बात पहले मज़हब के नाम पर होती थी, वही कम्युनिस्ट देशों में सत्ता के नाम पर आज हो रही है। इस प्रकार पश्चिम में राष्ट्रवाद का उदय मानव के पारस्परिक समन्वय में से नहीं, संघर्ष से हुआ है। घृणा, द्वेष और विनाश ही वहाँ उत्पन्न किया गया है।

किंतु इसी आधार पर भारत की राष्ट्रीयता का मूल्यांकन करना ग़लत होगा। भारत में राष्ट्र-भाव का उदय स्वार्थ के रूप में प्रकट नहीं हुआ। भारत में राष्ट्रवाद का विचार कुछ सौ वर्षों का नहीं, सहस्राब्दियों का है। उसका आधार आपसी संघर्ष नहीं, समन्वय है, परस्परानुकूलता है। पश्चिम के समान भारत की राष्ट्रीयता एक बड़ी प्राइवेट लिमिटेड कंपनी जैसी नहीं है, जहाँ प्रत्येक नागरिक-शेयर होल्डर के नाते अपने स्वार्थों के कारण ही चिपका हुआ हो। स्वार्थ के कारण तो डाकू भी एकत्र होकर परस्पर ईमानदारी का व्यवहार करने लगते हैं। जेब क़तरे भी आपस में कुछ नियमों का पालन करने लगते हैं। स्वार्थवश उत्पन्न हुए इन नियमों के आधार पर गठित संगठनों की प्रेरणा ही अलग होती है। ऐसा भारतवर्ष में नहीं हुआ। भारतवर्ष में मानव कल्याण का एक व्यापक और उदार जीवन-दर्शन प्रकट हुआ। जीवन में इस समग्र चिंतन के कारण सामूहिक जीवन की एक ही अनुभूति अंतःकरणों में हुई। इसके आधार पर भारत का राष्ट्रजीवन विकसित हुआ। मानव जीवन के श्रेष्ठ गुणों की आराधना का भाव गूँज उठा। भारत का मानस बोल उठा कि सृष्टि की प्रत्येक हलचल में संघर्ष नहीं पूरकता है। एक ही तत्त्व विभिन्न रूपों में उपस्थित हुआ है। इसलिए जो इन सब विभिन्नताओं में भी उस एक ही आत्मा का दर्शन करता है, वही श्रेष्ठ है, आर्य है, मनुष्य कहलाने योग्य है। इस श्रेष्ठ मानव के निर्माण में जो व्यवस्था, जो नियम लागू हों, वे ही धर्म हैं। स्वार्थ के स्थान पर समर्पण को मान्यता दी गई। प्रतिक्रिया के स्थान पर भावात्मक और रचनात्मक पद्धति से विचार हुआ। प्रतिद्वंद्विता के स्थान पर परस्पर पूरकता का मंत्र गुँजाया गया। क्षमा, दया, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य की महिमा गाई गई। विभिन्न प्रकार की आस्थाओं को मानव के विकास की सीढ़ियाँ कहकर समादृत किया गया। विभिन्न संप्रदायों का आदर हुआ। एक ही सत्य के विभिन्न रूपों, उनके नामों और सत्य तक पहुँचने की ही विभिन्न पद्धतियों को स्वस्थ विकास के लिए अपरिहार्य नहीं, नितांत आवश्यक माना गया।

इसलिए केवल सहिष्णुता ही नहीं, एकात्मकता की आराधना करने का उपदेश मिला। भारत का यह राष्ट्रवाद प्राणिमात्र के प्रति कल्याण की भावना लेकर प्रकट हुआ।

इसलिए पश्चिम के राष्ट्रवाद से भारत के राष्ट्रवाद की तुलना करना ही ग़लत है। पश्चिम ने द्वैत के आधार पर संघर्ष का नगाड़ा बजाया और भारत ने अद्वैत के आधार पर एकात्मकता की बाँसुरी बजाई। दोनों वाद्य होते हुए भी दोनों की स्वरलहरियों में भारी अंतर है। इस भेद को समझकर हमें अपने राष्ट्र के संगठन का विचार करना चाहिए। यूरोप के देशों में राष्ट्रवाद के कारण विनाश हुआ, इसीलिए भारत के राष्ट्रवाद को भी विनाशकारी कहना 'दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँककर पीता है' वाली कहावत चरितार्थ करना है। इसलिए जिन राष्ट्रों ने मानव के लिए संकट पैदा किया, ग़लत कार्य किया, वैसा ही परिणाम हमारी राष्ट्रीयता से भी निकलेगा, यह निष्कर्ष ही ग़लत है। यह केवल घोषणा की बात नहीं। भारत की राष्ट्रीयता का सहस्रों शताब्दियों का इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है। विश्व के इन देशों ने जहाँ विगत हज़ार-पाँच सौ वर्षों में भीषण विनाश के दृश्य उपस्थित किए, वहाँ भारत के लंबे इतिहास में मानव को पीड़ा पहुँचाने का उल्लेख करनेवाला एक भी पृष्ठ नहीं है। भारत का यदि कोई इतिहास है, तो समस्त विश्व की मंगलकामना का ही है। विश्व के विभिन्न देशों में प्राप्त भारतीय इतिहास के अवशेष आज भी इसी तथ्य की घोषणा कर रहे हैं कि भारत ने प्राणिमात्र के कल्याण के लिए ही प्रयत्न किए हैं। इसलिए सत्य तो यह है कि विश्व में परस्पर संघर्ष, विद्वेष, प्रतिद्वंद्विता के आधार पर प्रकट हो रही पश्चिमी राष्ट्रवाद की विभीषिकाओं से विश्व को बचाना है तो उसके लिए भारत के सशक्त राष्ट्रवाद को ही संगठित और सक्षम बनाकर खड़ा करना होगा। यही विश्व-कल्याण का मार्ग है।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

8

व्यक्ति और समाज का संबंध

आज विश्व में समष्टि के जिस एक रूप की सर्वोपरि महत्ता है, वह 'राष्ट्र' ही है। संपूर्ण मानव जाति की भलाई का विचार लेकर जितने प्रयत्न आज तक हुए हैं, वे सब अंत में राष्ट्रवाद के सम्मुख हतप्रभ हुए दिखाई देते हैं। सच तो यह है कि मानवता के कल्याण में जो कुछ कार्य हो सका है, वह भी 'राष्ट्र' के आधार पर ही हुआ है। ईसाई मत जब प्रारंभ हुआ तो उसमें राष्ट्र संबंधी चिंतन लागू नहीं होता था। कैथलिक चर्च का प्रधान पोप ही प्रमुख माना जाता था। विभिन्न देशों में ईसाइयत फैली। रोम का पोप सर्वेसर्वा था। किंतु धीरे-धीरे विभिन्न देशों में राष्ट्रवाद का ज़ोर हुआ। पोप की सत्ता को चुनौती मिली और आज स्थिति यह है कि एक छोटे से वेटिकन सिटी में वह सीमित है। आज इन सब देशों में राष्ट्रवाद ही निर्णायक तत्त्व है। इसलाम भी राष्ट्रीयता को नहीं मानता। दुनिया के सब मुसलमानों को एक साथ खड़ा करने का विचार लेकर इसलाम चला। संपूर्ण मुसलिम जगत् का ख़लीफ़ा माना जाता था। किंतु राष्ट्रीयता का ज्वार आया और ख़लीफ़ा हटा दिया गया।[1] आज राष्ट्र के आधार पर ही मुसलिम विश्व में सोचने-विचारने का क्रम है। यही बात साम्यवाद के साथ भी हो रही है। साम्यवाद के उद्घोषक ने भी संपूर्ण विश्व के लिए बात कही। दुनिया के लोगों के संबंध में वैसा ही विचार किया। राष्ट्र की सीमाओं को मानने से इनकार किया। किंतु आज उसी साम्यवाद में राष्ट्र की भावना हिलोर ले रही है। रूस और चीन अपने-अपने राष्ट्रवाद के नाम पर खड़े हैं।

---

1. 1920 के दशक में टर्की में ख़लीफ़ा के साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध व्यापक आंदोलन हुआ। इसका नेतृत्व टर्की के तत्कालीन राष्ट्रवादी नेता मुस्तफ़ा कमाल पाशा 'कमाल अतातुर्क' (1881-1938) ने किया था। इसके बाद 1924 में कमाल पाशा के नेतृत्व में बनी सरकार ने ख़लीफ़ा का पद समाप्त करते हुए देश को रुढ़िवादी सोच से बाहर निकाला। कमाल पाशा ने अपने शासनकाल के दौरान देश की शिक्षा, क़ानून व सैन्य प्रणाली को आधुनिक शैली में परिवर्तित करते हुए एक आदर्श सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था विकसित की थी।

शीघ्र ही यह चीज़ अन्य साम्यवादी देशों में प्रकट होने के लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं। बौद्धमत को माननेवाले भी कितने देश हैं, किंतु असलियत यही है कि सब ओर राष्ट्र के आधार पर ही चिंतन चला हुआ है। विश्व के सभी प्रकार के आदान-प्रदान का प्रभावी माध्यम आज 'राष्ट्र' ही है। इस प्रकार विश्व में मानव संगठनों की सबसे बड़ी इकाई आज राष्ट्र है। इसी आधार पर विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान खोजना होगा।

'राष्ट्र' की इकाई का आधार क्या है? इस संबंध में विस्तृत चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। सारांश में जिन बातों की आवश्यकता राष्ट्र के लिए होती है, उनमें से प्रमुख है 'भूमि'। निश्चित भू-भाग होने के साथ दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है वहाँ रहनेवाला मानव-समुदाय यानी 'एक जन'। इस 'भूमि' और 'जन' का माता और पुत्र जैसा संबंध होना राष्ट्र के लिए अनिवार्य है। उसी भू-भाग में दूसरे ऐसे लोग भी रह सकते हैं, जो उस भूमि को अपनी मातृभूमि न मानकर और कुछ मानें। जैसे अंग्रेज़ जब भारत में राज्य करते थे तो उनकी मातृभूमि इंग्लैंड थी। भारत को वे केवल भोगभूमि समझते थे। ऐसे सब लोग उस भूमि पर आक्रमणकारी ही माने जाएँगे, जो स्वयं को पुत्र रूप अनुभव नहीं करते, जो रहते तो इस भूमि पर हैं, किंतु जिन्हें सपने किसी अन्य भूमि से आते हैं, जिनके श्रद्धा केंद्र इस भूमि के बाहर हैं या जो इस भूमि के बाहर से प्रेरणा ग्रहण करते हैं, ऐसे सब लोग इसी भूमि की जलवायु में जन्मे, पले और बढ़े हुए होने पर भी 'एक जन' से कटे हुए हैं। उन्हें भी जब तक भूमि की ममता से एकरस नहीं किया जाता, तब तक वे विघातक तत्त्व ही कहलाएँगे। इसलिए राष्ट्र की तीसरी आवश्यकता है ऐसे पुत्र-रूप समाज में सभी जनों की एक समान इच्छा। ऐसी इच्छा कि हम एक होकर रहेंगे, मिलकर चलेंगे, मातृभूमि का गौरव बढ़ाएँगे, समृद्धि और प्रगति में स्वाभाविक रीति से सहकार्य करेंगे। यानी सब का मिलकर एक संकल्प होना चाहिए। बिना एक संकल्प के कोई भी समष्टि नहीं चल सकती। सब लोगों की समान अनुभूति में से ही यह संकल्प प्रकट होता है। किंतु ऐसी समान अनुभूति और उसके कारण प्रकट हुए संकल्प के लिए सबके सामने एक लक्ष्य होना ज़रूरी है। लक्ष्य यानी सबका एक आदर्श। जीवन का एक आदर्श होना ज़रूरी है। इसी आदर्श को चरितार्थ करने के लिए संकल्प जागता है। यह आदर्श एकाएक निर्माण नहीं होता। समाज को ऊँचा उठाने के लिए भूतकाल में जो महान् प्रयत्न हुए हैं, असीम त्याग, परिश्रम और उद्योग किए गए हैं, उनकी एक परंपरा बनती है। इस परंपरा को पुष्ट करनेवाले महापुरुषों के जीवन उस आदर्श का दिग्दर्शन कराते हैं। और तब राष्ट्र के लिए अंतिम आवश्यकता होती है उस व्यवस्था की, जिसके अंतर्गत इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए सफलतापूर्वक आगे बढ़ा जा सकता है।

इस प्रकार हम मोटे रूप में कह सकते हैं कि 'राष्ट्र' के लिए चार बातों की

आवश्यकता होती है : प्रथम, भूमि और जन, जिसे हम देश कहते हैं। दूसरी, सबकी इच्छाशक्ति यानी सामूहिक जीवन का संकल्प। तीसरी, एक व्यवस्था जिसे नियम या संविधान कह सकते हैं और सबसे अच्छा शब्द जिसके लिए हमारे यहाँ प्रयुक्त हुआ है, वह है 'धर्म'। और चौथा है जीवन-आदर्श। इन चारों का समुच्चय यानी ऐसी समष्टि को 'राष्ट्र' कहा जाता है। जिस प्रकार व्यक्ति के लिए शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ज़रूरी है, इन चारों को मिलाकर व्यक्ति बनता है, उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म और आदर्श के समुच्चय से राष्ट्र बनता है।

व्यक्ति और समष्टि की इन दो सत्ताओं के जो पारस्परिक संबंध हैं, वही राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के कारण बनते हैं। इसलिए व्यष्टि और समष्टि के इन संबंधों को हमें भली-भाँति समझ लेना चाहिए।

हम यदि एक चौकोर डिब्बा अपने हाथ में लें तो उसकी दो सतह हम पाएँगे। इन्हें हम ऊपर और नीचे की सतह कह सकते हैं। किंतु क्या डिब्बे में से कोई भी सतह निकालकर अलग की जा सकती है? हम डिब्बे को कितना भी छोटा करते जाएँ तो भी ये दो सतह बनी ही रहनेवाली हैं। एक सिक्के की दो बाज़ू होती हैं, 'चित और पट', अंग्रेज़ी में उसे 'हेड एंड टेल' कहते हैं। क्या किसी सिक्के से इनमें से कोई बाज़ू निकाली जा सकती है? बस ठीक इसी प्रकार व्यष्टि और समष्टि दोनों अविभाज्य हैं। जिस प्रकार हम डिब्बे को चाहे जितना छोटा करते चलें, फिर भी ऊपर-नीचे की दो सतहें रहनेवाली हैं। उनका अंतर भले ही कम-अधिक हो, परंतु रहेंगी दोनों ही। इन दोनों बाजुओं में कौन बड़ी और कौन सी छोटी है, यह विचार ही वास्तव में ग़लत है। इसलिए जब कोई-कोई यह प्रश्न करता है कि व्यक्ति बड़ा या समाज बड़ा? तो हिसाब लगाना असंभव हो जाता है। समाज भी बड़ा है और व्यक्ति भी बड़ा है। अथवा यों कहिए कि जितना बड़ा व्यक्ति है उतना बड़ा समाज और जितना बड़ा समाज है उतना बड़ा व्यक्ति। दोनों अभिन्न हैं। कुछ लोग जो पश्चिम की विचारधारा से प्रभावित हैं, व्यक्ति और समाज के बीच संघर्ष की भूमिका लेकर विचार करते हैं। उन्हें ये दो अलग-अलग दिखाई देते हैं। दोनों के अलग-अलग अस्तित्व की कल्पना की जाती है, दोनों के अधिकार भिन्न बताए जाते हैं। दोनों में झगड़ा दिखाया जाता है। कहा जाता है कि व्यक्ति और समाज के हित टकराते हैं। पश्चिम के सोचने में ही द्वैत घुस गया है। वहाँ प्रत्येक बात को संघर्ष के आधार पर ही सोचा जाता है। एक में तो संघर्ष नहीं हो सकता। संघर्ष के लिए दो की ही ज़रूरत रहती है। पश्चिम ने द्वैत का पल्ला पकड़ लिया है। वहाँ पति और पत्नी को भी दो मानकर विचार होता है। प्रेम का विचार करते समय भी दो मानकर ही प्रेम होता है। दोनों में समझौता होता है, दोनों में बीच-बचाव का यत्न किया जाता है। दोनों के बीच जिस एकता की कल्पना की जाती है, उसमें भी

दोनों की अलग-अलग सत्ता ही मानी जाती है। इसलिए वहाँ विवाह भी एक आपसी समझौता है। फिर समझौता टूटता है, विच्छेद होता है। यानी एक सतत संघर्ष ही वहाँ स्वाभाविक स्थिति मानी गई है। भारत का चिंतन अद्वैत का है, जो यहाँ 'दो' को 'एक' देखता है और है भी यही वास्तविकता। एक सिक्के के दो पहलू अथवा एक चौकोर डिब्बे की दो सतह दिखने में दो भले ही दिखाई दें, अस्तित्व में अभिन्न और अविभाज्य हैं। दोनों में किसी प्रकार के संघर्ष की कल्पना ही मूढ़ता है। दोनों में जो ऊपरी भिन्नता दिखाई देती है, उस कारण कभी कोई मतभेद हो सकता है। हमारे यहाँ पति-पत्नी को एक ही माना गया है, फिर भी कोई टकराहट हो ही जाती है। किंतु उस टकराहट को दूर करने का उपाय भी दोनों को परस्पर विरोधी समझकर हल निकालना नहीं। शरीर में जिस प्रकार दो टाँगे हैं। शरीर यदि कमज़ोर हो तो कभी-कभी दोनों टाँगें आपस में टकरा जाती हैं। किंतु इस टकराहट को दोनों टाँगों के बीच आपसी और स्थायी विरोध मानकर चलना और टकराहट दूर करने के लिए दोनों टाँगों के बीच एक लकड़ी बाँध देने का यत्न करना क्या बुद्धिमानी कही जाएगी? मूलतः यही सोचना होगा कि टकराहट विकृति का लक्षण है, अव्यवस्था का लक्षण है। विकार उत्पन्न होने के कारण अस्वस्थता आई है। होश-हवास ठिकाने पर नहीं है। इस स्थिति में क्या ऐसा मानकर चला जाए कि वह विरोधी स्थायी है? संघर्ष होना ही स्वाभाविक है, क्या इसलिए संघर्ष को स्थायी मानकर नियम और व्यवस्थाएँ खड़ी की जाएँ? दोनों को क्या अलग-अलग रखा जाए? तब क्या कोई स्थायी हल निकल सकेगा? दोनों सदैव अभिन्न होते हुए भी परस्पर शंका की दृष्टि से ही देखते रहें तो क्या आनंद की सृष्टि कर सकेंगे? सुख मिलेगा? इसलिए भारत में इस प्रकार के द्वैत का विचार नहीं किया। हमने समष्टि को भी एक जीवमान इकाई माना। व्यष्टि और समष्टि को अभिन्न मानकर चले। हम इनमें टकराव नहीं मानते।

व्यक्ति समाज के विरोध में कार्य करे, समाज के हित की चिंता न करे, व्यक्ति पड़ोसी से सदैव वैर का ही अनुभव करे, प्रत्येक व्यक्ति अपना सुख दूसरे के साथ प्रतिद्वंद्विता में ही माने तो काम नहीं चलेगा। रास्ते पर चलनेवाली प्रत्येक मोटरगाड़ी मुझसे टकराने ही वाली है, घर में आया हर एक व्यक्ति मुझे लूटने के लिए ही आया है, बाज़ार में हर कोने पर जेबक़तरे ही जेबक़तरे खड़े हैं—ऐसी कल्पना करके चलनेवाले मानव समूह में भला कौन सी शांति निर्माण हो सकेगी? व्यक्ति यदि अधिक संपन्न, बलवान हो गया तो वह समाज को धर रगड़ेगा और यदि समाज के ही हाथ में सब सूत्र आ गए तो व्यक्ति की सब स्वतंत्रताओं का अपहरण होना ही चाहिए। ऐसा मानकर चलना, इन दो स्थितियों में से किसी एक को चुनने के लिए बाध्य होना क्या मानव के उदात्त चरित्र की स्थापना की भूमिका हो सकेगी? दो के फेरे में हम दोनों को ही गँवा

नहीं बैठेंगे? इसलिए आज जो व्यक्ति के संपन्न होने से ऊब जाते हैं, वे समाज पर बल देने लगते हैं और जो समाज के सर्वसत्ता संपन्न होने से कराहते हैं, वे व्यक्ति को मज़बूत करने की बोली बोलते हैं। किंतु इस द्वैत में से रास्ता निकालना असंभव है।

भारत ने अपने चिंतन में इसीलिए यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति और समाज में विरोध मानना ही भूल है। विकृतियों की, अव्यवस्था की बात छोड़ दें। उसे दूर करने के उपाय करना भी ज़रूरी होते हैं, किंतु मूल सत्य यही है कि व्यक्ति और समाज अभिन्न और अविभाज्य हैं। सुसंस्कृत अवस्था यही है कि जहाँ व्यक्ति अपनी चिंता करते हुए भी समाज की चिंता करेगा। दोनों में सामान्य स्थिति है, पूरकता है। समाज का बिगाड़कर अपनी भलाई करने का विचार जो करेगा, वह ग़लत सोचेगा। यह विकृत अवस्था है। इसमें उसका भी भला नहीं होनेवाला, क्योंकि समाज जिस स्थिति में पहुँचेगा, उसे व्यक्ति को ही भोगना पड़ेगा। 'हित अनहित पशु पक्षीहि जाना,' किंतु यह मनुष्य होकर भी अपना वास्तविक हित नहीं समझता, इसलिए पशु से भी गया-बीता है, विकृत है। इसे सुधारना होगा। यदि समझाने से नहीं सुधरे तो जनमत द्वारा दंडित करना होगा। यह स्थिति अपवाद है, सामान्य नियम नहीं।

सामान्य अवस्था यही है कि हम अपनी चिंता करते हुए समाज की चिंता करें। हमारे हित और समाज के हित में विरोध नहीं, संघर्ष नहीं। इसलिए जब कोई लोग हमसे पूछने लगते हैं कि आप व्यक्तिवादी हैं अथवा समाजवादी? तो हमें कहना पड़ता है कि भाई, हम व्यक्तिवादी भी हैं और समाजवादी भी। भारतीय चिंतन के अनुसार हम व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करते और समाज के हितों की चिंता बराबर करते रहते हैं। समाज के हितों की चिंता करते हैं, इसलिए समाजवादी हैं और व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करते, इसलिए व्यक्तिवादी भी। व्यक्ति को ही सर्वेसर्वा नहीं मानते, इसलिए कहते हैं कि व्यक्तिवादी नहीं हैं। हम समाज को भी ऐसा नहीं मानते कि वह व्यक्ति की समस्त स्वतंत्रताओं और विभिन्नताओं का अपहरण कर ले, मुनष्य को किसी शिकंजे में कसकर मशीन का पुरज़ा बनाकर इस्तेमाल करे, इसलिए हम समाजवादी नहीं हैं। हमारी मान्यता है कि बिना व्यष्टि के किसी समष्टि की कल्पना ही नहीं की जा सकती और बिना समष्टि के व्यष्टि का क्या मूल्य? इसलिए हम दोनों के बीच समन्वय करना चाहते हैं।

व्यक्ति के विकास और समाज की पूर्णता का यही समन्वित विचार भारतीय चिंतन की विश्व को देन है। व्यक्ति जन्म लेता है। समाज द्वारा उसे शिक्षित और संस्कारित किया जाता है। धीरे-धीरे व्यक्ति गुणवान बनता है। व्यक्ति अपने अंदर सुप्त श्रेष्ठताओं के विकास का अवसर पाता है। समाज उसकी देखभाल करता है। व्यक्ति को बुद्धिमान, धैर्यवान, पराक्रमी, शक्तिवान और धनवान बनाने का काम समाज ही करता है। इस प्रकार समाज से सबकुछ पाकर जब व्यक्ति सक्षम हो जाता है तो वह

स्वयं कर्म करता है। किंतु जिस प्रकार वृक्ष स्वयं फल नहीं खाता, व्यक्ति भी अपने सतकर्म समाज को समर्पित करता है। वह अपने तक ही विचार नहीं करता। सबका विचार करता है। यदि किसान है, तो खेत में इसलिए अन्न नहीं बोएगा कि उसकी अपनी ज़रूरत है, वरन् वह ऐसा अन्न पैदा करेगा, जिसकी समाज को आवश्यकता है। ठीक वैसे ही जैसे घर में माँ भोजन पकाते समय खुद का विचाऱ नहीं करती। घर के सब लोगों की ज़रूरत का ध्यान रखकर भोजन पकाती है। इसी प्रकार व्यक्ति के कर्म इस दृष्टि से होते हैं कि समाज की आवश्यकता की पूर्ति हो। व्यक्ति अपने गुण और शक्ति का उपयोग समाज के लिए करता है। जब व्यक्ति समाज को अधिकाधिक समर्पित करता है, तब समाज भी व्यक्ति के योग-क्षेम की चिंता करता है। वैसे व्यक्ति अपने गुणों और शक्ति से समाज की दो-चार आवश्यकताओं की ही पूर्ति कर पाता है, किंतु समाज उसके बदले में उसे कई चीज़ें लौटाता है। शिक्षा, वस्त्र, मकान, सुरक्षा ही नहीं तो सुख की अनेकानेक अनुभूतियों और दु:ख में धैर्य भावना आदि कितनी ही बातें समाज से व्यक्ति को मिलती जाती हैं। इस प्रकार व्यक्ति और समाज में अविभाज्य संबंध का आदान-प्रदान चलता है। जो व्यक्ति कमा नहीं पाते और कमज़ोर रह जाते हैं, उनकी भी चिंता समाज ही करता है।

इस आदान-प्रदान का मूल्यांकन हानि-लाभ बतानेवाली मूल्य पद्धति से करना कठिन है। उदाहरणार्थ समाज ने रोगियों की चिकित्सा की व्यवस्था की। मरते हुए के प्राण बच गए। डॉक्टर अथवा वैद्य के इस हेतु हुए परिश्रम का क्या मूल्य हो सकता है? शिक्षाकेंद्र में जाने से व्यक्ति का अज्ञान दूर हो गया। अध्यापक के इस कार्य का बदला किस प्रकार चुकाया जा सकता है? इसका मूल्य चुकाना असंभव है। इसलिए हमारे यहाँ पहले ये सब काम सेवा कार्य के नाते ही किए जाते थे। रुपए-पैसे में इसका मूल्यांकन नहीं होता था। प्रत्येक अपना कर्तव्य निभाने मात्र में विश्वास रखता था। क्योंकि सेवा का कोई मूल्य नहीं हो सकता। सेवा करना ही हमारा धर्म है। शेष सब चिंता समष्टि पर डाल देनी चाहिए। गीता में जैसा भगवान् कृष्ण ने कहा है कि जो कुछ तुम कर्म करते हो, सब मुझमें समर्पित कर दो। तपस्या करते हो, यज्ञ करते हो, खाते-पीते हो, जो कुछ करते हो मुझे दे दो, फिर तुम्हारे योगक्षेम की चिंता मैं करूँगा। इस प्रकार समष्टि, योगक्षेम की चिंता कर, व्यक्ति के लिए जो-जो कुछ आवश्यक है, देता है। व्यक्ति के लिए समाज से इस प्रकार प्राप्त कर निर्वाह करना ही यज्ञ शेष कहा गया है। 'त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथा:' के अनुसार त्यागपूर्ण ढंग से उपभोग करने की बात यही है। यज्ञ शेष ही अमृत है। इसको जो प्राप्त कर उपभोग करेगा, वह जीवित रहेगा। स्वयं ज़िंदा रहेगा, समाज को भी ज़िंदा रखेगा।

इस प्रकार भारतीय विचार पद्धति में व्यक्ति और समाज का सामंजस्य स्थापित

होता है। समाज से व्यक्ति को शिक्षा मिली और मिला उपयोग के लिए योगक्षेम। व्यक्ति ने समाज को दिया कर्म और त्याग। व्यक्ति और समाज को पारस्परिक जोड़े रखने का कार्य जिस आधार पर होता है, उसे ही हमारे यहाँ पुरुषार्थ कहा गया है। पुरुषार्थ चार हैं—अर्थ, काम, मोक्ष और धर्म। व्यक्ति का शरीर, भूमि, जन और उपभोग इन चारों चीज़ों से बना हुआ 'अर्थ-पुरुषार्थ' है। इसके द्वारा हम धन उत्पन्न करते हैं। संपत्ति पैदा करते हैं। शासन चलाते हैं। उसी प्रकार योगक्षेम, मन की इच्छाएँ, राष्ट्र का संकल्प और यज्ञभाव इन चारों से मिलकर 'काम-पुरुषार्थ' हुआ। तीसरा पुरुषार्थ है 'धर्म'। बुद्धि, राष्ट्र की परंपराएँ, यज्ञ-भाव और ज्ञान या शिक्षा इन चारों से 'धर्म-पुरुषार्थ' बना। चौथा है 'मोक्ष'। निष्काम कर्म, ज्ञान, राष्ट्र के आदर्श और आत्मा से 'मोक्ष-पुरुषार्थ' बना। ज्ञान, कर्म, भोग और यज्ञ तथा चारों पुरुषार्थों को मिलाकर पूर्ण मानव का विचार किया गया। सबका पूर्ण समुच्चय ज़रूरी माना गया। किसी एक अंग का ही विचार करना ग़लत विचार करना सिद्ध हुआ। यदि कोई मनुष्य कहे कि वह केवल 'अर्थ' पुरुषार्थ का ही विचार करेगा, शेष का नहीं, तो ऐसा करना ग़लत होगा। इसी प्रकार कोई केवल धर्म का विचार करे और अन्य की उपेक्षा करे तो वह भी ठीक नहीं। भारतीय चिंतन में हम टुकड़े-टुकड़े का विचार नहीं कर सकते। समग्र चिंतन की आवश्यकता है।

हम व्यक्ति और समाज को अलग-अलग हिस्सों में, परस्पर विरोध की भूमिका में नहीं देख सकते। विरोध के आधार पर जिस मान्यता की बात पश्चिम ने कही है, हम उसे भी स्वीकार नहीं कर सकते। वास्तव में सृष्टि में कोई भी दो चीज़ें समान नहीं हैं। विविधता ही सृष्टि का सौंदर्य है। इसलिए सबकी एक जैसी आवश्यकताएँ भी नहीं हो सकतीं। आवश्यकताओं की भिन्नता भी स्तर पर निर्भर करेगी, इसलिए अनेक स्तर होना भी बिल्कुल स्वाभाविक है। समानता लाने की बात परस्पर प्रतिद्वंद्विता और ईर्ष्या निर्माण कर सकती है। असंतोष और संघर्ष को बढ़ा सकती है, किंतु सर्वांगपूर्ण विकास का अवसर नहीं दे सकती। इसलिए हमने समानता नहीं, आत्मीयता के आधार पर सोचना प्रारंभ किया। घर में छोटा बच्चा या अधिक वृद्ध, दोनों ही कमाते नहीं, इसलिए समान नहीं हो सकते, किंतु आत्मीयतापूर्वक चलनेवाले परिवार में कर्तव्य बुद्धि से सबके लिए अपनी-अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर पाना संभव हो जाता है। इसीलिए हम किसी अंग पर ही सब ध्यान केंद्रित कर देना ठीक नहीं समझते। हम संपूर्ण का विचार और आत्मीयतापूर्वक व्यवहार करने में विश्वास रखते हैं। इसलिए हमारी दृष्टि में व्यक्ति और समाज परस्परपूरक, सहायक और अभिन्न हैं। दोनों अविरोधी सत्ताएँ हैं।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

9

सामंजस्यपूर्ण समाज व्यवस्था

पूर्व अध्याय में व्यक्ति के सुख से संबंधित दो बातें स्पष्ट हो चुकी हैं। पहली यह कि शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सब प्रकार के सुख व्यक्ति को प्राप्त हों तो व्यक्ति अपनी धारणा के लिए पूर्ण रूपेण समाधान का अनुभव करता हुआ विकास कर सकेगा। दूसरे यह कि व्यक्ति अपने इस विविध प्रकार के विकास के लिए समाज पर निर्भर हैं।

व्यक्ति का विकास और समाज पर उसकी निर्भरता का विचार करनेवाले लोग सामान्यत: दो अलग-अलग प्रकार के चिंतन का आग्रह करते हमें दिखाई पड़ते हैं। कुछ ऐसे हैं, जो व्यक्ति के विकास को ही सर्वाधिक प्रमुख मानते हैं। उनका कहना है कि 'व्यक्ति' मुख्य बात है। इसी के लिए समाज है। व्यक्ति का पोषण करने के लिए ही समाज बना है। दूसरे वे लोग हैं, जो समाज को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। उनका कहना है कि आख़िर व्यक्ति के सभी व्यवहार समाज पर निर्भर हैं, इसलिए समाज को शक्तिशाली बनाना ठीक है। यहाँ तक कि व्यक्ति की यदि उपेक्षा भी हो गई तो कोई हर्ज नहीं। इनके मत में प्रत्येक प्रश्न पर समाज का ही विचार करके चलना चाहिए, व्यक्ति का नहीं। इन दो दृष्टिकोणों के कारण पश्चिमी राष्ट्रों ने स्वयं को दो विचारधाराओं के खेमों में बाँट भी लिया है। किंतु ये दोनों विचार एकांगी हैं, पूर्ण सत्य नहीं हैं। पहली श्रेणी के विचारक यदि व्यक्ति के विकास की स्वतंत्रता के नाम पर समाज की अवहेलना करते हैं तो दूसरे समाज को ही सर्वशक्ति संपन्न बनाने की धुन में व्यक्ति की बहुकलात्मक विविधता से हाथ धो लेते हैं। व्यक्ति और समाज के वर्चस्व का यह विवाद वास्तव में एक ही प्रकार की चिंतन-पद्धति के दो छोर हैं। दोनों ओर की खींचतान में प्राप्त होता है केवल तनाव। एक में समाज की क़ीमत पर व्यक्ति बढ़ता है, तो दूसरे में समाज को

मज़बूत करने के लिए उस व्यक्ति को ही दबा दिया जाता है, जिसके नाम पर शक्ति अर्जित होती है।

ये दोनों एकांगी विचार मनुष्य को वास्तविक सुख पहुँचा पाने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं। इसलिए आवश्यकता है कि इनके बीच से कोई मध्यम मार्ग खोजा जाए, जो इन दोनों का गुणात्मक समन्वय स्थापित कर सके; ऐसा समन्वित विचार जहाँ व्यक्ति अपना निजी विकास करते हुए समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके और परिपूर्ण समाज व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सामंजस्य निर्माण करता हुआ उन्नत, प्रगतिशील तथा पुष्ट हो सके।

इस दृष्टि से भारतीय 'व्यक्ति तथा समाज-रचना' का उदाहरण विश्व में अद्वितीय है। भारतीय रचना में व्यक्ति और समाज के संबंधों को परस्पर संघर्ष के आधार पर नहीं देखा गया। इनमें अभिन्नता आँकी गई। इस नाते परस्पर आवश्यकताओं की पूर्ति के अगणित क्षेत्र खुल गए। अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ। समाज की आवश्यकता की पूर्ति में प्रत्येक व्यक्ति योग्य सहकार्य दे सके और साथ ही स्वयं का विकास कर समाज सेवा के लिए अधिकाधिक समर्थ हो सके, इस दृष्टि से भारत में वर्ण-व्यवस्था की स्थापना हुई। समाज की आवश्यकताओं का विचार हुआ। समाज की अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ रहती हैं। बौद्धिक आवश्यकताएँ हैं; आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की सुरक्षा का प्रश्न है; आजीविका का सवाल है; वस्तुओं के उत्पादन, वितरण, संरक्षण वाली बात है। ऐसी अनेक सामाजिक आवश्यकताओं के बीच सबसे बड़ी आवश्यकता यह भी है कि लोगों को सोचने-विचारने के लिए यथेष्ट अवकाश भी प्राप्त हो, ताकि चिंतन का स्तर भी ऊँचा उठता रहे। इस प्रकार समाज में ज्ञान-वृद्धि, संरक्षण, भरण-पोषण और चिंतन के लिए अवकाश-प्राप्ति की दृष्टि से लोगों को कुछ कार्य सौंपे गए। भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्गों की रचना की गई। सबको अलग-अलग प्रकार की ज़िम्मेवारियाँ सौंपी गईं। जैसे आठ दस दिन के किसी शिक्षा-वर्ग में उत्तम शिक्षा की दृष्टि से विभिन्न विभाग स्थापित किए जाते हैं, विभागों में ज़िम्मेवारियाँ बाँट ली जाती हैं, ताकि प्रत्येक कार्य ठीक समय पर उत्तम ढंग से संपन्न हो। यह नहीं होता कि सब लोग एक ही प्रकार का कार्य करने लग जाएँ। भोजन, पानी, रक्षा, कार्यालय, सफ़ाई, बौद्धिक, शुश्रूषा, निवास, खेलकूद आदि कितने ही प्रकार के कार्य एक साथ संपन्न होते रहते हैं। इनमें से एक में भी यदि अव्यवस्था हो तो काम नहीं चल सकता। ठीक उसी प्रकार व्यक्ति के विकास और उसकी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत में अति प्राचीन काल से जो व्यवस्था चली आ रही है, वह वर्ण-व्यवस्था है। यह व्यवस्था इसी आधार पर निर्मित हुई थी कि अपने गुण-कर्मों के अनुसार लोग समाज की सेवा कर सकें। व्यक्ति के अंदर जो श्रेष्ठताएँ हैं, उनका विकास हो और व्यक्ति के विकसित होने की

प्रक्रिया में समाज भी दो क़दम आगे बढ़े। इसी के व्यावहारिक रूप को वर्ण-व्यवस्था कहा गया। व्यक्ति को जीवन-ध्येय मिला और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति भी हुई।

समाज की रक्षा का प्रश्न आया तो जिनमें पौरुष-पराक्रम है, बल है—वे लोग स्वाभाविक रूप से आगे आए। समाज में ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के लिए वे लोग तैयार हुए जो तपश्चर्या, ज्ञान, साधना के क्षेत्र में निपुण रहे। कला-कौशल के जानकार, वाणिज्य-व्यापार की वृद्धि वाले और कृषि, गौरक्षा में चतुर लोग समाज को संपन्न बनाकर भरण-पोषण का दायित्व निभाने को सन्नद्ध हुए। जो लोग इनमें से कुछ भी नहीं कर सकते थे, वे भी समाज के लिए उपयोगी बने। उन्होंने उस सेवा का व्रत लिया कि जिससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति को चिंतन के लिए पर्याप्त अवकाश मिल सके। समाज की छोटी-मोटी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व उन्होंने उठा लिया। इनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं। समाज रूपी इस विराट् पुरुष के अभिन्न अंग होने के नाते सभी आवश्यक और आदरणीय हैं। वह मूर्ख ही कहा जाएगा, जो संपूर्ण शरीर के विभिन्न अंगों में से कुछ को श्रेष्ठ और कुछ को नगण्य बताए। इस अंग-अंगी भाव में प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, संघर्ष के लिए स्थान ही नहीं। कोई अंग केवल अपने ही भरोसे पर स्वयं पूर्ण नहीं हो सकता। परस्परावलंबी अथवा अधिक योग्य शब्द में कहना हो तो परस्परानुकूल यह व्यवस्था भारत में निर्मित हुई। एक अत्यंत वैज्ञानिक शास्त्र-शुद्ध सामाजिक स्वरूप इस प्रकार भारत में विकसित हुआ।

निस्संदेह शताब्दियों के लंबे कालखंड में सामाजिक उत्थान-पतन के थपेड़ों के कारण यह व्यवस्था कमज़ोर हुई है। परकीय आक्रमणों और सदियों की ग़ुलामी के कारण भी समाज-जीवन अस्तव्यस्त हुआ है। परकीय समाज के अंधानुकरण से कई बेमेल और हास्यास्पद बातें इसमें घुसी हुई दिखाई पड़ती होंगी। इस व्यवस्था के अंदर बुराइयाँ खोजनेवाले ऐसा सोचते होंगे कि इस व्यवस्था को ही समाप्त कर देना चाहिए। इसे समाप्त करने का कारण यह बताया जाता है कि इससे व्यक्ति-व्यक्ति में भेद उत्पन्न हो गए हैं। ऊँच-नीच का भाव आ गया है। कहा जाता है कि यदि भेदभाव समाप्त करना है तो इस व्यवस्था को ही समूल नष्ट कर देना होगा।

अब यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या व्यवस्था समाप्त करने से भेद मिट सकेंगे और भेद मिटाकर जो कुछ हम बनाना चाहते हैं, उसके लिए कोई व्यवस्था क्या ज़रूरी नहीं होगी? आख़िर व्यवस्था तो एक प्रकार की रचना ही है। भेद-निर्माण होना एक ख़राबी है, जो दृष्टि पर निर्भर करती है। व्यवस्था की ओर देखने का तरीक़ा ठीक नहीं रहा तो भेद उत्पन्न किए जा सकते हैं। दृष्टि-दोष उत्पन्न होने से किसी अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था में भी भेद पनपते हैं। दृष्टि-दोष दूर होने से भेद क्षीण होते और मिटते

हैं। दोषों को ठीक-ठीक पहचानकर दबाया जा सकता है। विकृतियों को हटाया जा सकता है। उसका विचार करना भी आवश्यक होता है। किंतु दोषों और विकृतियों को हटाने के नाम पर संपूर्ण व्यवस्था को ही नष्ट करने की बात करना क्या बुद्धिमानी कही जाएगी? रोग नष्ट करने के लिए कोई वैद्य यदि रोगी को ही समाप्त करने की बात कहे तो क्या बुद्धिमानी होगी?

वास्तव में आपसी तनाव और संघर्ष पैदा होने के लिए बड़ी मूलगामी बातें कारण नहीं बनतीं। झगड़े तो छोटी-छोटी बातों पर ही होते रहते हैं। लड़ना-झगड़ना यदि स्वभाव बने तो किसी भी अच्छे-से-अच्छे आधार का बहाना बनाकर लड़ा-झगड़ा जा सकती है। इस कारण एक सिरे से सब प्रकार के आधार हम नष्ट करते जाएँ तो कहाँ पहुँचेंगे? इस पद्धति से क्या भेद दूर होंगे। लोग मुरगे लड़ाते हैं। आधार है मुरगा। यदि कोई कहे कि मुरगे होंगे न लड़ाई होगी, इसलिए जितने मुरगे हैं, उन सबको नष्ट कर दो। तो क्या लड़नेवाले बाज़ आएँगे? वे अन्य किसी बात को आधार बनाकर झगड़ना शुरू कर देंगे। भेद-निर्माण करने के लिए किसी भी आधार का दुरुपयोग हो सकता है। मुरगे नहीं तो लोग भेड़ें भी लड़ा सकते हैं। और साँड़ों की लड़ाई का आनंद ले सकते हैं। पहलवान भी टकरा सकते हैं। कबूतर, तीतर यहाँ तक कि निर्जीव पतंगें भी लड़ाई जा सकती हैं। लड़नेवालों की कोई कमी है? बात-बात पर झगड़ा-निर्माण किया जा सकता है। इसलिए भेद अथवा विकृतियों को दूर करने के लिए व्यवस्था को ही समाप्त करने की बात मूर्खतापूर्ण है। सोचने का यह तरीक़ा ही ग़लत है।

एक स्कूल का उदाहरण लें। विद्यालय का कार्य है शिक्षा देना। इसकी एक व्यवस्था है। चपरासी से लेकर व्यवस्थापक तक कार्य बँटे हुए हैं। शिक्षा प्रदान कर लोगों को ज्ञानवान बनाने के लिए यह व्यवस्था आवश्यक है। अब जैसा कि आजकल होता है—हड़ताल, धरना, तोड़फोड़, उपद्रव होते हैं। इन्हें दूर करने के लिए कोई यदि कहे कि कुछ नहीं, विभिन्न कक्षाएँ बंद कर दो, विभिन्न उत्तरदायित्व के अंग सुन्न कर दो। बस केवल एक कक्षा, एक पुस्तक, एक छप्पर रखो और सब विभाग बंद कर दो। व्यवस्था को ही भेद का कारण मानकर यदि एक व्यवस्था बंद कर दी तो उस विद्यालय की क्या स्थिति होगी? और क्या उस स्थिति में भी शांति रहेगी? अशांति के लिए कुछ भी कारण खोजे जा सकते हैं। इसलिए व्यवस्था को भेद का कारण मानना ही बड़ी भूल है। सही बात तो यह है कि भेद और संघर्ष के आधार पर कोई व्यवस्था खड़ी नहीं हो सकती और जिसे हम व्यवस्था कहते हैं, उसमें भेद के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। भेद अथवा संघर्ष, व्यवस्था के कारण नहीं विकृतियों के कारण होते हैं। विकृतियों को हटाने के लिए व्यवस्था नष्ट करना यह ठीक नहीं, किंतु व्यवस्था ठीक करना ही एकमेव मार्ग है। मूल व्यवस्था में दोष नहीं रहता, सहकार्य अपेक्षित रहता है। दोष लोगों

की प्रवृत्ति में आता है। प्रवृत्ति ख़राब होने से व्यवस्था का पालन ठीक नहीं हो पाता।

इसलिए व्यवस्था के बारे में हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक व्यवस्था के दो रूप सदैव रहते हैं—एक आंतरिक और दूसरा बाह्य। ढाँचा चाहे जितना अच्छा हो और समयानुसार उसमें चाहे जितने परिवर्तन करने के यत्न हों, ढाँचा-ढाँचा ही रहेगा। बाहरी स्वरूप पर कोई वस्तु टिक नहीं सकती। वस्तु की धारणा तो उसमें निहित अंत:तत्त्व के कारण होती हैं। आंतरिक भावना अथवा शक्ति की बाहरी ढाँचे को टिकाए रखने का कारण बनती है। यदि यह अंदर की चीज़ नहीं रही, भीतर व्याप्त यह सूक्ष्म तत्त्व यदि ओझल हो गया तो विश्व की कोई भी शक्ति बाहरी ढाँचे की रक्षा नहीं कर सकती। इसलिए प्रत्येक व्यवस्था में निहित इस आंतरिक भावना की सावधानी से रक्षा करनी होती है।

बाहरी ढाँचा बिल्कुल निरुपयोगी हो सो बात नहीं है। आंतरिक तत्त्व को प्रकट होने के लिए कोई न कोई बाह्य स्वरूप ज़रूरी होता ही है। फिर भी मुख्य बात है आंतरिक। ऊपर हमने विद्यालय का उदाहरण लिया है। उसी के अनुसार सोचें। विद्यालय चलाना है, इसलिए हम यदि अच्छा भवन बना लें, कक्षाएँ शुरू कर दें, विज्ञान की प्रयोगशालाएँ स्थापित कर दें, प्रधानाध्यापक, शिक्षक आदि के कमरे निश्चित कर दें। समय चक्र निर्धारित कर दें, विद्यार्थियों के लिए समय, विषय कक्षा आदि सभी बाहरी ढाँचा पूर्ण कर लें, तब भी क्या विद्यालय ठीक चल पाएगा? इतना होने के बाद भी जिस एक बात की ज़रूरत होगी वह है शिक्षक। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच शिक्षा की इच्छा। अध्यापकों में यह आंतरिक अभिलाषा होना कि विद्यार्थियों को उत्तम शिक्षा प्रदान करूँगा और विद्यार्थियों में यह इच्छा होना कि हम अच्छी से अच्छी ज्ञान-विज्ञान की बातें सीखेंगे, ज़रूरी है। यह इच्छा है जो किसी थर्मामीटर से न नापी जा सकती है और न किसी दूरबीन से देखी जा सकती है, फिर भी उसका होना ज़रूरी है। इस आंतरिक इच्छा का अनुभव जितने प्रमाण में उस विद्यालय में होगा, उतना ही वह बाहरी ढाँचा कार्यक्षम होगा। आंतरिक इच्छा न हो तो बाहरी ढाँचा चार कौड़ी का भी नहीं; एकदम व्यर्थ प्रतीत होगा। केवल बाहरी और औपचारिक ढंग से मिलने-जुलने, अभिवादन करने, प्रेम का प्रदर्शन करने मात्र से काम नहीं चलेगा। आंतरिक शक्ति ही मुख्य शक्ति है। व्यवस्था कोई भी हो, उसका यह आंतरिक पक्ष महत्त्वपूर्ण होता है।

परमात्मा द्वारा निर्मित इस मानव शरीर को ही देखें तो व्यवस्था संबंधी यह तथ्य स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता। शरीर का बाहरी ढाँचा किस प्रकार आधार पर टिका है? प्रकृति ने अपनी संपूर्ण बुद्धि कुशलता ख़र्च कर मानव शरीर रूपी यह उत्कृष्ट यंत्र निर्माण किया है। शरीर की विभिन्न क्रियाएँ प्रतिक्षण होती रहती हैं। जिन्हें हम बाहरी अंगों के संचालन के रूप में देख पाते हैं। शरीर की सभी आवश्यकताएँ प्रतिक्षण पूरी की

जा रही हैं। खाना-पीना, चलना-बोलना, हाव-भाव, सुख-दुःख की अनुभूतियों के कितने ही कार्य हो रहे हैं। किंतु प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिए योग्य दृष्टि और उचित मार्ग का संचालन कौन कर रहा है? पसीना निकलता है। कितना निकलना चाहिए? पसीने के साथ शरीर की कई प्रकार की अवांछित चीज़ें बाहर जा रही हैं। इनका प्रमाण कौन तय करता है? और फिर कभी-कभी शरीर क्षीण पड़ता है तो वास्तव में कौन सा तत्त्व है, जो क्षीण पड़ गया है? हम कहते हैं कि वह प्राणतत्त्व है। प्राण ही शरीर में विराजमान होकर इस बाहरी ढाँचे को संचालित कर रहा है। इस प्राणतत्त्व की धारणा करना ही संपूर्ण व्यवस्था के रहस्य को पहचानना है। यही आंतरिक पक्ष की महत्ता है।

इस प्रकार व्यवस्था कोई भी हो, उसका आंतरिक पक्ष महत्त्वपूर्ण होता है। किसी भी व्यवस्था को समझने का अर्थ है उसका आंतरिक भाव पहचानना। यह आंतरिक भाव ही मुख्य चैतन्य का कारण है। इसलिए लोग अब पूछते हैं कि भारत की वर्ण-व्यवस्था यदि इतनी श्रेष्ठ और पूर्ण थी तो भारत का पतन फिर क्यों हुआ? प्राचीन काल में यदि वर्ण-व्यवस्था से समाज को पूरा-पूरा लाभ था तो बुराइयाँ क्योंकर उत्पन्न हुईं? तब इसका अर्थ संपूर्ण व्यवस्था को ख़राब मानना नहीं हो सकता और न ही संपूर्ण व्यवस्था को नष्ट करना ही उसका उपाय हो सकता है। व्यवस्था के आंतरिक भाव में आई क्षीणता ही इसका असली कारण गिना जाएगा। इस क्षीणता को हटाने के लिए आवश्यक है कि हम अधिक तन्मयता के साथ उस व्यवस्था के आंतरिक चैतन्य को जाग्रत् करने का यत्न करें। प्राण जगा पाएँगे तो विकृतियाँ पलक मारते भाग खड़ी होंगी, शरीर स्वस्थ होगा और बाह्य ढाँचा भी कार्यक्षम दिखाई पड़ने लगेगा।

इसलिए विश्व में प्रचलित सामाजिक व्यवस्थाओं के संदर्भ में विचार करते समय जब हम अपने देश की संस्कृति, सभ्यता का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं, तब हमें गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिए कि वर्ण व्यवस्था के नाम से जिस सामाजिक रचना का अधिष्ठान हमारे देश में निर्माण किया गया, उसका मूल अंतर्भाव क्या है? वह अधिष्ठान आज भी हमें किस प्रकार उपयोगी हो सकता है? विकृतियों को दूर कर यदि हम उसका वास्तविक स्वरूप स्वीकार करें तो वह आज भी विश्व की श्रेष्ठतम मानव रचना में कौन सा स्थान ले सकती हैं?

सर्वप्रथम हम आज की परिस्थिति का विश्लेषण करें। प्रत्येक मनुष्य की सामाजिक निर्भरता से इनकार नहीं किया जा सकता। व्यक्ति का जीवन समाज पर निर्भर है। इस निर्भरता के कारण व्यक्ति के भीतर एक प्रकार की निराशा सी छा जाती है। व्यक्ति सोचता है कि वह अकेले कुछ नहीं कर सकता। वह अपने को असहाय अनुभव करता है। व्यक्ति सोचता है कि वह सब भाँति परावलंबित है, उसकी कोई हस्ती नहीं। इस

अवस्था में वह अगतिक सा कार्य करता है। व्यक्ति के विकास का उत्साह क्षीण पड़ता है। यह सामाजिक परावलंबन हटना चाहिए, तभी वह विकास कर सकता है। परावलंबन की अवस्था में तो व्यक्ति सदैव दूसरों का मुँह ताकता रहेगा। यदि वह परिस्थितिया का स्वयं स्वामी नहीं है, उसकी अपनी शक्ति नहीं है, वह क्योंकर नूतन शोध-बोध के लिए अग्रसर होगा? इसलिए व्यक्ति अपने विकास में स्वयं पूर्ण होना ज़रूरी है।

व्यक्ति के इस परावलंबन को दूर करने के लिए भारतीय पद्धति से जो विचार किया गया, वह थोड़ा सा दृष्टिकोण का ही परिवर्तन है। यह सोचने के बजाय कि व्यक्ति परावलंबित है, हमारे यहाँ कहा गया है कि व्यक्ति परस्परावलंबित है। सभी आपस में एक-दूसरे से अवलंबित हैं। इतना ही नहीं, हमारे यहाँ परस्पर अवलंबित होने की भावना से भी ऊपर उठकर यह सोचा गया कि आपस में एक-दूसरे के अनुकूल हैं। अनुकूलता और अवलंबन के अर्थ में बहुत बड़ा अंतर है। अवलंबन में दीनता है, परस्परावलंबन में भी निर्भरता है, किंतु अनुकूलता में अपनी शक्ति का समादर है। जैसे पुत्र पिता पर अवलंबित है। इतना ही सोचकर व्यवहार करने पर उनमें एक दूरी बनी रहना स्वाभाविक है। किंतु यदि ऐसा सोचा गया कि पिता और पुत्र दोनों आपस में परस्परानुकूल हैं तो एक का सुख-दूसरे का भी होगा। यही परस्परानुकूलता हमारी भारतीय जीवन रचना-दृष्टि की विशेषता है।

जिस सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति और व्यक्ति के बीच अर्थात् समाज के व्यवहार में परस्पर अनुकूलता होगी, वहाँ व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसका सम्मान सुरक्षित होगा। व्यक्ति स्वतंत्र है, इसका अर्थ इस संदर्भ में फिर यह हुआ कि वह स्वतंत्र है, इस बात के लिए कि वह दूसरों के लिए अनुकूल बनने के भाव में स्वयं सक्षम और समर्थ होना आवश्यक माने। अनुकूल वही हो सकता है, जिसकी अपनी सत्ता हो। अनुकूल होना दूसरे पर अवलंबित होना नहीं है। अवलंबन में दीनता और स्वार्थ है। परतंत्रता का भाव है। परस्परानुकूलता में किसी प्रकार की परतंत्रता का भाव नहीं है। दूसरों के प्रति अनुकूल आचरण करने की स्वतंत्रता है। यानी परस्पर अनुकूल बनने में अपना पुरुषार्थ प्रकट होता है। इस प्रकार व्यक्ति में निहित शक्तियों का अधिकाधिक उपयोग कर दूसरों का भला करने की भावना में सतत विकसित होने का अवसर मिलता है।

परस्परानुकूलता में जो पुरुषार्थ प्रकट होता है, वह साधारण बात नहीं। यही समाज की धारणा-शक्ति है, जिसे हमारे यहाँ धर्म कहा गया है। यानी कर्तव्य का महत्त्व उपस्थित हुआ। हमारे वे सभी कार्य जो समाज की धारणा के लिए हों, 'धर्म' हैं। 'धर्म' ही वह सबसे बड़ा पुरुषार्थ है, जिस पर समाज के अन्य सभी पुरुषार्थ टिके हैं। व्यक्ति और समाज दोनों के परस्पर में स्वतंत्रता की कड़ी बिठानेवाला यह धर्म है। इसीलिए धर्म की व्याख्या करते हुए महाभारतकार ने सार बात बताई कि भाई, धर्म कितना ही गूढ़

हो, परंतु यह सामान्य सी चीज़ है कि दूसरों को पीड़ा पहुँचाना अधर्म है और दूसरों को आनंद पहुँचाना धर्म है। यही धर्म है कि हम आपस में अनुकूल बनें। वही व्यवहार, आचरण, चेष्टा, प्रयत्न, चिंतन, व्यवस्था श्रेष्ठ है, जो परस्परानुकूल हो। हम सबका विचार लेकर कार्य करें और सभी इस प्रकार व्यवहार करें तो सुख की वर्षा अवश्य होगी। जैसे हम खो-खो का खेल खेलते समय एक-दूसरे को खेलने का अवसर देते हैं तो पूरा खेल आनंद से भर उठता है। इसके स्थान पर यदि कोई व्यक्ति खो-खो में खेलने का अवसर मिलते ही यह सोचे कि अब अवसर मिला है, इसलिए मैं किसी को खो नहीं दूँगा—केवल खुद ही खेलता रहूँगा तो खेल ख़राब हो जाएगा। वह स्वयं आनंद नहीं उठा सकेगा और न अन्य खिलाड़ी ही आनंदित होंगे। एक-दूसरे को खो देकर खेलने में आनंद है। ठीक इसी प्रकार जब हम एक-दूसरे के प्रति अनुकूल होकर कार्य कर सकते हैं, यानी धर्माचरण करते हैं तो सभी आनंदित होते हैं और उस आनंद का एक हिस्सा हमें भी मिलता है। हमारा स्वयं का भी विकास होता है। व्यक्ति और समाज दोनों सुखी होते हैं।

परस्परानुकूलता पर आधारित यह व्यवहार-चक्र न केवल सुखद वरन् चैतन्यपूर्ण भी रहता है। इसमें न बोझ की मजबूरी और न मज़दूरी की माँग। इसमें न दूसरों के सामने हाथ पसारने की दीनता और न ही अपनी शक्ति स्वतंत्रता-सत्ता को केवल अपने ही लिए बचाए रखने का लालच। इसमें स्वयं अधिकाधिक उपयोगी होने की सात्त्विक चाह है। यही विशालता है। कहा गया है कि संकुचितता में दुःख और विशालता में सुख है। यह मेरा नहीं समाज का है। इसलिए समाज हित में सबकुछ लगाने के भाव में कृतकृत्यता है, संतोष है। इस संतोष से बढ़कर व्यक्ति को और क्या चाहिए? अधिकाधिक विकास, अधिकाधिक शक्ति और अधिकाधिक समर्पण यही क्रम है, जो व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ प्रदान करता है।

यह व्यवहार चक्र सृष्टि के संचालन नियमों के भी अनुकूल है। इसलिए यह सुख कई गुना अधिक बढ़ जाता है। संपूर्ण सृष्टि के संचालन का भी यही आधार है। छोटा सा उदाहरण लें। मनुष्य और वनस्पति के बीच कैसा मधुर आदान-प्रदान चला है। मनुष्य को आवश्यकता है ऑक्सीजन की, जो उसे वनस्पति से प्राप्त होती है। और वनस्पति को ज़रूरत है कार्बन-डाई-ऑक्साइड की, जो उसे मनुष्य से मिलती है। एक-दूसरे के अनुकूल यह व्यवस्था है। सृष्टि में कोई कहीं किसी वस्तु को रोक रखने के लिए तैयार नहीं। हर पौधा अपना सबकुछ न्योछावर कर रहा है और प्रत्येक कण उसे नई बहार पहुँचाने को तत्पर है। कैसा स्वर्गिक आनंद छाया है। यह सब परस्परानुकूलता के कारण है। एक-दूसरे में विरोध या संघर्ष का तो प्रश्न ही नहीं है। अवलंबन भी नहीं, निरपवाद रूप से सबकुछ आपस में अनुकूलता से संचालित है। इस प्रकार के सृष्टि

संचालन के नियमों में व्यक्ति जब तादात्म्य अनुभव करता है तो सारी सृष्टि ही उसके लिए आनंदमय प्रतीत होती है। आपस में देना ही जीवन है, रोक रखना मृत्यु है, मृत्यु को छोड़कर हम जीवन का वरण करें। अमरता का वरण करें। मृत्यु को जीत लें। इसीलिए भारतीय ऋषि-मुनियों ने इस व्यवस्था के माननेवालों का 'अमृतस्य पुत्राः' अमरता के पुत्र कहकर संबोधित किया है।

यह है अपने समाज-जीवन की मुख्य आधारशिला। इसी आधार पर हमारे यहाँ संपूर्ण मानव-जीवन-रचना की व्यवस्था की गई। वर्ण-धर्म की स्थापना हुई। इस व्यवस्था में व्यक्तियों का, समूहों को, समाज का, राज्य का अथवा अन्य कई प्रकार की सत्ताओं का अलग-अलग और परस्पर विरोधी रूप लेकर विचार नहीं हुआ। पश्चिम में जिस प्रकार इन सब सत्ताओं को परस्पर विरोधी और आपस में संघर्षयुक्त मानकर विचार किया, वैसा भारत में नहीं हुआ। भारत ने माना कि भेद देखना या भेद-निर्माण-भावना सृष्टि के नियमों के विपरीत है। यह विनाश का कारण बनेगी, रचना का नहीं। इसलिए जिस वर्ण-व्यवस्था की हम यहाँ चर्चा कर रहे हैं, उसमें समभाव है, भेदभाव नहीं। सर्व-सम-भाव ही वर्ण व्यवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति तथा व्यक्ति समूह को विकास की स्वतंत्रता और अनुकूल आचरण का दायित्व सौंपकर यह व्यवस्था खड़ी की गई है। ब्राह्मण को सोचना है कि वह संपूर्ण समाज में ज्ञान-दान करेगा। उचित संस्कार देगा। ज्ञान-दान के लिए ब्राह्मण को चाहे जितना संयम, साधन, तप, अध्ययन का कष्ट उठाना पड़े, वह उसके लिए धर्म ही है। यही है उसके द्वारा होनेवाला यज्ञकर्म। यज्ञ को कुछ लोग हवनकुंड बनाकर मंत्रोच्चारण के साथ आहुति डालने तक सीमित समझने की भूल करते हैं। यह यज्ञविधि है, किंतु यही मात्र यज्ञ नहीं। यज्ञकर्ता का जीवन ही वास्तव में यज्ञकुंड है। यज्ञ करते समय कहा जाता है कि 'इदं इंद्राय, इदं न मम' यह जो कुछ मेरा है, इंद्र के लिए है, मेरे लिए नहीं। दूसरों के प्रति मेरे जो कर्तव्य हैं, उन्हें पूर्ण करने के लिए जिस परस्परानुकूलता की आवश्यकता है, उसी दृष्टि से जीवन में प्रयत्नशील होना यज्ञ है।

इस यज्ञ के मूलभाव को स्पष्ट करनेवाली एक कथा महाभारत में है। धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर सभी आनंदित थे। सभी मानते थे कि इस यज्ञ से बड़ा कोई दूसरा यज्ञ नहीं हो सकता। पांडव, भगवान् कृष्ण और राजागणों के बीच इस यज्ञ की महान् उपलब्धियों पर चर्चा चल रही थी कि उसी समय एक नेवला सभा मंडप के बीच आकर यज्ञस्थल पर लोटपोट होने लगा। नेवला आश्चर्यजनक था, क्योंकि उसका आधा शरीर सोने का था। वहाँ उपस्थित सभी लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ कि आख़िर इस नेवले का आधा धड़ सोने का क्यों है? इस स्थल पर आकर यज्ञभूमि में क्यों घूम रहा है? उत्सुकता बढ़ी तो भगवान् कृष्ण ने कहा कि इस नेवले ने इसके पूर्व जो यज्ञ देखा है, वह इस राजसूय यज्ञ से भी महान् है। अब तो सभी

अचंभे में पड़ गए कि ऐसा कौन सा यज्ञ कब हुआ होगा? आख़िर भगवान् कृष्ण ने बताया कि एक बार भीषण अकाल पड़ा था। एक ब्राह्मण परिवार उस अकाल में कई दिनों से भूखा रह रहा था। एक दिन ब्राह्मण को भिक्षा में किसी स्थान पर थोड़ा सत्तू मिल गया। वह प्रसन्नतापूर्वक सत्तू लेकर घर लौटा। ब्राह्मण के घर में उसकी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू—कुल चार प्राणी थे। उसने उस सत्तू के बराबर चार हिस्से किए। सत्तू घोलकर प्रत्येक को दिया और इतने दिनों के बाद यह थोड़ा सा सत्तू पेट में पहुँचने की स्थिति होने के कारण हाथ जोड़कर भगवान् को धन्यवाद दिया। भगवान् का स्मरण कर वे सत्तू खाने ही वाले थे कि द्वार पर एक भूखा अतिथि आ खड़ा हुआ। कई दिनों से उसके भी पेट में अन्न का दाना नहीं पहुँचा था। ब्राह्मण ने अपना हिस्सा उसे भेंट कर दिया। किंतु उस अतिथि की भूख इतनी अधिक थी कि वह और अधिक माँग बैठा। तब ब्राह्मणी ने और फिर पुत्र और पुत्रवधू ने भी अपना-अपना हिस्सा बारी-बारी से उस अतिथि को भेंट कर दिया। अतिथि संतुष्ट होकर चला गया। यह देखकर ये चारों प्राणी अत्यंत आनंदित हुए। किंतु भूख के कारण उन चारों ने प्राण त्याग दिए। जिस स्थान पर सत्तू खाकर अतिथि ने पानी पिया था, वहाँ जूठे पानी की कुछ बूँदें गिरी थीं। यह नेवला सत्तू की सुगंध को सूँघता हुआ जब उन बूँदों पर से निकला तो उन बूँदों के स्पर्श से इसका आधा शरीर सोने का हो गया। तब से यह नेवला यज्ञस्थलों पर जाकर प्रयत्न करता है कि कोई वैसा ही श्रेष्ठ यज्ञ हो तो उसके स्पर्श से उसका बचा हुआ धड़ भी सोने का हो जाए। अब इस नेवले को इस यज्ञ में भी निराशा मिली, क्योंकि राजसूय यज्ञ उतना श्रेष्ठ नहीं, जितना उस ब्राह्मण परिवार ने यज्ञ संपन्न किया था। इस कहानी में यज्ञ की मूल भावना का स्पष्टीकरण भली-भाँति होता है। अपने कर्तव्य कर्म के लिए सर्वस्व अर्पित करने की भावना ही मुख्य बात है। यह परस्परानुकूलता का आधार है। इसे ही त्याग कहा जाता है। केवल छोड़ देना त्याग नहीं है। दूसरों को सुख पहुँचाने की दृष्टि से किया गया कार्य ही त्याग है। यह यज्ञ यानी त्याग की भारतीय संस्कृति की विशेषता है। ऐसा त्यागमय जीवन स्वीकार करनेवाला ब्राह्मण समाज के लिए ज्ञानदान का व्रत स्वीकार करता था। इसी प्रकार शेष सभी वर्णों के कर्तव्य, कर्म निर्धारित हुए और यज्ञ की भावना से वे संपादित हुए। यही भारतीय जीवन-रचना का स्वरूप है।

इस व्यवस्था को यदि हम पश्चिम की आँखों से देखेंगे तो कुछ भी समझ में आना कठिन है। आज वर्ण व्यवस्था में कई विकृतियाँ आई होंगी और उन विकृतियों को दूर भी करना होगा। किंतु जहाँ तक इसकी मूल भावना का प्रश्न है, यह पश्चिम की दृष्टि से देखी-समझी नहीं जा सकती। पश्चिम ने तो समाज रचना के आधार में प्रतियोगिता, प्रतिद्वंद्विता को ही प्रमुख माना है। स्वार्थपूर्ण संघर्ष को मानव की मूल प्रवृत्ति मानकर चारों ओर के ढाँचे में कभी न समाप्त होनेवाली प्रतिस्पर्धा को ही वहाँ प्रगति का मापदंड

समझा गया है। निरंतर और हर स्तर पर संघर्ष की कल्पना ही पाश्चात्य जीवन-दर्शन का आधार है। इसलिए वहाँ परस्परानुकूलता का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। परावलंबन भी तब तक है, जब तक स्वार्थ है। संघर्ष में जो जितना सशक्त है, वह उतना ही जीवित रहने का अधिकारी है। इसलिए वहाँ चार लोग एकत्र भी आते हैं तो केवल इसीलिए कि संघर्ष में उन्हें सबकी मिलकर शक्ति चाहिए। अकेला व्यक्ति ठीक प्रकार से संघर्ष नहीं कर पाता, इसलिए चार व्यक्ति मिलकर शक्ति अर्जित करेंगे। जो वर्ग बनेंगे, वे भी आपस में लड़ने के लिए ही बनेंगे। वहाँ के ट्रेड यूनियंस इसीलिए बने हैं, ताकि स्वार्थों का संरक्षण कर सकें।

भारत में वहाँ जैसे ट्रेड यूनियंस नहीं बने। विभिन्न व्यवसाय करनेवाले, भारत में, जातियों के आधार पर गिने जाते हैं। भारत में जाति-व्यवस्था रही। लोहार, चमार, नाई, बढ़ई, काछी, माली आदि कितनी ही प्रकार की जातियाँ बनीं। ऊपर से देखने में ऐसा ही कहा जाएगा कि ये भी ट्रेड यूनियंस ही थीं। किंतु पश्चिम से इनमें ज़मीन आसमान का अंतर था। इनमें परस्पर संघर्ष, प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्धा नहीं पूरकता, सामंजस्य और सहयोग था। एकात्मकता थी। समाज सेवा के लिए ही सबका योगदान रहा है। आज की विकृत और शिथिल अवस्था में भी हम इन जातियों के इस परस्पर सहकार्य की भावना को देख सकते हैं। अनेक जातियाँ होते हुए भी सब एक ही व्यवस्था का अंग थीं। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग होते हुए भी सबका कार्य-उद्देश्य एक ही रहता है। ऐसा नहीं होता कि अंग आपस में टकराने लगें। होड़ लगाएँ और जो सबमें शक्तिशाली हो, वही जीवित रहे।

इस संबंध में एक रोचक कहानी भारतीय समाज में प्रचलित है। कथा है कि एक बार शरीर के विभिन्न अंगों में संघर्ष छिड़ गया। हाथ, पैर, नाक, आँख, मुँह यहाँ तक दाँत, जीभ आदि सभी उपांग अपना-अपना महत्त्व बखान करने लगे। प्रत्येक अंग की गर्वोक्ति थी कि उसके बिना शरीर का काम नहीं चल सकता। हर एक अपने को सर्वश्रेष्ठ मानकर बारी-बारी से शरीर में से विदा होता गया। हाथों ने काम करना बंद कर दिया। शरीर को कष्ट हुआ, किंतु किसी प्रकार काम चल गया। हाथों ने सोचा कि शरीर तो उनके बिना भी काम चला ले गया। हाथों में हार मान ली। इसी प्रकार बारी-बारी से प्रत्येक अंग ने अपनी शक्ति आजमा ली और फिर भी किसी-न-किसी प्रकार शरीर का काम न रुकता मानकर समझ गए कि शरीर से अलग उनकी कोई सत्ता नहीं है। किंतु इस झगड़े में शरीर की जो फज़ीहत हुई, उस कारण प्राण देवता कहने लगे कि लो, इस बार मैं चला। प्राण ने चलने की तैयारी की तो सब अंग शिथिल पड़ने लगे—आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा, पैर लड़खड़ाने लगे, हाथ लूले पड़ गए, साँस रुकने लगी। भारी संकट उपस्थित हो गया तो सभी अंग प्राण से कहने लगे कि भाई, तुम जाने की तैयारी न करो।

तुम्हारे बिना तो हम एक क्षण भी नहीं रह सकते। तात्पर्य यह कि शरीर के विभिन्न अंगों में आपसी सामंजस्य है, इसलिए शरीर की सब आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। इन अंगों में परस्पर संघर्ष की कल्पना मूर्खता है। ये परस्पर पूरक ही नहीं, एक हैं। शरीर में एकात्मकता है। अलग-अलग स्वार्थ और उससे उत्पन्न होनेवाली प्रतियोगिता के कारण उनका संचालन नहीं होता। एक ही शरीर के विभिन्न अंग होने के नाते सब अलग-अलग होते हुए भी एक हैं। ये सब अविच्छिन्न, अभेद्य हैं। उनकी एकात्मकता का कारण है 'प्राण'। यही प्राण सबकी धारणा करता है। ठीक उसी प्रकार समाज शरीर में भी एक प्राण होता है। इस प्राण की रक्षा करनी पड़ती है। प्राण को बलवान बनाना पड़ता है। प्राणायाम करना होता है। राष्ट्र की प्राण-रूप इस एकात्म भावना का भी यही महत्त्व है। राष्ट्र की एकात्म शक्ति को ठीक प्रकार से सँजोकर चलते गए तो समाज शरीर के सभी प्रकार के भौतिक और आध्यात्मिक सुख सुलभ हो जाएँगे।

संपूर्ण समाज की इतनी सुंदर, सुखद, सर्वांगपूर्ण व्यवस्था कर आर्य ऋषियों को जो आनंद प्राप्त हुआ, उसका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि हज़ारों मस्तक, हज़ारों बाहु, हज़ारों नेत्र, हज़ारों उदर, हज़ारों जाँघें और हज़ारों पैरों वाला एक पुरुष पृथ्वी पर चारों ओर फैला हुआ है। ज्ञानी मनुष्य इसके मुख हैं। शूरवीर बाहु हैं, किसान और व्यापारी इसके उदर तथा जाँघें हैं, कारीगर इसके पैर हैं। ज्ञानी, शूर, व्यापारी और शिल्पी मिलकर एक देह हैं। एक देह में जिस प्रकार एकात्मकता होती है, वैसी एकात्मकता इस जनता रूपी पुरुष में होनी चाहिए—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा त्यतिष्ठत् दशां गुलम।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहु राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शुद्रो अजायत।।

इसलिए समाज के विभिन्न वर्गों में संघर्ष, भेद, प्रतिस्पर्धा नहीं, सामजंस्य है। वर्ण-व्यवस्था में भी जो लोग भेद देखते हैं, वे सचमुच कुछ नहीं देखते। वर्ण भेद नहीं व्यवस्था है। इसमें छोटा-बड़ा, ऊँच-कनिष्ठ आदि सोचना भूल करना है। एकात्मकता के आधार पर सब अपना-अपना कार्य करें तो सुख की सिद्धि होगी। गीता में कहा है कि—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।

और

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वामिदं ततम्
स्वकर्मणा तमभ्यचर्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

इस प्रकार भारतवर्ष में व्यक्ति और समाज की सर्वांगीण प्रगति तथा ऐहिक, पारलौकिक सभी सुख प्राप्त करने के लिए वर्ण-व्यवस्था की रचना हुई। यही आज तक की समस्त रचनाओं में श्रेष्ठ रचना है। इस रचना में जो विकृतियाँ आ गई हों, उन्हें दूर हटाकर इसका वास्तविक स्वरूप आकलन करना ही योग्य और श्रेयस्कर है।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

10

दोउन राह न पाई

यद्यपि भारत में समाजवादी विचार और समाजवादी पार्टियाँ उस समय से ही विद्यमान हैं, जब से यूरोपीय विचारों ने यहाँ के शिक्षित लोगों को प्रभावित करना प्रारंभ किया, तथापि सैद्धांतिक रूप में समाजवाद यहाँ के निवासियों के राजनीतिक या सामाजिक जीवन में अपना कोई विशेष स्थान नहीं बना सका। परंतु कांग्रेस के आवडी अधिवेशन[1] के पश्चात्, जिसमें कांग्रेस ने समाजवादी-समाज-रचना को अपना अंतिम लक्ष्य घोषित किया, स्थिति बदल गई। जहाँ तक जनसाधारण का प्रश्न है, वह आज भी उससे उतनी ही दूर है। कांग्रेस द्वारा समाजवाद के लक्ष्य को अपनाए जाने के बाद भी यह जनता का हृदय स्पर्श नहीं कर पाया है। जनता उसके प्रति उत्साहित नहीं है। परंतु, ऐसा समझा जाने लगा है कि सरकार की नीतियाँ उसी के अनुरूप ढलती जा रही हैं और इस कारण जो सरकारी निर्णयों को प्रभावित करने का विचार करते हैं, उन्हें अवश्य ही चिंता हो गई है। आज इस विचारधारा के अनुयायियों की संख्या के अनुपात में इसे कहीं अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया है। साथ ही प्रधानमंत्री की बहु-प्रचारित लोकप्रियता और सम्मान के कारण कुछ समय के लिए तो ऐसा लगने लगा है, मानो समाजवाद यहाँ की जनता का सर्वप्रिय जीवन-दर्शन हो गया है। आज अपने आप को समाजवादी कहना, एक फैशन-सा हुआ लगता है। समय के प्रवाह में बहनेवाली राजनीतिक पार्टियों में तो इस बात की होड़-सी लगी है कि उनमें से कौन अपने को समाजवाद का बड़ा पुरस्कर्ता सिद्ध कर सकता है। हिंदू महासभा भी हिंदू समाजवाद की बातें करने लगी है। वैदिक विचारकों ने भी पुराना साहित्य कुरेदकर 'वैदिक समाजवाद' की नई खोज कर डाली

1. 10 जनवरी, 1955 को आवडी (मद्रास) में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। कांग्रेस ने उछरंगराय नवलशंकर ढेबर की अध्यक्षता में संकल्प पारित कर सामाजिक विकास के लक्ष्य के लिए समाजवादी स्वरूप को स्वीकार किया था।

है। यह सब बिना यह समझने का कष्ट किए ही हो रहा है कि आख़िर समाजवाद क्या वस्तु है और इस नारे के पीछे कौन सी राष्ट्रघाती प्रेरणाएँ काम कर रही हैं?

इस देश में समाजवाद का नारा बुलंद करनेवाली प्रथम पार्टी कांग्रेस नहीं है। कांग्रेस द्वारा समाजवाद स्वीकार किए जाने के पूर्व भी यहाँ समाजवादी पार्टियाँ थीं और आज भी हैं। विभिन्न समाजवादी पार्टियों के असंतुष्ट लोग भी अपने को समाजवादी ही कहते हैं। इतना ही नहीं, उनका तो दावा यह होता है कि वे जिस समाजवाद को मानते हैं, वही अधिक शुद्ध है। इस स्थिति ने समाजवाद के बारे में और भी अधिक भ्रम बढ़ा दिया है। यूरोप में वैसे भी समाजवाद के अनेक प्रकार विद्यमान हैं। रूजवेल्ट,[2] हिटलर, मुसोलिनी[3] और स्टालिन[4] सभी अपने आपको समाजवादी कहते थे। ऐसे भी लोगों की कमी नहीं, जिन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष राजनीति से दूर रहने के बाद भी अनेक प्रकार के समाजवादी सिद्धांतों की रचना कर डाली है। भारत में इन सभी प्रकार के समाजवादी पंथों के अनुयायी विद्यमान हैं। कुछ इस प्रकार के भी प्रयास यहाँ होते रहे हैं, जिसमें यूरोपीय समाजवाद को भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के अनुरूप ढालकर स्वीकार करने का आग्रह रहा है।

बाबू जयप्रकाश नारायण आज भी समाजवादी बने हुए हैं। एम.एन. राय[5] ने अपने जीवन के अंतिम काल में समाजवाद का पूर्णतः त्याग कर दिया था, तथापि मृत्यु के समय भी वे रेडिकल सोशलिस्ट ही कहलाए। उन राजनीतिज्ञों के साथ-साथ जो बिना समझे-बूझे किसी भी समय कोई भी बात कह सकते हैं, अन्य सिद्धांतवादी और राजनीतिज्ञों ने भी इस समाजवाद के बारे में ऐसी धारणाएँ पैदा कर दी हैं कि लोग यही नहीं समझ पाते कि वे हैं कहाँ पर।

एक बार ऐसा व्यंग्य किया गया था कि समाजवाद कोई जीवन-दर्शन नहीं अपितु एक अटपटी वृत्ति मात्र है। यदि हम समाजवादियों के विचारों का विश्लेषण करें तो बहुत अंशों तक यह उक्ति सही प्रतीत होगी। अभी समाजवादियों की यह एक सर्वमान्य अभिलाषा है कि साधारण मनुष्य का जीवनस्तर उठाया जाए। वे उन लोगों के विरुद्ध, जिन्हें वे कामचोर मानते हैं या मज़दूरों के उचित लाभांशों की प्राप्ति में बाधक समझते हैं, मेहनतवश मज़दूरों का पक्ष ग्रहण कर लेते हैं। कुछ लोग स्वामी विवेकानंद को भी समाजवादी घोषित करते हैं, चूँकि उन्होंने पीड़ित, शोषित मानवता के प्रति सहानुभूति

2. फ्रैंकलिन डेलानो रूज़वेल्ट (1882-1945), अमरीका के 32वें राष्ट्रपति (1933 से 1945 तक) थे।
3. बेनिटो मुसोलिनी (1883-1945) फासीवादी नेता, जो कि 1922 से 43 तक इटली के प्रधानमंत्री रहे।
4. जोसेफ़ स्टालिन (1879-1953) सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव और 1941 से 53 तक सोवियत यूनियन के प्रीमियर रहे। अपने विरोधियों की हत्याएँ करवाने के लिए विश्व-इतिहास में कुख्यात हैं।
5. मानवेंद्रनाथ राय (1887—1954) मेक्सिको और भारत दोनों की ही कम्युनिस्ट पार्टियों के संस्थापक थे। 1940 में मार्क्सवाद से अलग हो नवीन मानवतावाद दर्शन के प्रतिपादक बने।

की आवाज़ उठाई थी। एक भाषण में उन्होंने कहा भी था कि ''मैं भी एक समाजवादी हूँ। इसलिए नहीं, कि समाजवाद कोई पूर्ण दर्शन है, अपितु इसलिए कि मैं समझता हूँ कि भूखे रहने की अपेक्षा एक कौर मात्र प्राप्त करना भी अच्छा है। सुख-दुःख का पुनर्विभाजन सचमुच ही उस स्थिति से अधिक श्रेयस्कर होगा, जिसमें निश्चित व्यक्ति ही सुख या दुःख के भागी होते हैं। इस कष्टपूर्ण संसार में प्रत्येक को अच्छे दिन देखने का अवसर मिलना ही चाहिए।'' बुभुक्षितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति और समाज में उन्हें समान स्तर तथा सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करा देने की उनके जैसी इच्छा हृदय में रखनेवाले कितने ही समाजसेवी व्यक्ति आज भी विद्यमान हैं।

उनकी सदिच्छा सराहनीय है। इस दुःख और कष्टों से परिपूर्ण विश्व में असमानता, अन्याय, दुःख, कष्ट, उत्पीड़न, प्रताड़न, दासत्व, शोषण, क्षुधा और अभाव को देखकर कोई भी व्यक्ति जिसे मानवीय अंतःकरण प्राप्त है, अपने पीड़ित बंधुओं के प्रति आत्मीयता की वृत्ति अपनाए बिना नहीं रह सकता। परंतु जिस समाजवाद की हम चर्चा कर रहे हैं, वह यहीं तक सीमित नहीं है। केवल यह कहना ही ठीक नहीं है कि वह इस दुःखपूर्ण स्थिति का अंत चाहता है, किंतु उसने स्थिति का विश्लेषण किया है, रोग का निदान किया है और उसके लिए ओषधि की योजना भी की है। क्योंकि इस कारण जिस कार्ल मार्क्स का इन्हें शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ता है, उस मार्क्स ने यद्यपि एक करणीय योजना प्रस्तुत की और बोल्शेविकों ने उस स्वप्न को साकार करने के लिए सफलतापूर्वक रूस की सत्ता पर अधिकार भी कर लिया तथापि बोल्शेविक क्रांति से लेकर आज तक का रूस का इतिहास विभिन्न क्षेत्रों में अनेक सफलताओं के बावजूद इस पद्धति की अपूर्णता का ही द्योतक रहा है। मार्क्स का समाजवाद आज तक बौद्धिक कल्पना मात्र तथा व्यावहारिक क्षेत्र में असफलताओं के साथ भीषण परिणामदायी ही सिद्ध हुआ है। हम देखते हैं कि समाजवाद का पहला हमला लोकतंत्र पर हुआ। लौह आवरण के पीछे रहनेवालों को छोड़कर समस्त विश्व के समाजवादी विचारक आतंकित हो उठे। उन्हें लोकतंत्र में आस्था थी। सच पूछा जाए तो लोकतांत्रिक आदर्शों के कारण ही उन्हें जनसाधारण के प्रति सहानुभूति थी और वे उसके लिए समानता का स्थान प्राप्त करने की बात करते थे। लोकतंत्र ने ही उन्हें राजनीतिक समानता प्रदान की थी। पर वैज्ञानिक अन्वेषणों और यंत्रीकृत उत्पादन पद्धति ने उन्हें आर्थिक विषमता के गड्ढे में ढकेल दिया। परिणामतः ऐसी राजनीतिक परिस्थिति में समानता का कोई महत्त्व न रहा। मार्क्स ने वर्गविहीन समाज का नारा लगाया। अंतरिम अवधि तक मज़दूरों के अधिनायकवाद की बात भी कही गई। इसमें संदेह की पूरी गुंजाइश थी। लोगों को एक संदिग्ध वस्तु की प्राप्ति के लिए

उस चीज़ (राजनीतिक समानता) का त्याग करने को कहा गया, जो उन्हें पहले से ही प्राप्त थी। उन्हें इस बात की किंचित् भी कल्पना नहीं कि समाजवाद पहले से ही प्राप्त वस्तु भी उनसे छीन लेगा। वे तो पहले से ही अभावग्रस्त थे। समाजवाद के द्वारा उन्हें कुछ प्राप्त होना चाहिए था, न कि उनके पास का ही छीना जाना था। किंतु कुछ देने के पूर्व ही समाजवाद ने उनकी व्यक्तिगत स्वाधीनता और राजनीतिक समानता का अपहरण कर लिया। 28 अप्रैल, 1919 में ही प्रिंस क्रोपाटकिन[6] ने पश्चिमी यूरोप के मज़दूरों के नाम एक पत्र में लिखा—

"मैं आपको स्पष्ट रूप से यह बताना अपना दायित्व समझता हूँ कि मेरे विचार से सुदृढ एकतंत्री राज्य-व्यवस्था के आधार पर, दलीय तानाशाही के फौलादी शिकंजे के नीचे, साम्यवादी गणतंत्र निर्माण करने का प्रयास असफलता के रूप में ही सामने आएगा। रूस से हम इस बात को सीख रहे हैं कि साम्यवाद को प्रवेश करने से कैसे रोका जाए। जब तक देश में दलीय तानाशाही का शासन क़ायम है, तब तक किसान और मज़दूर परिषद् अपना महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं बना सकतीं। वे अपना समस्त वैशिष्ट्य ही खो बैठेंगी। रूसी गणराज्य आज एक ऐसी अभेद्य नौकरशाही को जन्म दे रहा है, जिसके सम्मुख फ्रांस की नौकरशाही की मात हो जाएगी, जिसमें कहीं रास्ते में आँधी से गिरे हुए पेड़ को बेचने के लिए भी चालीस सरकारी अधिकारियों की आवश्यकता पड़ती है।"

यूरोपीय समाजवादियों के नए प्रयासों ने उस तत्त्व को जन्म दिया, जिसे आज जनतांत्रिक समाजवाद का नाम दिया गया है। वे कम्युनिस्टों से मतभिन्नता रखते हुए यह प्रतिपादित करते रहे कि समाजवाद और जनतंत्र दोनों की आराधना करना चाहते हैं। पर मूल प्रश्न तो यह है कि क्या समाजवाद और जनतंत्र एक साथ पनप भी सकते हैं? प्रगतिवादी इस पर विश्वास नहीं करते। समाजवाद इस बात का हामी है कि उत्पादन के समस्त स्रोत राज्य के अधीन होने चाहिए। चूँकि समाजवादी यह समझते हैं कि समाज का राजनीतिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन उसके उत्पादन के स्रोतों के द्वारा ही ढलता है, अतः समाजवादी व्यवस्था में राज्य का आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनीतिक एवं अन्य क्षेत्रों में भी पूर्ण वर्चस्व रहना आवश्यक है। इससे एक ऐसी स्थिति पैदा होगी जब, उन लोगों के विरुद्ध जो शासन में हैं, लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग करना संभव नहीं होगा। समाजवादी बंदूक की गोली का पहला शिकार निश्चित रूप से कहीं भी कोई लोकतंत्रवादी ही होगा। समाजवाद और लोकतंत्र दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते, ठीक वैसे ही शेर-बकरी का एक ही घाट पर पानी पी सकना असंभव है।

आज समाजवादी खेमे में व्याप्त भ्रमपूर्ण स्थिति के लिए बहुत अंशों तक यह

---

6. प्रिंस अलेक्सेविच क्रोपाटकिन (1842-1921) रूस के अर्थशास्त्री, जंतुविज्ञानी, क्रमविकास सिद्धांत, दार्शनिक, लेखक एवं अराजकतावादी साम्यवाद के अग्रदूत थे।

सिद्धांत ही ज़िम्मेदार है। अब तक कोई भी विचारक ऐसा सर्वांगपूर्ण दोषरहित चित्र प्रस्तुत करने में सफल नहीं हो सका है, जिसमें इन दोनों तत्त्वों का सह-अस्तित्व हो सके। इसमें भी, यदि हम लोकतंत्र के विभिन्न स्वरूपों और मर्यादाओं के साथ-साथ भिन्न-भिन्न देशों के विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक ढाँचे और भिन्न-भिन्न प्रकार के भौतिक एवं आर्थिक विकास के स्तरों का विचार करें, तब तो भ्रम के बादल और घनीभूत हो जाते हैं। इस भ्रमजाल की जटिलता के कारण यह गुत्थी इतनी उलझती जाती है कि उसका सुलझना असंभव-सा हो जाता है।

ग़ैर-समाजवादी देशों में भी समाजवादियों के भ्रम को बढ़ाने का ही कार्य किया है। विगत 30 वर्षों में अपनी उदारवादी नीतियों एवं नवीन आर्थिक चिंतन के कारण उन्होंने समाजवादियों को हतप्रभ कर डाला है। आज अमरीका या इंग्लैंड का सर्वसाधारण व्यक्ति, किसान और मज़दूर जिसे साम्यवादी परिभाषा के अनुसार सर्वहारा कहा जाता है, सौ वर्ष पूर्व की तथाकथित उत्पीड़ित अवस्था में नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था में नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर कल्याणकारी राज्य के आदर्श प्रस्थापित हो रहे हैं। पूँजीवादी और समाजवादी, दोनों ही प्रकार के देशों के बारे में मार्क्स की भविष्यवाणी असत्य सिद्ध हुई है। कल के पूँजीवादी देशों ने अपनी पद्धति में विकास किया है और आज वे भौतिक विकास में समाजवादियों से टक्कर लेने को उद्यत हैं, पर समाजवाद आज भी उसी स्थान पर अड़ा हुआ है, जहाँ से उसने अपनी यात्रा प्रारंभ की थी। यदि उसने कुछ पग आगे बढ़ाए भी हैं तो वे ग़लत दिशा में ही बढ़े हैं। इसके विपरीत पूँजीवादी देशों में लोकतंत्र होने के कारण अपनी भूलों को सुधारने एवं नवीन बातों को स्वीकार करने की सिद्धता रहती है। पर समाजवादियों की समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण में इस प्रकार के लचीलेपन का अभाव है। यह विचारधारा किसी प्रकार के नवीन चिंतन को प्रेरणा नहीं देती। मसीहावाद और अपरिवर्तनीय अंधविश्वासों पर आधारित मज़हब के अनुयायी की तरह आज का कट्टर समाजवादी नए स्वतंत्र विचारों से दूर ही रहना पसंद करता है। यही कारण है कि कम्युनिस्टों के शब्दकोश में ऐसे विचारकों के लिए अनेक प्रकार की ग़ालियाँ भरी रहती हैं। परंतु विचारशील मानव विचारहीन नहीं हो सकता। यदि उसकी विचार तरंगों को योग्य दिशा देने की कोई योजनाबद्ध व्यवस्था न रही तो उसका अनिवार्य परिणाम चतुर्दिक् भ्रम के रूप में सामने आए बिना नहीं रह सकता।

आज भारत में समाजवाद के बारे में जो वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ है, वह प्रमुख रूप से राजकीय उद्योगों के विस्तार की अनिवार्यता या व्यर्थता के ऊपर ही केंद्रित है। स्वतंत्र उद्योगों के पुरस्कर्ता एवं समाजवादी विचारक एक-दूसरे के विरुद्ध ताल ठोककर

खड़े हो गए हैं। पर साथ ही एक मज़ेदार तथ्य यह है कि दोनों एक-दूसरे के लिए पर्याप्त क्षेत्र खाली छोड़ने के लिए तत्पर भी हैं। अविकसित अर्थव्यवस्था में सरकार को कुछ ऐसे उद्योगों को भी अपने हाथ में लेना पड़ता है, जो कदाचित् साधारण अवस्था में स्वतंत्र लोगों के हाथ में छोड़े जा सकते थे। साथ ही किसी नियोजित अर्थव्यवस्था में स्वतंत्र उद्योगपतियों को वैसी खुली छूट भी नहीं दी जा सकती, जैसी शताब्दियों से पश्चिम के लोग उपयोग करते रहते हैं। सच पूछा जाए तो यह स्पर्धा यदि नियंत्रित रखी गई, तो दोनों के योग्य संतुलन स्थापित करने में सहायक हो सकती हैं।

पर प्रमुख समस्या यह नहीं है कि हम समाजवाद को स्वीकार करें या उद्योगों की स्वतंत्रता के सिद्धांतों को। समाजवाद और लोकतंत्र दोनों ने ही उसको एक वीभत्स रूप दे डाला है। उन्होंने उसकी समस्त विशेषताओं को उससे छीन लिया है। रेनेफलोप[7] ने 'डी-ह्यूमनाइज़ेशन इन मॉडर्न सोसाइटी' नामक अपनी पुस्तिका में लोकतंत्र एवं समाजवाद के इस पहलू का विशद विवेचन किया है। वह लिखता है, ''यद्यपि जनतंत्र ने हमें मत देने का अधिकार, न्याय पाने का अधिकार, विचार-स्वातंत्र्य, धार्मिक स्वातंत्र्य, स्वयं का पेशा निर्धारित करने की स्वतंत्रता और भाषण-स्वातंत्र्य प्रदान किया है, पर साथ ही उसने हमें एक आर्थिक मानव की कल्पना भी दी है।''

इसी आर्थिक मानव की कल्पना ने पूँजीवाद को जन्म दिया, जहाँ अधिकाधिक उत्पादन क्षमता बढ़ाने पर अत्यधिक बल दिया गया। दूसरी ओर समाजवाद या साम्यवाद ने सामूहिक सुरक्षा एवं मज़दूर वर्ग के हितों के संरक्षण का नारा लगाया, पर इसी के साथ-साथ उसने एक युद्ध-पिपासु मानव को जन्म दिया। यह युद्ध-लोलुप मानव समाजवादी राज्य की देन है। उसे न विचार करने की स्वतंत्रता प्राप्त है, न स्वयं के निर्णय करने की। इस व्यवस्था के अंतर्गत मानव-जीवन का मूल्य एक निरीह पशु से अधिक नहीं आँका जाता।

समाजवाद और लोकतंत्र दोनों ने ही मानव के भौतिक स्वरूप और आवश्यकताओं पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया है और दोनों की आधुनिक विज्ञान और यांत्रिक उन्नति पर अत्यधिक श्रद्धा है। दोनों ही इन वर्तमान आविष्कारों के शिकार से हो गए हैं। परिणाम यह है कि उत्पादन के साधनों का निर्धारण, मानव कल्याण और उनकी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं किया जा रहा है, बल्कि उनका निर्धारण यंत्रों के अनुसार करना पड़ रहा है। उत्पादन की केंद्रित व्यवस्था में, फिर उसका नियंत्रण चाहे व्यक्ति द्वारा हो अथवा राज्य द्वारा, मानव के स्वतंत्र व्यक्तित्व का लोप हो जाता है। मशीन के एक पुर्ज़े से अधिक उसका महत्त्व ही नहीं रहता। यदि हमें मनुष्य के मनुष्यत्व

---

7. रेनेफुलोप-मिलर (1891- 1963) आस्ट्रिया के सांस्कृतिक इतिहासकार तथा लेखक थे।

की रक्षा करनी है तो हमें उसे मशीन की ग़ुलामी से मुक्त करना होगा। आज व्यक्ति मशीन पर शासन नहीं करता, मशीन मनुष्य पर शासन कर रही है। इस मशीन-प्रेम के मूल में मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को अधिकाधिक मात्रा में तृप्त करने की भावना ही निहित है। पर हम यह न भूलें कि केवल भौतिक समृद्धि मात्र से मनुष्य सुखी नहीं हो सकता।

भौतिक साधनों से संपन्न राष्ट्रों की समस्याएँ भी आज हमारे सम्मुख हैं। हमें संपूर्ण मानव जीवन का विचार कर, उत्पादन, वितरण और उपभोग को एक इकाई मानकर चलना पड़ेगा। हमें एक ऐसी पद्धति निर्माण करनी होगी, जिसमें मनुष्य उत्पादन और उपभोग करते समय एक सार्थक जीवन व्यतीत करने का भी ध्यान रखता है। मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं का समुच्चय मात्र ही नहीं है। उसकी कुछ आध्यात्मिक आवश्यकताएँ भी हैं। जो जीवन-पद्धति मानव-जीवन के इस आध्यात्मिक पहलू की उपेक्षा करती हो, वह कदापि पूर्ण नहीं हो सकती। यहाँ हमें इसका स्मरण रखना होगा कि भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक प्रगति की कल्पना केवल हवाई उड़ान ही नहीं है। मानव की गरिमा को सुरक्षित रखते हुए समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का दायित्व भी निभाना ही होगा। समाजवाद और लोकतंत्र दोनों ने ही एकांगी मार्ग स्वीकार किया है और मनुष्य का इन दो भिन्न प्रवृत्तियों का समुचित सामंजस्य बिठाकर, व्यक्तित्व का विकास करने के स्थान पर एक भ्रमपूर्ण स्थिति पैदा कर, विभिन्न शक्तियों के लिए एक युद्धस्थल तैयार कर दिया है।

मानव जीवन की इस निराशापूर्ण स्थिति में से मार्ग खोजना हो तो दिखाई देगा कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों पर आधारित हिंदू जीवनादर्श से ही हम इस संकट से उबर सकते हैं। विश्व की समस्याओं का उत्तर समाजवाद नहीं, हिंदुत्ववाद है। यही एक ऐसा जीवनदर्शन है, जो जीवन का विचार करते समय उसे टुकड़ों में नहीं बाँटता अपितु संपूर्ण जीवन को एक इकाई मानकर उसका विचार करता है। यहाँ पर हमें हिंदू जीवनादर्शों का विचार करते समय कुछ निष्प्राण कर्मकांड के साथ अथवा हिंदू समाज में व्याप्त अनेक अहिंदू व्यवहारों के साथ उसका संबंध नहीं जोड़ना चाहिए। साथ ही यह समझना भी भारी भूल होगी कि हिंदुत्व वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति का विरोधी है। विज्ञान और यंत्र इन दोनों का उपयोग इस पद्धति से होना चाहिए, जिससे वे हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन-पद्धति के अनुरूप हों।

महात्मा गांधी के विचारों का अनुसरण कर विनोबा, जयप्रकाश नारायण और राजगोपालाचार्य ने ट्रस्टीशिप का विचार सम्मुख रखा है। यह हिंदू जीवन-पद्धति के अनुसार ही है। यह एक ऐसा विचार है, जो समाजवादी और ग़ैर-समाजवादी दोनों ही समाजों के लिए समान रूप से उपयोगी हो सकता है, पर यदि हम पाश्चात्य यंत्रप्रणाली

का अंधानुकरण करते रहे तो सर्वोदय या समाजवाद दोनों ही न हमारी संस्कृति का संरक्षण कर सकेंगे, न हमारे सम्मुख उपस्थित समस्याओं का समाधान ही कर सकेंगे। हमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सैद्धांतिक सभी मोरचों पर इस यंत्रवाद का सामना करना पड़ेगा। हमें धर्मराज्य, लोकतंत्र, सामाजिक समानता और आर्थिक विकेंद्रीकरण को अपना लक्ष्य बनाना होगा। इन सबका सम्मिलित निष्कर्ष ही हमें एक ऐसा जीवनदर्शन उपलब्ध करा सकेगा, जो आज के समस्त झंझावातों में हमें सुरक्षा प्रदान कर सके। आप इसे किसी भी नाम से पुकारिए, हिंदुत्ववाद, मानवतावाद अथवा कोई भी नया वाद, किंतु यही एकमेव मार्ग भारत की आत्मा के अनुरूप होगा और जनता में नवीन उत्साह संचारित कर सकेगा। संभव है विभ्रांति के चौराहे पर खड़े विश्व के लिए भी यह मार्गदर्शक का काम कर सके।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

11

हमारा राष्ट्रध्वज*

विश्व में भारत सबसे प्राचीन राष्ट्र है। पश्चिम ने जब कच्चे मांस के स्थान पर भुना मांस खाना सीखा था, उससे बहुत पूर्व हम एक राष्ट्र थे। आसेतु हिमालय फैली हुई इस मातृभूमि में पुत्ररूप निवास करनेवाले इस समाज का राष्ट्रजीवन अति प्राचीनकाल से विद्यमान रहा है। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने भारतवर्ष का वर्णन करते हुए कहा कि—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारतीय यत्र सन्ततिः।।

यानी पृथ्वी का वह भू-भाग, जो समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में स्थित है, भारतवर्ष कहलाता है तथा उसकी संतति को भारतीय कहते हैं। मातृभूमि का यह चित्र सहस्रों वर्षों से भारतीयों के मानस में अंकित है। नित्य स्नान, संध्या, पूजन और प्रत्येक धार्मिक विधि में मातृभूमि के इसी रूप का स्मरण विभिन्न तरीक़ों से किया जाता रहा है। इतने प्राचीन राष्ट्र की एक विशिष्ट जीवन-पद्धति है। जीवन के आदर्श, संस्कृति, अनुभूतियों, भावनाओं और परंपराओं के सम्मिलन से एकरूपता प्राप्त हुई है। इस प्रकार सुविकसित समाज इस भूमि की संतान के रूप में सहस्रों वर्षों से निवास करता आ रहा है। हमारी राष्ट्रीय परंपरा अनादि काल से है। अति प्राचीन काल से आज तक हमारे सभी महान् पुरुषों ने अपने-अपने जीवन के उदाहरणों से इस परंपरा को पुष्ट किया है। जीवन के आदर्श और मातृभूमि के प्रति अनन्य श्रद्धा की समान परंपराओं को जाग्रत् रखने के लिए विभिन्न प्रकार के संस्कारों की व्याख्या भी प्राचीन काल से चली आ रही है। इन संस्कारों के बाह्य रूपों में समय के अनुसार भले ही कुछ परिवर्तन होते हुए रहे हों तथापि मूलभावना में कोई परिवर्तन नहीं होता।

---

* देखें परिशिष्ट VIII, पृष्ठ 245।

राष्ट्र भावना को जाग्रत् रखने के लिए नित्य तथा नैमित्तिक दोनों प्रकार के संस्कार आज भी प्रचलित हैं। हमारे तीर्थस्थान, यात्राएँ, व्रत, पर्व आदि सब इन संस्कारों को प्रदान करने के माध्यम हैं। इन संस्कारों के द्वारा हमारे मन में राष्ट्र के संबंध में श्रद्धा की भावना उत्पन्न होती है। राष्ट्र संबंधी हमारी धारणा दृढ होती है। हमारी संस्कृति की विशेषताएँ, इतिहास, भाषा, सभ्यता आदि कितनी ही बातें इस राष्ट्र-धारणा के अंतर्गत पुष्ट होती हैं। राष्ट्र संबंधी हमारे इस लगाव को हम सदैव शब्दों में व्यक्त ही कर पाते हों, सो बात नहीं। कई बार तो हम राष्ट्र के प्रति अपने इस अपनत्व को व्यक्त करने के कारणों को भी ठीक-ठीक समझ नहीं पाते। राष्ट्र के प्रति हमारी यह भक्ति-भावना हमारे प्रत्येक व्यवहार में छिपी रहती है। मन में वह कल्पना सी छाई रहती है। इस अमूर्त कल्पना को अपनी आँखों के समक्ष उपस्थित करने के लिए ही विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाता है। राष्ट्र संबंधी हमारी आंतरिक भावना को हम कहीं प्रकट करना चाहते हैं, ताकि हम उसके प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने का अवसर पा सकें। यह ठीक उसी प्रकार की बात है, जिस प्रकार निराकार परब्रह्म के प्रति भक्ति प्रकट करने के लिए भक्त मूर्ति का सहारा लेता है। इसी कारण राष्ट्र संबंधी भक्ति के संस्कारों को दृढ करने के लिए माध्यमों का सहारा लिया जाता है।

राष्ट्र संबंधी इस अमूर्त भक्ति-भावना को मूर्त स्वरूप देने के लिए सबसे अधिक व्यापक साधन है हमारा परम पवित्र राष्ट्रध्वज। प्रत्येक राष्ट्र का ध्वज हुआ करता है। राष्ट्र का प्रतीक बनकर वह प्रत्येक को प्रेरणा देता हैं। हमारा भी एक राष्ट्रध्वज है, जो आज से नहीं, अनादिकाल से व्यवहृत होता है। इस राष्ट्रध्वज में हम अपने देश का समग्र इतिहास प्रतिबिंबित पाते हैं। यह केवल कपड़े का एक टुकड़ा मात्र नहीं है। यदि ऐसा होता तो इसको देखकर हमारा मस्तक श्रद्धा से इस प्रकार नहीं झुक जाता। रंग और कपड़े की अनेक प्रकार की झंडियाँ लटकी हों तो हम उसमें इस प्रकार श्रद्धा व्यक्त नहीं कर पाएँगे। उससे हमें स्फूर्ति भी नहीं मिल सकती। तथापि इस ध्वज के समक्ष हम श्रद्धावनत हो जाते हैं। इसका कारण यही है कि यह हमारे राष्ट्र का मूर्तस्वरूप है। राष्ट्र का भूत, वर्तमान और भविष्य उसमें झाँकता हुआ दिखाई पड़ता है। यही हमारी सांस्कृतिक परंपरा का द्योतक है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस राष्ट्र जीवन का प्रतीक यह ध्वज है, वह राष्ट्र जीवन हिंदू जीवन ही है। हिंदुत्व की परंपरा ही इस देश की परंपरा है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। वेदकाल के अति प्राचीन पृष्ठों से यह स्पष्ट है कि वे हिंदू समाज के ही पूर्वज थे, जिन्होंने मातृभूमि के लिए प्रेम तथा भक्ति के आदर्श एवं परंपराएँ निश्चित कीं। उन्होंने अपनी मातृभूमि की सजीव एवं अखंड प्रतिमा को समाज के मस्तिष्क में सदैव उज्ज्वल बनाए रखने हेतु विविध कर्तव्यों और कृत्यों को ही निर्दिष्ट

किया। वही थे, जिन्होंने मातृ-भू की अखंडता तथा पवित्रता की रक्षा के लिए अपना रक्त बहाया। इस तथ्य का साक्षी सहस्रों वर्षों का इतिहास है। इसलिए जिस प्रकार आदिकाल से चली आनेवाली यह राष्ट्रीय परंपरा है, उसी प्रकार इस भक्ति-भावना को व्यक्त करनेवाला यह राष्ट्रध्वज भी अनादिकाल से इस राष्ट्र में विद्यमान है।

इस ध्वज का यानी हमारे राष्ट्र जीवन के मूर्तरूप प्रतीक का निर्माण कब हुआ— कहना कठिन है। इसके निर्माण की गाथा इतिहास में नहीं मिलती। कोई पता नहीं लगता कि कब इस रंग और इस आकार के ध्वज को तय किया गया। तथापि प्राचीन ग्रंथों में गैरिक ध्वज का उल्लेख मिलता है। वेदों में भी इसका उल्लेख 'अग्नि केतव:' के नाम से हुआ है। अग्नि के रंग के समान इस ध्वज की आभा का उल्लेख सोद्देश्य ही है। हम सब जानते हैं कि हमारी संस्कृति में यज्ञ का बहुत बड़ा स्थान प्राचीन काल से रहा है। यहाँ तक कि भारतीय संस्कृति को यज्ञ-संस्कृति भी कहा गया है। आर्य जाति का संपूर्ण जीवन यज्ञ-प्रधान था। यज्ञ के निमित्त ऋषि-मुनि एकत्र होते थे और परस्पर विचार विनिमय कर जीवन की समस्त समस्याओं को सुलझाते हुए नवीन विचार करते थे। इन्हीं यज्ञ-स्थलों पर हमने समाज की लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की उन्नति के मार्ग खोज निकाले। यज्ञ ही हमारी संस्कृति का प्रतीक था। अत: जो लोग इस संस्कृति को नष्ट करना चाहते थे, उन्होंने यज्ञों का विध्वंस करने का यत्न किया। राक्षसों द्वारा यज्ञों का विध्वंस करने का वर्णन मिलता है, वह इसी तथ्य का द्योतक है। राक्षस यज्ञ नहीं होने देना चाहते थे, क्योंकि यज्ञ में हमारी संस्कृति का वास था। हमारे राष्ट्र की आत्मा इन्हीं यज्ञों में निवास करती थी। यज्ञ-संस्कृति के विस्तार से भारत का सांस्कृतिक वैभव बढ़ा करता था। किंतु ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता गया, इन यज्ञों को बहुत स्थानों पर ले जाना कठिन हुआ। यज्ञ की महत्ता कम होती गई। इसलिए अपनी संस्कृति की विशेषताओं को अक्षुण्ण रखते हुए यज्ञ के प्रतीकस्वरूप ध्वज का आविष्कार हुआ। अग्नि की उठती हुई ज्वालाओं के रूप में उसी रंग उसी आकार में इसकी प्रतिष्ठापना हुई। इस ध्वज को लेकर हम यज्ञ-संस्कृति का ही विस्तार करते थे। इसी ध्वज को लेकर युद्धों में विजयी होते थे। जिसे देखकर प्रेरणा प्राप्त हो, स्फूर्ति मिले, आदर्श प्रकट हों, जीवन-तथ्य की स्मृति बनी रहे और जिन श्रेष्ठ मूल्यों की रक्षा के लिए लड़ते समय अपना व्यक्तिगत अर्पित करते हुए हर्ष हो, ऐसा प्रतीक यह ध्वज ही था। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की ध्वनि करते हुए संपूर्ण विश्व में अजेय बनने के लिए जो श्रेष्ठ लक्ष्य प्रेरणा देता रहता था, वह इस ध्वज में प्रकट होता था। संपूर्ण विश्व को सभ्य बनाने के लिए, उन्हें ज्ञान प्रदान करने के लिए सब प्रकार के संकटों से जूझने की शक्ति इसी ध्वज से प्राप्त हुई। भारत में यद्यपि विश्व को ग़ुलाम बनाने के लिए युद्ध नहीं किए। युद्ध आत्मरक्षार्थ ही हुए। किंतु आत्मरक्षा का अर्थ अपने तुच्छ ऐहिक जीवन की रक्षा नहीं।

अपनी संस्कृति-सभ्यता की रक्षा के लिए बड़े-बड़े बलिदान हुए। इन सब आदर्शों को हमारे सामने प्रस्तुत करनेवाला कोई प्रतीक रहे तो उससे अवश्य स्फूर्ति मिल..ी है। यज्ञ के समान त्याग, तपस्या, उद्योग और उत्सर्ग करने का भाव इस ध्वज से प्राप्त होता है, इसीलिए अनादिकाल से यह हमारा राष्ट्र-ध्वज है।

इसके रंग की विशेषता है कि यह संन्यासियों का रंग है। ध्वज का रंग भगवा है, इसलिए संन्यासियों ने भगवे रंग के कपड़े पहनना प्रारंभ किया अथवा संन्यासियों के कपड़ों का रंग भगवा होने के कारण ध्वज का रंग भगवा हुआ, यह निश्चय करना कठिन है। वास्तव में दोनों एकरूप ही हैं।

ये साधु-संन्यासी अपने जीवन के समस्त मोहों को छोड़कर देश और समाज के कार्य के लिए जीवन बिताते थे। चारों और भ्रमण करते थे। तीन दिन से अधिक किसी स्थान में नहीं टिकते थे। सतत जनसेवा में लगे रहते थे। परंपरागत रीति से इन साधु-संन्यासियों ने समाज को ज्ञानवान, समर्थ और सुखी बनाने के लिए प्रयास किया है। इस देश को राष्ट्रीयता का पाठ सिखाने का काम उन्होंने ही किया। उन्हीं के त्याग, परिश्रम, सेवः के कारण आसेतु हिमाचल संपूर्ण भारतवर्ष में एकता का सूत्र स्थापित हुआ। ऐहिक जीवन की लालसाओं से ऊपर उठा हुआ उनका त्यागपूर्ण व्यक्तिगत सभी दिशाओं सभी प्रांतों और सभी भाषा-भाषियों में समान रूप से आज भी वंदनीय है। सुदूर अतीत में जब आवागमन के आज जैसे उत्तम साधन नहीं थे, जीवन के आदर्शों की, दृष्टिकोण की, साहित्य की, एक जैसी भावना निर्माण करने का कार्य इन्हीं संन्यासियों द्वारा संपन्न हुआ था। अत: इन समाज समर्पित त्यागी और निष्काम कर्मयोगी संन्यासियों की परंपरा को ही भारत ने आदर्श माना। जीवन की चरम उपलब्धि त्याग में अंकित हुई। बड़े-बड़े सम्राटों के राजमुकुट भी इन तपस्वियों के समक्ष शरणागत हुए। अंतर्बाह्य पूर्ण निस्वार्थ, निस्संग रखते हुए समस्त समाज के कल्याण में अपना जीवन होम करनेवाले इन वैरागियों का जीवन साक्षात् यज्ञ ही था। यज्ञ की ज्वालाओं के समान शुद्ध और तेजयुक्त इन संन्यासियों ने अपना परिधान भी उसी के प्रतीकस्वरूप भगवा रंग को चुना। भगवा वस्त्र संन्यासियों का वेश रहा। इसी आदर्श को भारत ने अपने समक्ष रखने के कारण संन्यासियों के इस वस्त्र को ही अपना राष्ट्रध्वज माना। राष्ट्र की आत्मा का ही यह रंग था। मूर्तिमंत पवित्रता और त्यागपूर्ण व्यवहार का संदेश देता हुआ यह भगवाध्वज आज भी इन्हीं आदर्शों की ओर हमें प्रेरित करता है।

कितने ही ऐसे अवसर आते हैं, जब हमें अपने राष्ट्रीय आदर्श के इस तथ्य की अनुभूति होती है। अनजाने, जैसे ही हम भगवा वस्त्रधारी किसी व्यक्ति को देखते हैं तो हमारा अंत:करण उसकी ओर श्रद्धा से आकर्षित हो उठता है। इसका भी कारण यही है कि हम अपनी राष्ट्रीय परंपरा के त्यागपूर्ण जीवन के प्रति श्रद्धावनत हैं। एक बार की

घटना है। मैं रेलगाड़ी से प्रवास कर रहा था। गाड़ी में बहुत भीड़ थी। जिस स्टेशन पर गाड़ी रुकती थी, ठेलमठेल मचती थी। डिब्बे में चढ़ना-उतरना कठिन था। डिब्बे में सेना का एक व्यक्ति भी बैठा था। वह दरवाज़े के पास होने के कारण किसी को भीतर नहीं आने देता था। भीड़ इतनी थी कि उसे दोष नहीं दिया जा सकता था। परंतु एक स्टेशन पर एक साधु उस डिब्बे में चढ़ने लगा तो उस सैनिक ने लोगों को इधर-उधर धक्के देकर उस साधु को जैसे-तैसे डिब्बे में खींच लिया। एक सज्जन जो कपड़े-लत्ते से पढ़े-लिखे ग्रेजुएट लग रहे थे और बहुत परेशान थे।

इस सैनिक से बोले, ''वाह जी, आप भी विचित्र हैं, इस साधु बाबा को क्यों अंदर आने दिया?'' सैनिक बोला ''साधु को अंदर आने देने में क्या हर्ज है?'' सज्जन बोले, ''यह साधु नहीं, स्वादु है।'' ऐसी ही कुछ और बातें भी वे सज्जन बोले तो उस सैनिक ने उत्तर दिया—''मुझे व्यक्ति की चिंता नहीं, मुझे तो इस कपड़े के रंग से प्रेम है। मैंने इस रंग को अंदर आने दिया है। यह व्यक्ति भले ही ख़राब हो, फिर भी इसने यह कपड़ा पहन रखा है। इस रंग को देखते ही हम श्रद्धा से झुक जाते हैं।''

यह मेरे अनुभव का एक छोटा सा उदाहरण है। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। हमें विचार करना चाहिए कि यह श्रद्धा क्यों हैं? कहाँ से आई? हम थोड़ी गहराई से सोचें तो हमें पता चलेगा कि युगों-युगों से भारत ने जिस त्यागपूर्ण जीवन की आराधना की है, वही सहसा उमड़ उठती है। यह हमारी राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का साधन है। हमारी देशभक्ति का सशक्त माध्यम है। साधारण दैनिक जीवन में हम भले ही उसकी और गंभीरता से सोच-विचार न करते हों, फिर भी ऐसे अवसर आ उपस्थित होने पर हृदय में विराजमान वे संस्कार उमड़ पड़ते हैं। हम उन्हें रोक नहीं पाते।

इसीलिए यह ध्वज हमें हमारी संस्कृति का संदेश देता हुआ सुनाई पड़ता है। इसे देखकर हम त्यागपूर्ण जीवन की आकांक्षा से भर उठते हैं। हो सकता है, कुछ लोग इसके संदेश को सुन नहीं पाते हों, क्योंकि राष्ट्र के लिए सर्वस्व भेंट चढ़ाने की भावना वाला अंतःकरण ही इसकी महत्ता आँक सकता है। जिसके अंदर थोड़ी भी राष्ट्रसेवा की कसक है, उसके लिए इस ध्वज का संदेश मुखर है। राष्ट्र का इतिहास आँखों में तैर उठता है। वैदिक ऋषियों की वाणी, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर से लेकर सूर, तुलसी, नानक, मीरा, चैतन्य, रामदास आदि कितने ही आदर्श महापुरुषों के जीवन, अतुल पराक्रमी शूर-वीर योद्धाओं की विजय गाथाएँ, मठ, मंदिर, तीर्थ और पवित्र नदियों की यात्रा करनेवाली पवित्र आत्माएँ आदि-आदि कितने ही चित्र आँखों के समक्ष भूलने लगते हैं। इन सब में से एक ही ध्वनि सुनाई पड़ती है कि त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए समन्वय की, सहिष्णुता की, सांस्कृतिक विशेषता ग्रहण करना है। कोई पराया न रहे, सबको अपना बना लेना है। विशालता ही जीवन है, संकुचितता ही मृत्यु है। यह

ध्वज अग्नि की ज्वालाओं का, यज्ञ का प्रतीक है। अग्नि की विशेषता यही है कि वह स्वयं ही पवित्र नहीं है, वरन् जो भी उसके संपर्क में आया, उसे भी अग्नि ने पवित्रता प्रदान की है। इतनी दाहकता और पवित्रता का जीवन जीने की शिक्षा इस ध्वज से मिलती है। हिंदू संस्कृति की तो सदा ही यह विशेषता रही है कि जो भी उसके समीप आया, उसने उसे अपना बना लिया। जब से हम अपनी सांस्कृतिक विशेषता को भूल गए, इस ध्वज़ के संदेश की उपेक्षा की। सर्वसंग्राहक वृत्ति को छोड़ दिया, तब ही से हमारा ह्रास प्रारंभ हुआ। जब तक हमने इस ध्वज को गुरु-स्थान पर प्रतिष्ठित रखा और इसकी शिक्षाओं पर ध्यान दिया, तब तक शक, हूण, सिथियंस आदि जितने लोग आए, हमने सबको अपना लिया। अपने जैसा बना लिया। यह हज़म करने की प्रवृत्ति आर्य-संस्कृति की विशेषता है। इस विशेषता को बतानेवाला यह ध्वज है। यज्ञमय जीवन की प्रेरणा देनेवाले, अग्नि की ज्वाला के समान सदैव ऊपर उठने के लिए प्रेरित करनेवाले इस ध्वज के संदेश को हमें भली-भाँति सुनना है।

दुर्भाग्य से आज कितनी ही प्रकार की भ्रामक धारणाएँ प्रचलित हैं। उनसे प्रभावित होकर इसके वास्तविक संदेश को हमने भुला दिया है। कई लोग हैं जो सोचते हैं कि यह संन्यासी बनकर जंगल में बैठने और नाक बंद कर ध्यान धारणा करने मात्र का संदेश देता है। लोग सोचते हैं कि देश, समाज आदि किसी बात का विचार न करते हुए केवल धूनी रमाकर समाज से दूर जा बैठने में ही संन्यास का रहस्य है। किंतु यह ग़लत बात है। संन्यास महान् कर्मों का प्रेरक है। अखंड कर्मयोगी बनना ही सच्चे संन्यास का रहस्य है। इस रंग का संदेश कर्म से भागना नहीं, कर्म से सच्चे कर्ता बनने का है। इस रंग में निसृत धर्म में ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति का मार्ग बताया गया है। जो व्यक्ति इस लोक की चिंता नहीं करता, वह यशस्वी नहीं हो सकता। यह सत्य है कि हमने मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति को लक्ष्य के नाते अपने सामने रखा है किंतु इसका अर्थ लौकिक प्रगति को कम आँकना कदापि नहीं है। भगवान् ने हमें यह जीवन क्यों प्रदान किया है? इसीलिए कि हम चिरंतन सुख और शाश्वत शांति पा सकें।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन यह सांसारिक जीवन है। यदि हम साधन की ओर दुर्लक्ष्य करेंगे तो लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। ठीक उसी प्रकार जैसे मोटरकार से हमें प्रवास कर किसी स्थान पर पहुँचना है तो मोटरकार की ठीक-ठीक ही देखभाल ही ज़रूरी है। मोटर की ओर दुर्लक्ष्य कर लापरवाही से बढ़ते चले तो किसी दीवार से टकरा सकते हैं। इसके लिए हमारे यहाँ नदी-नाव का भी उदाहरण दिया गया। नाव से नदी पार करना है तो नाव ठीक चाहिए। उसमें एक ही छेद रहा तो नदी पार नहीं की जा सकती। नाव को भली प्रकार खेते हुए हम उस पार निकल जाएँ, यही बुद्धिमानी का व्यवहार है। हाँ, इतना सत्य है कि नदी हमारा सर्वस्व नहीं, ध्येय नहीं। पार जाने पर

हम नाव को ही पकड़कर बैठ गए, बालू में नाव को खींच लाए तो मूर्खता की बात होगी। कहना होगा कि ऐसे व्यक्ति ने नाव का महत्त्व नहीं समझा। पाश्चात्य जगत् ने यही किया है। पाश्चात्य जगत् की सांसारिक प्रकृति की लालसा नाव को पकड़कर बैठ जाने जैसी है। भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति में यही अंतर है कि हमने साधन की उपेक्षा नहीं की, परंतु उसे ही लक्ष्य मानने की भूल भी नहीं की। पाश्चात्य संस्कृति ने इस जीवन को ही सर्वस्व मान लिया। इसके आगे की चिंता ही नहीं की। परिणामस्वरूप वहाँ संघर्ष मचा हुआ है। राक्षसी वृत्ति से नरसंहार किया जा रहा है। किंतु हमने दोनों का सारा-सार विचार किया। इसीलिए सांसारिक जीवन से ऊपर उठे हुए त्यागी, विरागी, तपस्वी ऋषि-मुनियों ने संसार को ठीक करने का बीड़ा उठाया, साम्राज्य निर्माण किए। विश्व कल्याण के लिए अखंड कर्मचेतना के उदाहरण प्रस्तुत किए। त्याग के प्रतीक इसी ध्वज को लेकर भारतवर्ष से बाहर द्वीप-द्वीपांतरों में भ्रमण किया। जावा, सुमात्रा, बाली, हिंदेशिया, जापान, चीन आदि कितने ही देशों में आज भी भारत के सांस्कृतिक विजय के चिह्न अंकित हैं। भारत के महान् कर्मवीर योद्धा दिग्विजय करते रहे हैं। जिस ध्वज के मार्गदर्शन में समस्त संसार का वैभव संपादित किया, वह कर्म से भागने का संदेश भला कैसे दे सकता है। इसीलिए भारत सुवर्णभूमि कहलाया और यहाँ की घी-दूध की नदियाँ बहने की बात सिद्ध हुई। इसी ध्वज को लेकर अपने संपूर्ण संसार में ज्ञान का प्रसार किया। वाणिज्य, व्यापार, कला-कौशल, सैन्य-संचालन, समाज-व्यवस्था आदि सभी क्षेत्रों में हमने उन्नति की। लौकिक जीवन को पारलौकिक जीवन संपादित करने का साधन मानकर हम चले।

इस संबंध में अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। जगद्गुरु शंकराचार्यजी का उदाहरण ऐसा ही है। केवल बत्तीस वर्ष की आयु में उन्होंने कितना बड़ा लोकोद्धार का कार्य कर डाला। क्या कोई कह सकता है कि केवल किसी जंगल में एकाकी बैठकर तपस्या करते रहे? उन्होंने चार बार संपूर्ण भारत की परिक्रमा की। सब उपनिषदों और गीता पर महाभाष्य लिखे। संपूर्ण देश में स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ किए। इस प्रकार महान् कर्ममय जीवन जिया। अत्यंत अल्पकाल में संपूर्ण भारत में नव चैतन्य का संचार किया। यही कर्ममय जीवन जीना इस ध्वज का संदेश है। राष्ट्र की सनातन संस्कृति का यह प्रतीक है। यह ध्वज ही हमारा गुरु है। इसी के मार्गदर्शन में प्रेरणा पाकर हम उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ सकते हैं। इसलिए हम भली प्रकार समझ लें कि यही हमारे भारतीयत्व का सच्चा प्रतीक और हमारा राष्ट्रध्वज है।

आजकल कई बार लोग भ्रमवश ऐसा करते पाए जाते हैं कि प्राचीन काल में हमारा कोई राष्ट्र नहीं था, इसलिए राष्ट्रध्वज भी पहले कभी नहीं था। परंतु यह अंग्रेज़ों के द्वारा फैलाई गई दुर्बुद्धि का प्रभाव है। अंग्रेज़ों ने अपना प्रभुत्व यहाँ निर्माण करने के लिए यह

ग़लत विचारधारा फैलाई कि भारत कभी राष्ट्र नहीं रहा और यह भी कि अंग्रेज़ों ने ही भारत को सर्वप्रथम एक राष्ट्र होने का बोध कराया। इस ग़लतफ़हमी के शिकार होने के कारण ही प्राचीन राष्ट्र जीवन और प्राचीन राष्ट्रध्वज का विस्मरण हुआ। ऐसे लोग नया राष्ट्रध्वज बनाने की कल्पना लेकर आगे बढ़े। अज्ञानवश उन्होंने यह सोचा कि जिस प्रकार भारत को नया राष्ट्र बनाना है, वैसे ही उसे नया राष्ट्रध्वज भी देना है। भारत के सनातन राष्ट्र जीवन के विस्मरण का यह दुःखद परिणाम निकला कि लोग राष्ट्रध्वज की खोज करने लगे।

बताया जाता है कि नए राष्ट्रध्वज की खोज भी सबसे पहले विदेश में ही हुई। भारतवर्ष को ग़ुलामी से मुक्त करने के लिए क्रांति-आयोजन के कार्यों की शिक्षा लेने के लिए कुछ नवयुवक फ्रांस जा पहुँचे। वहाँ एक स्थान पर बहुत से नवयुवक एकत्र होकर अपने देश भारत के संबंध में चर्चा कर रहे थे कि एक विदेशी एक भारतीय युवक से पूछा बैठा, "बड़ी बातें कर रहे हो, बताओ तुम्हारा झंडा कौन सा है?" भारतीय नवयुवक निरुत्तर हो गया, क्योंकि उसे भारत के राष्ट्रध्वज का ज्ञान नहीं था। उन दिनों भारत में अंग्रेज़ों का राज्य था और यहाँ यूनियन जैक फहराता था। भारतीय युवक इतना तो जानता था कि यूनियन जैक भारत का ध्वज नहीं है? तब भारतीय युवकों ने फ्रांस में एक ध्वज बनाया। उसमें भारत के प्रांतों की गिनती के कुछ तारे, कमल के फूल और तीन रंग की पट्टियाँ थीं। यह झंडा 1907 में फहराया गया, फिर 1921 में कांग्रेस के बेजवाड़ा अधिवेशन में महात्मा गांधी ने तीन रंग की पट्टियों के साथ चरखा लेकर झंडा प्रदान किया।[1] उस समय अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ आंदोलन की धूम थी। यह झंडा आज़ादी की लड़ाई में अगुवाई करता रहा। लाल, हरा और सफ़ेद रंग के इस झंडे में लाल रंग हिंदुओं का, हरा मुसलमानों का तथा सफ़ेद रंग बाक़ी सबका कहा गया था। किंतु बाद में अनेक छोटे-छोटे वर्गों की ओर से माँग आने लगी कि उनका अलग रंग भी ध्वज में दिया जाए। इस पर समस्या निर्माण हुई। इस विवाद के हल के लिए एक झंडा कमेटी बनाई गई।[2] इसके अध्यक्ष पं. जवाहरलाल नेहरू ही थे। इस कमेटी ने भी असंदिग्ध

---

1. 1921 में अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक बेजवाड़ा (वर्तमान विजयवाड़ा) में आयोजित की गई। इसी सत्र में कांग्रेस के एक स्वयंसेवक पिंगली वैंकैया ने महात्मा गांधी के समक्ष एक तिरंगा झंडा बनाकर प्रस्तुत किया। गांधी जी के इच्छानुसार कार्य समिति ने इसे कांग्रेस के झंडे के रूप में अपनाया।
2. 2 अप्रैल, 1931 को कराची में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने झंडा कमेटी का गठन किया। इस कमेटी में पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, मास्टर तारा सिंह, बी.डी. केलकर, डॉ. एन.एस. हार्डिकर तथा डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या थे। झंडा कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया था कि 'राष्ट्रीय ध्वज विशिष्ट, कलात्मक, आयताकार तथा ऐसा होना चाहिए, जो किसी संप्रदाय विशेष का प्रतीक न लगे। सर्वसम्मत विचार यह है कि हमारा राष्ट्रध्वज एक रंग का होना चाहिए। यदि एक रंग की बात की जाए, जो भारतवासियों को अधिक स्वीकार्य है, अन्य की तुलना में अधिक विशिष्ट है, साथ ही दीर्घकाल से प्राचीन परंपरा से जुड़ा रहा है तो वह है केसरिया या भगवा रंग।'

शब्दों में यही निर्णय दिया कि केसरिया ध्वज ही राष्ट्रध्वज हो सकता है। फिर भी बाद में अंग्रेज़ों द्वारा प्रसृत मिली-जुली संस्कृति और खिचड़ी राष्ट्रवाद के प्रभाव में आकर झंडा कमेटी की इस रिपोर्ट को कार्यान्वित नहीं किया गया। तिरंगे झंडे को ही स्वीकार कर लिया। केवल भगवा, हरा और सफ़ेद रंगों का अर्थ बदलकर बताया जाने लगा कि ये समूह के द्योतक नहीं, गुणों के द्योतक हैं। वह ज़माना अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ आज़ादी की लड़ाई लड़ने का था। राष्ट्र की प्रगति के लिए स्वतंत्रता सर्वप्रथम आवश्यक थी। इसीलिए इसका चलन प्रारंभ होने पर सबने इसे स्वीकार कर लिया। सम्मान भी दिया। यह स्वाभाविक ही था। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हुए आंदोलनों में इसी ध्वज को लेकर त्याग और बलिदान हुए। अनेक लोगों ने यातनाएँ सहीं और फाँसी के फंदे चूमे। अतः झंडा कमेटी की रिपोर्ट को न मानते हुए इस ध्वज को स्वीकार कर लिया गया। आज भी उन्हीं रंगों का चक्रांकित तिरंगा ध्वज हमारा राज्यध्वज है और हमारे लिए परम श्रद्धा तथा आदर का केंद्रबिंदु है।

किंतु फिर भी यह प्रश्न मन में सहज उठता है कि जितना प्राचीन हमारा राष्ट्रजीवन है, उसकी शताब्दियों लंबी गौरव परंपरा को व्यक्त करने में क्या यह ध्वज समर्थ हो सकता है? यह सत्य है कि तीस-पैंतीस वर्षों में हुए हमारे त्याग-बलिदान का यह प्रतीक बना किंतु सहस्रों वर्षों के पौरुष, पराक्रम और श्रेष्ठत्वपूर्ण जीवन के इतिहास को देखते हुए तो यह विचार अधूरा ही माना जाएगा। तराजू के एक ओर हम अपनी तीस पैंतीस वर्ष की भावनाओं को रखें और दूसरी ओर हज़ारों वर्षों की भावनाओं को रखें तो कौन सा पलड़ा भारी होगा? निःसंदेह जिस राष्ट्रीय प्रतीक को लेकर वेदकाल से आज तक हम स्फूर्ति पाते रहे, जिसमें सदियों के उत्थान, पतन के रोमांचकारी क्षणों की गाथाएँ गुंफित हैं, जिसमें त्यागी, तपस्वी, पराक्रमी, दिग्विजयी, ज्ञानी, ऋषि, मुनि, सम्राट् सेनापति, कवि, साहित्यकार, संन्यासी और असंख्य कर्मयोगियों के चरित्रों का स्मरण अंकित है, जहाँ दार्शनिक उपलब्धियों के साथ जीवन होम करने के असंख्य उदाहरण हमारे स्मृतिपटल पर नाच उठते हैं, वह परम पवित्र भगवाध्वज ही हमारी अखंड राष्ट्रीय परंपरा का प्रतीक बनकर हमारे सामने उपस्थित होता है। यही सत्य है। यही ध्वज हमें अपने अतीत का ठीक-ठीक ज्ञान कराकर भविष्य की उत्तम प्रेरणा प्रदान करता हुआ वर्तमान में कर्मचेतना जगाने के लिए सक्षम है। यही हमारा स्फूर्ति-केंद्र है। राष्ट्र को अनंतकाल तक मार्गदर्शन प्रदान करनेवाला यही भगवा ध्वज हमारा गुरु, हमारा मार्गदर्शक है। इसी के समक्ष नतमस्तक होकर हम अपने जीवन को श्रेष्ठ बना सकते हैं।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

12

विजय-आकांक्षा

मानव की स्थिति और प्रगति उसकी जयिष्णु और सहिष्णु प्रवृत्ति के सामंजस्य पर ही निर्भर है। प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा दूसरों पर प्रभाव डालने की, उन पर विजय पाने की रहती है तथा अपने व्यक्तित्व को प्रभावी एवं विजयी बनाने के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहता है। दौड़-धूप इसीलिए होती रहती है। किंतु इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति की विजय की प्रबल आकांक्षा का परिणाम दूसरों का विनाश न हो एवं इस विनाश के कारण दूसरों द्वारा होनेवाले सत्य के आविष्कार की संभावना भी समाप्त न हो, इसके लिए मानव ने यह भी आवश्यक समझा है कि वह दूसरों के मतों का आदर करे तथा उसे सत्य मानकर चले। इस भावना ने ही सहिष्णुता की प्रवृत्ति को जन्म दिया है।

विश्व में भारतवर्ष अपनी चरम कोटि की सहिष्णुता की भावना के लिए प्रसिद्ध है। पश्चिम ने इस सहिष्णुता की भावना का अनुभव अभी-अभी निकट भूत में ही किया है तथा जनतंत्र के नाम पर उसके प्रति विश्वास प्रकट करने का प्रयत्न किया है। फिर भी पश्चिमी जीवन में असहिष्णुता इतनी समा गई है कि सहिष्णुता का राग अलापते रहने पर भी किसी-न-किसी प्रकार भीषण असहिष्णुता प्रकट हो ही जाती है। अंग्रेज़ों, फ्रांसीसियों और डचों की साम्राज्यवादी भावनाएँ, एशिया के लोगों पर यूरोपियन लोगों द्वारा किए गए अत्याचार, ईसाई धर्म के अतिरिक्त सब धर्मों को ओछा मानकर उनके साथ क्या हुआ। उनका बर्बर धर्मांतरण का व्यवहार, अंग्रेज़ों का श्वेत मानवों का बोझ मुहावरा, अफ्रीका में हब्शियों एवं अन्य अश्वेतों के लिए बनाए गए क़ानून, अमरीका में नीग्रो एवं रेड इंडियनों के प्रति किया गया बरताव तथा जर्मनी, इटली, रूस आदि देशों में उत्पन्न होनेवाली फासिस्ट मनोवृत्ति एवं हर पच्चीस वर्ष बाद युद्ध, उनकी इसी असहिष्णु मनोवृत्ति के परिचायक हैं। आज भी पश्चिम में इन जातियों के प्रति, जिन्हें वे हीन मानते

हैं, सम्मान और श्रद्धा का भाव उत्पन्न नहीं हुआ है। आज भी वहाँ के विद्वान् यूरोप और अमरीका को ही विश्व पर आधिपत्य कर उसका उपभोग करते रहने का केंद्र मानकर, सारे संसार को उसी के हितों के अनुसार नचाना चाहते हैं।

भारत में इसके विपरीत बहुत पहले ही सहिष्णुता की भावना का उदय हो चुका था। दो हज़ार मील लंबे और दो हज़ार मील चौड़े भारत की विविधरूपा प्रकृति ने अंतर के सत्य का साक्षात्कार कराया। हमने विविधता में एकता की अनुभूति की और इसके परिणामस्वरूप सहिष्णुता की भावनाओं को जन्म दिया। फलतः ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों ही क्षेत्रों में हमने अपनी सहिष्णुता की मनोवृत्ति का परिचय दिया है। 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' का आदर्श समक्ष रखकर ज्ञान के क्षेत्र में, निष्काम कर्मयोग का सिद्धांत प्रतिपादन कर कर्म के क्षेत्र में तथा एक ही ब्रह्म के विविध रूप भिन्न-भिन्न देवताओं को मानकर भक्ति के क्षेत्र में सहिष्णुता की भावना का विकास किया है। सहिष्णुता हमारे जीवन का अंग बन गई है।

आज पश्चिमी जीवन और उसके इतिहास के प्रति हमारा लगाव हो गया है। वहाँ जो नारे उठाए जाते हैं, उन्हें हम ज्यों के त्यों ग्रहण कर लेने में प्रगति समझने लगे हैं। इस कारण पश्चिम की सहिष्णुता की घोषणा भी हमें बड़ी भारी उपलब्धि लग रही है। इसका एक और भी कुप्रभाव हमारे ऊपर हुआ है कि इस सहिष्णुता के प्रति हमारा अंधाभिमान आत्मनिषेध की सीमा को भी लाँघ गया है। स्वयं लांछित और अपमानित होते रहने को हम सहिष्णु होना घोषित करने लगे हैं। इतना ही नहीं, सहिष्णुता की भावना पर इतना ज़ोर दिया जाने लगा है कि जीवन की दूसरी आवश्यक प्रवृत्ति अर्थात् जयिष्णु प्रवृत्ति की ओर हमारा दुर्लक्ष्य हो गया है। फलतः सहिष्णुता का अर्थ हो गया है, महत्त्वाकांक्षा से हीन, दुनिया की हर जाति के सामने झुकते जाना, अपने स्वत्व एवं जीवन को बिल्कुल धूल में मिला देना। युद्ध चाहे वह आत्मरक्षार्थ ही क्यों न हो, हमारे लिए पाप कार्य हो गया है। कोई तुम्हें एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम उसके सामने दूसरा गाल भी कर दो—इस सिद्धांत के ऊपर इतना आग्रह हो गया है कि हम अपमानों की भी चिंता नहीं कर रहे हैं।

वास्तव में तो सहिष्णुता के समान ही जयिष्णुता का सिद्धांत भी आवश्यक है। यदि यह कहा जाए कि जयिष्णुता अधिक आवश्यक है तो अनुचित नहीं होगा। बिना जयिष्णुता की भावना के कोई समाज न तो जीवित ही रह सकता है और न वह अपने जीवन का विकास ही कर सकता है। कोई भी व्यक्ति अथवा समाज केवल श्वासोच्छ्वास के लिए जीवित नहीं रहता, अपितु वह किसी आदर्श के लिए ज़िंदा रहता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उस आदर्श की रक्षा के लिए अपने जीवन की परिसमाप्ति भी कर देता है। आदर्शवादी व्यक्तियों ने ही सब प्रकार की कठिनाइयाँ झेलकर भी संसार को

आगे बढ़ाया है। जिनके जीवन में अपने आदर्शों को विजयी बनाने की महत्त्वाकांक्षा है, वे ही संसार के निराशामय वातावरण से ऊपर उठकर कुछ कर पाते हैं तथा दूसरों के लिए प्रकाशपुंज बनकर मार्ग-दर्शक हो जाते हैं। दुनिया के नए-नए देशों की खोज करनेवाले, प्रकृति के गुह्यतम सिद्धांतों को ढूँढ़ निकालनेवाले, ब्रह्म और जीव के अभेद का साक्षात्कार करनेवाले, दु:खी मानवों को शांति और सत्य का उपदेश देनेवाले, ये सबके सब अपने जीवन में एक महत्त्वाकांक्षा लेकर आए और उसे प्राप्त करने के निमित्त ही जीवन भर प्रयत्न करते रहे।

भारतवर्ष ने इस विजिगीषु वृत्ति का महत्त्व सदा ही समझा है और इसीलिए विजयादशमी जैसे शक्ति पूजा के त्योहारों की योजना की गई है। विजयादशमी हमारी विजयों का स्मारक तथा भावी विजयों की प्रेरक है। यह दिन हमको प्रतिवर्ष याद दिलाने आता है कि हमें दुनिया में विजय करनी है। हम पराजय के लिए अथवा उदासीन बनकर केवल 'आहारनिद्राभयमैथुनं च' तक ही अपने जीवन को सीमित करने के लिए नहीं, अपितु विजय के लिए पैदा हुए हैं।

विजय के लिए सीमोल्लंघन आवश्यक है। किंतु आज हमने अपने जीवन की सीमाएँ बना रखी हैं। स्वार्थ और अज्ञान के संकुचित दायरे में हमने कूप-मंडूक के समान अपने जीवन को सीमित कर दिया है। हमें अपनी सीमाएँ तोड़नी होंगी। जो इन सीमाओं के बाहर नहीं जा सकता, वह विजय भी नहीं प्राप्त कर सकता। सीमोल्लंघन और विजय केवल सेना और शस्त्रास्त्रों से सज्ज होकर शत्रु के राज्य में कूच करके परास्त करने के नहीं होती अपितु विचारों और भावनाओं के जगत् में भी हमारे अनेक शत्रु हैं, जिनको पराजित कर हम अपनी विजय मना सकते हैं।

दुर्गा, रघु, राम और सिद्धार्थ के जीवन की घटनाएँ विजयादशमी के साथ संबद्ध हैं। इनमें से प्रत्येक ने विभिन्न क्षेत्रों में तथा विभिन्न प्रकार से विजय प्राप्त की। क्षेत्रों की विभिन्नता होते हुए भी उनकी प्रवृत्ति की एकता स्पष्ट है। अत: हमारे जीवन में उनकी सी एकध्येयनिष्ठा तथा अपने जीवन के संकुचित दायरे से बाहर निकलकर आदर्श को प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा रही तो हम भी जीवन में विजय प्राप्त कर सकेंगे।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

13

लोकमत-परिष्कार

राज्य पुनर्गठन के प्रश्न पर जब देश में विभिन्न माँगों को लेकर लोगों की भावनाएँ बड़ी उग्र होती जा रही थीं, प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू से एक शिष्टमंडल मिला। शिष्टमंडल के एक सदस्य ने पंडितजी से निवेदन किया कि दिल्ली में विधानसभा[1] को समाप्त करने के उनके निर्णय से जनता बहुत प्रसन्न है, अत: उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन न करें। नेहरूजी ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"जो लोग विधानसभा को बनाए रखने की माँग लेकर आते हैं, वे भी जनता के नाम पर ही बातें करते हैं। जनता की इच्छा कौन सी समझी जाए?" पंडितजी ने जो प्रश्न उपस्थित किया, वह लोकराज्य के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, कारण-लोकतंत्र में राज्य जनता की इच्छाओं के अनुसार चलता है। किंतु किन्हीं भी दो व्यक्तियों की इच्छाएँ एक-सी नहीं हो सकतीं। फिर जहाँ करोड़ों मानवों का प्रश्न हो, वहाँ राष्ट्र के सभी जन एक ही इच्छा करेंगे, यह सामान्यतया संभव नहीं। हाँ, युद्ध आदि के समय अवश्य सबकी इच्छाएँ शत्रु पर विजय प्राप्त करने की, समान हो जाती हैं, किंतु वहाँ भी नीति के प्रश्न को लेकर अनेक मतभेद हो सकते हैं।

समान लोक-इच्छा वास्तव में एक आवश्यक कल्पना मात्र है। सच तो यह है कि जनतंत्र में किसी की भी इच्छा नहीं चलती, प्रत्येक को एक सामान्य इच्छा के अनुसार अपनी इच्छाओं को ढालना होता है। यदि ऐसा न हो तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं, मान्यताओं और विश्वासों को ही सर्वोपरि मानकर अड़ा रहे तो लोकतंत्र नहीं चल

---

1. दिल्ली राज्य विधानसभा का गठन 17 मार्च, 1952 को राज्य सरकार अधिनियम 1951 के भाग-ग के तहत किया गया था। लेकिन 1 अक्तूबर, 1956 को इसका उन्मूलन कर दिया गया। सितंबर 1966 में विधानसभा की जगह 56 निर्वाचित और 5 मनोनीत सदस्यों वाली एक मेट्रोपोलिटन काउंसिल ने ली। 1967 में राजधानी परिषद् के लिए हुए चुनाव में जनसंघ ने 56 सीटों में 33 पर विजय प्राप्त की थी। किसी राज्य में जनसंघ को स्पष्ट बहुमत पहली बार मिला था। विजय कुमार मल्होत्रा मुख्य कार्यकारी पार्षद (प्रोटोकॉल में मुख्यमंत्री) बने थे।

सकेगा। अराजकता, विघटन और अंत में एकतंत्रीय निरंकुश शासन इस स्थिति के अवश्यंभावी परिणाम होंगे।

अपनी इच्छाओं के दमन का अर्थ है—दूसरे की बात को मानने की तैयारी। लोकतंत्र की एक व्याख्या यह की गई है कि वह वाद-विवाद के द्वारा चलनेवाला राज्य है। 'वादे-वादे जयते तत्त्वबोध:' यह हमारे यहाँ की पुरानी उक्ति है। किंतु तत्त्वबोध तो तभी हो सकेगा, जब हम दूसरे की बात को ध्यानपूर्वक सुनेंगे और उसमें जो सत्यांश होगा, उसको ग्रहण करने की इच्छा रखेंगे। यदि दूसरे का दृष्टिकोण समझने का प्रयत्न न करते हुए हम अपने ही दृष्टिकोण का आग्रह करते जाएँ तो 'वादे-वादे जायते कण्ठशोष:' की उक्ति ही चरितार्थ होगी। वाल्टेयर[2] ने जब यह कहा कि मैं तुम्हारी बात सत्य नहीं मानता, किंतु अपनी बात को कहने के तुम्हारे अधिकार के लिए मैं संपूर्ण शक्ति से लड़ूँगा'' तो उसने मनुष्य के केवल कंठशोष के अधिकार को स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति इससे आगे बढ़कर वाद-विवाद को 'तत्त्वबोध' के साधन के रूप में देखती है। हमारी मान्यता है कि सत्य एकांगी नहीं होता, विविध कोणों से एक ही सत्य को देखा-परखा और अनुभव किया जा सकता है। इसलिए इन विविधताओं के सामंजस्य के द्वारा जो संपूर्ण का आकलन करने की शक्ति रखता है, वही तत्त्वदर्शी है। वही ज्ञाता है।

दृष्टिकोण में इस सामंजस्यपूर्ण परिवर्तन के लिए जीवन में संयम की नितांत आवश्यकता है। जो असंयमी है, वह अपनी इच्छाओं पर कभी क़ाबू नहीं पा सकता। उनकी पूर्ति के लिए वह बाक़ी लोगों की कुछ भी चिंता न करता हुआ सब प्रकार से प्रयत्न करेगा। यदि सफल हो गया तो वह अपने क्षेत्र में एकाधिपत्य प्रतिष्ठापित कर लोकतंत्र की हत्या कर देगा। यदि असफल हुआ तो उसके लिए लोकतंत्र रसहीन एवं दु:खदायी हो जाएगा। यदि बहुजन समाज लोकराज्य में अपने सुख की अनुभूति न कर सके तो यही कहना होगा कि वहाँ लोकतंत्र का बेजान ढाँचा मात्र खड़ा है, आत्मा नहीं।

दूसरे की बात सुनना या उसके मत का आदर करना एक बात है और दूसरे के सामने झुकना बिल्कुल भिन्न बात। दूसरे की इच्छा के सामने झुकने की तैयारी में एक ख़तरा सदैव बना रहता है। जो छूछे-सज्जन एवं धर्म-भीरू होते हैं, वे तो सदैव अपनी बात का आग्रह छोड़कर दूसरों की बात मान लेते हैं, किंतु जो दुर्जन एवं दुराग्रही हैं, वे

2. वाल्टेयर (1694-1778) फ्रांस के महान् लेखक, नाटककार एवं दार्शनिक थे। उनके समय में फ्रांस में अभिव्यक्ति पर कई तरह के प्रतिबंध थे, फिर भी वे सामाजिक सुधारों के पक्ष में खुलकर बोलते थे। अपनी रचनाओं के माध्यम से वे रोमन कैथोलिक चर्च के कठमुल्लेपन एवं अन्य फ्रांसीसी संस्थाओं की खुलकर खिल्ली उड़ाते थे। वाल्टेयर के इसी विरोध के चलते उन्हें फ्रांस से देश निकाला दिया गया। जीवन के अंतिम दिनों में फ्रांस लौटकर उन्होंने अन्याय और कट्टरपन के ख़िलाफ़ नारा दिया—'इन बदनाम चीज़ों को नष्ट कर डालो'। वाल्टेयर की मृत्यु के बाद फ्रांस की राज्य-क्रांति आरंभ हुई। उनके विचारों का अमरीकी तथा फ्रांसीसी क्रांति पर ग

अपनी बात मनवाकर समाज के अगुआ बन जाते हैं और धीरे-धीरे लोकतंत्र विकृत रूप में उपस्थित होकर समाज के लिए कष्टदायक हो जाता है। संभवतः इसी संकट का सामना करने के लिए हमारे यहाँ के शास्त्रकारों ने लोकमत-परिष्कार की व्यवस्था की। जिस समाज में यह परिष्कार का काम चलता रहेगा, वहाँ सहिष्णु एवं संयमशील व्यक्तियों का मंडल निरंतर बढ़ता चला जाएगा, यहाँ तक कि ऐसे वायुमंडल में इन गुणों से वंचित व्यक्ति कदाचित् ही उपलब्ध हो सकें। यदि एकाध अपवाद रहा भी तो वह अपना वर्चस्व नहीं जमा सकेगा।

किंतु यह लोकमत-परिष्कार का काम कौन करे? रूस एवं अन्य साम्यवादी देशों में यह काम राज्य के द्वारा किया जाता है। मार्क्स के सिद्धांत के अनुसार, मज़दूरों की क्रांति के पश्चात् प्रति-क्रांति की संभावना है, उसे रोकने के लिए कठोर उपायों के अवलंबन की आवश्यकता है। साथ ही अभी तक जीवन के जो मूल्य स्थापित हुए हैं, वे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पर आधारित हैं। उन्हें हटाकर नए प्रगतिवादी मूल्यों की प्रतिष्ठापना करनी होगी। यह कार्य लेनिन ने राज्य को, जो कि उसके अनुसार सर्वहारा के प्रतिनिधियों एवं क्रांतिदर्शी महानुभावों के द्वारा चलाया जाता है, सौंपा। किंतु उसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ लोकमत परिष्कार के नाम पर व्यक्ति की सभी स्वतंत्रताएँ समाप्त हो गईं तथा कुछ व्यक्तियों की तानाशाही ही संपूर्ण जनता की इच्छा के नाम पर चलने लगी। जो दवा की गई, उससे मर्ज़ तो ठीक नहीं हुआ, हाँ मरीज़ अवश्य चल बसे। अर्थात् समस्याएँ दोनों ओर हैं—एक ओर अपरिष्कृत लोकमत, जिसकी दशा कभी सोच-विचार कर निश्चित नहीं होती। शेक्सपियर ने अपने नाटक जूलियस सीज़र में उसका बड़ी स्पष्टता के साथ चित्रण किया है। जो जनता ब्रूटस के साथ होकर जूलियस सीज़र के वध पर हर्ष मना रही थी, वही थोड़ी देर में एंटोनियों के भाषण के उपरांत ब्रूटस का वध करने को उद्यत हो गई। मॉबोक्रेसी और ऑटोक्रेसी के दोनों पाटों के बीच से डेमोक्रेसी को जीवित रखना एक कठिन समस्या है।

इसलिए लोकमत-परिष्कार का कार्य वही कर सकता है, जो लोकेषणाओं से ऊपर उठ चुका हो। भारत ने इसका समाधान खोज निकाला। भारत ने इस समस्या का समाधान राज्य के हाथ से लोकमत-निर्माण के साधन छीनकर किया है। लोकमत-परिष्कार का कार्य है वीतरागी द्वंद्वातीत संन्यासियों का। लोकमत के अनुसार चलने का काम है राज्य का। संन्यासी सदैव धर्म के तत्त्वों के अनुसार, जनता के ऐहिक एवं आध्यात्मिक समुत्कर्ष की कामना लेकर अपने वचनों एवं निरीह आचरण से जन-जीवन के ऊपर संस्कार डालते रहते हैं। उन्हें धर्म की मर्यादाओं का ज्ञान कराते रहते हैं। कोई मोह और लोभ न होने के कारण वे सत्य का उच्चारण सहज कर सकते हैं। लोक-शिक्षा और लोक-संस्कार के वही केंद्र हैं। शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन-

मूल्य बनते और सुदृढ होते हैं। इन मूल्यों को बाँधे रखने के बाद लोकेच्छा की नदी कभी अपने तटों का अतिक्रमण कर संकट का कारण नहीं बनेगी।

मर्यादाओं के अंतर्गत होनेवाली क्रिया का नाम ही संयम है। भूखा मरना संयम नहीं, अपितु शरीर की आवश्यकता के अनुसार गुण और मात्रा में भोजन करना संयम है। बिल्कुल न बोलना, यहाँ तक कि अत्याचारी के विरुद्ध आवाज़ भी न लगाना अथवा कोई सत्परामर्श भी न देना संयम नहीं। वाचाल और गूँगे के बीच संयमी पुरुष आता है, आवश्यकता पड़ने पर बोलता है और अवश्य बोलता है। अपने व्यवहार का यह नियमन व्यक्ति द्वारा तब हो सकता है, जब व्यक्ति को अपने आदर्श की लगन हो तथा अपनी ज़िम्मेदारी का बराबर भाव हो। असंयम और ग़ैर-ज़िम्मेदारी साथ-साथ चलते हैं। लोकराज्य तभी सफल हो सकता है, जब एक-एक नागरिक अपनी ज़िम्मेदारी को समझेगा और उसका निर्वाह करने के लिए क्रियाशील रहेगा। समाज जितना यह समझता जाएगा कि राज्य की चलाने के ज़िम्मेदारी उसकी है, उतना ही वह संयमशील बनता जाएगा। जिस दल को लगता है कि आज नहीं कल, हमारे कंधों पर राज्य-संचालन का भार आ सकता है, वह कभी अपने वादों में और व्यवहार में ग़ैर-ज़िम्मेदारी एवं असंयत नहीं होगा, फिर जनता के ऊपर तो राज्य चलाने की ज़िम्मेदारी सदैव ही रहती है। समय-समय पर वह अपने प्रतिनिधि के रूप में भिन्न दलों को चुन लेती है। वह यदि ज़िम्मेदार रही तो दल भी संयमशून्य नहीं होंगे।

अतः सबसे अधिक महत्त्व है जनता को सुसंस्कृत करने का, लोकमत परिष्कार का। जब तक इस काम को करनेवाले राज्य के मोह से दूर, भय से मुक्त, महापुरुष एवं संघटक रहेंगे, लोकमत अपनी सही दिशा में ही चलता जाएगा।

—राष्ट्र जीवन की दिशा (पुस्तक), 1971

□

14

'त्रिभाषा फॉर्मूला' नहीं 'द्विभाषा सूत्र' चाहिए

कांग्रेस की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव के द्वारा केंद्र सरकार से यह कहा कि भाषा के प्रश्न पर पुनर्विचार करे तथा ऐसी व्यवस्था करे, जिससे सभी देशवासियों के साथ समान रूप से न्याय हो। इस प्रस्ताव के द्वारा उसने केंद्र की कांग्रेस सरकार तथा संसदीय कांग्रेस दल के प्रति अपना अविश्वास नहीं तो कम-से-कम उसके निर्णयों से घोर असहमति अवश्य प्रकट की है। जब भाषा-विधेयक और संबद्ध प्रस्ताव पर लोकसभा और राज्यसभा में विचार हो रहा था, तब न केवल जनसंघ एवं अन्य विरोधी दलों के सदस्यों ने बल्कि कुछ कांग्रेसी सदस्यों ने भी यह माँग की थी कि इतने महत्त्वपूर्ण विषयों पर कोई भी निर्णय जल्दबाज़ी में न लिया जाए तथा सर्वसम्मत हल निकालने का प्रयत्न किया जाए।

किंतु खेद का विषय है कि गृहमंत्री श्री यशवंतराव चह्वाण तथा प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी दोनों ही अपने हठ पर डटे रहे तथा उन्होंने कांग्रेसी संसद् सदस्यों की आत्मा का हनन करके अपना विधेयक और प्रस्ताव पारित करवा लिया। अब वे किस मुँह से इस प्रस्ताव में संशोधन लाएँगे? निश्चित ही देश व देशवासियों को यह लगेगा कि दक्षिण के कुछ प्रांतों में हिंदी विरोधी आंदोलन तथा मद्रास विधानसभा के हिंदी को समाप्त करने का प्रस्ताव और मद्रास के मुख्यमंत्री की धमकियों का यह परिणाम है कि कांग्रेस कार्यकारिणी इस प्रकार का विचार कर रही है।[1] यह स्थिति कांग्रेस के लिए

---

1. हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितंबर, 1949 को स्वीकार कर ग़ैर-हिंदी राज्यों में इसे सुदृढ करने के लिए केंद्र को 15 वर्ष का समय दिया गया। साथ ही, अनुच्छेद 343 (2) में संविधान के लागू होने से पंद्रह वर्ष तक सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग को भी मान्यता दी गई, जो कि 26 जनवरी 1965 को समाप्त हो जानी थी। जैसे-जैसे यह दिन निकट आने लगा, दक्षिण भारत के राज्यों, विशेष तौर पर मद्रास में हिंदी-विरोधी आंदोलन उग्र हो गया। के. कामराज की अध्यक्षता में कांग्रेस कार्यसमिति ने 22 फरवरी, 1965 को हिंदीकरण के विरोध में प्रस्ताव पारित कर अंग्रेज़ी को भी अनिवार्य करने की बात कही थी। इसके बाद कांग्रेस ने संसद् के दोनों सदनों में राजभाषा अधिनियम में संशोधन का प्रस्ताव रखा। इसमें मुख्यत: हिंदी के साथ अंग्रेज़ी को भी अनिवार्य करने और त्रि-भाषा सूत्र को अपनाए जाने आदि की बात थी। संसद् ने 16 दिसंबर 1967 को इसे पारित किया था।

अप्रतिष्ठाकारक होने के साथ ही उन तत्त्वों का हौसला बढ़ानेवाली है, जो केंद्र को चुनौती देकर देश में पृथकतावाद को बल देना चाहती है, किंतु यह भी सत्य है कि जो ग़लत क़दम उठाया गया है, उसका परिमार्जन भी करना ही होगा। यदि यह काम सही ढंग से और सही दिशा में तथा दृढता से उठाया गया तो लाभ होगा अन्यथा मामला और गंभीर बन जाएगा। अंग्रेज़ी अनिवार्य क्यों?

कांग्रेस कार्यकारिणी ने जो हल सुझाया है, वह देश के गले नहीं उतारा जा सकता। उन्होंने पुराने त्रिभाषा सूत्र का ही राग अलापा है तथा अंग्रेज़ी और हिंदी दोनों की अनिवार्यता पर बल दिया है। पिछला अनुभव और आज की भावनाएँ यह बताती हैं कि इस अनिवार्यता को न तो अंग्रेज़ी वाले मानने को तैयार हैं और न अंग्रेज़ी विरोधी। जहाँ तक अंग्रेज़ी का संबंध है, वह पिछले सवा सौ वर्षों से देश भर में अनिवार्य व्यवहार रहा है। जब तक यह अनिवार्यता समाप्त नहीं होती, भारत की भाषाओं के व्यवहार का प्रारंभ भी नहीं हो सकता। अब भारतीय भाषाओं के राजभाषा के रूप में व्यवहार की बात की जाती है, तो कुछ लोग यह आपत्ति करते हैं कि यह काम एकदम और एक झटके से नहीं हो सकता। उनकी आपत्ति सही है, पर उनके लिए अंग्रेज़ी की अनिवार्यता बनाए रखने का हल ग़लत है।

क्योंकि यदि अंग्रेज़ी अनिवार्य रही तो परिवर्तन की स्वतंत्रता नहीं रहेगी। वे लोग, परिवर्तन एक झटके में होता है, यही कल्पना करते हैं; किंतु उस दिन को टालना चाहते हैं या लोगों को भ्रम में डालकर परिवर्तन की बात को ख़त्म कर देना चाहते हैं। वास्तविकता यह है कि संक्रमण काल में अंग्रेज़ी रहेगी, पर अंग्रेज़ी की अनिवार्यता नहीं रहेगी। 'अंग्रेज़ी हटाओ' का उद्देश्य 'अंग्रेजी की अनिवार्यता' हटाओ मात्र है। जो लोग अंग्रेज़ी के हामी हैं और उनके गुणों का वर्णन करते नहीं अघाते, उन्हें इससे नहीं डरना चाहिए, क्योंकि यदि अंग्रेज़ी में सच में कुछ शक्ति है तो वह अपने बलबूते पर टिक जाएगी, उसे राज्य के बल की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए और यदि वह निरर्थक बोझा है तो उसे ढोते रहने का कोई अर्थ नहीं। कांग्रेस कार्यकारिणी ने अंग्रेज़ी को अनिवार्य बनाने की बात कही है; वह कभी मान्य नहीं होगी।

अब प्रश्न हिंदी की अनिवार्यता का आता है। संविधान के अनुसार तो 26 जनवरी, 1965 के बाद उसका प्रयोग अनिवार्य रूप से होना चाहिए, किंतु अभी यह स्थिति नहीं है। उसके कारण दो हैं। प्रथम तो शासन ही इस दृष्टि से तैयार नहीं है, द्वितीयत: वे अंग्रेज़ी को ही चाहते हैं। दूसरा मत तो स्वीकार नहीं किया जा सकता, किंतु प्रथम कारण के लिए उनका व्यावहारिक दृष्टि से समर्थन करनेवाले कुछ साथी मिल जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम उनसे लड़ाई करने के झगड़े में न पड़ते हुए पहली बात की तैयारी करें। तैयारी के लिए हिंदी का प्रयोग करना पड़ेगा। किंतु जो हिंदी नहीं

जानते उनके लिए अंग्रेज़ी के प्रयोग की सुविधा देनी होगी। निश्चित ही यह स्थिति हिंदी की अनिवार्यता की नहीं होगी। अनिवार्यता न रहने से यह हो सकता है कि अंग्रेज़ी को विदा होने में कुछ समय अधिक लगे, किंतु उसके साथ ही प्रशासन और संक्रमण की कठिनाइयाँ भी कम हो जाएँगी तथा हिंदी के पारिभाषिक शब्दों को निखरने और रूढ़ होने का अवसर मिल जाएगा। किंतु यह तभी संभव है जबकि हिंदी के प्रयोग की छूट हो तथा अंग्रेज़ी की अनिवार्यता न रहे।

अत: आज तो सर्वसम्मत हल यही हो सकता है कि अंग्रेज़ी और हिंदी दोनों में से किसी की अनिवार्यता न रहे तथा दोनों के प्रयोग की छूट हो। इससे दोनों पक्षों का समाधान होना चाहिए। दोनों भाषाओं में से जिसका दम होगा, वह टिक जाएगी। क्या अंग्रेज़ी वाले इस चुनौती को स्वीकार करेंगे? श्री अन्नादुराई[2] इसके लिए तैयार नहीं दिखते, क्योंकि उन्होंने अंग्रेज़ी को अनिवार्य किया है तथा हिंदी की पढ़ाई को अनिवार्यत: बंद किया है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि तमिलनाडु में भी हिंदी को वे बिना क़ानून का सहारा लिये नहीं रोक सकते। उनके इस क़दम से घबराने की ज़रूरत नहीं। वह दिन दूर नहीं जब मद्रास की जनता और विद्यार्थी अनुभव करेंगे कि उनका इससे नुक़सान हुआ है तथा वे हिंदी की पढ़ाई के लिए आंदोलन करेंगे। पर अन्नादुराई सोच रहे हैं कि वे हानि से बचने का उपाय स्वतंत्र तमिलनाडु बनाकर जनता को अपने पीछे ले आएँगे। परंतु तमिल जनता की राष्ट्रीयता इतनी गहरी है कि निश्चित ही वह उनके चक्कर में नहीं आएगी। किंतु कांग्रेस द्वारा अनिवार्य हिंदी का प्रस्ताव निश्चित ही उन्हें बल प्रदान करेगा।

संसद् द्वारा पारित प्रस्ताव में सरकारी नौकरियों में भरती के लिए हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों में से एक को अनिवार्य किया गया है। तर्क दिया जाता है कि जब शासन का काम इन दोनों भाषाओं में होगा, तब कम-से-कम एक का ज्ञान तो अवश्य ही होना चाहिए। तर्क में बल है। किंतु जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है, उनका कहना है कि उन्हें अतिरिक्त पढ़ाई करनी पड़ेगी। जबकि हिंदी भाषियों का काम अकेले हिंदी से ही चल जाएगा। यह स्थिति विभेदकारी तो है ही, इससे हिंदी का भी अहित होने की संभावना है। राजसेवा आयोग में एक प्रश्न-पत्र हिंदी या अंग्रेज़ी का रहेगा। उम्मीदवारों को यह छूट रहेगी कि दोनों में से किसी एक भाषा की परीक्षा में बैठें। स्पष्ट है कि जिनकी

---

2. कांजीवरम नटराजन अन्नादुराई (1909-1969) मद्रास में हुए हिंदी-विरोधी आंदोलन के प्रमुख नेता तथा द्रविड़ मुन्नेत्र कझगम दल के संस्थापकों में एक थे। 1967 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को सत्ताच्युत कर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। इन्होंने विधानसभा में त्रिभाषा फॉर्मूले (हिंदी, अंग्रेज़ी तथा तमिल) पर तत्काल प्रभाव से रोक लगाने तथा राज्य में सिर्फ़ तमिल तथा अंग्रेज़ी को लागू करने के लिए अध्यादेश लाया, सदन ने इसे 23 जनवरी 1968 को पारित किया था।

मातृभाषा हिंदी नहीं है, वे हिंदी के प्रश्नपत्र में उनके साथ सहज नहीं टिक पाएँगे, जिनकी मातृभाषा हिंदी है। फलत: वे अंग्रेज़ी ही लेंगे। इस प्रकार गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, आंध्र, कर्नाटक, केरल, प्रांतों में भी जहाँ हिंदी बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है, अंग्रेज़ी को चुना जाएगा। अत: आवश्यक यह है कि राज-सेवा की भरती की परीक्षा के लिए न तो अंग्रेज़ी और न हिंदी को अनिवार्य किया जाए। जब तक पढ़ाई मातृभाषा के माध्यम से होनेवाली है तथा राजसेवा आयोग की परीक्षाएँ भी मातृभाषा के माध्यम से होनेवाली हैं तो हिंदी या अंग्रेज़ी के अलग-अलग प्रश्नपत्र की आवश्यकता नहीं है। हाँ, भरती के उपरांत स्थायी होने के पूर्व भाषाओं में से किसी एक में परीक्षा पास करना आवश्यक होना चाहिए। इस परीक्षा के अंकों का परिणाम कर्मचारी की सेवा की शर्तों पर नहीं होना चाहिए। उत्तर प्रदेश में अंग्रेज़ी काल में राज-काज में हिंदी और उर्दू के संबंध में वही व्यवस्था लागू थी, जिनकी मातृभाषा हिंदी है, उनके लिए अहिंदी भाषा का अध्ययन आवश्यक और उपयोगी होगा। अथवा काम में इस प्रकार के भी लोगों के लिए कम-से-कम दो भाषाओं का ज्ञान आवश्यक होगा। यह न्याययुक्त तो होगा ही बल्कि इससे भी अधिक हिंदी के अखिल भारतीय पृष्ठभूमि में विकसित होने में लाभकारी होगा।

अत: हमें त्रिभाषा के सूत्र के स्थान पर द्विभाषा सूत्र की ही आवश्यकता है—मातृभाषा और हिंदी या संक्रमणकाल में अंग्रेज़ी तथा जिनकी मातृभाषा हिंदी है, उनके लिए एक अन्य भारतीय भाषा। भारतीय जनसंघ ने कालीकट अधिवेशन में यही सूत्र स्वीकार किया है। यह उस विशाल जनमत का प्रतिनिधित्व करता है, जो आज देश में व्याप्त है तथा अनिवार्यता के सिद्धांत का परित्याग करने के कारण उन लोगों के भी मुँह बंद कर देता है, जो किसी एक ही कोटि का विचार करते हैं। मैं शासन से आग्रह करूँगा कि वह पूर्वग्रह तथा दुराग्रह का परित्याग कर इस आधार पर ही भाषा व्यवस्था में संशोधन करे। उसने अन्यथा किया तो वह आंदोलन को व्यापक और उग्र ही करेगा।

—फरवरी 25, 1968

□

15

पश्चिमी वादों से मुक्त एक नए आर्थिक दर्शन की खोज

15 अगस्त, 1947 तक देश के सभी आंदोलनों एवं प्रयासों का हेतु था स्वतंत्रता की प्राप्ति। स्वदेशी, खादी और ग्रामोद्योगों, नमक और जंगल सत्याग्रह, कर-बंदी और लगान-बंदी जैसे आंदोलन, तिलक फंड अथवा पैसा फंड के आधार पर स्थापित उद्योग, कपड़े और चीनी की मिलों की स्थापना, संरक्षण और अवमूल्यन आदि के प्रश्नों की ओर देखने का हमारा दृष्टिकोण आर्थिक न होकर राजनीतिक था। इनके सहारे हम स्वतंत्रता संग्राम को बल देना चाहते थे। किंतु स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद हमारे दृष्टिकोण में अंतर आया है। अब हम प्रत्येक प्रश्न को आर्थिक दृष्टिकोण से देखते हैं। देश की आर्थिक-समृद्धि अब हमारा लक्ष्य हो गया है। राजनीतिक दलों के कार्यक्रम एवं शासन की योजनाएँ इसी उद्देश्य से बनाई जा रही हैं। हमारी संपूर्ण शक्ति इसी एक प्रश्न पर केंद्रित है।

मार्शल और मार्क्स का चक्कर

जीवन के विभिन्न आदर्शों के कारण ही नहीं, देश और काल की भिन्न परिस्थितियों के कारण ही हमारे आर्थिक विकास का मार्ग पश्चिम से भिन्न होना चाहिए, किंतु हम मार्शल और मार्क्स से बुरी तरह बँध गए हैं। अर्थशास्त्र के जिन नियमों की उन्होंने विवेचना की, उन्हें हम शाश्वत मानकर चल रहे हैं। वे व्यवस्था-सापेक्ष हैं, जो यह जानते हैं, वे भी उनकी परिधि से बाहर नहीं निकल पाते। पश्चिम की आर्थिक समृद्धि ने उसकी अर्थोत्पादन पद्धति के विषय में हमारे मन में निरपवाद रूप से श्रद्धा उत्पन्न कर दी है। पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों ने इतना विवेचनात्मक साहित्य

उत्पन्न किया है कि उसके भीतर से हम सहज ही दब जाते हैं। कि उससे ऊपर उठ ही नहीं सकते।

निहित स्वार्थों का घेरा

पाश्चात्य अर्थशास्त्र के भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त भारत में ऐसे लोग भी बहुत बड़ी संख्या में हैं, जिनके हित पाश्चात्य अर्थव्यवस्था एवं उत्पादन-प्रणाली से जुड़े हुए हैं। पिछले सौ वर्षों में जिस अर्थ-व्यवस्था का भारत में विकास हुआ, उसने भारत और पश्चिम के औद्योगिक देशों की व्यवस्थाओं को एक-दूसरे का पूरक बनाया। इसमें भारत के हितों का संरक्षण नहीं हुआ, बल्कि उसका बराबर शोषण ही होता रहा। किंतु इस शोषण की क्रिया में पाश्चात्य आर्थिक हितों ने भारत के कुछ वर्गों को भी अपने अभिकर्ता के रूप में साझीदार बना लिया। प्रारंभ में व्यापारी और कमीशन एजेंट के रूप में और बाद में कुछ अंश में उद्योगपति, स्वतंत्र अथवा साझीदार के रूप में इनके हित-संबंध विदेशी आर्थिक हितों के साथ बँध गए। इस वर्ग का देश के आर्थिक जीवन पर पर्याप्त प्रभुत्व रहा है। आज भी संख्या तथा देश की राष्ट्रीय आय में उनका योगदान कम होते हुए भी वे समाज और देश के अर्थजीवन पर भारी प्रभाव रखते हैं। इस वर्ग की आकांक्षाएँ निश्चित हैं। वे अधिकाधिक मात्रा में अपने विदेशी प्रतिनिधियों का स्थान ग्रहण करना चाहते हैं। समाज के सर्व सामान्य जीवन पर उसका क्या परिणाम होगा, इसकी उन्हें चिंता नहीं। पाश्चात्य अर्थशास्त्र के भारतीय विद्वानों से उनका सहज ही समसंयोग मेल बैठ जाता है। भारत के सभी समाचार-पत्र, विशेषकर अंग्रेज़ी के, उनके प्रभाव-क्षेत्र में हैं। ये सब मिलकर जाने या अनजाने में ऐसा मायाजाल रच देते हैं कि साधारण जन उसमें से निकल ही नहीं पाता।

समाजवाद और पूँजीवाद

वर्तमान युग में आर्थिक समस्या अत्यंत विषम हो उठी है। इस समस्या को हल करने के विविध प्रकार पश्चिम के विद्वानों ने रखे हैं। किंतु इन सभी का दृष्टिकोण एकांगी ही रहा है। उत्पादन पर अधिक बल देने के कारण अमरीका आदि देशों में पूँजीवाद का प्रसार हुआ। नवाविष्कृत यंत्र इस बढ़ते हुए उत्पादन के कारण बने और इन यंत्रों के स्वामी ही उत्पादन के स्वामी भी बन गए। लाभ में जब श्रमिकों को भाग नहीं मिला, तब उनमें प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई और उन्होंने एक नई प्रणाली समाजवाद या साम्यवाद का विकास किया, जिसमें पुनः वितरण पर ही अधिक बल दिया गया और इसके लिए राज्य द्वारा व्यक्ति को कुचलकर भी रख दिया गया।

लेकिन उपभोग की ओर पश्चिम के विद्वानों का ध्यान नहीं गया, यद्यपि उपभोग

ही उत्पादन और वितरण दोनों की धुरी है। पश्चिम ने अधिकाधिक उपभोग के अपने पुराने सिद्धांत को ही चलने दिया और उसमें संशोधन की ज़रूरत नहीं समझी। वास्तविकता यह है कि अधिकाधिक उपभोग का सिद्धांत ही मनुष्य के दुःखों का कारण है। उपभोग की लालसा यदि पूरी की जाए तो वह बढ़ती चली जाती है। वर्ग संघर्ष जिसके ऊपर समूचा साम्यवाद खड़ा है, ऐसे उपभोग के ही कारण उत्पन्न होता है। भारतीय मतवाद जब वर्ग-संघर्ष का खंडन करता है, तब उसका तात्पर्य यही होता है कि उसने उपभोग को नियंत्रित कर लिया है तथा अधिकाधिक उपभोग के बजाय न्यूनतम उपभोग को आदर्श बनाया है। मनुष्य की प्रकृत भावनाओं का संस्कार करके उसमें अधिकाधिक उत्पादन, समान वितरण तथा संयमित उपभोग की प्रवृत्ति पैदा करना ही आर्थिक क्षेत्र में संस्कृति का कार्य है। इसमें ही तीनों का संतुलन है।

पश्चिमी प्रौद्योगिकी नहीं चली

पश्चिम की बड़े आधार की प्रौद्योगिकी और विकेंद्रीकरण एक साथ नहीं चल सकते। बहुत से लोग विकेंद्रीकरण का अर्थ केवल प्रादेशिक विचार से करते हैं। वे विकेंद्रीकरण के नाम पर बंबई और अहमदाबाद जैसे कारख़ानों को गाँवों में स्थापित करके समाधान कर लेंगे। समाजवादी राजनीतिक शक्ति का बँटवारा करके संतुष्ट हो जाएगा तथा गाँव, ज़िला, प्रांत और केंद्र के चौखंभे राज्य के रूप में उसका समाजवाद पनपेगा। किंतु हर स्थान को लेकर स्थान-स्थान पर उत्पादन होगा, वह पश्चिमी ढंग का ही होगा। उनका स्वामित्व बँटवारे का है, मौलिक नहीं।

भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक प्रगति की कल्पना केवल हवाई उड़ान ही नहीं है, मानव की गरिमा को सुरक्षित रखते हुए समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का दायित्व भी निभाना ही होगा। समाजवाद और पूँजीवाद दोनों ने ही एकांगी मार्ग स्वीकार किया है।

मशीन की ग़ुलामी का अंत आवश्यक

समाजवाद और लोकतंत्र दोनों ने ही मानव के भौतिक-स्वरूप और आवश्यकताओं पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया है तथा दोनों की आधुनिक विज्ञान और यांत्रिक उन्नति पर अत्यधिक श्रद्धा है। दोनों ही इन वर्तमान आविष्कारों के शिकार से हो गए हैं। परिणाम यह है कि उत्पादन के साधन का निर्धारण, मानव-कल्याण और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं किया जा रहा है, बल्कि उनका निर्धारण यंत्रों के अनुसार करना पड़ रहा है। उत्पादन की केंद्रित व्यवस्था में, फिर उसका नियंत्रण चाहे व्यक्ति द्वारा हो अथवा राज्य द्वारा, मानव के स्वतंत्र व्यक्तित्व का लोप हो जाता है। मशीन के एक पुर्ज़े से अधिक

उसका महत्त्व ही नहीं रहता। यदि हमें मनुष्य के मनुष्यत्व की रक्षा करनी है तो हमें उसे मशीन की ग़ुलामी से मुक्त करना होगा। आज व्यक्ति मशीन पर शासन नहीं करता, मशीन मनुष्य पर शासन कर रही है। इस मशीन प्रेम के मूल में मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को अधिकाधिक मात्रा में तृप्त करने की भावना ही निहित है। पर हम यह न भूलें कि केवल भौतिक समृद्धि मात्र से मनुष्य सुखी नहीं हो सकता।

भौतिक साधनों से संपन्न राष्ट्रों की समस्याएँ भी आज हमारे सम्मुख हैं। हमें संपूर्ण मानव-जीवन का विचार कर उत्पादन, वितरण और उपभोग को एक इकाई मानकर चलना पड़ेगा। हमें एक ऐसी पद्धति का निर्माण करना होगा, जिसमें मनुष्य उत्पादन और उपभोग करते समय एक सार्थक जीवन व्यतीत करने का भी ध्यान रखता है। मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं का समुच्चय मात्र ही नहीं है। उसकी कुछ आध्यात्मिक आवश्यकताएँ भी हैं। जो जीवन पद्धति मानव-जीवन के इस आध्यात्मिक पहलू की उपेक्षा करती हो, वह कदापि पूर्ण नहीं हो सकती। यहाँ हमें इस बात का स्मरण रखना होगा कि भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक प्रगति की कल्पना केवल हवाई उड़ान ही नहीं है। मानव की गरिमा को सुरक्षित रखते हुए समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का दायित्व भी निभाना ही होगा। समाजवाद और पूँजीवाद दोनों ने ही एकांगी मार्ग स्वीकार किया है और मनुष्य की इन दो भिन्न प्रवृत्तियों का समुचित सामंजस्य बिठाकर उसके व्यक्तित्व का विकास करने के स्थान पर एक भ्रमपूर्ण स्थिति पैदा कर विभिन्न शक्तियों के लिए एक युद्धस्थल तैयार कर दिया है।

दोनों ही मानव स्वाधीनता के शत्रु

वर्तमान साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों में स्वामित्व के स्वरूप का अंतर छोड़कर और कोई फ़र्क़ नहीं। अतः दोनों में ही व्यक्ति के विकास की कोई सुविधा नहीं तथा आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रताएँ नाममात्र को ही प्राप्त हैं। साम्यवाद के संबंध में तो प्रिंस क्रोपाटकिन ने 1904 में ही लिखा था—"देखना है कि वे इन शताब्दी की प्रभावी प्रवृत्तियों, विकेंद्रीकरण, स्वराज्य तथा स्वतंत्र समझौते का अनुसरण करते हैं या उसके विपरीत विनष्ट सत्ता को पुनः प्रतिष्ठापित करते हैं।" प्रिंस क्रोपाटकिन जिस कम्युनिज़्म की कल्पना करते थे, वही सच्चा कम्युनिज़्म था या यह जो रूस में आज चल रहा है, यह कहना कठिन है। किंतु वह सत्य है कि सामाजवाद सरकारीकरण का ही दूसरा नाम बन गया है। उससे सत्ता या धर्म के विकेंद्रीकरण की आशा करना व्यर्थ है।

मौलिक निर्माण करें

आवश्यकता है कि हम अपने जीवन-दर्शन का विचार कर भारतीय अर्थव्यवस्था

का मौलिक निरूपण करें तथा आज की समस्याओं को यथार्थ की कंटकाकीर्ण, ऊबड़-खाबड़ किंतु ठोस भूमि पर खड़े होकर सुलझाएँ। भारत के 'स्व' का साक्षात्कार किए बिना हम अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं पाएँगे। यदि किसी क्षेत्र में संयोगवश थोड़ी बहुत सफलता मिल भी गई तो उसका परिणाम हमारे लिए हितकर नहीं होगा। हम परानुकरण की ओर अधिक प्रवृत्त होंगे। अपने-अपने स्वत्व और सामर्थ्य के विकास के स्थान पर परावलंबन का भाव हमारे मन में घर कर जाएगा। आत्महीनता का यह भाव घुन की तरह राष्ट्र की जड़ें खोखली कर देगा। इस प्रकार जर्जर मूल राष्ट्र कभी झंझावातों में खड़ा नहीं रह सकता।

हिंदू जीवन-दर्शन ही पूर्ण

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषाथों पर आधारित हिंदू जीवनादर्श ही हमें इस संकट से उबार सकते हैं। विश्व की समस्याओं का उत्तर समाजवाद नहीं, हिंदुत्ववाद है। यही एक ऐसा जीवन-दर्शन है, जो जीवन का विचार करते समय उसे टुकड़ों में नहीं बाँटता अपितु संपूर्ण जीवन को एक इकाई मानकर उसका विचार काता है। यहाँ पर हमें हिंदू जीवनादर्शों का विचार करते समय कुछ निष्प्राण कर्मकांड के साथ अथवा हिंदू समाज में व्याप्त अनेक अहिंदू व्यवहारों के साथ उसका संबंध नहीं जोड़ना चाहिए। साथ ही यह समझना भी भारी भूल होगी कि हिंदुत्व वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति का विरोधी है। विज्ञान और यंत्र इन दोनों का उपयोग इस पद्धति से होना चाहिए, जिससे वे हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन-पद्धति के अनुरूप हों।

एक ऐसी व्यवस्था चाहिए, जो संहारात्मक न होकर सृजनात्मक हो—प्रकृति के शोषण पर निर्भर न होकर पोषण पर निर्भर रहे।

उपभोग प्रधान अर्थव्यवस्था

लोगों के भरण-पोषण के लिए, जीवन के विकास के लिए और राष्ट्र की धारणा और विकास के लिए जिन मौलिक साधनों की आवश्यकता होती है, उनका उत्पादन अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिए। न्यूनतम मर्यादा के बाद और अधिक समृद्धि तथा सुख के लिए अर्थोत्पादन करना चाहिए या नहीं, यह स्वाभाविक प्रश्न पैदा होता है। पश्चिम का अर्थशास्त्र तो इच्छाओं को बराबर बढ़ाते जाना और उनकी आवश्यकताओं की निरंतर पूर्ति करना ही अभीष्ट समझता है। इस विषय में उसकी कोई अधिकतम मर्यादा नहीं है। सामान्यतया तो पहले इच्छा होती है और फिर उसकी पूर्ति के साधन जुटाए जाते हैं। किंतु अब तो हालत यह आ गई है कि जो कुछ पैदा किया जाता है, उसका उपभोग हो, इसके लिए लोगों में इच्छा पैदा की जाती है। बाज़ार के लिए माल

पैदा करने के स्थान पर पैदा किए हुए माल के लिए बाज़ार ढूँढ़ना, न मिले तो पैदा करना आज की अर्थनीति का प्रमुख अंग बन गया है। प्रारंभ में उत्पादन उपभोग का अनुसरण करता था। अब उपभोग उत्पादन का अनुचर है।

प्रकृति का उच्छृंखल शोषण

किंतु उत्पादन का संबंध प्राकृतिक साधनों से भी है। यदि अंधाधुंध उत्पादन बढ़ाते गए तो ये प्राकृतिक साधन कब तक साथ देंगे? कुछ लोग यह कहकर समाधान कर देते हैं कि यदि एक प्रकार के साधन समाप्त हो गए तो दूसरी प्रकार की वस्तुओं की खोज हो जाएगी। नए सबस्टीट्यूट ढूँढ़े जा सकते हैं। उनके इस तर्क में निहित बल को स्वीकार करने के बाद भी यह कहना पड़ेगा कि प्रकृति की संपदा आधार होने पर भी उसकी मार्यादा है। यदि बड़ी तेज़ी के साथ और अनावश्यक रूप से हम उसका ख़र्च करते गए तो एक दिन हमें पछताना पड़ेगा।

प्रकृति की संपदा की मर्यादा की चिंता न भी करें तो कम-से-कम इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा कि प्रकृति में विभिन्न वस्तुओं के बीच एक परस्परावलंबी संबंध है। एक-दूसरे के सहारे खड़ी तीन लकड़ियों में से यदि एक की स्थिति में परिवर्तन कर दें तो शेष दो अपने आप गिर जाएँगी। आज की अर्थव्यवस्था और उत्पादन की पद्धति इस सामंजस्य को बड़ी तेज़ी से बिगाड़ती जा रही है। परिणामत: जहाँ एक ओर हम नई-नई इच्छाओं की पूर्ति के लिए नए-नए साधन ढूँढ़ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर नए-नए प्रश्न हमारी संपूर्ण सभ्यताओं और मानवता को समाप्त करने के लिए पैदा होते जा रहे हैं।

प्रकृति का शोषण नहीं, दोहन

हम प्रकृति से इतना तथा इस प्रकार लें कि वह उस कमी को स्वयं पुन: पूरित कर ले। पेड़ से फल लेने में उसकी हानि नहीं होती, लाभ होता है। भूमि से अधिक फसल लेने के लोभ में हम ऐसे उर्वरकों का प्रयोग कर रहे हैं, जिनसे कुछ दिनों बाद उसकी उत्पादन शक्ति समाप्त हो जाती है। आज अमरीका में लाखों एकड़ भूमि इस प्रकार की खेती के कारण ऊसर हो चुकी है। यह विनाशलीला कब तक चलती रहेगी?

कारख़ानेदार मशीन आदि के लिए घिसाई निधि की व्यवस्था करता है। परंतु प्रकृति के इस कारख़ाने के लिए हम किसी भी घिसाई-निधि की चिंता न करें, यह कैसे हो सकता है? इस दृष्टि से विचार किया जाए तो कहना होगा कि हमारी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य मर्यादित उपभोग होना चाहिए। सोद्देश्य, सुखी, विकासमान जीवन के लिए जिन भौतिक साधनों की आवश्यकता है, वे अवश्य ही प्राप्त होने चाहिए। भगवान् की सृष्टि का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि उतनी व्यवस्था उसने की है। किंतु जब हम

यह समझकर कि भगवान् ने मनुष्य को केवल उपभोगप्रवीण प्राणी बनाया है और उसके लिए अंधाधुंध उपयोग के लिए ही अपनी संपूर्ण शक्ति ख़र्च करें तो यह ठीक नहीं। इंजन को चलाने के लिए कोयला चाहिए, किंतु कोयला खाने के लिए इंजन नहीं बनाया गया। प्रत्युत हमारा प्रयत्न तो यही रहता है कि कम-से-कम ईंधन से ज़्यादा से ज़्यादा शक्ति कैसे पैदा हो? यह बचत का दृष्टिकोण है। मानव-जीवन के उद्देश्य का विचार करके हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे यह न्यूनतम ईंधन से अधिकतम गति के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सके। यह अर्थव्यवस्था मानवी होगी। यह मानव के एक पहलू का विचार न कर उसके पूर्ण जीवन का तथा अंतिम उद्देश्य का विचार करेगी। यह संहारात्मक न होकर, सृजनात्मक होगी। यह प्रकृति के शोषण पर निर्भर न रहकर उसके पोषण पर निर्भर होगी। शोषण नहीं दोहन हमारा आधार होना चाहिए या प्रकृति का स्तन हमारे लिए जीवनदायी हो, यही व्यवस्था करनी चाहिए।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 15, 1972

□

16

साधन को साध्य न बना लें

जब हिंदू समाज का विचार करते हैं, तब केवल हिंदूनामधारी लोग जो यहाँ रहते हैं, उन तक ही दृष्टि नहीं जाती है। अनेक अपने जीवन के तत्त्व हैं, मूल्य हैं, हमारी जीवन-निष्ठाएँ हैं, जीवन-श्रद्धाएँ हैं, सिद्धांत हैं, जिनकी हम रक्षा करना चाहते हैं। प्रतिज्ञा में भी हम अपने धर्म की, समाज की, संस्कृति की रक्षा करने की बात करते हैं। प्रार्थना में भी भगवान् से आशीर्वाद माँगते हैं, धर्म की रक्षा करते हुए परम वैभव की प्राप्ति की। बिना धर्म की रक्षा के वैभव मिला तो हम उसे स्वीकार नहीं करेंगे। दो क़दम आगे बढ़कर यदि विचार करें तो पता लगेगा कि धर्म को छोड़कर जो कुछ भी मिलेगा, वह वैभव नहीं, पराभव ही होगा। यह हो सकता है कि मन की विकृति के कारण उसी पराभव को हम वैभव ही समझें। कभी-कभी ऐसा होता है, मन की विकृति के कारण या फैशन के कारण तक़लीफ़ होने पर भी उसमें आनंद का अनुभव करते हैं।

गरमी के दिन कहते हैं, पर फैशनपरस्त मनुष्य कोट-पैंट पहनता है, टाई भी बाँधता है, इससे उसे गरमी लगती है, पसीना आता है, पर फैशन के दबाव में उसमें ही शान समझता है। वास्तव में पैंट कोई गौरव की चीज़ नहीं। बहुत सी ऐसी चीज़ों में मनुष्य गौरव मानता है, जो वस्तुतः मन की विकृति के कारण ही गौरवास्पद लगती हैं। पराभव में भी गौरव माननेवाले इतिहास में हो गए हैं। ग़ुलाम बनकर परकीयों को अपना माना, और यदि उनकी जरा सी कृपा प्राप्त हुई तो स्वयं को धन्य समझा। मुग़लों ने मानसिंह को 'सवाई मानसिंह'[1] कहा। उसने इसी में गौरव माना। जो अंग्रेज़ों की अधिक ग़ुलामी करते

1. राजा मानसिंह (1550-1614) आमेर (आंबेर) के कच्छवाहा राजपूत राजा थे। अकबर की मुग़ल सेना में सेनापति बने। मानसिंह ने उड़ीसा और आसाम को जीतकर बादशाह अकबर के अधीन कर दिया। मानसिंह से भयभीत होकर काबुल को भी अकबर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। अकबर ने ख़ुश होकर इन्हें 'सवाई मानसिंह' कहा और बंगाल, बिहार, दक्षिण और काबुल का शासक नियुक्त किया था।

थे, उन्हें अंग्रेज़ ख़िताब देते थे, उसमें लोग गौरव मानते थे। परकीयों का साथ देने में गौरव का अनुभव होना मन की विकृति ही तो है। प्रेम भरे प्रशंसा के दो शब्द प्राप्त हो गए, उसी में धन्यता मानने की यह मनोवृत्ति ग़लत ही नहीं, त्याज्य भी है।

मानसिंह नहीं, अपमानसिंह

धर्म को छोड़ने के बाद जो कुछ प्राप्त हो, वह गौरव नहीं। वैभव तो प्राप्त होता ही नहीं। जो प्राप्त होता भी है, वह गौरव या वैभव नहीं कहलाता। रावण लंका का राजा था, स्वर्ण लंका का स्वामी, पर धन होने पर भी उसे वैभव संपन्न नहीं माना गया। क्योंकि उसके पास धन था, राज्य था, पर शांति नहीं थी। परेशान था। राम का नाम सुनते ही चिंता होती थी, ईर्ष्या बढ़ जाती थी, द्वेष था, घर में पतिव्रता मंदोदरी जैसी पत्नी होने पर भी उसका सम्मान नहीं कर पाता था। सामंजस्य नहीं था। विभीषण जैसा भाई था। पर उसके वचन उसे अच्छे नहीं लगते थे। वह कुटी बनाकर बाहर रहता था। इस प्रकार घर में ही पति-पत्नी की, भाई-भाई की बनती नहीं थी। मन में चिंता, अस्थिरता, द्वेष विद्यमान रहते थे। ऐसी स्थिति में ऐश्वर्य मिल भी सका तो वह सुखी नहीं कहा जा सकता।

मन को भी सुख चाहिए, केवल शरीर को नहीं। सुख के बारे में सोचते समय मनुष्य यह ग़लती करता है, वह केवल शरीर की सोचता है। पश्चिमी देशों ने यही ग़लती की, पर अब उनकी धारणाओं में सुधार हो रहा है। पहले शरीर का ही विचार करते रहें, पर जब वह सुख मिलने पर भी मन को दुःख ही रहा, तब उसका विचार प्रारंभ हुआ।

रोटी का सुख श्रेष्ठ है, रोटी ही सबकुछ है, ऐसी कुछ लोगों की धारणा है। यह बात सच है कि रोटी से मनुष्य ज़िंदा रहता है, पर यदि सबको रोटियाँ मिलने लगें तो भी सब ज़िंदा रहेंगे, ऐसा नहीं। मनुष्य की अन्य लालसाएँ भी हैं, जिनका तृप्त होना ज़रूरी है। जो रोटी सम्मानपूर्वक मिले, वही अच्छी लगती है; सम्मान बेचकर जो रोटी मिले, वह नहीं चाहिए। हम तुलना करके देखें, राणाप्रताप को घास की रोटी और मानसिंह को मिलनेवाले रस भरे व्यंजन की। किस रोटी को हम पसंद करेंगे? एक रोटी को खाकर प्रताप धर्म पर डटे रहे, मानसिंह रस भरे व्यंजन खाकर ग़ुलाम बना रहा। स्वतंत्रता मुग़ल दरबार को बेच दी। मानसिंह का स्मरण नहीं आता, वास्तव में उसे हम अपमान सिंह ही कह सकते हैं। रोटी ही सबकुछ होती तो यह अंतर क्यों?

आजकल लोग कहते हैं कि जीवन का स्तर स्टैंडर्ड बढ़ाओ। आज जीवन स्तर बढ़ाने का अर्थ शरीर की आवश्यकता-पूर्ति के साधन ज़्यादा बढ़ाने से रहता है। एक बार पढ़ा कि गंगाजी में एक व्यक्ति नहाने आता है, एक धोती और तौलिया लेकर। तौलिया पहनकर स्नान कर लेता है, फिर धोती पहन लेता है। उधर प्रथा ही है। बड़े-बड़े धोती-तौलिए से ही काम चलाते हैं। पर पश्चिमी दृष्टिकोण में यह तरीक़ा उच्च

जीवन स्तर का नहीं। यदि धोती, साबुन, तेल, मंजन ले आए तो स्तर ऊँचा। और यदि ग़ुसलख़ाने में नहाना है, शावर बाथ है, शैंपो है तो स्तर और भी ऊँचा माना जाता है। अन्य-अन्य प्रकार की चीज़ें एकत्र करना स्तर बढ़ाना माना जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि आप इन वस्तुओं का उपयोग न करें। पहले भी यहाँ ये वस्तुएँ थीं। हम उपयोग भी करते थे। पर इन उपयोगों की वस्तुओं की बहुलता के माप में यह माने कि जीवन स्तर ऊँचा है, ग़लत है।

हमारे यहाँ तो संन्यासी को श्रेष्ठ मानते हैं। जिसका न घर रहता है, न ग़ुसलख़ाना, न रहने का ठिकाना, न सोने का। वस्त्र भी एक लँगोटी। जो दे दिया वह खा लिया। ऐसा जो वीतरागी है, वह श्रेष्ठ है। और जो वैभव-संपन्न, वह छोटा है। नापने का तरीक़ा कौन सा होना चाहिए। पश्चिम का तरीक़ा उलटा है। शरीर की आवश्यकता को ही सबकुछ माना जाता है। पर अपनी संस्कृति की मान्यता है, शरीर सबकुछ नहीं, मन भी है। वह शांत रहना चाहिए। शरीर सुखी और मन दुःखी तो लाभ नहीं, मन का सुख बहुत बड़ा सुख है। मन में संतोष के बारे में तो अपने यहाँ कहा है कि—

> गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन धन खान।
> जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

सब धन मिल जाए, पर मन में संतोष न हो तो व्यर्थ। मनुष्य की लालसा अपरिमित है। इतना मिला, इतना और मिल जाए, यह इच्छा बनी रहती है। बैंक बैलेंस बढ़ता जाए, ऐसा ही हमेशा लगता रहता है। भगवान् राम और राजा रावण में क्या अंतर था। सोने की लंका का स्वामी था, पर लालसा बढ़ी हुई थी। राम का ऐसा नहीं था। राज्य मिलनेवाला था, पर बनवास मिला, दोनों में समान आनंद व संतोष। वास्तव में रावण की आँखें धन की ओर, राम की कर्तव्य की ओर थीं। राजा होने पर भी स्त्री को भगा लाया, क्या यह राजा का कर्तव्य था। कर्तव्य तो है प्रजापालन। पर वह तो धाक जमाना चाहता था। कैसे धाक जमेगी इसका विचार। यह कैसे विध्वंस किए जाएँ, नए टैक्स कैसे लिये जाएँ, जो टैक्स न दे, उससे कैसे ख़ुद वसूला जाए—इसी को अपना ध्येय मान बैठा था। धन-संपत्ति साधन है, पर जब ये ही साध्य बन जाते हैं, तब रावण वृत्ति पैदा होती है। उसको साधन मानना राम का भाव है। राज्य मिलेगा, प्रजा का पालन करूँगा, बनवास मिला कर्तव्य की पूर्ति करूँगा। यह भावना रही। हमारे जीवन में जब मोह हो जाता है, 500 से 700 या 2000 कैसे, होंगे यह विचार प्रबल रहे तो दुःख पैदा होगा। साधन को साध्य समझने की प्रवृत्ति दुःख का मूल है।

एक सेठ थे। उनके मकान में नीचे एक गृहस्थ रहता था अपनी पत्नी के साथ। आय तो कम थी पर दोनों बड़े सुख से रहते थे। मेले-ठेले में जाना, मित्रों की आवभगत

आदि बातों में आनंद से दिन बीत रहे थे। एक बार सेठजी की पत्नी ने कहा, देखो आप इतना कमाते हैं, पर कभी जीवन में आनंद नहीं लेते, हमेशा उदास और व्यस्त रहते हैं। आय भी कम नहीं, पर जीवन में सुख नहीं। वह नीचे के दंपती देखो, आय कम है पर उनके जीवन में आनंद है। तब सेठजी ने कहा, वह अभी निन्यानबे के फेरे में नहीं पड़ा है। फिर एक रात को 99 रुपए की थैली उसके घर में पटक दी। जब उस गृहस्थ को थैली मिली, उसने रुपए गिने, 99 निकले। फिर उसने 100 करने का सोचा। वह ख़र्च कम करने लगा। जब 100 रुपए हुए तो 200 रुपए करने का विचार किया। धीरे-धीरे जीवन में सब आनंद छूट गए। पैसा जोड़ना, यही धुन रही। यह परिवर्तन देखकर सेठजी बोले, ''अब यह 99 के चक्कर में पड़ गया है।''

यह चक्कर मनुष्य को वैभवशाली नहीं बनाता। पैसा चाहिए, ज़रूरत भी है, उपयोग में भी आता है। पर केवल साधन के रूप में ही विचार करें, साध्य न बनाएँ। अन्यथा अनेक प्रकार की समस्या पैदा करता है। शरीर के साथ मन भी रहता है। उसका भी सुख है। दोनों का संबंध बना रहे। इसके साथ आगे और भी विचार करना पड़ता है। शरीर व मन के साथ बुद्धि का भी सुख चाहिए। तन का, मन का सुख मिला, पर बुद्धि का न मिला तो पूर्ण सुख नहीं। पागल को तन का, मन का सुख मिलता है, मस्त रहता है, पर बुद्धि ठीक नहीं, उलझन में रहती है, अपना ही सर दीवार में फोड़ लेता है। फिर तन, मन दोनों दुःखी हो जाते हैं। इनके साथ ही एक और सुख है, आत्मा का सुख। आत्मा का सुख बड़ा सुख है। सब सुख प्राप्त होते हैं, पर यदि आत्मा में ग्लानि हो तो फिर पूर्ण सुख नहीं। आत्मग्लानि क्या है, आत्मा क्या है, यह समझना टेढ़ी चीज़ है। फिर भी मोटे रूप में देख सकते हैं।

अपने को छोड़कर जब दूसरों के सुख का विचार करने लगते हैं, मन में समाधान होता है। कर्तव्य-पूर्ति में तथा अच्छा दृश्य देखने में भी एक समाधान है। डूबते हुए को निकालकर लाने में तक़लीफ़ होती है, पर उसे बचाने का समाधान मिलता है। यह किस प्रवृत्ति के कारण होता है। यदि शरीर का विचार करें तो तक़लीफ़ होती है। फिर क्यों व्यक्ति बचाने जाता है। जान-पहचान का या रिश्ते का है, तो भी ठीक है, पर ऐसा भी नहीं, बिना किसी संबंध या परिचय के व्यक्ति डूबनेवाले को बचाता है। उसमें जो आनंद है, वह एक प्रकार का आत्म-सुख है। आत्मा के कारण ही पूर्ण सृष्टि में हम बँधे हैं। फूल खिलते हैं, मोर नाचता है, तब दृश्य देखकर हमें आनंद आता है। बादल आसमान में छा जाते हैं। पानी गिरने जैसा हो तो कभी मनुष्य को आनंद आता है। कोई कहेगा कि वह आनंद तो स्वार्थ के कारण है। लोग सोचते हैं कि वर्षा होगी, कृषि बढ़ेगी और हमें सुख मिलेगा, पर ऐसा नहीं। बच्चे भी जो हिसाब नहीं करते, ऐसे वातावरण में प्रसन्न रहते हैं। प्राकृतिक दृश्य देखकर प्रसन्न होते हैं। आत्मा का सृष्टि के साथ जो संबंध है, उसी के

कारण आनंद मिलता है। मनुष्य यानी तन, मन, बुद्धि एवं आत्मा के सामूहिक समुच्चय का रूप। चित एवं अहंकार आदि भी है। पर बड़े रूप में इस चतुष्ट्य का नाम है मनुष्य। इनका पूरा-पूरा विचार करते ही मनुष्य का विचार हो सकता है। एक का विचार किया, वह अधूरा रहा। सबका अलग-अलग से विचार हो जाएगा, पर मनुष्य का विचार नहीं होगा।

जो शरीरवादी हैं, वे शरीर का विचार करते हैं। उसी को प्रमुख मानते हैं। बुद्धि का नियंत्रण ही मनुष्य जीवन पर रहता है। 'मैन इज रेशनल एनीमल' ऐसा कहा है। पर वास्तव में मनुष्य बुद्धि का प्रयोग करके बहुत कम काम करता है। केवल कुछ प्रतिशत। हम जूता पहनते हैं, सोचते नहीं कि पहले दायाँ या बायाँ। भोजन के समय भी बुद्धिपूर्वक सोच-सोचकर ग्रास नहीं लेता, पहले यह खाऊँगा, आदि-आदि। माँ बच्चे का पालन करती है। यह बुद्धि महत्त्व की चीज़ है, बिना बुद्धि के गड़बड़ भी हो जाती है, फिर भी बुद्धि ही सबकुछ नहीं। बुद्धि को सबकुछ समझना बुद्धिहीनता है। कई बार हम बच्चों को छकाते हैं—हमें पकड़ो। कुछ देर बाद जब पकड़ लेते हैं, तब हम कहते हैं, यह तो हाथ पकड़ा। फिर वह पाँव, नाक, चोटी पकड़ता है। पर हम कहते हैं कि यह तो हम नहीं। उसके सामने समस्या है कि क्या पकड़े। वस्तुतः यह शरीर यानी हम नहीं, यह सच है, शरीर के साथ मन, बुद्धि, आत्मा जुड़ी है। आत्मा चली जाती है और सब रहता है, पर वह मनुष्य बेकार हो जाता है।

फिर भी आत्मा सबकुछ है, ऐसा नहीं। आत्मा को कहें कि ज़रा खाना खा ले, वह नहीं खा सकती। ज़रा चित्र बना ले, तो वह नहीं बना सकती। बिना शरीर की सहायता के आत्मा सक्रिय नहीं हो सकती। राजा या मंत्री को सब अधिकार होते हैं, पर वह दफा 144 नहीं लगा सकते। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट द्वारा ही यह कार्य करवाना पड़ेगा। पद्धति है। आत्मा सबकुछ करनेवाली होने पर भी जब भोग भोगने पड़ते हैं, तब शरीर की आवश्यकता रहती ही है। बिना शरीर के आत्मा न तो भोग भोग सकती है, न तपस्या कर सकती है, कोई भी अच्छी या बुरी बात नहीं कर सकती। पर शरीर से मोह ठीक नहीं। उदाहरण के लिए घर रेलगाड़ी से श्रेष्ठ है, पर रेल का अपने आप में महत्त्व है, वह अपने को घर पर पहुँचाती है। यदि इंदौर से भोपाल के लिए प्रस्थान करें तो कुछ ही घंटों में पहुँच जाएँगे। पर यदि भोपाल पहुँचकर भी हम रेल से न उतरें यह सोचकर कि कितनी अच्छी गाड़ी है, यहाँ तक ले आई। तो लोग उत्तर देंगे—वह तो साधन मात्र है, उससे मोह हो जाए तो ग़लती है। सबका (तन, मन, बुद्धि, आत्मा) मेल बिठाना तो हमारी संस्कृति का लक्ष्य है पूर्णता का। एकता का विचार हमारा लक्ष्य रहा है, अधूरा विचार नहीं।

अब इसके बाद जो दूसरी बात का विचार करना पड़ेगा कि जिसका बहुत झगड़ा चलता है कि यह मनुष्य 'मैं' एक हूँ। और इसमें मेरा शरीर, मेरा मन, मेरी बुद्धि, मेरी

आत्मा यह एक हो गई। किंतु इतना ही होने के बाद पूर्ण हो गया क्या? तो पता चलेगा कि नहीं भाई, मैं पूर्णता नहीं। पूर्णता के लिए तो फिर हमें इसके आगे भी समाज का विचार करना पड़ता है। समष्टि का विचार करना पड़ता है। संपूर्ण समाज का विचार किए बिना तो मैं पूर्ण होता ही नहीं, अकेला सोचता चलूँ कि मैं अकेला अपने मन का, बुद्धि का, आत्मा का—सबका विचार करूँगा, किंतु जीवन में पता लगता है कि अकेला आदमी कुछ नहीं कर सकता। अकेला तो अधूरा है। अकेला तो आदमी न तो अपनी किसी भौतिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है। मन का सुख भी नहीं, बुद्धि का सुख नहीं। आत्मा का सुख भी नहीं। मन में सुख नहीं, क्योंकि हम अकेले नहीं हैं। हम तो एक समष्टि के छोटे से घटक हैं। उस समष्टि के साथ हम अपने आपको जुड़ा हुआ समझते हैं। उसके अंगभूत हैं। यह एक विचार हमारे जीवन के अंदर होना चाहिए। इस संबंध में भी बहुत भ्रम लोगों के जीवन में दिखाई देता है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो मनुष्य के इस अकेले को ही सबकुछ समझते हैं। और कहते हैं कि भाई, मैं हो गया सबकुछ। अपने में सबकुछ है। हम सुखी तो जग सुखी, हम सुखी। ऐसा जो लोग मानकर चलते हैं, यह ग़लत बात है। हमारे यहाँ कहा, 'नहीं भाई, जग सुखी तो हम सुखी।' अगर जग को सुख है तो हमको सुख होगा। हम सुखी तो जग सुखी वाली चीज़ नहीं। क्योंकि हम जग के साथ जुड़े हुए हैं। हमारा संबंध है। बच्चा बिल्कुल छोटा सा पैदा होते समय बेचारा कुछकर ही नहीं सकता। कुछ नहीं कर सकता। उसको तो दूसरों के ऊपर आश्रित रहना पड़ता है। और मनुष्य के संबंध में तो यह कहा है कि मनुष्य तो दूसरे के ऊपर सबसे ज़्यादा आश्रित है। छोटा बच्चा बड़ा होने के बाद भी सोचेगा कि मैं सबकुछ हूँ। बाक़ी दुनिया से मुझे क्या सरोकार, तो काम नहीं चलेगा। किसान अपने घर में जो है खेती कर लेगा। खेती करने के बाद उसको और जो चीज़ें लगेंगी—कपड़ा कहाँ से लाएगा। कपड़े के लिए तो उसको दूसरे पर निर्भर करना ही पड़ेगा। और कपड़ा बनानेवाले को, अन्न के लिए किसान पर निर्भर रहना पड़ेगा। तो दोनों एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। वास्तव में समाज में जो विशेष बात है, वह यही कि हम एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। हम स्वयं आत्मनिर्भर जिसको कहेंगे कि हममें सबकुछ है, ऐसा सत्य नहीं है। हम दूसरों के ऊपर निर्भर रहते हैं सदैव। और दूसरों पर निर्भर केवल भौतिक दृष्टि से रहते हैं, ऐसी बात नहीं, भौतिक दृष्टि से हमारी निर्भरता कितनी है, यह तो अपने को समझ में आती है। क्योंकि हम दूसरों से ही कपड़ा लेते हैं। दूसरों के सहारे पर हम अगर बीमार पड़ जाएँ तो वही हमारी चिकित्सा करते हैं। सब कामों में हमको दूसरे लोग मदद करते हैं।

—राष्ट्रधर्म, मई 1978

□

17

हमारे राष्ट्र की प्रकृति

हर राष्ट्र की अपनी-अपनी प्रकृति होती है। उस प्रकृति के हिसाब से वह चलेगा, बाक़ी के एक से सामान्य से दिखाई देनेवाले लक्षण हैं, वे रहेंगे परंतु अंग्रेज़ की या अन्य किसी राष्ट्र की देखने की जो दृष्टि है और हमारी जो दृष्टि है, इसमें हमेशा अंतर रहेगा। स्वामी विवेकानंद ने एक बार कहा, अगर अंग्रेज़ को कोई चीज़ समझानी होगी यहाँ, और रुपया आने, पैसे में समझाने की कोशिश की तो यहाँ कभी व्यक्ति समझेगा नहीं। यह बात भले ही हो कि रुपया आने पैसे का मोह सबके अंदर हो और वह आज भी है, पर पैसों का मोह होने पर समझ नहीं आएगी।

छुआछूत के भेदभाव को दूर करने का सवाल लें अमरीका में, नीग्रो से जहाँ भेदभाव का व्यवहार होता है—वहाँ जब लड़ते हैं तो इस बात पर कि सबको बराबरी का अधिकार है और इनको अधिकार मिलना चाहिए, वे अधिकार के नाम से लड़ते हैं। हमारे यहाँ छुआछूत को दूर करने की कोशिश हुई, पर यहाँ अधिकारों के नाम से कभी नहीं लड़े। बल्कि इसी आधार पर कि सब हमारे हैं, भगवान् के हैं।

स्वामी रामानंद ने कहा—

जाति पाँति पूछै नहिं, कोई।
हरि का भजै सो हरि का होई॥

भगवान् के सब हैं। सबको उपासना करने का अधिकार है। यहाँ अधिकारों के नाम पर लड़ाई नहीं हुई। यहाँ गांधीजी ने भी हरिजन कहा। इनके भी कोई अधिकार हैं। हम अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। यह हमारे यहाँ सोचने का तरीक़ा नहीं हुआ। परिणामतः हमारे यहाँ सुधार की प्रवृत्ति दूसरी तरह से, इनके यहाँ दूसरी तरह से होती हैं। हर जगह अलग-अलग राष्ट्र की प्रवृत्ति के अनुसार चलता है तो विकास हो सकता

है। हमारा भी उसके अनुसार विकास हो सकता है।

अब प्रश्न पैदा होता है कि हमारी प्रवृत्ति व प्रकृति, हमारी कोई आत्मा या संस्कृति है, यह क्या है? यदि हमारा तंत्र होना चाहिए तो हम स्व का साक्षात्कार कैसे करें? हमारा तंत्र क्या होगा? इस संबंध में तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जा सकता है। पर मैं तात्त्विक विवेचन नहीं करूँगा। हम दूसरा व्यावहारिक रास्ता अपनाएँ। एक तरीक़ा है कि मनुष्य क्या है? मनुष्य की आत्मा क्या है?

व्यक्ति अपने को किसके द्वारा पहचानता है? व्यक्ति अपने आपको कर्म के द्वारा पहचानता है। काम करते-करते अपने को पहचानता चला जाता है। जिस काम में हम को आनंद आवे और जिसमें हमारा संतोष होता है, जिस काम में रस आता है, जिस काम में लगे कि अपने आप कर रहे हैं—ऐसा हमारा अनुभव होता है। यह अपने को कर्म से पहचानना है। वास्तविक रूप में स्वतंत्रता के साथ स्वावलंबन जुड़ा हुआ है। दोनों ही सिक्के के दो पहलू के समान हैं। जहाँ स्वतंत्रता है, वहाँ स्वावलंबन होगा। जहाँ स्वावलंबन है, वहाँ स्वतंत्रता निश्चित रीति से आएगी। अगर स्वावलंबन नहीं है तो स्वतंत्रता नहीं आएगी। स्वतंत्रता है और स्वावलंबन न हो, ऐसा नहीं हो सकता।

स्वतंत्र राष्ट्र कभी परावलंबी नहीं होगा और परावलंबी कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता, क्योंकि परावलंबन में परानुकृति आती है। परावलंबन में हम अपने आपको पहचान ही नहीं पाते। जब हम दूसरे पर निर्भर रहेंगे तो हम क्या हैं? हमारी ताक़त क्या है, हमारी बुराई किसमें है, यह कैसे पता लगेगा। परावलंबी कभी अपने आपको पहचान नहीं सकता है। परावलंबी तो अपनी शक्ति का विकास कर ही नहीं सकता। वह कभी आनंद की अनुभूति ही नहीं कर सकता। हम स्वराज्य के बाद स्वावलंबन का आधार लेकर के चलेंगे तो स्वतंत्रता अपने आप आ जाएगी। यदि स्वावलंबन नहीं तो स्वतंत्रता कभी आएगी नहीं। इन 18 वर्षों में दुर्भाग्य से हमारे देश में जो कुछ हुआ, वह यह हुआ और पहले भी शायद कुछ अंशों में था, पर इन दिनों में जो विशेष बात आ गई, यह कि स्वावलंबन हमारे हाथ से निकल गया, हम परावलंबी बन गए। शायद इसका एक कारण है कि हमने यह जो स्वतंत्रता ली, यह यदि विधिवत् लड़कर ली होती तो शायद यह भाव हमारा बना रहता और बढ़ता चला जाता। परंतु अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता आई। हमने आंदोलन किए, 1942 का आंदोलन हुआ, क्रांतिकारियों के प्रयत्न हुए। ऐसी बात नहीं कि हमारे यहाँ बहुत प्रयत्न नहीं हुए। इन्हीं प्रयत्नों के कारण ही अंग्रेज़ों ने यह भी अनुभव किया कि हम यहाँ नहीं रह सकते, हमको जाना ही पड़ेगा। इतने पर भी उन्होंने एक चतुराई की। हम उन्हें धक्का देकर बाहर निकालें, उससे पहले ही उन्होंने इंग्लैंड की पार्लियामेंट में क़ानून पास कर स्वतंत्रता दे दी, स्वराज्य दिया। इन दोनों में बड़ा अंतर है।

छत्रपति शिवाजी ने स्वराज्य की घोषणा की।[1] उसके पहले मुग़ल दरबार ने यह तय नहीं किया। पहले छत्रपति शिवाजी ने अपने पराक्रम से मुग़लों को वहाँ से भगाया। चाहे वह थोड़ी ही भूमि से क्यों न हो। इसमें स्वावलंबन का आधार मौजूद था। 1947 में हमारे स्वराज्य की घोषणा करने के पूर्व ही उनके प्रतिनिधि ने अपना झंडा उतारा, भारत का झंडा लगाया। जिससे शांतिपूर्वक हस्तांतरण के कारण हमारे मन में जो स्वावलंबन की प्रवृत्ति चाहिए, वह नहीं है। जो 1947 तक अंग्रेज़ों के विरोध में स्वाभिमान था, स्वदेशी का भाव था, वह भी चला गया। आज जीवन के हर क्षेत्र में यह बात आ गई कि अब अंग्रेज़ी की कोई भी चीज़ चलती है, ठीक है। इसी का फल है, हम भाषा की दृष्टि से स्वावलंबी नहीं रह पाए। अंग्रेज़ी आज भी हमारे ऊपर सवार है, हम अपनी भाषा से अपना काम चला सकते हैं। दुनिया के छोटे देशों में वहाँ की भाषा चल सकती है। उनको कोई कठिनाई नहीं होती, पर हमारे यहाँ के व्यक्ति को लगता है कि यदि अंग्रेज़ी चली गई तो सबकुछ चला जाएगा। यहाँ तक लोग कहते हैं कि यदि अंग्रेज़ी चली गई तो फिर मद्रास और दिल्ली के बीच को जोड़नेवाली कोई कड़ी ही नहीं रहेगी। मानो यह हिंदुस्तान की एकता अंग्रेज़ी के ही कारण है।

हमारे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, दयानंद उन्होंने किस प्रकार देश की एकता को बनाए रखा। गुरु गोविंद सिंह ने घोषणा की—'हिंदू धर्म जाग', क्या वे अंग्रेज़ी से प्रेरित थे। 1947 तक हमें लगता था कि हम अपनी भाषा से अपना काम चला लेंगे। लेकिन आज भाषा का परावलंबन आ गया है।

स्वदेशी की कल्पना भी लोगों को पुरानी लगने लगी। यह विचार आ गया कि विदेशों से जितना हम लेंगे, उतना ही अच्छा है। फल हुआ कि विदेशी कारख़ाने आए, विदेशी पैसा आया, विदेशी अन्न पाया, विदेशी इंजीनियर आए, हर चीज़ विदेशी अपने अंदर आने लगी। स्थिति यहाँ तक आई कि यदि लड़ाई हुई तो हिंदुस्तान की रक्षा कौन करेगा तो कहते हैं कि हिंदुस्तान की रक्षा जब तक विदेशों से हम हथियार नहीं लेंगे तब तक नहीं होगी। तो हथियार वह विदेशी लें यानी वह हमारी मदद करने के लिए आएँ, यह हम उनसे माँगने लगे। हम उनसे हथियार लें, उनके हथियार आएँगे तो हम यहाँ पर काम कर सकेंगे और अब हथियार तो आए, कुछ लोग कहने लगे हैं कि भाई, हथियार ही क्या अगर उनकी सेना भी आकर मदद करेगी तो क्या आपत्ति कि शत्रु के मुक़ाबले विदेशी सेना हमारी रक्षा कर ले। तो ये जो विचार हमारे जीवन के अंदर आ गए। जैसे-जैसे हमारे जीवन के अंदर

---

1. शिवाजी राजे भोंसले (1627/30-1680) ने भारत में विदेशी सैन्य शासन व राजनीतिक प्रभाव ख़त्म करने के उद्देश्य से 1674 में 'हिंदवी स्वराज्य' की नींव रखी। मुग़ल साम्राज्य से संघर्ष कर उसका विस्तार रोका। इनके द्वारा प्रशासनिक कार्यों के लिए नियुक्त 'अष्टप्रधान' सुशासन के लिए प्रेरणास्रोत है।

स्वावलंबन बढ़ता चला जाता है, वैसे-वैसे हम स्वतंत्रता से दूर हटते चले जाते हैं, और करने के तरीक़ों में परतंत्रता, यहाँ तक कि जीवन के मूल्यों के अंदर परतंत्रता आ जाती है। ऐसा लगता है, हम कुछ नहीं कर सकते। हर जगह पर अपने मन में आत्मविश्वास की कमी आती चली जा रही है। यह आत्मविश्वास की कमी आती चली जाएगी और हम कुछ नहीं कर सकते, यह प्रवृत्ति हमारे जीवन में बढ़ेगी तो फिर हम कभी स्वतंत्रता की ओर नहीं बढ़ेंगे। इसलिए एक ही सूत्र लेकर हर क्षेत्र में निर्णय करना ही पड़ेगा कि हम स्वावलंबी बनेंगे।

स्वावलंबन का अर्थ

बहुत बार लोग कहते हैं, हम स्वावलंबी बनेंगे। इसका अर्थ है, क्या हम दुनिया से आँख बंद कर लेंगे। स्वावलंबन का अर्थ यह नहीं कि हम ऐकांतिक बन जाएँगे या हम अपने दड़बे के अंदर बैठे रहेंगे। ऐसा नहीं रहता। जो देश स्वावलंबी हैं, वे दुनिया के साथ संबंध नहीं रखते, ऐसी बात नहीं, पर स्वावलंबी का अर्थ इतना ही है कि हम अपने पैरों पर खड़े होंगे। अपने आप करेंगे। यदि हमें किसी की मदद लेनी होगी तो मदद लेंगे। हम उसके साथ समानता का व्यवहार करेंगे। दो वस्तुएँ होती हैं—स्वावलंबन और स्वयंपूर्णता।

स्वयंपूर्णता के नाते हो सकता है कि हम बहुत-सी चीज़ों में स्वयं पूर्ण नहीं होंगे। इंग्लैंड अन्न की दृष्टि से पूर्ण नहीं है। वहाँ पर आज भी 6 मास का अन्न पैदा होता है। बाक़ी का अन्न बाहर के देशों से ख़रीदकर लाना पड़ता है। इसके कारण कोई यह नहीं कहता कि इग्लैंड परावलंबी है। इंग्लैंड पूरी तरह से स्वावलंबी है।

आज हम गेहूँ मँगाते हैं। यह प्रश्न अर्थशास्त्र का है कि अमरीका से गेहूँ मँगाना चाहिए या नहीं? हो सकता है, हम मँगावें। हम गेहूँ मँगा सकते हैं और भी दूसरी चीज़ मँगा सकते हैं, परंतु जो मँगावेंगे, पैसा देकर मोल लेंगे। यदि अमरीका नहीं होता तो दुनिया में अन्य कहीं से ख़रीद लेंगे। यह प्रवृत्ति चाहिए कि हम अपना पैसा अपनी मेहनत से कमाकर अर्जित किया है, उससे ख़रीदेंगे। आदान-प्रदान दुनिया में चलता ही रहता है। परंतु स्वावलंबी व्यक्ति के और परावलंबी व्यक्ति के आदान-प्रदान में बहुत बड़ा अंतर रहता है। स्वावलंबी व्यक्ति पुरुषार्थ के बलबूते आदान-प्रदान करता है। दूसरे को जो कि कुछ देता है, उसको भी लगता है कि बदले में उसे कुछ मिला है, इसलिए दोनों में समानता का भाव रहता है। परावलंबी व्यक्ति का आदान-प्रदान भिन्न रहता है। उससे जो लेते हैं, वह कृपा के आधार पर लेते हैं, और उसको हम दासवृत्ति कहते हैं। हम उसके सामने दबते हैं। उसके विरुद्ध कुछ बोल नहीं सकते, जब हम यह सोचें कि वह नहीं देगा

तो कैसे चलेगा? वहीं पर परावलंबन प्रारंभ हो जाता है। वहीं हम आत्मा को दबाने लगते हैं। यदि आत्मा को दबाया तो आत्मा पहचानने का सवाल ही नहीं उठता। आत्मा को पहचानने का प्रश्न वहीं आएगा, जहाँ आत्मा को दबाया जाएगा।

अगर हमको अपना लक्ष्य मालूम है तो हम आगे चलते जाएँगे। कई बार लोग पूछते हैं कि ऐसा कैसे होगा? स्वतंत्रता में समान व्यवस्था क्या होगी, अर्थव्यवस्था, राजव्यवस्था कौन सी होगी? मैं कहता हूँ कि उसके लिए भगवान् की ओर से तय की हुई एक ही व्यवस्था नहीं है। अगर हम अपने प्राचीन जीवन की ओर देखें कि अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ अपने यहाँ रही हैं। यहाँ पर गणराज्य रहे और चाणक्य ने गणराज्यों को ख़त्म करके राजतंत्र भी स्थापित किया। यहाँ पर यदि गणराज्य चल सकता है तो गणराज्य आएँगे और यदि गणराज्य गड़बड़ करता है तो राजतंत्र आएँगे। हमारे यहाँ मशीनें प्राचीन काल से रही हैं। कभी रही हैं तो कभी नहीं रही हैं। हमने बड़े-बड़े आर्थिक दृष्टि से विकास किए हैं, समाज के अंदर सुधार भी अनेक प्रकार के हुए हैं, पुरानी रूढ़ियाँ ख़त्म हुई हैं, नई व्यवस्थाएँ आई हैं।

किसी ज़माने में हमारे यहाँ मंत्र-हवन होते थे, तो फिर कहा गया कि अब यज्ञ हवन नहीं, कथा-कीर्तन होंगे। इसके द्वारा भी हमने काम चलाया। अनेक पंथ-प्रवर्तक यहाँ आए, यहाँ पर भगवान् बुद्ध, नानक आए, कबीर आए। उन्होंने अपना पंथ चलाया। उसके पहले भी पंथ थे, दुनिया चलती थी, देश चलता था, अपना समाज यहाँ पर भगवान् महावीर के पहले भी था, बुद्ध के पहले भी था, भगवान् राम के पहले भी था, कृष्ण के पहले भी था। अब ये आए और समय-समय पर जो आवश्यक हुआ, हमारा मार्गदर्शन करते रहे, अपने पुरुषार्थ से समाज को आगे बढ़ाते चले गए। आगे और भी महापुरुष आएँगे और नई-नई चीज़ें आकर पैदा होंगी। कोई जब यह कहता है कि हम नई चीज़ें नहीं करेंगे तो यह ग़लत है। अगर नई चीज़ें नहीं की होतीं तो हमारे पूर्वजों ने नई चीज़ें कहाँ से सीखीं? अगर हम पुरानी चीज़ों से बँधे रहते, तो फिर पुरानी चीज़ों से बँधे रहने के पश्चात् गीता नहीं आती, क्योंकि गीता भगवान् कृष्ण ने दीं है। उसके पहले क्या था? हाँ, यह आवश्यक था कि भगवान् कृष्ण ने गीता देते समय यह ज़रूर कहा कि मैं वही ज्ञान दे रहा हूँ, जो प्राचीन काल से वैवस्वत मनु से प्राप्त हुआ था। परंतु हमने नई-नई चीज़ें कीं। हम नए क्षेत्र में जाने से कभी नहीं घबराते हैं। स्वावलंबन में नए के प्रति कभी हिचक नहीं होती है। परंतु नया वही कर सकता है, जो अपने पैरों पर खड़ा है। जो अपने पैरों पर नहीं खड़ा होगा, वह तो पुराने का अनुकरण करेगा। इसलिए हमारे यहाँ कितनी भी पुरानी चीज़ें चलेंगी, कुछ नहीं चलेंगी, मुझे इसकी कोई बड़ी चिंता नहीं होती। अर्थात् यदि पुरानी सब चीज़ों को ख़त्म करके हम फिर से नई सृष्टि की रचना करें, नए

जीवन की रचना अपने पुरुषार्थ से, अपने निर्णय से करें तो भी चिंता की बात नहीं। परंतु दूसरों के कहने से, इंग्लैंड के आग्रह पर, अमरीका के इशारे पर इसके मानसिक ग़ुलाम बनकर यदि हम एक इंच भी पीछे हटते हैं तो वह हमको पीछे हटानेवाला होगा, चाहे अच्छी से अच्छी चीज़ भी हम क्यों न करें।

हम अपना काम अपने हाथ से करें, इसमें कभी कमी नहीं होती है, बल्कि अपना काम अपने हाथ से करने में स्वावलंबन बढ़ता चला जाता है। दूसरा कोई भोजन करा दे, तो दूसरे के हाथ से भोजन करने में मज़ा नहीं आता! दूसरा मुँह में भोजन डाल दे, फिर आगे चबाने का काम भी वही करे। चबाने का काम तो हमको करना ही पड़ेगा। यहाँ भी हमने कहा कि दूसरा ही यह हज़म करने का काम कर देगा, तब तो थोड़े दिन में आप ही हज़म हो जाएँगे, बाक़ी कुछ नहीं होगा। हमको यदि समाज का सुधार करना होगा तो स्वयं करेंगे। अपनी पद्धति से करेंगे। हमको राज्य चलाना होगा, स्वयं चलाएँगे। एक बार एक सज्जन कहने लगे कि क्या बात है, यदि बाहर के लोग आकर कारख़ाने खोल दें तो आपको बुरा क्यों लगता है? मैंने कहा कि मझे तो बुरा लगता है, आपको नहीं लगता? तो बोले कि क्या बुराई है? कारख़ाने ही तो खोलते हैं? मैंने कहा कि बाहर के लोग राज्य चलावें तो इसमें क्या बुरा लगता है। अर्थात् कारख़ाने खोलने में बुरा नहीं लगता है पर राज्य चलाने में बुरा लगता है; इससे तो एक ही डिग्री का अंतर है। यह छोटी सी रेखा है। आज कारख़ाने चलाने में बुरा नहीं लगता है, कल शायद यह लगेगा कि राज्य चलाने में क्या है? काम तो ठीक करते ही हैं—वही राज्य चला दें।

जिस दिन मन में यह बात ख़त्म हो जाए कि हम स्वावलंबी नहीं रह सकते। अपने पैरों पर अपना रास्ता नहीं तय कर सकते तो समझ लीजिए कि स्वराज्य की इतिश्री का प्रारंभ हो गया। स्वावलंबन गया तो स्वराज्य रहता नहीं। जहाँ स्वावलंबन रहेगा, वहाँ स्वराज्य स्वतंत्रता में बदलेगा। हम एक बात अच्छी तरह से समझ लें कि दुनिया में हिंदुस्तान का एक स्थान है, उसकी एक प्रकृति है। हम दुनिया में उन थोड़े राष्ट्रों में हैं, जो बड़े राष्ट्र कहलाने के लायक हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में रूस, फ्रांस, अमरीका इनको वीटो का अधिकार है, निषेधाधिकार है। ये सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य हैं और हिंदुस्तान जैसे देश को कोई अधिकार नहीं, चीन को वहाँ कोई घुसने नहीं देता। यह जो स्थिति आई है, इस पर हम विचार करें। ये देश इस बात को जानते हैं कि यदि कल हिंदुस्तान आगे बढ़ गया तो विश्व में जो हमारा नेतृत्व है, उसको चुनौती देगा।

अंतरराष्ट्रीय जीवन में यह अपेक्षा करें कि हिंदुस्तान जैसे देश को जो कल सामर्थ्यशाली, विकसित होने के बाद रूस-अमरीका सबको एक ओर रखकर नेतृत्व ग्रहण कर सकता है, उस देश को क्या वे आगे बढ़ने देंगे? क्या वे इस देश की सब प्रकार से सहायता करेंगे? हम यह समझें कि सहायता करेंगे? हाँ, वे कर सकते हैं कि

हम को पट्टी पढ़ा दे कि भाई, तुम कुछ मत करो—तुमको एटम बम बनाने की क्या ज़रूरत है? और कहा कि उन्होंने इतने एटमबम बना लिए कि हमको बनाने की ज़रूरत नहीं और हमको रास्ता वही बताएँगे। हमारे रुपए की क़ीमत ऐसी बताएँगे, जिसमें हम नीचे गिर जाएँगे। वे हमारे कभी सच्चे मित्र नहीं हो सकते। वे कभी सच्चे साथी नहीं बन सकते। वे कभी सच्चे सहयोगी नहीं बन सकते। बनेंगे—उस दिन, जिस दिन हम अपने पुरुषार्थ से, अपने बल से, संगठन से, सामर्थ्य से, अपने प्रयत्नों से, अपने स्वाभिमान एवं स्वावलंबन से, एक बार जब उनसे आगे बढ़कर खड़े हो जाएँगे।

—राष्ट्रधर्म, मई 1978

□

18

अपना दृष्टिकोण बदलें

व्यक्ति को नाम का बहुत अधिक मोह रहता है। यद्यपि नाम की कोई क़ीमत नहीं, कोई अर्थ नहीं, केवल संकेतवाचक है। मकान बनाया तो लोग नाम का पत्थर लगवाते हैं। पैसा देने पर नाम घोषित करवाते हैं। कई बार विचार आता है कि जिस नाम की कोई क़ीमत नहीं, कोई अर्थ नहीं, उसकी इतनी चिंता क्यों की जाती है? यदि नाम की कोई क़ीमत होती या अर्थ होता तो एक नाम के लोग समान गुणवान क्यों नहीं होते? पर नाम का मोह कि यदि नाम न लिखा जाए तो लोग चिढ़ जाते हैं।

आदमी अपना नाम सुनना पसंद करता है। आदमी सबकुछ भूल जाए, पर अपना नाम नहीं भूल सकता। कुंभकर्णी निद्रा में सोया व्यक्ति भी अपना नाम लेने पर जग जाता है। नाम के साथ आदमी जुड़ जाता है, इसके कारण कभी-कभी बड़ी गड़बड़ी होती है। आदमी का अहंकार नाम के पीछे खड़ा हो जाता है। उस नाम के पीछे आदमी अच्छा-बुरा सब प्रकार का कार्य करने लगता है, यह चीज़ समाज और राष्ट्र के काम में बाधा पहुँचाती है। अच्छा तो यह हो कि हम इस नाम की चिंता के स्थान पर उस काम की चिंता करें, जिसमें सार्थकता है और जिसके कारण हमारा नाम सार्थक बनता है।

जिसके कारण हमारा नाम सार्थक होता है, वह है हिंदू नाम। उसका अर्थ हमारे सामने रहना चाहिए। प्रत्येक नाम उसी का पोषक होना चाहिए। ये नाम निराधार नहीं रखे जाते। ऐसा होता तो हिंदू अपना नाम जॉन क्यों नहीं रखता? मुहम्मद यूसुफ क्यों नहीं रखता। हम ऐसा आग्रह क्यों करते हैं कि नाम विलियम नहीं, रामप्रसाद ही रखा जाए।

इसका कारण यह है कि नाम का संबंध समाज से जुड़ जाता है, राष्ट्र के साथ जुड़ जाता है। जिस व्यक्ति ने भी कोई महत्त्वपूर्ण कार्य किया उसके साथ हम अपने को जोड़ लेते हैं। उसी के लिए हम अपना नाम रखते हैं। मन में यह भाव रहता है कि हम भी उन्हीं जैसे बनें। इसीलिए राम का नाम अधिक प्रयुक्त होता है। राम हमारे समाज के जीवन को व्यक्त करनेवाले हो गए हैं। इसीलिए तुलसी ने कहा कि राम से राम के नाम का अधिक महत्त्व है। प्रश्न उठता है कि राम के नाम का महत्त्व क्यों? तो हमें ज्ञात है कि राम ने समाज के लिए ही अपना जीवन व्यतीत किया। उन्होंने अपने जीवन काल में ऐसे काम किए कि जिसके कारण उनकी स्मृति आज भी प्रेरणा देती है। नाम का महत्त्व बैठे-बैठे राम-राम करने से नहीं होता, उसका वास्तविक अर्थ यह है कि उस दिव्य जीवन की स्मृति हमारे मन में बार-बार आती रहे, उनके आदर्श और संकल्प हमारे मन को सदैव उद्वेलित करते रहें।

राम ने समाज हित के लिए सब प्रकार के निजी सुखों को तिलांजलि दे दी। गद्दी पर बैठे तो भी उसी आधार पर कार्य किया।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानाम् मुंचतो नास्ति मे व्यथा॥

इसी कारण हम रामराज्य को आज भी याद करते हैं। राम को अपने भगवान् का अवतार भी मानना है। इसका कारण यही है कि राम ने अपना व्यक्तित्व समाज में विसर्जित कर दिया था। जब हम अपने को समाज में विसर्जित कर देते हैं, तब समाज के गुणधर्म हमारे जीवन में घुल जाते हैं। समाज का शिष्टाचार जब हमारे जीवन में प्रविष्ट हो जाता है, समाज की ज्ञान परंपरा, धरोहर, थाती सबकुछ जब हम अपने में अंतर्भूत कर लेते हैं और जब हमारे जीवन में समाज के विकास की, उसे समुन्नत करने की भावना आ जाती है, तभी हमारे व्यक्तित्व का वास्तविक विकास हुआ है, ऐसा समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त विकास का और कोई अर्थ नहीं। विकास का अर्थ है समाज जीवन के साथ एकात्म हो जाना।

परंतु हमने ठीक इसके विपरीत किया। जो चीज़ अच्छी हुई, उसे अपने नाम और जो ख़राब हुई उसे दूसरे के नाम मढ़ दिया। यह पहले से ही होता आ रहा है। कोई चीज़ ठीक हुई तो कहते हैं—देखा न, मैंने पहले ही कहा था। गड़बड़ हो जाती है तो नाम भी नहीं लेता है। पिछले दो हज़ार वर्षों से यही हुआ है कि अच्छाई अपने ऊपर और बुराई समाज के ऊपर मढ़ देते हैं।

लोग कहते हैं, हिंदू समाज में जयचंद जैसे देशद्रोही पैदा हुए। मैंने कहा कि

दुर्गादास[1] भी तो इसी समाज में पैदा हुए। पर यहाँ हालत भिन्न है, लोग समझते हैं कि देशद्रोही हुआ तो हिंदुओं में और देशभक्त हुआ तो राठौरों में। गुरु गोविंद सिंह का नाम आएगा तो कहेंगे सिक्खों में उत्पन्न हुए, भामाशाह का नाम आएगा तो कहेंगे साहूकारों में उत्पन्न हुए। एक सज्जन ने कहा, छत्रपति शिवाजी मराठों के नेता थे, वे सारे हिंदुस्तान के नहीं थे। क्या हम हिंदुस्तान में बराबर ग़ुलाम रहे हैं? दिल्ली के लोग ग़ुलाम रहे होंगे, पर विजयनगर में तो लोग ग़ुलाम नहीं थे, मद्रास-केरल में तो हमारे स्वतंत्र राज्य रहे। पर महमूद गज़नी व गौरी ने पंजाब पर कुछ अधिकार कर लिया तो हम सारे देश को क्यों ग़ुलाम समझने लगे।

हमने अच्छी बातों का श्रेय जाति, प्रांत और संस्था को दिया और सारी ख़राबी समाज को दे दी। पूर्वी पाकिस्तान से हिंदू आ रहे हैं तो लोग कहते हैं कि हिंदू बुरी तरह पिट रहे हैं। पर सुभाष बाबू का नाम आता है तो कहते हैं कि वे तो बंग़ाली थे। सुभाषजी की महत्ता बंगाल ने ली और पिटे तो कहा कि हिंदू समाज ऐसा ही है।

हमारी दशा तो उस संयुक्त परिवार जैसी हो गई है, जहाँ कि हम कमाते समय उसे कुछ नहीं देते, पर लौटकर हिस्सा प्राप्त करने के लिए लड़ते हैं। परिवार ऐसे नहीं चलता। वह तभी चलेगा जब कि उसे कुछ दिया भी जाए। भाव यह रखे कि हम उसे हमेशा देंगे, जब तक कोई आपत्ति न आए, उससे कुछ लेंगे नहीं। आज हम हिंदू समाज को कुछ नहीं देते। हज़ार वर्ष के त्याग, बलिदान की घटनाओं का हम लाभ तो उठाते हैं, पर अपना कुछ कर्तव्य उसमें जोड़ते नहीं। हम बुराई ही हिंदू के खाते में डालते हैं। यह स्थिति ठीक नहीं।

हिंदू की व्याख्या किसी ने की कि झगड़ा होने पर दंगाई की लाठी जिस पर पड़ जाए, वही हिंदू। झगड़ा न हो तो कोई पंजाबी, कोई गुजराती, कोई बंग़ाली होते हैं। अर्थ यह हुआ कि हममें झगड़े से ही एकता आती है अर्थात् हम आपत्ति की ही राह देखते रहते हैं। चीन के आक्रमण के समय सारा देश एक होकर खड़ा हो गया। लोगों ने इसे शुभ माना। पर आक्रमण की समाप्ति के बाद वही झगड़े फिर खड़े हो गए। कभी-कभी मन में आता है कि क्या हमारी एकता के लिए झगड़े आवश्यक हैं?

---

1. दुर्गादास 1638-1718) मारवाड़ के राठौर सरदार थे। जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह के निधन के बाद कुँवर अजित सिंह के संरक्षक बने। इन्होंने मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब से संघर्ष कर जोधपुर के शिशु महाराज को उसके चंगुल से निकाला। उनके यथोचित लालन-पालन की व्यवस्था की। मारवाड़ की आज़ादी के लिए मराठों की तर्ज़ पर छापामार युद्ध प्रणाली अपनाकर मुग़लों को उलझाए रखा। औरंगज़ेब द्वारा दिए बड़े-बड़े प्रलोभनों को ठुकराकर स्वामिभक्ति का अद्वितीय उदाहरण पेश किया। आज भी मारवाड़ के गाँवों में बड़े-बूढ़े लोग बहू-बेटी को आशीर्वाद स्वरूप यही कहते हैं कि 'माई ऐहा पूत जण जेहा दुर्गादास, बाँध मरुधरा राखियो बिन खंभा आकाश', अर्थात् हे माता! तू वीर दुर्गादास जैसे पुत्र को जन्म दे, जिसने मरुधरा (मारवाड़) को बिना किसी आधार के संगठन सूत्र में बाँधकर रखा था।

आज हमारे देश में यह भी हो रहा है कि हम अपनी पोज़िटिव चीज़ें छोड़ते चले जा रहे हैं। अपना बल भूलते चले जा रहे हैं। अपनी हार के रिकार्ड हमने अवश्य जुटा रखे हैं। हम अपनी जीत का विचार नहीं करते। पृथ्वीराज हारा, यह हमें अवश्य याद आता है, पर उसने गौरी को 17 बार शिक़स्त दी, यह हम कभी नहीं सोचते। हम भूल जाते हैं कि हमने मुग़ल तख़्त को चूर-चूर किया है। हमें पाकिस्तान बनने की पीड़ा होनी चाहिए, उसे एक करने का संकल्प भी होना चाहिए, पर हम यह क्यों भूल जाते हैं कि संपूर्ण भारत को पाकिस्तान बनाने का मुसलिम मनोभाव पूर्ण नहीं हो सका। हमने उन्हें वैसा नहीं करने दिया। हमें अपनी पोज़िटिव चीज़ें अपनी आँखों से ओझल नहीं कर देनी चाहिए।

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि हिंदू सभी को कमज़ोर नज़र आता है। हमें यह कमज़ोरी का भाव समाप्त करना है। हम कमज़ोर नहीं, असंगठित हैं। इस स्थिति को हमें समाप्त करना है। जो हिंदू का है, वह उसे हमें लौटाना है। हमारे महापुरुषों का जीवन इस हिंदू समाज की ही देन है। इस नाते उनसे भी ज़्यादा यदि कोई वंदनीय है तो वह हिंदू समाज ही है। यदि रवींद्र बाबू को हिंदू के सारे संस्कार प्राप्त नहीं होते, ज्ञान की इतनी धरोहर उन्हें नहीं मिली होती तो वे शायद कुछ भी नहीं कर पाते। अपने मन में यह भाव सदा जाग्रत् रहना चाहिए कि जो कुछ भी मैं श्रेष्ठ कर रहा हूँ, उसका श्रेय हिंदू समाज को जाना चाहिए। अगर समाज मुझे ज्ञानबुद्धि नहीं देता तो मैं कुछ भी नहीं कर पाता, यह विचार मन में रहना चाहिए। कबीर ने कहा है—

मेरा मुझ पर कुछ नहीं जो कुछ है सो तोय।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागत है मोय।।

मेरा कुछ भी नहीं है, जो कुछ भी है, सब तेरा है। अर्थात् जो कुछ भी हिंदू समाज का है, उसे हिंदू समाज को ही सौंप दिया। ऐसा समझना चाहिए कि यह मेरा ही नहीं, संपूर्ण समाज का है।

हमें यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि हम हिंदू हैं। हमें इसी नाते से खड़ा होना चाहिए। हिंदू के लिए जो करणीय है, जो आवश्यक है, उसे हम ही करेंगे, उसके लिए कोई आसमान से नहीं टपकेगा। यदि हिंदू समाज के लिए वैभव लाना है, हिंदू समाज की आर्थिक उन्नति करनी है तो हमारे सिवा और कौन करेगा? इसके लिए अमरीका-इंग्लैंड से लोग नहीं आएँगे। भगवान् भी नहीं आएगा। हम चाहते भी नहीं कि भगवान् आए। हम तो केवल उसका आशीर्वाद ही चाहते हैं। हमें अपने पुरुषार्थ पर भरोसा है। जिस दिन यह भरोसा समाप्त हो जाएगा, उसी दिन हम भगवान् को पुकारेंगे।

जो भी हमारे लिए आवश्यक होंगे, ऐसे सभी काम हम करेंगे। हिंदू के अंदर आत्मविश्वास पैदा करेंगे कि वह सबकुछ कर सके। उसके अंदर ऐसे गुण उत्पन्न करेंगे कि वह सबकुछ कर सके। यही हमारा अभीष्ट है, यही हमारे जीवन का व्रत है।

(लखनऊ में दिया गया एक बौद्धिक)

—राष्ट्रधर्म, मई 1978

□

19

पश्चिम और हम

स्वयं जीवित रहने की इस वृत्ति के कारण ही एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पना चाहता है, यह वृत्ति हमारे जीवनादर्श में नहीं है। भारतीय और पश्चिम के विचारों में मूलभूत अंतर है। हम समाज की अनेक इकाइयों में सामंजस्य मानकर चलते हैं और पश्चिम में विरोध को महत्त्व दिया गया है। उनकी कल्पना है कि संपूर्ण मानव जीवन संघर्षमय है। सृष्टि इसी संघर्ष के आधार पर टिकी हुई है। उनका समूचा जीवन दर्शन प्रतिस्पर्धा पर आधारित है। भारत की सारी विचारधारा सहयोग और परस्पर पूरकता पर आधारित है। हम प्रत्येक सामाजिक इकाई को उसकी पूर्णता में देखते हैं, पर वे उसे पूर्णता में नहीं देखते। हम व्यक्ति के शरीर को भौतिक आवश्यकताओं का पुंज नहीं मानते। हमने उसकी बौद्धिक, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को भी महत्त्व दिया है। परंतु पश्चिम में अधिकांश लोग शरीर की भौतिक आवश्यकताओं के बीच संघर्ष की स्थिति मानते हैं। इसमें वे भौतिक आवश्यकताओं को प्रमुखता प्रदान करते हैं। यह सत्य है कि व्यक्ति और समाज में संघर्ष के क्षण आते हैं, परंतु यह स्थिति स्वाभाविक नहीं, असामान्य है। यह स्थिति धर्म की नहीं, यह तो विकृति है।

इस संघर्ष की मान्यता के कारण पश्चिम में दो प्रकार के चिंतक मिलते हैं। एक तो वे हैं, जो व्यक्ति को प्रमुख मानते हैं, समाज को गौण मानकर चलते हैं, वे समाज को वहीं तक मानते हैं, जहाँ तक वह व्यक्ति के हितों की रक्षा करता है। दूसरे प्रकार के विचारक समाज को श्रेष्ठ और व्यक्ति को गौण मानते हैं। ये व्यक्ति की सत्ता को एकदम समाप्त कर देना चाहते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समाज का हित साथ-साथ नहीं चल सकते। दोनों में से हमें एक ही चुनना होगा।

डार्विन के 'शक्तिशाली ही जीता है' के सिद्धांत के आधार पर उन्होंने अपनी

जीवन की रचना की। इसीलिए वहाँ केवल अपने स्वार्थ के लिए लड़ाई और होड़ है। प्रत्येक एक-दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देखता है। वहाँ दो व्यक्ति आपस में इसलिए मिलते हैं कि उनके समान स्वार्थ हैं। पूँजीपति एक साथ हैं तो मज़दूर एक साथ। राष्ट्र के संबंध में भी स्वार्थ की भूमिका छिपी रहती है। वे समान स्वार्थ के व्यक्ति समूह को ही राष्ट्र मानते हैं।

पश्चिम में प्रत्येक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहता है। यहाँ पति-पत्नी के अधिकारों की लड़ाई चलती है। प्रेम विवाह होते हैं, फिर भी संघर्ष बना रहता है। हमारे यहाँ विवाह माँ-बाप करते हैं, फिर भी संघर्ष नहीं होता है। जहाँ सचमुच का प्रेम है, वहाँ संघर्ष हो ही नहीं सकता। हमारी प्रेरणा अधिकारों की नहीं, कर्तव्य की है। हम कर्तव्य को आधार लेकर चलते हैं। हम सेवा का विचार करते हैं, अपनी एकात्मकता और सहिष्णुता का अनुभव करते हैं। हम दूसरे की बात को भी सच्ची मानकर सुनते हैं।

धर्म संघर्ष से नहीं, सामंजस्य से उत्पन्न होता है। एक-दूसरे के जीवन से एकात्म होना ही धर्म होता है। महाभारत में धर्म-अधर्म की बड़ी सरल व्याख्या की गई है। 'मम्' यह अधर्म है। 'न मम्' यही धर्म है। मेरा कुछ नहीं, सब तेरा है, यही धर्म है। सबकुछ मेरा है, यही अधर्म है। इससे अहंकार जाग्रत् होता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति स्वयं को केंद्र मानकर संपूर्ण समाज का विचार करता है।

यदि संसार को चलाना है तो 'न मम्' का विचार करना होगा। इसी को अपने यहाँ 'यज्ञ' कहा गया है। यज्ञ का अर्थ हवनकुंड नहीं। उसमें आहुति डालना, यह यज्ञ का प्रतीक है, यह यज्ञ भाव जगाने की एक पद्धति है। यह संस्कार डालने का एक तरीक़ा है। इसीलिए आहुति के समय कहते हैं कि यह मेरा नहीं, देवता का है। जो प्रसाद में मिलता है, उसे ही हम ग्रहण करते हैं। यह त्याग का भाव है। मैं अपने लिए नहीं, दूसरे के लिए हूँ, यही अपनी जीवन-दृष्टि है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज के हित, दोनों में मेल होना आवश्यक है। व्यक्ति को स्वतंत्रता मिली है, उस पर कोई रोक नहीं है। पर यदि वह स्वतंत्रता का उपभोग अपने लिए ही करेगा तो ग़लत होगा। व्यक्ति को अपने लिए ही नहीं, समाज के लिए भी जीना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो वह समाज की सेवा का प्रयत्न करेगा।

हम रहें, हमारा राष्ट्र रहे और बाक़ी के लोग समाप्त हो जाएँ, यह कल्पना अत्यंत घातक है। हम अपने राष्ट्र का वैभव चाहते हैं, पर यदि उस वैभव को कोई देखनेवाला न रहा तो हमारा वैभव किस काम का?

स्वयं जीवित रहने की इस वृत्ति के कारण ही एक राष्ट्र दूसरे को हड़पना चाहता है। यह वृत्ति हमारे जीवनादर्श में नहीं है। हम न तो प्रकृति का शोषण करते हैं और न

राष्ट्र का ही। हम गाय को माँ मानते हैं। उसका दूध प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। गंगा को माँ मानते हैं, उसका जल पीकर अपने को धन्य समझते हैं। हमारे यहाँ माँ-बहनें घर का काम करती हैं। तो पश्चिम के लोग यह मानते हैं कि हम स्त्रियों का शोषण करते हैं। यह भाव ग़लत है। माँ पुत्र की सेवा करती है, उसका शोषण नहीं करती है। यह माँ की ममता है, बहन का स्नेह है, जिसके कारण वह कार्य करती है। हम ज्ञानी होंगे और सारी दुनिया मूर्ख रहेगी, ऐसा हम नहीं सोचते। हमने अपने समक्ष विश्व को आर्य बनाने का, श्रेष्ठ बनाने का सिद्धांत रखा। अपने ज्ञान को छिपाया नहीं, समूचे विश्व में फैलाया है। संसार के सब लोग मानव बनें, मानवोचित व्यवहार करें। यही हमारे जीवन का मूलभूत विचार रहा है।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एकात्मकता होनी चाहिए। ऐसा होने से उसका व्यक्तित्व नष्ट नहीं होगा, अपितु और भी विकसित होगा। व्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त नहीं होगी, समाज की विराटता में मिलकर और भी विराट् हो जाएगी। यदि व्यक्ति ने अपने को समाज से अलग माना तो संघर्ष अवश्य ही खड़ा होगा। वास्तव में व्यक्ति और समाज के बीच में कोई संघर्ष नहीं। यदि संघर्ष आया तो यह दुःख का ही कारण होता है। हमारे यहाँ ऐसी कोई कल्पना नहीं है।

आज संसार के अन्य लोग भी समझ रहे हैं कि मानव की एकता आवश्यक है। मनुष्य-मनुष्य के बीच की यह लड़ाई बंद होनी चाहिए, ऐसा सब लोग सोच रहे हैं। पर शायद उन्हें यह पता नहीं कि इस एकता के लिए कौन सा तत्त्व ज्ञान आधार के रूप में प्रतिष्ठित होगा, पर हम उसे जानते हैं, क्योंकि वह तत्त्वज्ञान हमने प्राप्त किया है। हज़ारों वर्षों से हम उसे लेकर चले रहे हैं। यदि हम उस तत्त्वज्ञान के साथ चलते रहेंगे, तो यह पददलित, हेय राष्ट्र जीवन एक दिन समाप्त होकर रहेगा।

संसार में हम कुछ करने के लिए पैदा हुए हैं। यह सत्यभाव हम पहचानें। यह सत्यशक्ति के आधार पर ही टिक सकता है। यह भी हम समझें और उसी के आधार पर सारे विद्वेष को समाप्त कर विश्व में सामंजस्य स्थापना का पुण्य कार्य संपन्न करने का संकल्प लें। समूचे समाज में यज्ञभाव उत्पन्न करें। जैसे समुद्र का पानी वाष्प बनकर बरसता है, फिर बरसकर उसी के पास आ जाता है। वैसा ही भाव हम भी प्राप्त करना प्रकृति से सीखें। प्रकृति के इस भाव के आधार पर ही सृष्टि टिकी है। यदि यह भाव हमारे जीवन में भी आया तो हम देखेंगे कि मानव जीवन में अवश्यमेव शांति आएगी। और हमारा तत्त्वज्ञान विश्व की अस्थिरता को समाप्त करने में सहायक सिद्ध होगा।

—राष्ट्रधर्म, अज्ञात

□

20

कश्मीर के लिए जो शहीद हुए उन्हें न भूलें*

हम संपूर्ण भारतवर्ष को एक देश मानते हैं। हमारा यह प्यारा देश अटक से कटक एवं हिमाचल से कन्याकुमारी तक एक एवं अखंड है। हम इसके टुकड़े-टुकड़े होना स्वीकार नहीं कर सकते। हमारी सात नदियाँ एवं चारों धाम हमारी एकता की मानो सगर्व घोषणा कर रहे हैं। देश को अलग-अलग हिस्सों में बाँटनेवाली नीति को छोड़कर हमें तो ऐसी राह पकड़नी है कि हमारा देश पुनः अखंड हो और हम गर्व के साथ अपनी माता के सामने सुपुत्र के नाते अपना मस्तक ऊँचा कर सकें।

हमारे आधुनिक नेता भारत के निर्मम विभाजन को सुनिश्चित तथ्य मानते हैं। पर उनका यह दृष्टिकोण आमूल ग़लत है। और चाहे कुछ हो, पर उनमें माँ के प्रति ममत्व नहीं। वे इतिहास को भूलते हैं, इतना ही नहीं—सच बात तो यह है कि वे इतिहास के ज्ञान के अनभिज्ञ हैं। मुसलमानों के काल में भी तो इस देश के कई टुकड़े हुए थे, लेकिन तात्कालिक नेताओं ने उन टुकड़ों को 'सुनिश्चित तथ्य' नहीं माना और वे अखंडता के लिए लड़ते रहे।

पांडवों के लिए पाँच गाँव देने की बात दुर्योधन तक ने स्वीकार न की और उसने राज्य को खंडित होने से बचाया। पर हमारे नेताओं ने तो उस दुर्योधन को भी मात कर दिया, क्योंकि जो काम वह भी न कर सका, उसे हमारे गद्दी के लोभी नेताओं ने कर दिखाया। आज भारत एक राज्य नहीं, अनेक राज्यों का संघ माना गया है, यह कैसी विडंबना है।

जहाँ तक कश्मीर की बात है, हमारे देश में स्वतंत्रता के पूर्व सैकड़ों देशी रिसायतें थीं। कश्मीर तथा जम्मू की रियासत इन्हीं में से एक रियासत थी। जैसा कि अन्य रियासतों के साथ हुआ है, कश्मीर की रियासत का भाग्य-निर्णय भारत के साथ ही है। कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। उसकी रक्षा के लिए भारतीय सेनाओं ने अपने शौर्य का परिचय

---

* देखें परिशिष्ट VIII, पृष्ठ 245।

दिया है। बड़े-बड़े सेनानी भारतीय सैनिकों के अतुल पराक्रम को देखकर चकित रह गए थे। अन्याय के ऊपर से विजय करने के लिए निकले थे। उनके क़दम उत्साह के साथ तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे। शत्रु बल उनके सामने नगण्य था। आततायी भागने लगे थे। पर हमारे तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू को कदाचित् अन्याय का दमन अच्छा न लगा, उन्होंने लड़ाई बंद करा दी। भारतीय सैनिक मन मारकर रह गए। अनुशासन की माँग पर बढ़ा हुआ क़दम भी आगे न रख सके। जम्मू-कश्मीर में अगणित भारतीय सैनिकों का बलिदान हुआ। धरा रक्तंजित हुई, शरीर की अंतिम रक्त-बूँद तथा अंतिम श्वास तक वे मातृभूमि के लिए शस्त्र लिये रहे। अन्याय व अत्याचार से लोहा लेने के लिए वे स्वर्गस्थ आत्माएँ आज हमारे नेताओं की इस बुद्धिमानी (?) पर दो आँसू बहाए बिना रह नहीं पातीं।

राष्ट्र में अल्पमत नहीं होता। शरीर की रचना में नाक एक ही है और आँखें दो—इससे शरीर में नाक का अल्पमत एवं आँख का बहुमत नहीं होता। सब एक ही शरीर के अंग हैं। परंतु हमने यदि यह धारणा न रखी तो थोड़े ही समय में सब अल्पमत में रह जाएँगे, फिर आज चाहे उसका बहुमत ही क्यों न हो।

भारतवर्ष के अंदर मुसलमानों या इसाइयों की कोई भिन्न संस्कृति नहीं। संस्कृति का संबंध उपासना से नहीं, देश से होता है। मुसलमानों के सामने कबीर, जायसी व रसखान का आदर्श है।[1] भारत के अंदर भारतीय बनकर रहनेवाले मुसलमानों के लिए इन मुसलमान कवियों का जीवन अनुकरणीय है। उनकी भावनाओं तथा सोचने के दृष्टिकोण में मूलभूत परिवर्तन होना नितांत आवश्यक है। आज तो राष्ट्रभक्ति का केंद्र ही भारत के बाहर है। भारत में रहकर दजला-फरात के गीत गाना उन्हें छोड़ना पड़ेगा।

देश में आज जो विचारधाराएँ चल रही हैं, उनमें से कुछ तो पाश्चात्य संस्कृति को भारत में लाना चाहते हैं, तो कुछ कम्युनिस्ट देशों की तानाशाही भारत में स्थापित करने का स्वप्न देख रहे हैं। इन विचारधाराओं से तो भारत के नष्ट होने का डर है। नष्ट होने का तात्पर्य यह नहीं कि गंगा या हिमालय नष्ट हो जाएँगे, पर उनको पवित्र मानने की जो भावना हमारे अंतःकरण में आज युग-युगों से बनी रही है, वह भावना नष्ट हो जाएगी।

—राष्ट्रधर्म, मार्च 1984

□

---

1. कबीर, मलिक मुहम्मद जायसी तथा सैयद इब्राहीम 'रसखान' हिंदी साहित्य के भक्तिकालीन कवि हैं। कबीर ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा काव्यधारा के प्रवर्तक थे। ये मध्यकालीन भारत के क्रांतिकारी चेतना वाले समाज सुधारक कवि थे। इनके नाम पर कबीरपंथ नामक संप्रदाय भी प्रचलित है। कबीर की दृढ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है, स्थान विशेष के कारण नहीं।
रसखान कृष्णभक्ति काव्य परंपरा के अद्वितीय मुसलिम कवि थे। इनके काव्य में भक्ति तथा शृंगार रस दोनों की प्रधानता है, जो रीतिकालीन काव्य की मुख्य विशेषता भी है। मलिक मुहम्मद जायसी, भक्तिकाल की प्रेमाश्रयी धारा के कवि हैं। वे अत्यंत उच्चकोटि के सरल और उदार सूफ़ी महात्मा थे। इन कवियों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कुठाराघात किया तथा सामाजिक समरसता व हिंदू-मुसलिम एकता पर बल दिया था।

परिशिष्ट

हिंदुस्तान (दैनिक समाचार-पत्र) में प्रकाशित दीनदयालजी की मृत्यु के समाचार

(i)

दीनदयाल उपाध्याय की रहस्यपूर्ण मृत्यु : उ.प्र. सरकार द्वारा जाँच का आदेश

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय का शव आज रात एक विशेष विमान से दिल्ली लाया गया। श्री उपाध्याय आज प्रातः मुग़लसराय रेलवे स्टेशन से कुछ दूर रेल की पटरी पर बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से मृत पाए गए थे।

श्री उपाध्याय की मृत्यु, जो लखनऊ से पटना जा रहे थे, बड़ी विचित्र और रहस्यमय स्थितियों में हुई है तथा मृत्यु का कारण अभी तक पहेली बना हुआ है। उ.प्र. सरकार ने इसकी जाँच के लिए अविलंब आदेश ज़ारी कर दिए हैं।

हवाई अड्डे पर उपस्थित 1000 से भी अधिक व्यक्तियों ने अपने दिवंगत नेता को श्रद्धांजलि अर्पित की। शव को विमान से उतारे जाते समय उन्होंने 'दीनदयाल उपाध्याय अमर रहे' के नारे लगाए। जनता ने उनके शव पर फूल बरसाए तथा मालाएँ रखीं।

हवाई अड्डे पर उपस्थित लोगों में बड़ी संख्या में सभी दलों के संसद् सदस्य भी उपस्थित थे।

राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, गृहमंत्री चव्हाण तथा राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट करते हुए कहा कि उनके निधन से देश की भारी क्षति हुई है।

51 वर्षीय जनसंघी नेता का शव, जो 51 डाउन स्यालदह एक्सप्रेस की प्रथम श्रेणी में यात्रा कर रहे थे, मुग़लसराय स्टेशन के बाह्य सिग्नल से 200 गज़ दूर पड़ा हुआ था।

इसे प्रातः 3 बजे एक्सप्रेस के जाने के 1 घंटे बाद एक केबिन मैन ने देखा।

शव को जब पटरी पर से उठाकर प्लेटफार्म पर लाया गया, तब उसे एक फेरीवाले ने, जो शायद जनसंघ का कार्यकर्ता था, उन्हें पहचान लिया तथा कहा कि यह जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय का शव है। इसके बाद इसकी सूचना तुरंत जनसंघ के लखनऊ कार्यालय को तथा अन्य स्थानों को भेज दी गई। बाद में उनकी जेब से प्राप्त टिकट से भी इस बात की पुष्टि हो गई।

मृत्यु का समाचार मिलते ही जनसंघ नेता दिल्ली व लखनऊ से वाराणसी पहुँच गए।

शव को वाराणसी लाकर उसकी मरणोत्तर परीक्षा की गई। उसका अभी परिणाम घोषित नहीं किया गया है। परंतु उ.प्र. के उपमुख्यमंत्री श्री रामप्रकाश गुप्त ने कहा कि मृत्यु जिस प्रकार हुई है, वह 'रहस्यपूर्ण' है। मृत्यु के समाचार के एकदम बाद ही गुप्तचर विभाग के उच्च अधिकारी जाँच के लिए घटनास्थल पर पहुँच गए।

शव बाबतपुर हवाई अड्डे से ए-3 विमान द्वारा रात को 1 बजे रवाना हुआ। विमान में उनके शव को श्री अटल बिहारी वाजपेयी, प्रो. बलराज मधोक, उत्तर प्रदेश के उपमुख्यमंत्री श्री रामप्रकाश गुप्त, जनसंघ के कार्यालय मंत्री श्री जगदीश चंद्र माथुर दिल्ली लाए।

इन नेताओं को श्री उपाध्याय का शव पोस्टमार्टम के बाद ही सौंपा गया। बाद में उनके शव को, जो भगवा ध्वज में लिपटा हुआ था और फूल-मालाओं से लदा हुआ था, हवाई अड्डे तक एक अरथी पर, जो एक ट्रक पर रखी थी, लाया गया। शव के साथ हवाई अड्डे तक वाराणसी के हज़ारों नर-नारी आए।

जनसंघ के अध्यक्ष पंडित दीनदयाल उपाध्याय की शवयात्रा में शामिल होने के लिए देश भर से जनसंघ कार्यकर्ताओं और नेताओं के यहाँ आने के समाचार मिले हैं।

मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री गोविंद नारायण सिंह, उपमुख्यमंत्री श्री वीरेंद्र कुमार सकलेचा, उद्योगमंत्री श्री रामहित गुप्त तथा विद्युत मंत्री श्री नरेश जौहरी कल सुबह रेलगाड़ी से यहाँ पहुँच रहे हैं।

पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और मध्य प्रदेश आदि निकटवर्ती इलाक़ों से भी काफ़ी जनसंघ कार्यकर्ता दिल्ली पहुँच रहे हैं। श्री सुंदर सिंह भंडारी आज शाम कलकत्ता से विमान द्वारा यहाँ पहुँच गए। भूतपूर्व जनसंघ अध्यक्ष बच्छराज व्यास, उत्तमराव पाटिल, मंत्री श्री नानाजी देशमुख तथा लगभग एक दर्ज़न राज्य संघ नेता बंबई से आज शाम यहाँ पहुँच गए।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(ii)

उपाध्याय के सिर का पिछला भाग कुचला हुआ, शरीर पर अनेक चोटें

जनसंघ-अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय के, जो आज तड़के मुग़लसराय रेलवे स्टेशन से कुछ दूर रेल पटरियों के निकट रहस्यपूर्ण परिस्थितियों में मरे पाए गए थे—शव के पोस्टमार्टम से पता चला है कि उनके सिर का पिछला भाग लगभग 4 इंच बिल्कुल कुचला सा गया है। उनकी पसलियाँ, टखने तथा एड़ी-बाएँ टूटी हुई थीं।

यद्यपि यह पोस्टपार्टम रिपोर्ट प्रचारित नहीं की गई है तो भी उन तथ्यों के संबंध में विश्वस्त रूप से सूचना मिली है।

ज़िला मजिस्ट्रेट श्री बृजपाल सिंह ने पत्रकारों को बताया कि इस समय निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

दूरदर्शी नेता गए

एक संदेश में नेशनल कॉन्फ्रेंस के नेता तथा कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री बख़्शी ग़ुलाम मुहम्मद ने श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु को असामयिक तथा एक गहरा आघात बताया। उन्होंने कहा कि उनकी मृत्यु से देश ने एक महान् देशभक्त तथा दूरदर्शी नेता खो दिया है।

राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री मोहन लाल सुखाड़िया ने कहा कि श्री उपाध्याय देश के अग्रगण्य नेताओं में से थे। उनकी मृत्यु से देश में जो रिक्तता आ गई है, उसे भर पाना सहज नहीं होगा।

केंद्रीय औद्योगिक विकास मंत्री श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने कहा कि जनसंघ-अध्यक्ष श्री उपाध्याय की दु:खद परिस्थितियों में मृत्यु का समाचार सुनकर मुझे हार्दिक शोक हुआ है। उनकी मृत्यु से देश ने एक विद्वान्, अनुभवी तथा गंभीर नेता खो दिया है।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चरण सिंह दिवंगत नेता श्री दीनदयाल उपाध्याय की अंत्येष्टि में शामिल होने के लिए कल सुबह मेरठ से दिल्ली रवाना हो जाएँगे।

(iii)

शवयात्रा में भाग लेने की अनुमति

दिल्ली प्रशासन और नगर निगम की विज्ञप्तियों में कहा गया है कि जनसंघ के

अध्यक्ष स्व. दीनदयाल उपाध्याय की शवयात्रा में उनके जो कर्मचारी भाग लेना चाहेंगे, उन्हें इसकी अनुमति दी जाएगी। वैसे निगम और प्रशासन के सभी कार्यालय खुले रहेंगे।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(iv)

श्रद्धांजलियाँ

राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन ने जनसंघ-अध्यक्ष की मृत्यु पर निम्नलिखित शोक-संदेश दिया है—

'दीनदयालजी की अचानक मृत्यु की ख़बर से मुझे सदमा पहुँचा है। उनके परिवार के सदस्यों के प्रति मेरी हार्दिक संवेदना है।' उपराष्ट्रपति डॉ. वी.वी. गिरि ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु का समाचार सुनकर मुझे दुःख हुआ है। वह पूरे राष्ट्रवादी थे तथा कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता थे। उनकी मृत्यु से भारत का एक महान् सपूत चल बसा है।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने आज भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय के असामयिक निधन पर गहन शोक व्यक्त करते हुए कहा कि श्री उपाध्याय का देश में बहुत आदर था और उन्होंने अपने जीवन को देश की एकता तथा संस्कृति के लिए अर्पित कर दिया था। देश को उनके निधन से बहुत क्षति हुई है।

श्रीमती गांधी ने कहा—मुझे आशा है कि उत्तर प्रदेश सरकार इस दुःखद घटना के कारणों को मालूम करने के लिए सभी संभव कार्य कर रही है। केंद्र इस बारे में उत्तर प्रदेश सरकार से संपर्क रख रहा है। श्री उपाध्याय देश के राजनीतिक जीवन में प्रमुख भूमिका अदा कर रहे थे। उनके परिवार के सदस्यों के प्रति मेरी हार्दिक संवेदना है।

संसदीय कांग्रेस दल की साधारण सभा की बैठक में प्रधानमंत्री द्वारा शोक व्यक्त किया गया।

उन्होंने कहा कि यद्यपि हमारा जनसंघ की नीतियों और कार्यक्रमों से मतभेद है, फिर भी उनके असामयिक निधन से देश को नुक़सान ही हुआ है।

उपप्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि मैं जनसंघ अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की दुःखद मृत्यु का समाचार सुनकर सन्न रह गया। उन्होंने कहा श्री उपाध्याय ने अपनी निष्ठा और सिद्धांतों के अनुसार राष्ट्र की अनवरत सेवा की। उन्होंने कहा, ''मुझे विश्वास है कि इस जघन्य अपराध के दोषियों को शीघ्र ही खोज लिया जाएगा। शोक संतप्त परिवार तथा जनसंघ को मेरी हार्दिक सहानुभूति है।''

केंद्रीय गृहमंत्री श्री यशवंतराव चह्वाण ने पं. दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु के समाचार से उन्हें काफ़ी दुःख पहुँचा।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(v)

निर्मम हत्या का मामला मधोक व गुप्ता का वक्तव्य

श्री दीनदयाल उपाध्याय का शव वाराणसी से यहाँ लाने पर श्री बलराज मधोक और उ.प्र. के उपमुख्यमंत्री ने पालम हवाई अड्डे पर पत्रकारों से बातचीत करते हुए कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु निर्ममतापूर्वक की गई हत्या है।

श्री रामप्रकाश ने कहा कि यह स्पष्ट तथा हत्या का मामला है, क्योंकि श्री उपाध्यायजी के सिर को एक भारी हथियार से कुचल दिया गया है तथा उनके शव को रेल की पटरी पर फेंक दिया गया था।

श्री मधोक ने कहा कि हत्या का उद्देश्य चोरी नहीं थी, क्योंकि उनके पास का पैसा और उनकी घड़ी आदि नहीं ली गई।

श्री मधोक ने कहा कि यद्यपि पोस्टमार्टम की रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की गई है। परंतु स्थानीय अधिकारियों ने यह संपुष्ट कर दिया है कि कर दिया है कि श्री उपाध्याय की हत्या नहीं की गई है।

श्री मधोक ने कहा कि मेरी निजी राय है कि इस हत्या का उद्देश्य राजनीतिक है। मैं अभी यह नहीं कह सकता कि इस हत्या के पीछे कौन से तत्त्व हैं।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(vi)

अंत्येष्टि का कार्यक्रम

श्री उपाध्याय का शव अटल बिहारी वाजपेयी के निवास स्थान 30 डॉ. राजेंद्र प्रसाद रोड में जनता के दर्शन के लिए रखा गया है।

शवयात्रा का जुलूस 1 बजे प्रारंभ होगा तथा 4 बजे निगमबोध घाट पर अंत्येष्टि होगी।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(vii)

उपाध्याय की मृत्यु : जाँच के लिए उच्चायोग की माँग

दिल्ली नगर निगम और राजधानी परिषद् ने आज जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल

उपाध्याय को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। दोनों सदन उपाध्यायजी की असामयिक मृत्यु पर शोक-प्रस्ताव पारित कर स्थगित हो गए। सदस्यों ने जनसंघ के नेता के सम्मान में दो मिनट का मौन रखा।

निगम की बैठक में सदन के नेता श्री केदारनाथ साहनी ने शोक प्रस्ताव पेश करते हुए सरकार से यह माँग की कि वह श्री उपाध्यायजी की रहस्यमय मृत्यु के कारणों की एक उच्च अधिकार प्राप्त आयोग से जाँच कराए। जो भी व्यक्ति उनकी हत्या के लिए ज़िम्मेदार पाया जाए, उसे सख़्त सज़ा दी जाए।

प्रस्ताव में कहा गया है कि निगम की यह बैठक महान् विद्वान्, प्रतिभाशाली और लोकप्रिय राजनेता, निष्ठावान देशभक्त श्री दीनदयाल उपाध्याय के असामयिक निधन पर शोक और संवेदना प्रकट करते हुए भारत माँ के उस वीर सपूत को सम्मानपूर्वक अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

श्री साहनी ने कहा कि श्री दीनदयाल उपाध्याय निष्ठावान देशभक्त थे। उन्होंने अपना सारा जीवन राष्ट्र-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। उनके निधन से जनसंघ की ही नहीं, समूचे देश की क्षति है। शोक प्रस्ताव पढ़ते-पढ़ते श्री साहनी कई बार इतने भावविह्वल हो गए कि उनका गला भर आया और आँखों से आँसू उमड़ पड़े।

कांग्रेस दल के नेता श्री देशराज चौधरी ने कहा कि उपाध्यायजी एक निष्ठावान राजनेता और सरल व्यक्तित्व के आदमी थे। उनका असामयिक निधन जनसंघ के लिए भारी चिंता की बात है।

प्रगतिशील गुट के श्री सूरतसिंह और निर्दलीय एल्डरमैन श्री जयप्रकाश गोयलजी ने भी उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की।

राजधानी परिषद्

राजधानी परिषद् में मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री विजयकुमार मल्होत्रा ने शोक प्रस्ताव पेश करते हुए कहा कि श्री दीनदयाल उपाध्याय के निधन से देश के मौजूदा राजनीतिक-सामाजिक जीवन में जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति होनी असंभव है। विरोधी दल के नेता श्री शिवचरण गुप्त और अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवानी ने भी श्री उपाध्याय को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। श्रद्धांजलि अर्पित करने खड़े होते ही श्री आडवानी भावविभोर हो गए और कुछ भी बोल न सके।

अजातशत्रु

संसद् सदस्य श्री ओमप्रकाश त्यागी ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि ऐसे अजातशत्रु नेता की रहस्यमय हत्या की जाँच के लिए सरकार को तत्काल उच्चाधिकार

प्राप्त आयोग की नियुक्ति करनी चाहिए। संसद् सदस्य श्री रामगोपाल शॉल वाले और श्री रामचरण ने भी श्री उपाध्याय को श्रद्धांजलि अर्पित की। दिल्ली प्रदेश सं.सो.पा. के मंत्री ने भी श्री उपाध्याय की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए हत्या के कारणों की न्यायिक जाँच की माँग की है।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(viii)

उपाध्याय की मृत्यु : जाँच की माँग गाज़ियाबाद में बाज़ार बंद

जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु का समाचार शहर में फैलते ही बात की बात से तमाम बाज़ार बंद हो गए। सारे नगर में पूर्ण हड़ताल हो गई। बाज़ारों में श्री उपाध्याय की मृत्यु के कारण जानने के लिए जगह-जगह पर भीड़ जमा हो गई थी।

टाउनहॉल में श्री रिपुदमनपाल की अध्यक्षता में एक शोकसभा हुई, जिसमें एक दर्ज़न संस्थाओं की ओर से श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। सभी वक्ताओं ने, जो विभिन्न संस्थाओं से संबंधित थे, श्री उपाध्याय की मृत्यु पर गहरा शोक प्रकट किया और उनकी मृत्यु की पूरी जाँच की माँग की।

शोक में आज समस्त शिक्षा संस्थाएँ भी बंद रहीं

मुरादनगर, मोदीनगर, दादरी, सिकंदराबाद और बुलंदशहर से प्राप्त समाचारों में कहा गया है कि श्री दीनदयाल की अचानक रहस्यपूर्ण मृत्यु का समाचार जैसे ही लोगों ने रेडियो पर सुना, तत्काल वहाँ बाज़ार बंद हो गए। शोक सभाओं में श्री उपाध्याय की मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट किया गया।

हापुड़ में भारी शोक

दीनदयाल उपाध्याय के आकस्मिक निधन पर हापुड़ में शोक छाया रहा। एक शोक सभा में सब दल के लोगों ने उनकी रहस्यमय स्थिति में हुई मृत्यु पर दुःख प्रकट किया। वक्ताओं ने दिवंगत नेता को श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हुए उनकी मृत्यु के कारणों की जाँच की माँग की।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(ix)

विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों की उपाध्याय को श्रद्धांजलि

राजधानी की विभिन्न संस्थाओं और विभिन्न व्यक्तियों की ओर से जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट किया गया और दिवंगत को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

अखिल भारतीय साम्यवादी दल की दिल्ली प्रांतीय कार्यकारिणी की बैठक में श्री उपाध्याय के असामयिक निधन पर शोक प्रकट किया गया और दल की ओर से उनके शव पर फूलमालाएँ चढ़ाकर श्रद्धांजलि अर्पित करने का निर्णय किया गया।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् ने अपने शोक प्रस्ताव में कहा कि उपाध्यायजी सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति के उपासक और पथ-प्रदर्शक थे। उनमें स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री जैसी सादगी थी। देश के लिए की गई उनकी सेवाओं को कदापि भुलाया नहीं जा सकेगा।

परिषद् ने प्रस्ताव में कहा कि उनकी मृत्यु जिन हालतों में हुई है, उसकी जाँच बहुत ही ज़रूरी है।

अ.भा. रिपब्लिकन पार्टी ने शोक प्रस्ताव में दिवंगत नेता की सेवाओं की सराहना की और सरकार से अपील की कि अगर उनकी मृत्यु किसी षड्यंत्र के फलस्वरूप हुई है तो उसकी जाँच होनी चाहिए और अपराधी को दंडित किया जाना चाहिए।

परिगणित-जाति परिषद् के शोक प्रस्ताव में महान् राजनीतिज्ञ, साहित्यकार तथा पिछड़े वर्ग के परम हितैषी पं. दीनदयाल को अंतिम श्रद्धांजलि दी गई।

दिल्ली प्रदेश दलित वर्ग संघ के महामंत्री ने भी दिवंगत नेता श्री उपाध्याय के आकस्मिक निधन पर शोक प्रकट किया और उनकी सेवाओं की सराहना की।

भारतीय साहित्यकार परिषद् की केंद्रीय कार्यसमिति की बैठक में स्वीकृत प्रस्ताव में कहा गया कि उनकी वर्तमान परिस्थिति में मृत्यु बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। इस दुर्घटना की पूरी जाँच होनी चाहिए।

काउंसिल ऑफ़ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च वर्कर्स यूनियन ने दिवंगत नेता को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित की और दिवंगत आत्मा की शांति की प्रार्थना की।

रामजस हायर सेकेंडरी स्कूल में छात्रों और अध्यापकों की शोक सभा में स्व. उपाध्याय को नव परंपरा का संत विचारक और महान् राष्ट्रनायक बताया गया। परमात्मा से प्रार्थना की गई कि उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे।

देहली हिंदुस्तानी मर्कंटाइल एसोसिएशन ने अपने शोक प्रस्ताव में कहा कि देश

का महान् सपूत, निष्काम सेवक और नवयुवक पीढ़ी का मार्गदर्शक असमय में उठ गया। भारत सेवक समाज के अध्यक्ष स्वामी हरिनारायणानंद ने अपने शोक संदेश में कहा कि श्री उपाध्याय के असामयिक निधन से मुझे व्यक्तिगत तौर पर बहुत दुःख पहुँचा है। वह राजनीतिक के साथ-साथ महान् समाजसेवी भी थे। उनकी मृत्यु के कारणों की अविलंब जाँच की जानी चाहिए।

शंकर मार्केट, नई दिल्ली के व्यापारियों ने शोक प्रस्ताव में कहा कि उनकी मृत्यु अगर किसी षड्यंत्र का परिणाम है तो उसका तुरंत पता लगाया जाना चाहिए। इन व्यापारियों ने दिवंगत नेता को श्रद्धांजलि अर्पित करने तथा उनके प्रति आदर प्रकट करने के लिए अपनी दुकानें बंद रखीं।

दिल्ली प्रदेश अणुव्रत समिति की शोकसभा में कहा गया कि पं. दीनदयाल उपाध्याय का जीवन सादगी और संयम का जीवन था। अनेक प्रकार की सुविधाएँ होते हुए भी उन्होंने अपने जीवन को भारतीय संस्कृति के अनुरूप रखा। उनका जीवन तथाकथित धार्मिकों के जीवन से बहुत ऊँचा था। मुनिश्री सुमरमलजी ने श्री उपाध्याय की असामयिक मृत्यु पर गहरा शोक प्रकट किया।

रामजस स्कूल नं. 5 में भी आज प्रातः करोलबाग स्थित समस्त अध्यापकों एवं छात्रों की एक शोक-सभा में विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री शशिशंकर अग्रवाल ने भावपूर्ण व मार्मिक शब्दों में श्री दीनदयाल उपाध्याय, अध्यक्ष भारतीय जनसंघ के निर्मम निधन पर गंभीर शोक प्रकट किया तथा भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने श्री उपाध्यायजी को उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ, निस्स्वार्थ समाजसेवक, कुशल लेखक तथा सच्चा देशभक्त बताया। इस सभा में शोक प्रस्ताव पारित करके दिवंगत आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई।

घरेलू मज़दूर यूनियन, दिल्ली क्लाथ रिटेलर बोर्ड (खुदरा कपड़ा व्यापारी), अ.भा., रविदास सभा, मोटर पुरज़ों के व्यापारियों, दलित वर्ग, धुलाई व इस्त्री करनेवालों की एसोसिएशन ने भी स्व. दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु को राष्ट्र के लिए गहरा धक्का बताया।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(x)

रामलींला मैदान में सर्वदलीय शोकसभा

जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु पर शोक प्रकट करने तथा दिवंगत नेता को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए कल सायं रामलीला मैदान में लोकसभा के अध्यक्ष श्री संजीव रेड्डी की अध्यक्षता में एक सर्वदलीय सभा होगी।

इस शोकसभा में गृहमंत्री श्री चह्वाण, आचार्य जे.बी. कृपलानी, सं.सो.पा. नेता श्री रंगमधु लिमये, स्वतंत्र पार्टी के प्रा. रंगा, प्र. सोशलिस्ट पार्टी नेता श्री नाथ पंडित, साम्यवादी नेता श्री हीरेन मुखर्जी, निर्दलीय संसद् सदस्य श्री एन.सी. चटर्जी तथा प्रमुख जनसंघी नेता श्री उपाध्याय को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(xi)

महान् सपूत खो गया : महाराष्ट्र के मु.मं. की श्रद्धांजलि

महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री वसंतराव नायक ने जनसंघ अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट करते हुए कहा कि उनकी मृत्यु से देश का एक महान् सपूत खो गया है। श्री नायक ने कहा कि श्री उपाध्याय साहस और देशभक्ति की मूर्ति थे। अपनी विनम्रता से उन्होंने लोगों के दिलों में जगह बना ली थी।

—हिंदुस्तान, फरवरी 12, 1968

(xii)

दीनदयाल की शवयात्रा में लाखों नर-नारी शामिल

ज्यों ही उनका पार्थिव शरीर ऊँचे चबूतरे पर बनाई गई चिता पर रखा गया, हज़ारों लोगों के शोक-विह्वल कंठों से निकले 'दीनदयाल उपाध्याय अमर रहे' उद्घोष से सारा वायुमंडल गूँज गया।

गीता पाठ, रामधुन और वेदमंत्रों के बीच जनसंघ अध्यक्ष की चिता में जब उनके ममेरे भाई प्रभुदयाल शुक्ल ने अग्नि प्रज्वलित की तो वहाँ उपस्थित महिलाओं, जनसंघ के नेताओं तथा अनेक अन्य लोगों की आँखों से अश्रुधारा बह चली। कई लोग फूट-फूटकर रोने लगे।

शव पर पुष्पमालाएँ अर्पित

आचार्य कृपलानी, जम्मू कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बख़्शी ग़ुलाम मुहम्मद, मध्य प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री वीरेंद्र कुमार सकलेचा, उ.प्र. के उप मुख्यमंत्री श्री

रामप्रकाश, दिल्ली के महापौर श्री हंसराज गुप्त, श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री बलराज मधोक, दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री विजय कुमार मल्होत्रा, राजधानी परिषद् के अध्यक्ष श्री लालकृष्ण, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह श्री देवरस, प्रदेश जनसंघ पार्टियों के अध्यक्षों ने पुष्पमालाएँ अर्पित करके अपनी श्रद्धांजलि दी।

—हिंदुस्तान, फरवरी 13, 1968

(xiii)

उपाध्याय की मृत्यु के कारणों की तेज़ी से जाँच शुरू

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु के कारणों को मालूम करने के लिए उत्तर प्रदेश और केंद्रीय सरकार के गुप्तचर विभाग ने बड़ी मुस्तैदी से जाँच-पड़ताल शुरू कर दी है। श्री उपाध्याय की मृत्यु के बारे में जो-जो विवरण व तथ्य सामने आ रहे हैं, उनसे उनकी मृत्यु का रहस्य और गहरा हो जाता है।

नई दिल्ली में उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री राम प्रकाश गुप्त ने तथा पटना में बिहार प्रदेश जनसंघ के मंत्री श्री देवदास आप्टे ने मृत्यु के बारे में जो बताया, उससे यही प्रकट होता है कि यह मृत्यु आकस्मिक न होकर हत्या का परिणाम है। परंतु चूँकि अभी जाँच प्रारंभ हुई है, अत: निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

केंद्रीय सरकार ने मुग़लसराय में जाँच करनेवाले अधिकारियों की सहायता के लिए दो अंगुली छाप विशेषज्ञों को घटनास्थल पर भेजा है। ये विशेषज्ञ कलकत्ता से मुग़लसराय पहुँच रहे हैं। ज्ञात हुआ है कि गृहमंत्री श्री चह्वाण ने आज मंत्रिमंडल की गृह मामलों की समिति में बताया कि इन विशेषज्ञों को उत्तर प्रदेश सरकार से मंत्रणा करके ही भेजा गया है।

—हिंदुस्तान, फरवरी 13, 1968

(xiv)

उपाध्याय की रहस्यमयी मृत्यु : उच्चस्तरीय जाँच की माँग

लोकसभा के संक्षिप्त अधिवेशन में आज जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की असाधारण परिस्थिति में मृत्यु हो जाने की ज़बरदस्त छाप थी। सभी दलों के नेताओं ने उनकी राष्ट्रीय सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की और सभी विरोधी दलों ने उनकी

मृत्यु के कारणों की जाँच प्रांतीय स्तर पर नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर करने की माँग की। हालाँकि श्री दीनदयाल उपाध्याय संसद् के सदस्य नहीं थे, लेकिन सदन ने उनके निधन पर शोक प्रकट किया।

—हिंदुस्तान, फरवरी 13, 1968

(xv)

देश का कर्मठ निष्काम सेवक उठ गया

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष के अलावा पं. उपाध्याय अपने ढंग के जननेता थे, उनकी असामयिक मृत्यु से न केवल उनके दल को अपितु देश को भारी क्षति पहुँची है।

देश ने महान् देशभक्त खो दिया

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री चौ. चरणसिंह ने आज यहाँ कहा कि जनसंघ के अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु रहस्यपूर्ण परिस्थितियों में होने के समाचार से उन्हें भारी धक्का लगा है। पं. उपाध्याय की मृत्यु से भारत ने एक महान् देशभक्त खो दिया है। मुख्यमंत्री ने कहा कि राज्य सरकार उपाध्यायजी की मृत्यु के संबंध में पूरी छानबीन कराएगी।

भारतीय क्रांति दल के प्रदेशीय कार्यवाहक अध्यक्ष श्री रामगोपाल ने श्री उपाध्याय के आकस्मिक निधन पर गंभीर शोक व्यक्त करते हुए कहा है कि ऐसे शुद्ध, उत्तम तथा राष्ट्रीय विचार वाले व्यक्ति के निधन से देश को गंभीर क्षति हुई है। प्रदेश सं.सो.पा. के संयुक्त मंत्री श्री रमाशंकर गुप्त ने कहा कि राजनीतिक नेताओं की रहस्यमय ढंग से मृत्यु होना देश के प्रजातंत्र के लिए भीषण ख़तरा है। उन्होंने माँग की है कि जनसंघ नेता के आकस्मिक निधन की समुचित जाँच की जानी चाहिए।

कांग्रेस विधानमंडल दल के मंत्री श्री नवलकिशोर ने श्री उपाध्याय की असामान्य परिस्थिति में मृत्यु को देश के जनजीवन की गहरी क्षति बताते हुए कहा है कि वे एक निष्ठावान तथा कर्मठ जनसंघ नेता थे। उनके द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति होना संभव नहीं है।

अपार वेदना

बंबई, भूतपूर्व रेलवे मंत्री श्री स.का. पाटिल ने कहा कि श्री उपाध्याय के निधन से हुई क्षति को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऐसी आकस्मिक मृत्यु ने वेदना को और गहरा बना दिया है। उन्होंने कहा कि श्री उपाध्याय महान् देशभक्त थे तथा उनसे देश की महानतम सेवा की आशा थी। क.मा. मुंशी ने कहा कि श्री उपाध्याय के निधन

से मातृभूमि ने अपना महान् पुत्र खो दिया। देश की एकता और लोकतंत्र का आस्थावान नेता तथा जनसंघ का पथप्रदर्शक उठ गया है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघ संचालक श्री माधव सदाशिव गोलवलकर ने कहा कि श्री उपाध्याय के निधन से जो वेदना हुई है, वह अकथनीय है।

मद्रास : श्री राजगोपालाचार्य ने कहा कि श्री उपाध्याय के निधन से मुझे भारी दु:ख पहुँचा है। देश के राजनीतिक क्षेत्र में वे गिने-चुने प्रतिभाशाली व्यक्तियों में से एक थे।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने कहा कि श्री उपाध्याय के निधन से मुझे भारी दु:ख हुआ है।

हैदराबाद : आंध्र प्रदेश जनसंघ के नेता श्री ए. लक्ष्मीनारायण और श्री वी. रामराव ने श्री उपाध्याय के निधन पर गहरा शोक प्रकट किया। ये दोनों तथा हैदराबाद के एक दर्ज़न और जनसंघी नेता अंत्येष्टि में भाग लेने के लिए दिल्ली चले गए हैं।

लखनऊ : उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री रामप्रकाश गुप्त ने कहा है कि जनसंघ अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय का आकस्मिक निधन संपूर्ण दल के लिए एक असहनीय वज्रपात है और उनके निधन से भारतीय राजनीति के क्षितिज पर एक शून्यता उभर आई है। उन्होंने कहा कि यह क्षति राष्ट्र के लिए अपूरणीय है।

अपनी श्रद्धांजलि देते हुए श्री रामप्रकाश ने कहा कि उन्हें जनता की समस्याओं और आकांक्षाओं का सही और स्पष्ट स्व ज्ञान था, क्योंकि उनके व्यक्तित्व का निर्माण सामान्य जनता के बीच हुआ था। वे जनसंघ के लाखों कार्यकर्ताओं की प्रेरणा के संत थे।

केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री के.के. शाह ने अपने शोक-संदेश में कहा कि श्री उपाध्याय के निधन से देश को, ऐसे समय में जबकि उसके सामने अनेक संकट हों, भारी क्षति हुई है। उन्होंने कहा कि श्री उपाध्याय जनता के नेता तथा दूरदर्शी थे। उन्होंने अपना सारा जीवन देश की प्रगति के लिए समर्पित कर दिया था।

मृत्यु की जाँच की माँग

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति ने आज एक प्रस्ताव स्वीकार कर श्री उपाध्याय की मृत्यु की जाँच की माँग की है। एक शोक-प्रस्ताव में कहा गया कि उनकी मृत्यु रहस्यपूर्ण है।

पार्टी के महामंत्री श्री रामसेवक यादव ने एक वक्तव्य में कहा कि उनकी मृत्यु बड़ी संदिग्ध परिस्थितियों में हुई है। उन्होंने कहा कि श्री उपाध्याय संबल संगठक थे। जनसंघ का उनके रिक्त स्थान को भरना संभव नहीं है।

चंडीगढ़ : पंजाब के मुख्यमंत्री श्री लक्ष्मनसिंह गिल ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु से मैं स्तब्ध रह गया हूँ। उनके परिवार के प्रति संवेदना है। श्री निर्मलचंद्र चटर्जी ने कहा कि श्री उपाध्याय निष्काम जनसेवी थे। उनकी रहस्यपूर्ण मृत्यु की जाँच होनी चाहिए।

हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री यशवंत सिंह परमार ने श्री उपाध्याय के निधन पर गहरा शोक प्रकट किया। उन्होंने कहा कि श्री उपाध्याय के निधन से देश ने एक महान् पुत्र तथा जनसंघ ने महान् नेता खो दिया है।

प्रजा समाजवादी दल के महामंत्री श्री प्रेम भसीन ने कहा कि श्री उपाध्याय के निधन से देश एक महान् और समर्पित जीवन वाले देशभक्त से वंचित हो गया। उनकी सेवाओं को देश सदा स्मरण रखेगा। श्री भसीन ने भी मृत्यु के कारणों की जाँच की माँग की।

पटना : भारतीय साम्यवादी दल (दक्षिणपंथी) की राष्ट्रीय परिषद् ने, जिसकी यहाँ बैठकें हो रही हैं, एक प्रस्ताव स्वीकार कर श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट किया। प्रस्ताव में कहा गया कि भारतीय राजनीति में श्री उपाध्याय का विशिष्ट स्थान था।

परिषद् ने आज यहाँ आयोजित अपना सांस्कृतिक कार्यक्रम श्री उपाध्याय के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करने के लिए स्थगित कर दिया। प्र.सो.पा. संसदीय दल ने भी एक प्रस्ताव स्वीकार कर श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट किया। प्रस्ताव में मृत्यु के कारणों की जाँच कराने की माँग की गई है।

म.प्र. में सार्वजनिक छुट्टी

भोपाल : श्री उपाध्याय की मृत्यु का समाचार मिलते ही नगर में शोक का सन्नाटा छा गया। राज्य सरकार ने श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट करने के लिए कल सरकारी कार्यालयों में छुट्टी की घोषणा की है। छुट्टी की घोषणा मुख्यमंत्री श्री गोविंदनारायण सिंह ने बिलासपुर में की।

श्री सिंह ने अपने शोक संदेश में कहा कि यह दुर्भाग्य की बात है कि देश ने अपने एक सशक्त राजनीतिज्ञ को ऐसे समय खो दिया, जब उसे उनकी सेवाओं की अत्यधिक आवश्यकता थी।

भोपाल में जनसंघ द्वारा आज सायंकाल शोकसभा का आयोजन किया गया, जिसमें स्वर्गीय नेता की आत्मा की चिरशांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री वीरेंद्र कुमार सकलेचा, वित्तमंत्री श्री रामहित गुप्त, समाज कल्याण मंत्री श्री गोवर्धनलाल खंडेलवाल, विद्युत मंत्री श्री नरेश जौहरी यहाँ से

दक्षिण एक्सप्रेस से दिल्ली के लिए रवाना हो गए, जहाँ वे कल अपराह्न पं. उपाध्याय की शवयात्रा में सम्मिलित होंगे।

नागपुर प्रवास पर जा रहे प्रदेश जनसंघ के संगठन मंत्री श्री कुशाभाऊ ठाकरे को नागपुर मार्ग पर बेतूल में यह सूचना दे दी गई तथा वे भी अपना प्रवास स्थगित कर दिल्ली के लिए रवाना हो गए हैं।

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय के आकस्मिक निधन का समाचार यहाँ जनसंघ कार्यालय को उस समय मिला, जब प्रदेश कार्यकारिणी की बैठक चल रही थी। श्री उपाध्याय कार्यकारिणी का पथ-प्रदर्शन करने के लिए बैठक में शामिल होने के लिए पटना जा रहे थे।

बैठक में उपस्थित सदस्य सन्न रह गए। बाद में एक शोक प्रस्ताव पारित कर बैठक स्थगित हो गई। शोक प्रस्ताव में पं. दीनदयाल उपाध्याय की असामयिक मृत्यु पर गंभीर शोक प्रकट किया गया है। उनकी मृत्यु ने भारत माँ के एक अनमोल रत्न को छीन लिया है। वे एक विद्वान् विचारक, प्रजातंत्र के प्रहरी एवं राष्ट्रीयता के परम उद्बोधक थे। उनकी मृत्यु से राष्ट्र की अपूरणीय क्षति हुई है। बैठक में दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की गई। प्रदेश जनसंघ ने सभी कार्यकर्ताओं को निर्देश दिया है कि इस दुःख की घड़ी में विवेक, धैर्य और संयम से काम लें।

जालंधर : एक सर्वदलीय सार्वजनिक सभा में श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट किया गया। बंबई जनसंघ ने श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट करने के लिए मंगलवार तक के लिए अपने सभी कार्यक्रम रद्द कर दिए हैं। बंबई जनसंघ की एक सार्वजनिक शोक सभा शिवाजी पार्क में होगी।

अकाली नेता संत फतेह सिंह ने कहा कि वे दीन–दुःखियों की सेवा के लिए कार्य करते रहे। उनके निधन से देश को जो क्षति हुई है, वह अपूरणीय है।

राजनीतिक हत्या

मध्य प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष श्री एम.के. शेजवालकर ने कहा कि मुझे इस बारे में कोई संदेह नहीं कि उनकी मृत्यु राजनीतिक उद्देश्य से की गई हत्या है।

जालंधर में कल आम हड़ताल का आह्वान किया गया है। पंजाब जनसंघ के अध्यक्ष बलदेव प्रकाश उपाध्याय तथा श्री लालचंद सब्बरवाल ने एक वक्तव्य में पंजाब की जनता से कल सारे राज्य में आम हड़ताल करने की अपील की है। उन्होंने कहा कि भगवान् ने जब हमें उपाध्यायजी की अत्यधिक आवश्यकता थी, तो उन्हें हमसे छीन लिया है।

जनसंघी विधायक श्री विश्वनायक ने कहा कि श्री उपाध्याय में चाणक्य की

विलक्षणता, गांधीजी की सादगी और शिवाजी की संगठन शक्ति, एक साथ पुंजीभूत हो गई थीं।

कांग्रेस संसदीय दल के दोनों महामंत्रियों श्री चंद्रशेखर और श्री पी. वेंकट सुब्बैया ने भी एक वक्तव्य में कहा कि श्री उपाध्याय के निधन से देश का प्रोज्ज्वल व्यक्तित्व और समर्थ कार्यकर्ता उठ गया है। राजस्थान के जनसंघी नेता श्री सतीश चंद्र अग्रवाल ने कहा कि उनकी रहस्यमय मृत्यु से ऐसा लगता है कि यह किसी राजनीतिक षड्यंत्र का परिणाम है। प्राप्त समाचारों के अनुसार श्री उपाध्याय की मृत्यु का समाचार मिलते ही आगरा, इलाहाबाद, वाराणसी, नागपुर आदि में बाज़ार बंद हो गए। नागपुर में विवेकानंद स्मारक के संबंध में एक समारोह भी रद्द कर दिया गया।

कांग्रेस अध्यक्ष को सदमा

कांग्रेस अध्यक्ष श्री एस. निजलिंगप्पा ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु की ख़बर सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ।

मसानी स्तब्ध

स्वतंत्र पार्टी के नेता श्री एम.आर. मसानी ने कहा कि वह श्री उपाध्याय की मृत्यु की ख़बर सुनकर स्तब्ध रह गए।

प्रजा समाजवादी दल के अध्यक्ष श्री एन.जी. गौर ने पूना में कहा कि उन्हें श्री उपाध्याय की मृत्यु की ख़बर सुनकर बड़ा धक्का लगा। वे एक वीर योद्धा थे और बहुत ही आदरणीय राजनीतिक कार्यकर्ता। मुझे आशा है कि सरकार उनकी मृत्यु का कारण ढूँढ़ने में कोई कसर न छोड़ेगी।

महान् नेता

कलकत्ता में जनसंघ की पश्चिम बंगाल शाखा के अध्यक्ष श्री हरिपद भारती ने कहा कि श्री उपाध्याय की ख़बर सुनकर वह स्तब्ध रह गए हैं। जनसंघ एक महान् एवं बुद्धिमान नेता से वंचित हो गया।

महान् चिंतक

अखिल भारतीय हिंदू महासभा के उपाध्यक्ष प्रो. रामसिंह ने श्री उपाध्याय को एक महान् चिंतक बताते हुए कहा कि उनके निधन से हिंदू समाज की भारी क्षति हुई है। प्रजा समाजवादी दल के नेता संसद् सदस्य श्री नाथ ने एक शोक संदेश में कहा कि श्री उपाध्याय एक प्रखर राष्ट्रवादी नेता थे। देश ने एक निष्ठावान कार्यकर्ता खो दिया। वे सादगी तथा निष्ठा के प्रतीक थे।

स्वतंत्र पार्टी के नेता दयाभाई पटेल ने श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट करते हुए उनकी इस आकस्मिक मृत्यु की जाँच की माँग की है।

संसद् सदस्य पं. प्रकाशवीर शास्त्री ने गहरा शोक व्यक्त करते हुए कहा कि पंडितजी देश के गिने-चुने विचारकों एवं राजनीतिक नेताओं में से थे। उनके निधन से राष्ट्र को क्षति हुई है। कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री सादिक ने श्री उपाध्याय के 'दु:खद तथा समय से पूर्व' मृत्यु पर गहरा दु:ख प्रकट किया है।

जनसंघ के नेता श्री प्रेमनाथ डोगरा ने कहा कि मैं यह समाचार पाकर स्तब्ध रह गया हूँ। उन्होंने मृत्यु की स्थिति को रहस्यपूर्ण बताया। उन्होंने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु मेरे लिए व्यक्तिगत क्षति हैं तथा राष्ट्र को भी इससे नुक़सान पहुँचा है। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री मधु लिमये ने श्री उपाध्याय को निस्स्वार्थ समाजसेवी बताते हुए माँग की कि उनकी मृत्यु के कारणों की तुरंत जाँच कराई जाए।

—हिंदुस्तान, फरवरी 13, 1968

(*xvi*)

उपाध्याय को दिल्ली के नागरिकों की श्रद्धांजलि

भारतीय जनसंघ के केंद्रीय संसदीय दल ने दल के अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय को विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए शोक प्रस्ताव पारित किया। इसमें कहा गया कि उनके निधन से देश ने एक बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ और अर्थवेत्ता खो दिया। जनसंघ का एक असाधारण नेता और प्रेरणास्रोत आज समाप्त हो गया। उनके निधन से सारे देश को महान् क्षति होगी।

प्रस्ताव में भारतीय सरकार तथा रेलवे अधिकारियों से इस दु:खद दुर्घटना की अविलंब विस्तृत छानबीन करने की माँग की गई है। प्रस्ताव में कहा गया है कि उनकी अचानक मृत्यु से सभी उपस्थित सदस्यों को भारी धक्का पहुँचा है।

गत कुछ वर्षों में जनसंघ की हुई असाधारण प्रगति का एकमात्र श्रेय पंडितजी को दिया तथा कहा कि वे सचमुच में सादा रहन और उच्च विचार के महान् सिद्धांत के साकार अवतार थे।

उपस्थित संसदीय दल के सदस्यों ने दो मिनट मौन खड़े होकर श्रद्धांजलि अर्पित की तथा दिवंगत आत्मा की शांति के लिए परमात्मा से प्रार्थना की। संसद् सदस्य श्री कँवरलाल गुप्ता ने कहा कि केंद्रीय गृहमंत्री श्री यशवंतराव चह्वाण ने उनकी मृत्यु के कारणों की छानबीन के लिए राज्य सरकार को हर संभव सहायता देने का आश्वासन दिया है।

राष्ट्रीय क्षति

भारतीय लोक परिषद् को श्री उपाध्याय की मृत्यु से गहरा आघात पहुँचा है। परिषद् ने एक प्रस्ताव में माँ-भारती के इस विद्वान् व दिग्गज सुपुत्र के विछोह से राष्ट्र को हुई क्षति पर शोक प्रकट किया और दिवंगत नेता को श्रद्धांजलि अर्पित की।

हिंदी के महान् समर्थक

दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन के शोक प्रस्ताव में कहा गया कि श्री दीनदयाल उपाध्याय के आकस्मिक निधन के समाचार से हिंदीप्रेमी स्तब्ध रह गए। उपाध्यायजी हिंदी तथा भारतीय संस्कृति के महान् उपासक थे। उनके निधन से राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत एक आदर्शवान सच्चा देशभक्त हमारे बीच से उठ गया। भगवान् उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे।

एक प्रस्ताव में कहा गया कि प्रत्येक हिंदी प्रेमी नागरिक को उनके शोक में सोमवार को अपना कारोबार बंद रखकर श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिए।

गंभीर क्षति

संयुक्त समाजवादी पार्टी दिल्ली के कार्यकर्ताओं की बैठक में भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट किया। शोक प्रस्ताव में कहा गया कि उनके निधन से भारतीय राजनीति को गंभीर क्षति हुई है।

दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के शोक संदेश में कहा गया कि भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की आकस्मिक मृत्यु की ख़बर सुनकर मुझे गहरा आघात लगा है। वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक महान् नेता थे और जनसंघ की स्थापना से ही इससे उनका संबंध रहा। वे साहित्यकार तथा अनेक पुस्तकों के लेखक रहे। मैं अपनी तथा दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी की ओर से संतप्त परिवार को हार्दिक संवेदना भेजता हूँ।

—हिंदुस्तान, फरवरी 13, 1968

(xvii)

महान् नेता खो दिया : विजय कुमार मल्होत्रा

चीफ एक्ज़ीक्यूटिव काउंसलर (मुख्य कार्यकारी पार्षद) ने अपने शोक संदेश में कहा कि न केवल जनसंघ ने वरन् देश ने एक महान् नेता खो दिया है। उनके निधन से मुझे बहुत बड़ा सदमा पहुँचा है। इस क्षति की पूर्ति होती नज़र नहीं आ रही है। देश की वर्तमान नाज़ुक समस्याओं के हल करने में जो सुझाव उन्होंने दिए थे, वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

परिगणित जाति महिला, समाज और भारतीय अनुसूचित जाति समाज कल्याण संगठन ने अलग-अलग शोक सभाएँ करके दिवंगत नेता को श्रद्धांजलि अर्पित की।

बच्चों की श्रद्धांजलि

श्री उपाध्याय के अकस्मात् निधन पर नेहरू बाल संघ के बच्चों ने मौन खड़े होकर उनकी आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। बाल संघ के अध्यक्ष श्री अशोक कुमार महेता ने स्वर्गीय उपाध्यायजी के निधन को राष्ट्र की क्षति बताते हुए कहा कि समस्त राष्ट्र उनकी सेवाओं और कार्यों को भुला नहीं सकता।

भिवानी में शोक

हाल बाज़ार, भिवानी के स्वर्णकारों ने एक शोकसभा में स्व. उपाध्याय को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की और परमात्मा से उनकी सद्गति की प्रार्थना की। श्री दीनदयाल उपाध्याय के दु:खद निधन के समाचार मिलते ही मेरठ और पिलखुआ कस्बे में शोक छा गया। पिलखुआ में यह दु:खद समाचार फैलते ही पूरी हड़ताल हो गई। सैकड़ों लोग शवयात्रा में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली रवाना हो गए।

अलीगढ़ स्तब्ध

श्री उपाध्याय के आकस्मिक निधन का समाचार मिलते ही सारे ज़िले में सनसनी फैल गई। जनसंघ के ज़िला प्रधान श्री त्रिलोकीनाथ शर्मा ने कहा कि जनसंघ ने देश के एक सच्चे सपूत को खो दिया। आर्य केंद्रीय सभा के अध्यक्ष व गुरुकुल के कुलपति श्री यशपाल शास्त्री ने कहा कि जिन परिस्थितियों में शव पाया गया है, वह संदेहास्पद है, इसकी जाँच की जानी चाहिए।

—हिंदुस्तान, फरवरी 13, 1968

□

द हिंदू में प्रकाशित दीनदयालजी की मृत्यु के समाचार

(i)

जनसंघ अध्यक्ष उपाध्याय पटरी पर मृत पाए गए

लखनऊ, 11 फरवरी।

जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय उत्तर प्रदेश के मुग़लसराय रेलवे स्टेशन के पास आज तड़के मृत पाए गए।

जनसंघ से जुड़े उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री रामप्रकाश ने तत्काल जाँच के आदेश दिए हैं।

श्री उपाध्याय पार्टी सम्मेलन में शामिल होने लखनऊ से पटना जा रहे थे। बताया जाता है कि वह प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा कर रहे थे। मुग़लसराय रेलवे स्टेशन से कुछ फर्लांग दूर पटरी पर एक कैबिनमैन ने उनका पार्थिव शरीर देखा और पुलिस को सूचना दी।

समाचार मिलने के कुछ ही मिनट के भीतर उत्तर प्रदेश के उच्चाधिकारी जाँच के लिए लखनऊ से मुग़लसराय के लिए रवाना हो गए।

उत्तर प्रदेश सरकार के सूत्रों के अनुसार पठानकोट-सियालदह एक्सप्रेस के स्टेशन से रवाना होने के डेढ़ घंटे बाद मुग़लसराय के आउटर सिग्नल के पास मृत शरीर मिला।

पार्थिव शरीर दिल्ली ले जाया गया

श्री उपाध्याय का पार्थिव शरीर भारतीय वायुसेना के विमान के ज़रिए सुबह 9 बजे बाबतपुर हवाई अड्डे से दिल्ली रवाना किया गया। सांसद श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री बलराज मधोक, श्री रामप्रकाश और पार्टी के कार्यालय सचिव श्री जगदीश चंद्र माथुर पार्थिव शरीर के साथ थे। श्री उपाध्याय को श्रद्धांजलि देने के लिए हवाई अड्डे पर एक हज़ार से अधिक लोग उपस्थित थे। पार्थिव शरीर को श्री अटल बिहारी वाजपेयी के आवास 3 सी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद रोड पर लाया गया।

समझा जाता है कि श्री उपाध्याय की खोपड़ी पर चोट लगी थी और उनकी पसलियाँ, टखने और एक बाँह टूटी थी।

हालाँकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट अभी जारी नहीं हुई है, लेकिन समझा जाता है कि उनके सिर के पीछे के हिस्से चार इंच का क्षेत्र कूचा हुआ था। वाराणसी के ज़िलाधीश श्री बृजपाल सिंह ने संवाददाताओं को बताया कि 'इस समय कुछ स्पष्ट नहीं हो सका है।'

श्री उपाध्याय त्रासद परिस्थिति में मरनेवाले जनसंघ के तीसरे अध्यक्ष हैं। जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी कश्मीर में हिरासत में मरे थे। कुछ वर्ष पहले डॉ. रघुवीर कानपुर में एक दुर्घटना में मारे गए थे।

कई वर्ष तक जनसंघ के महामंत्री रहे श्री उपाध्याय बीते दिसंबर में कालीकट सत्र में अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे।

महज दुर्घटना हो सकती है

यू.एन.आई. की रिपोर्ट : रेलवे सूत्रों की शुरुआती जाँच के अनुसार श्री उपाध्याय की मृत्यु शुद्ध रूप से दुर्घटना का मामला हो सकती है। पता चला है कि श्री उपाध्याय पटना-लखनऊ डिब्बे में यात्रा कर रहे थे। यह डिब्बा मुग़लसराय स्टेशन पर पठानकोट एक्सप्रेस से अलग करके तूफान एक्सप्रेस से जोड़ा गया।

शंटिंग के दौरान श्री उपाध्याय प्लेटफॉर्म पर उतरे। उनके हाथ में पाँच रुपए का एक नोट देखा गया। माना जा रहा है कि वह कुछ ख़रीदना चाहते थे।

बताया जाता है कि जब ट्रेन चली तो उन्होंने वापस ट्रेन में चढ़ने का प्रयास किया। लगता है कि इस दौरान वह बिजली के खंभे से टकरा गए और ज़मीन पर गिर गए। ट्रेन के चले जाने के बाद कैबिन कर्मचारी को उनका पार्थिव शरीर मिला।

सरकारी सूचना के अनुसार पटना के पास मोकामा स्टेशन पर रेलवे पुलिस को श्री उपाध्याय का सामान उसी डिब्बे में सुरक्षित मिला, जिसमें वे यात्रा कर रहे थे।

श्री उपाध्याय की मृत्यु पर देश भर के लोगों ने शोक व्यक्त किया है। श्री उपाध्याय को श्रद्धांजलि देनेवाले नेताओं में राष्ट्रपति जाकिर हुसैन, उप राष्ट्रपति वी.वी. गिरि, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, स्वतंत्र पार्टी के नेता राजगोपालाचारी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता मधु लिमये और कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा शामिल हैं।

—द हिंदू, फरवरी 12, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(ii)

उपाध्याय की मृत्यु : गड़बड़ी का संदेह

नयी दिल्ली, 11 फरवरी।

आज यहाँ आरोप लगाया गया कि मुग़लसराय रेलवे स्टेशन के निकट रेलवे पटरी पर मृत पाए गए जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की हत्या हुई है।

देर रात दिल्ली भेजे गए पार्थिव शरीर के साथ आए उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री राम प्रकाश और श्री बलराज मधोक ने इसे सुनियोजित हत्या का मामला बताया।

पालम हवाई अड्डे पर संवाददाताओं से बात करते हुए श्री रामप्रकाश ने कहा कि यह हत्या का मामला है, क्योंकि जनसंघ नेता का कपाल भारी और भोथरे हथियार से तोड़ा गया। इसके बाद मृत शरीर को रेल पटरी के पास फेंक दिया गया।

श्री मधोक ने कहा कि हत्या का मकसद चोरी करना नहीं था, क्योंकि श्री उपाध्याय के रुपए-पैसे और उनकी कलाई घड़ी सुरक्षित मिले हैं।

श्री मधोक ने कहा कि यद्यपि पोस्टमार्टम रिपोर्ट अभी ज्ञात नहीं हो पाई है, परंतु स्थानीय अधिकारियों ने पुष्टि की है कि श्री उपाध्याय की हत्या की गई है।

श्री मधोक ने कहा कि उनका व्यक्तिगत विचार यह है कि यह हत्या राजनीतिक उद्देश्य से की गई है। यद्यपि वे इस समय इस बारे में कुछ नहीं कहेंगे कि इसके पीछे कौन से तत्त्व थे।—पी.टी.आई.

—द हिंदू, फरवरी 12, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(iii)

जनसंघ अध्यक्ष की मृत्यु से नेताओं में शोक

राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन ने कहा कि जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय, जिनका मृत शरीर आज सुबह मुग़लसराय रेलवे स्टेशन के पास पाया गया, की मृत्यु का समाचार सुनकर वे स्तब्ध हैं।

एक संदेश में राष्ट्रपति ने कहा, 'मैं श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु के बारे में सुनकर स्तब्ध हूँ। मेरी गहरी संवेदनाएँ शोकाकुल परिवार के सदस्यों के साथ हैं।'

उप राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि ने कहा कि 'भारत की सर्वोत्कृष्ट संतानों में एक श्री उपाध्याय की मृत्यु के बारे में सुनकर वह दुःखी हैं। वह पक्के राष्ट्रवादी और विशेष रूप से समर्पित कार्यकर्ता थे।'

श्री गिरि ने कहा कि 'उनकी मृत्यु से हमने निःसंदेह भारत का एक महान् पुत्र खो दिया है।'

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु की सूचना से वह स्तब्ध हैं। एक वक्तव्य में उन्होंने कहा कि मैं समझती हूँ कि इस त्रासद और दुःखद घटना की जड़ तक जाने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार हरसंभव प्रयास कर रही है। केंद्र सरकार स्वयं को राज्य सरकार के सतत संपर्क में रख रही है।

'श्री उपाध्याय देश के राजनीतिक जीवन में अग्रणी भूमिका निभा रहे थे। मुझे दुःख है कि ऐसी दुःखद परिस्थितियों में उनकी असामयिक और अप्रत्याशित मृत्यु ने उनके राजनीतिक जीवन को संक्षिप्त कर दिया। मेरी गहरी संवेदनाएँ उनके परिवार के साथ हैं।'

उप प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि श्री उपाध्याय की बीभत्स मृत्यु के बारे में सुनकर वे स्तंभित रह गए। श्री देसाई ने कहा कि श्री उपाध्याय जिन सिद्धांतों पर भरोसा करते थे और जिसके लिए वे समर्पित थे, उनके अनुरूप देश के लिए निरंतर कार्य करते रहे। मुझे विश्वास है कि इस जघन्य अपराध के लिए ज़िम्मेदार लोगों की शीघ्र ही पहचान कर ली जाएगी।

केंद्रीय गृहमंत्री श्री वाई.बी. चह्वाण ने कहा कि श्री उपाध्याय की अचानक मृत्यु के बारे में जानकर वे 'अत्यंत स्तब्ध और दुःखी' हैं। उन्होंने कहा कि श्री उपाध्याय एक निष्काम कार्यकर्ता थे और उनमें दृढनिश्चय का हौसला था।

श्री चह्वाण ने कहा कि जनसंघ के अध्यक्ष होने के अलावा श्री उपाध्याय अपनी तरह के एक जननेता थे। गृहमंत्री ने कहा कि श्री उपाध्याय की अचानक और असामयिक मृत्यु न केवल उनकी पार्टी के लिए बल्कि पूरे देश के लिए एक अपूरणीय क्षति है।

राजा जी की श्रद्धांजलि

स्वतंत्र पार्टी के नेता श्री सी. राजगोपालाचारी ने कहा कि वह 'श्री उपाध्याय की मृत्यु से अत्यंत शोकसंतप्त हैं।'

उन्होंने जनसंघ नेता को 'राजनीतिक क्षेत्र के हमारे सबसे बड़े बुद्धिजीवियों में एक' बताया।

पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु से वे दुःखी हैं।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष और पूना के मेयर श्री एन.जी. गोरे ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु के बारे में जानकर वे पूरी तरह स्तब्ध हैं।

श्री गोरे ने कहा कि 'श्री उपाध्याय एक साहसी योद्धा और एक अत्यंत सम्मानीय राजनीतिक कार्यकर्ता थे। मुझे आशा है कि सरकार उनकी मृत्यु का कारण पता लगाने में कोई कसर बाक़ी नहीं छोड़ेगी।'

तमिलनाडु स्वतंत्र पार्टी के अध्यक्ष श्री एस. गणेशन ने कहा कि श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु का समाचार सुनकर वे स्तब्ध हैं।

उन्होंने कहा कि उनकी बुद्धिमत्ता, क्षमता और सेवाएँ देश के लोगों के मस्तिष्क में सदैव ताजा रहेंगी।

श्री उपाध्याय की मृत्यु के बारे में बताने पर सांसद और लोकसभा में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री मधु लिमये ने कहा कि 'मैं यह सुनकर स्तब्ध हूँ। श्री उपाध्याय एक निष्काम सार्वजनिक कार्यकर्ता थे। उनकी मृत्यु के कारणों का पता लगाने के लिए तत्काल जाँच बैठाई जानी चाहिए।'

सं.सो.पा. की राष्ट्रीय समिति ने माँग की है कि जनसंघ नेता की मृत्यु के कारणों की जाँच 'उच्चाधिकार प्राप्त' समिति द्वारा होनी चाहिए।

जीवन विवरण

दो माह पूर्व जनसंघ के अध्यक्ष बनाए गए श्री उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से पार्टी में आए थे।

उन्होंने शिक्षक बनने के लिए अध्ययन किया, जो उनके कुलनाम का अर्थ है, परंतु इलाहाबाद के गवर्नमेंट टीचर्स कॉलेज से स्नातक करने के ठीक बाद 1942 के राजनीतिक उथल-पुथल में शामिल हो गए।

प्रचारक के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में सम्मिलित होने के दो वर्ष के भीतर ही वे 1945 में संघ के उत्तर प्रदेश के सह प्रांत प्रचारक बन गए।

वे 1951 में उत्तर प्रदेश इकाई के महामंत्री के रूप में नवगठित जनसंघ में सम्मिलित हुए और दो वर्ष बाद अखिल भारतीय पार्टी के महामंत्री के रूप में प्रोन्नत किए गए।

श्री उपाध्याय ने राजनीति के बीच से समय निकालकर धर्म, इतिहास और संस्कृति के विभिन्न आयामों पर हिंदी और अंग्रेज़ी में कई पुस्तकें लिखीं।

उत्तर प्रदेश के मथुरा ज़िले के नगला चंद्रभान गाँव में 10 अक्तूबर, 1917 को जन्मे श्री उपाध्याय ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा राजस्थान के सीकर और पिलानी में ग्रहण की तथा कानपुर के एस.डी. कॉलेज से 1939 में कला की उपाधि ली। वे अविवाहित थे।

—द हिंदू, फरवरी 12, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

परिशिष्ट-III

समाचार-पत्र 'आज' (वाराणसी) में प्रकाशित दीनदयालजी की मृत्यु के समाचार

(i)

जनसंघ अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय की हत्या

अखिल भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पंडित दीनदयाल उपाध्याय की रहस्यमय मृत्यु पिछली रात हो गई। उनका शव भोर में मुग़लसराय स्टेशन के यार्ड में संदिग्ध अवस्था में पड़ा पाया गया। शव पर मिले चोट के चिह्नों से ऐसा समझा जाता है कि उनकी हत्या की गई है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शव आज भोर में लगभग 3 और 3.30 बजे के बीच मुग़लसराय स्टेशन के यार्ड में प्लेटफार्म से लगभग सौ गज़ पश्चिम बनारस डाउन लाइन के पास पड़ा हुआ मिला। शव का सिर बिजली के खंभा नं. 1276 के पास रिपोर्टिंग पर था और शरीर का अन्य भाग पश्चिम की ओर फैला हुआ था। उनके पैर एक-दूसरे पर चढ़े हुए थे।

शव का दाहिना हाथ मुड़कर गरदन के नीचे था, जिसकी मुट्ठी में पाँच रुपए का एक नोट दबा हुआ था। बायाँ हाथ सीने पर था, जिसमें घड़ी बँधी हुई थी। घड़ी पर 'नानाजी देशमुख' लिखा हुआ था।

शव को देखकर रेलवे के किसी कर्मचारी ने जी.आर.पी. थाने में 3 बजकर 35 मिनट पर ख़बर दी। पुलिस ने घटनास्थल पर रेलवे के डॉक्टर चक्रवर्ती को बुलाया, जिन्होंने शव परीक्षा कर उन्हें मृत घोषित किया।

शव जहाँ पड़ा हुआ था, वहाँ सिर के नीचेवाले स्थान पर रक्त बहा हुआ था। रिपोर्टिंग पर भी रक्त के धब्बे थे। पास की दो-एक गिट्टियों पर भी रक्त के दाग़ देखे गए।

पंडित दीनदयाल का शव देखने पर मालूम हुआ कि उनके सिर के पिछले भाग में गहरी चोट थी। उनके दोनों पैरों की हड्डी पंजे के ऊपर से तथा दाहिने बाँह की हड्डी के टूट जाने का अनुमान किया जाता है। शव के दाहिने कान से ख़ून बह रहा था। पीठ पर भी नीले दाग और खरोंच थे।

मृत्यु के समय धोती पहने थे। बदन पर ऊपर भूरे रंग की ऊनी जर्सी, उसके नीचे पूरे बाँह की सफ़ेद जर्सी तथा नीचे बिना बाँह का स्वेटर था।

वे एक तूश ओढ़े हुए थे, जो शव में उलझकर मुँह पर पड़ा हुआ था। स्वेटर और जर्सियाँ ख़ून से भीगी थीं, उनकी मुट्ठी में मिले पाँच रुपए के नोट के अतिरिक्त उनके पास 21 रुपए के नोट भी मिले।

श्री उपाध्याय लखनऊ से पटना जा रहे थे

शव मिलने पर पहले तो उसकी पहचान न हो सकी, किंतु शव के पास मिले लखनऊ से पटना के प्रथम श्रेणी के टिकट तथा आरक्षण टिकट के नंबरों के आधार पर रेलवे पुलिस ने जब लखनऊ से पूछताछ की तो मालूम हुआ कि उक्त टिकट पर श्री दीनदयाल उपाध्याय के लिए 52 डाउन पठानकोट एक्सप्रेस में लखनऊ-पटना-हावड़ा बोगी में प्रथम श्रेणी में स्थान सुरक्षित किया गया था। सुबह उजाला होने पर जब अन्य लोगों ने भी लाश को देखा तो कुछ लोगों ने उपाध्यायजी को पहचाना। रेलवे पुलिस ने पूरब की ओर हावड़ा तक के प्रमुख स्टेशनों को तार देकर जाँच किए जाने की जो ख़बर भेजी थी, उसके उत्तर में दोपहर में मोकामा से तार द्वारा सूचना मिली कि 8 डाउन के प्रथम श्रेणी के एक डब्बे में एक अटैची मिली, जिसमें कपड़े और कुछ काग़ज़ात थे, जो पंडित दीनदयाल उपाध्याय के हैं।

इस संबंध में अब तक जो कुछ पता चल सका है, उससे मालूम हुआ है कि श्री उपाध्याय शनिवार को शाम को लखनऊ से पटना जाने के लिए 52 डाउन पठानकोट एक्सप्रेस में सवार हुए। प्रथम श्रेणी में उन्होंने बर्थ रिज़र्व कराया था। 52 डाउन पठानकोट एक्सप्रेस मुग़लसराय से गया की ओर होकर ग्रांडकार्ड लाइन से हावड़ा जाती थी, इसलिए श्री उपाध्याय को उस बोगी से उतार दिया गया, जो मुग़लसराय के 52 डाउन से काटकर 8 डाउन तूफ़ान एक्सप्रेस में जोड़ी जानी थी।

स्वर्गीय उपाध्याय का शव दिल्ली पहुँचा

स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय का शव भारतीय वायुसेना के एक विमान से आज रात में यहाँ लाया गया। एक हज़ार से अधिक व्यक्ति उनको श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए हवाई अड्डे पर उपस्थित थे। शव को विमान से नीचे उतारते ही लोगों ने नारा

लगाया—'दीनदयाल उपाध्याय अमर रहें।' उनका शव श्री अटलबिहारी वाजपेयी के निवास स्थान पर ले जाया गया। हवाई अड्डे पर उपस्थित लोगों ने शव पर फूल-मालाएँ चढ़ाईं।

प्र.सो.पा. द्वारा शोकप्रकाश

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के संसदीय दल की आज यहाँ बैठक में श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया। श्री उपाध्याय की मृत्यु कैसे हुई, इसकी जाँच के लिए दल ने माँग की है।

जीवन परिचय

51 वर्षीय श्री दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 1916 में मथुरा में हुआ था। उन्होंने पिलानी, आगरा और प्रयाग में शिक्षा प्राप्त की। बी.एस-सी., बीटी करने के बाद उन्होंने कहीं नौकरी नहीं की। छात्र जीवन से ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सक्रिय कार्यकर्ता हो गए थे। कॉलेज छोड़ने के बाद वे उसके प्रचारक हो गए।

अखिल भारतीय जनसंघ का निर्माण होने पर वे उसके मंत्री बनाए गए। दो वर्ष बाद वे उसके महामंत्री बना दिए गए। 15 वर्ष तक उन्होंने महामंत्री के रूप में जनसंघ की सेवा की। कालीकट अधिवेशन में वे जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सरल और सौम्य व्यक्तित्व वाले श्री उपाध्याय अंग्रेज़ी और हिंदी के लेखक भी थे। साहित्य में उनकी गहरी अभिरुचि थी। केवल एक बैठक में ही उन्होंने 'चंद्रगुप्त' नाटक लिख डाला था।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(ii)

उपाध्यायजी की नृशंस हत्या पूर्व नियोजित : जनसंघ नेताओं का मत

अखिल भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पंडित दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु जिन परिस्थितियों में हुई है और इस संबंध में अब तक जो विवरण प्राप्त हुआ है, उसके आधार पर जनसंघ के प्राय: सभी शीर्ष नेताओं का यह मत है कि श्री उपाध्याय की नियोजित ढंग से नृशंस हत्या कर गई है।

स्पष्ट रूप से हत्या का मामला

भारतीय जनसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री बलराज मधोक ने आज सायं काल यहाँ

'आज' प्रतिनिधि से बातचीत करते हुए कहा कि श्री उपाध्याय के शरीर पर जिस प्रकार के ज़ख्म हैं, जिस प्रकार उनके पैर तोड़े गए हैं और यहाँ अधिकारियों से पूछताछ करने पर जो विवरण अब तक मिला है, उससे स्पष्ट है कि श्री उपाध्याय की नृशंस हत्या की गई है और यह काम नियोजित ढंग से किया गया है। श्री मधोक ने कहा कि यह स्पष्ट रूप से हत्या का मामला है।

हत्या का उद्देश्य राजनीतिक?

लोकसभा में जनसंघ दल के नेता श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने इस संबंध में पूछने पर बताया कि यह रहस्य में छिपी हुई निर्ममतापूर्ण हत्या है। यह हत्या राजनीतिक उद्देश्य से की गई है, इस संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। इस मामले की जाँच भी इसी दृष्टिकोण से कराई जानी चाहिए।

श्री वाजपेयी ने कहा कि इस हत्या की परिस्थितियों और श्री उपाध्याय के व्यक्तित्व का ध्यान रखते हुए मैं केंद्रीय गुप्तचर विभाग द्वारा इस मामले की जाँच कराई जाने की माँग करूँगा।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(iii)

श्री मधु लिमये द्वारा मृत्यु की जाँच कराने पर बल

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय के निधन पर राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन ने गहरा दु:ख प्रकट किया है तथा उनके परिवार के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त की है।

उपराष्ट्रपति मर्माहत : उपराष्ट्रपति श्री वेंकट वराह गिरि ने आज नई दिल्ली में कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु का संवाद सुनकर मुझे गहरा आघात पहुँचा है। भारत के ये एक महान् पुत्र थे। ये कट्टर राष्ट्रवादी तथा उच्च कोटि के ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ता थे।

उनके निधन से भारत का एक महान् पुत्र उठ गया। कांग्रेस अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा ने भी श्री उपाध्याय के देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट किया है।

प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी से जब इस संबंध में संपर्क किया गया तो उन्होंने कहा कि मैं इस बारे में विवरण की प्रतीक्षा कर रही हूँ। लोकसभा में सं.सो.पा. गुट के नेता श्री मधु लिमये ने गहरा शोक व्यक्त करते हुए माँग की है कि श्री उपाध्याय की मृत्यु के कारणों की जाँच कराई जाए।

लोकसभा में प्र.सो.पा. सदस्य श्री नाथ पई ने कहा है कि श्री उपाध्याय के निधन

से एक महान् देशभक्त उठ गया। श्री उपाध्याय का व्यक्तित्व सादगी का प्रतीक था। भारतीय प्रजा-समाजवादी दल के अध्यक्ष श्री एन.जी. गोरे ने कहा है कि श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु का समाचार सुनकर मैं स्तब्ध रह गया हूँ। वे बड़े कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। मैं आशा करता हूँ कि उनके देहावसान के कारणों की जाँच कराने में सरकार कुछ क़सर उठा न रखेगी। दिल्ली में श्री उपाध्याय के निधन का समाचार सुनते ही जनसंघ के नेता स्तब्ध रह गए।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(iv)

श्री गोलवलकर शोकाकुल

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधव सदाशिव गोलवलकर को जब श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु की सूचना दी गई तो उन्होंने कहा—'यह एक वर्णनातीत आघात है।'

श्री गोलवलकर, जो यहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिविर में भाग लेने आए थे, अपने कार्यक्रम में कटौती कर कार से वाराणसी रवाना हो गए हैं।

प्रयाग ज़िला जनसंघ के अध्यक्ष श्री एम.एल. भार्गव ने शोक प्रकट करते हुए कहा है कि हमने इन्हीं परिस्थितियों में अपने तीसरे अध्यक्ष को खोया है। इस रिक्तता की पूर्ति असंभव है।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(v)

श्री उपाध्याय की मृत्यु पर प्रधानमंत्री का शोक संदेश

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने आज यहाँ कहा कि श्री दीनदयाल उपाध्याय के निधन के समाचार से मुझे गहरा सदमा पहुँचा है। उत्तर प्रदेश सरकार इस दुःखांत और पीड़ाप्रद घटना के कारणों का पता लगाने का सभी संभव प्रयास कर रही है। केंद्रीय सरकार भी प्रदेश सरकार से इस मामले में बराबर संपर्क रख रही है।

अपने शोक संदेश में उन्होंने कहा है कि श्री उपाध्याय देश की राजनीतिक गतिविधि में सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे। जिन दुःखांत परिस्थिति में उनकी मृत्यु हुई है, वह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। प्रधानमंत्री ने उनके परिवार के प्रति भी अपनी संवेदना प्रकट की है।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(vi)

श्री उपाध्याय की मृत्यु के कारणों की जाँच का आदेश

उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री रामप्रकाश ने आज यहाँ संवाददाताओं को बताया कि मैंने श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु के कारणों की तत्काल जाँच का आदेश दिया है। मुख्य सचिव श्री बी.बी. लाल और गृह सचिव श्री ए.के. मुस्तफी को जाँच का आदेश दिया गया है। श्री रामप्रकाश ने कहा कि जिन परिस्थितियों में श्री दीनदयाल उपाध्याय का शव मुग़लसराय से कुछ फर्लांग की दूरी पर पाया गया, वह रहस्यपूर्ण जान पड़ता है। श्री दीनदयाल उपाध्याय लखनऊ से पटना जा रहे थे।

उप मुख्यमंत्री ने जनता और जनसंघ के कार्यकर्ताओं से अनुरोध किया है कि जबतक श्री उपाध्याय की मृत्यु का रहस्य खुल नहीं जाता, तब तक संयम और धैर्य से काम लें।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(vii)

उप मुख्यमंत्री द्वारा शोक प्रकाश

उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री रामप्रकाश ने श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कहा कि उनकी आकस्मिक मृत्यु से पूरे राष्ट्र को एक गहरा धक्का पहुँचा है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि उनके जैसे कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति की रहस्यमय ढंग से मृत्यु हुई।

उन्होंने उनकी सादगी, ऊँचे आदर्शों के प्रति निष्ठा तथा रचनात्मक विचारधारा की प्रशंसा करते हुए कहा कि स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय साधारण व्यक्ति से नेता पद पर पहुँचे थे। अत: वे जनता की समस्याओं और कठिनाइयों को सहानुभूतिपूर्वक तथा अंतर्दृष्टि से समझते थे।

प्रदेश के भूतपूर्व सहकारिता मंत्री श्री बनारसीदास ने कहा है कि मातृभूमि ने अपने एक सुयोग्य पुत्र को खो दिया। देश की संकट की इस घड़ी में उनकी बहुत आवश्यकता थी।

विधानसभा के अध्यक्ष श्री जगदीशचंद्र अग्रवाल ने कहा कि देश ने एक महान् नेता खो दिया।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(viii)

डोगरा स्तंभित

जनसंघ के नेता श्री प्रेमनाथ डोगरा श्री उपाध्याय की मृत्यु का समाचार सुनकर स्तंभित रह गए। उन्होंने कहा कि रेल पटरी पर उनका शव जिस अवस्था में पाया गया है, मैं उसकी कल्पना नहीं कर सकता। उनकी मृत्यु मेरी निजी क्षति है।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(ix)

संत फतेह सिंह को गहरा शोक

अकाली दल के अध्यक्ष संत फतेह सिंह ने श्री उपाध्याय के निधन पर गहरा शोक प्रकट किया है। उन्होंने कहा है कि भारत का एक महान् पुत्र उठ गया। यह क्षति अपूरणीय है। पंजाब जनसंघ के अध्यक्ष ने भी गहरा शोक प्रकट किया है।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(x)

मौलिक चिंतन

प्रदेश जनसंपर्क अध्यक्ष गंगाराम तलवार ने अपने शोक संदेश में कहा है कि श्री उपाध्याय न केवल महान् व्यक्ति थे, अपितु वे जनसंघ के एक मौलिक विचारक भी थे। यह एक ऐसी रिक्तता है, जिसकी पूर्ति नहीं की जा सकती।

उत्तर प्रदेश के भारतीय क्रांति दल के कार्यवाहक अध्यक्ष श्री रामगोपाल ने श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट किया है। *—'आज', फरवरी 12, 1968*

(xi)

के.के. शाह का शोकप्रकाश

बंबई से प्राप्त समाचार के अनुसार केंद्रीय सूचना और प्रसारण मंत्री श्री के.के. शाह ने शोक प्रकट करते हुए कहा कि श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु से देश को एक ऐसे समय में भारी क्षति पहुँची है, जब वह कठिनाइयों से घिरा है। उन्होंने स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय को जनता का नेता तथा दूरदर्शी व्यक्ति कहा।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(xii)

बंगाल जनसंघ अध्यक्ष श्री हरिपद भारती की संवेदना

जनसंघ की पश्चिम बंगाल शाखा के अध्यक्ष श्री हरिपद भारती ने कहा कि उपाध्यायजी की मृत्यु से वर्णनातीत आघात पहुँचा है।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(xiii)

प्रयाग में शोक की लहर

प्रयाग से प्राप्त समाचार के अनुसार श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु का समाचार सुनकर यहाँ सर्वत्र दुःख की लहर दौड़ गई।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(xiv)

भू.पू. रेलमंत्री सदाशिव कनोजी पाटिल शोक-विह्वल

भूतपूर्व रेलमंत्री श्री सदाशिव कनोजी पाटिल ने उपाध्याय के आकस्मिक निधन पर शोक प्रकट किया है। उन्होंने कहा है कि श्री उपाध्याय एक महान् देशभक्त थे। देश उनसे और सेवा की अपेक्षा करता था।

स्वतंत्र पार्टी के नेता श्री राजगोपालाचारी ने कहा है कि श्री उपाध्याय के निधन से मैं अत्यधिक दुःखित हूँ। देश के राजनैतिक जीवन के वे महान् बुद्धिजीवी थे।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने भी श्री उपाध्याय के निधन पर शोक प्रकट किया है।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(xv)

कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री ग़ुलाम मोहम्मद सादिक की श्रद्धांजलि

कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री ग़ुलाम मुहम्मद सादिक ने श्री उपाध्याय के दुःखद और असामयिक निधन पर शोक प्रकट किया है।

उन्होंने कहा है कि उनकी मृत्यु के कारणों का शीघ्र उद्‌घाटन होना चाहिए, ताकि जनता की चिंता दूर हो सके।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(xvi)

चौधरी चरण सिंह का शोकप्रकाश

नई दिल्ली से प्राप्त समाचार के अनुसार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चरण सिंह, स्वराष्ट्रमंत्री श्री यशवंत राव चह्वाण तथा अन्य नेताओं ने स्वर्गीय उपाध्याय को श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री चरण सिंह ने उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कहा कि स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय देश के एक प्रमुख नेता थे।

मेरठ से प्राप्त समाचार के अनुसार श्री चरण सिंह ने कहा कि राज्य सरकार ने उनकी मृत्यु से संबंधित सभी परिस्थितियों की जाँच का आदेश दे दिया है।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(xvii)

पोस्टमार्टम की रिपोर्ट

श्री दीनदयाल उपाध्याय के शव का पोस्टमार्टम आज सायंकाल यहाँ वाराणसी के अतिरिक्त सिविल सर्जन डॉ. पटेंकर तथा डॉ. दयासरन कपूर ने किया। यद्यपि मामले की उच्चस्तरीय जाँच कराई जाने के कारण पोस्टमार्टम की रिपोर्ट गुप्त रखी गई है, किंतु शरीर पर जिस प्रकार की चोट पाई गई, उससे लगता है कि उनकी दाहिनी कनपटी पर बिना धारदार चीज़ से गहरी चोट आई है।

श्री उपाध्याय के शरीर पर जो ऊपरी चोटें थीं, पोस्टमार्टम से मालूम हुआ कि उनकी दाहिनी कनपटी की हड्डी लगभग 4 इंच की लंबाई-चौड़ाई तक हटकर कई टुकड़ों में विभक्त हो गई थी। उनकी पसली की भी पाँच-छह हड्डियाँ टूटी पाई गईं। पैर की हड्डियाँ भी पंजे के ऊपर से टूटी हुई थीं। जिस स्थान पर कनपटी की हड्डी टूटी हुई है, उसके नीचे का मांस बुरी तरह कुचल गया था। पसली की हड्डी टूटने के कारण दाहिनी तरफ़ के फेफड़े में भी छेद हो गया था। डॉक्टरों ने उनकी चोटों को विचित्र प्रकार का कहा है। उनका कहना है कि इस प्रकार की चोटें किसी चीज़ के प्रहार से या किसी चीज़ से टकराकर गिरने से भी आ सकती हैं।

पोस्टमार्टम से पता चला कि उनके हाथ की हड्डी टूटी नहीं थी, बल्कि अकड़ी हुई थी।

—'आज', फरवरी 12, 1968

(xviii)

श्री उपाध्याय का पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित

अंत्येष्टि संस्कार की विधि विशुद्ध सनातनी धर्मी रीति से प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य अरण्यपति शास्त्री ने कराई। दाह संस्कार में पूर्व महामंडलेश्वर स्वामी गुरु चरणदास और महामंडलेश्वर स्वामी प्रकाशनंद की उपस्थिति में विद्वानों ने वेद मंत्रों का निरंतर उच्चारण किया। शव यात्रा दोपहर के बाद, 30 डॉ. राजेंद्र प्रसाद मार्ग से आरंभ हुई। लगभग 6 घंटे बाद शव जुलूस अंत्येष्टि स्थल पर पहुँचा।

शवयात्रा में जनसंघ के सभी बड़े नेता, संसद् सदस्य, दिल्ली नगर निगम के सदस्य शामिल थे। पूरे रास्ते में दोनों ओर अपार जनसमुदाय ने खड़े होकर दिवंगत नेता के अंतिम दर्शन किए।

स्थान-स्थान पर शव पर पुष्पांजलियाँ अर्पित की गईं। चाँदनी चौक में अपार भीड़ दिवंगत नेता का अंतिम दर्शन करने के लिए उमड़ पड़ी।

अग्नि प्रज्वलन के समय उपस्थित हज़ारों नर-नारियों और वृद्धों ने लगातार 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय अमर रहें', 'भारतमाता की जय' का उद्घोष किया। देश के लगभग समस्त प्रदेशों से आए हुए सैकड़ों लोगों ने इस समय मौन खड़े रहते हुए अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की। सैकड़ों महिलाओं और पुरुषों की आँखों से अश्रुधारा अविरल बह रही थी।

अंत्येष्टि संस्कार से पूर्व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह श्री बाला साहब देवरस, विवेकानंद शिला स्मारक समिति के संगठन मंत्री श्री एकनाथ रानाडे, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नागपुर के संघचालक श्री बाबासाहब घटाटे, दिल्ली नगर निगम महापौर लाला हंसराज गुप्त, संसद् सदस्य श्री अटलबिहारी वाजपेयी, श्री बलराज मधोक, आचार्य कृपालानी, श्री जगन्नाथराव जोशी, दिल्ली महानगर परिषद् के अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवाणी, मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री विजयकुमार मल्होत्रा, नगर निगम में कांग्रेस दल के नेता श्री देशराज चौधरी, जनसंघ के उपाध्यक्ष श्री पीतांबरदास, जनसंघ के महामंत्री श्री सुंदर सिंह भंडारी आदि ने शव पर पुष्पमालाएँ अर्पित कर अपनी अंतिम श्रद्धांजलि दी।

उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री रामप्रकाश गुप्त तथा मध्य प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री वीरेंद्रकुमार सकलेचा ने भी पार्थिव शरीर को मालाएँ अर्पित कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

—*'आज', फरवरी 12, 1968*

(xix)

जाँच के लिए उच्चाधिकारी पहुँचे : हत्या या दुर्घटना : उलझन साफ़ नहीं

वाराणसी, सोमवार भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पंडित दीनदयाल उपाध्याय की रहस्यमय मृत्यु के संबंध में जाँच के लिए प्रदेश की पुलिस तथा गुप्तचर विभाग के कुछ अधिकारी वाराणसी पहुँच गए हैं और उन्होंने घटना की छानबीन शुरू कर दी है।

श्री उपाध्याय की मृत्यु के रहस्य की उलझन पोस्टमार्टम की रिपोर्ट से और अधिक बढ़ गई है। पता चला है कि पोस्टमार्टम में श्री उपाध्याय के शरीर पर चोटें मिली हैं, किंतु हड्डियों के टूटने का कारण स्पष्ट करनेवाली किसी प्रत्यक्ष चोट का चिह्न नहीं मिला।

राजकीय रेलवे पुलिस के सहायक इंस्पेक्टर जनरल श्री अख़्तर अब्बास कल शाम को मुग़लसराय पहुँच गए और लगभग रात-भर पूछताछ में व्यस्त रहे। प्रदेश के गुप्तचर विभाग की अपराध शाखा के सीनियर सुपरिटेंडेंट श्री शिवस्वरूप तथा सुपरिटेंडेंट श्री वी.के. जैन और वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग के फोरेंसिक एक्सपर्ट (अंगुलि छाप विशेषज्ञ) श्री शारिक अलवी आज सुबह आसनसोल पैसेंजर से यहाँ आ गए। आज इन सभी अधिकारियों ने घटनास्थल का निरीक्षण किया और मुग़लसराय जी.आर.पी. थाने में ज़िलाधीश श्री बृजपाल सिंह सेठ तथा सीनियर पुलिस कप्तान श्री राधेश्याम शर्मा के साथ देर तक विचार-विमर्श किया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की रविवार को हुई रहस्यमय मृत्यु की जाँच के सिलसिले में मालूम हुआ है कि स्वर्गीय श्री उपाध्याय प्रथम श्रेणी के कूपे में अकेले यात्रा कर रहे थे।

—'आज', फरवरी 12, 1968

□

द हिंदुस्तान टाइम्स में दीनदयालजी की मृत्यु के समाचार

(i)

रेल पटरी पर मृत पाए गए जनसंघ अध्यक्ष

राज्य सरकार ने मुग़लसराय में आज जनसंघ अध्यक्ष दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु की जाँच का कार्य पुलिस अधीक्षक दर्जे के विशेष सी.आई.डी. अधिकारी को सौंपा है।

राज्य मुख्यालय में उपलब्ध विवरण के अनुसार उनका शव तड़के 3:25 बजे मुग़लसराय रेलवे स्टेशन के आउटर सिग्नल के पास रेल पटरी पर पाया गया।

शव को राजकीय रेलवे पुलिस के कार्यालय ले जाया गया। उनके कंधों, पैरों और हाथों पर चोट थी। एक कान से रक्त बह रहा था।

उनकी शिनाख्त होते ही बनारस से जनसंघ नेता तत्काल रवाना हो गए।

श्री उपाध्याय के पास लखनऊ से पटना का टिकट था और वे पटना जा रही सियालदह एक्सप्रेस के प्रथम श्रेणी के कूपा डिब्बे में संभवत: अकेले थे।

सामान सुरक्षित

उनका सामान मोकामा में सुरक्षित पाया गया। जो कलाई घड़ी वह पहने हुए थे, वह भी वहाँ थी।

उप मुख्यमंत्री और वनमंत्री गंगाभक्त सिंह अपराह्न में बनारस पहुँचे।

वाराणसी में पुलिस के अनुसार एक रेलवे गैंगमैन ने मुग़लसराय जी.आर.पी. को सूचना दी कि पटरी के समांतर एक शव पड़ा है।

रेलवे के डॉक्टर के साथ पुलिस घटनास्थल पर पहुँची।

उसके पश्चात् पुलिस ने शव का परीक्षण किया। उनकी दाहिनी बाँह के नीचे एक

करेंसी नोट मिला। लखनऊ से पटना का प्रथम श्रेणी का टिकट और 25 रुपए नकदी बरामद हुई।

पुलिस ने दोनों पाँवों को टखने पर टूटा पाया और सिर के पीछे सुराख पाया।

दाहिनी बाँह से भी रक्त निकल रहा था। इसके बाद शव को प्लेटफॉर्म पर ले जाया गया और लखनऊ के अधिकारियों से यात्री के नाम की जाँच करने को कहा गया। इसके बाद उनकी पहचान श्री उपाध्याय के रूप में हुई।

पुलिस के अनुसार श्री उपाध्याय एक पूर्ण बोगी में यात्रा कर रहे थे, जिसे मुग़लसराय में 52 पठानकोट सियालदह एक्सप्रेस से अलग कर 6-तूफान एक्सप्रेस से जोड़ा गया था। उनका शव रेल पटरी के बफर सेक्शन पर पाया गया।

यद्यपि मृत्यु के कारण का पता ज्ञात नहीं है, परंतु उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री ने कहा है कि श्री उपाध्याय की मृत्यु की परिस्थितियाँ 'संदेहास्पद' लगती हैं।

श्री उपाध्याय जनसंघ के तीसरे अध्यक्ष हैं, जिनकी मृत्यु त्रासद परिस्थितियों में हुई है। संस्थापक अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु कश्मीर में हिरासत में हुई थी। डॉ. रघुवीर की मृत्यु एक दुर्घटना में हुई थी।

कई वर्षों तक जनसंघ के महामंत्री रहे श्री उपाध्याय पिछले दिसंबर में कालीकट सत्र में अध्यक्ष निर्वाचित किए गए थे।

—*द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 12, 1968*

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(ii)

अंत्येष्टि के लिए शव यहाँ लाया गया

जनसंघ अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय का शव भारतीय वायुसेना के विमान से बनारस से आज रात यहाँ लाया गया।

श्री उपाध्याय को अपनी श्रद्धांजलि देने के लिए हवाई अड्डे पर हज़ार से अधिक लोग उपस्थित थे। शव को विमान से बाहर लाए जाने पर उन्होंने 'दीनदयाल उपाध्याय अमर रहें' का नारा लगाया। शव को सड़क से टर्मिनल भवन के पास शववाहन में रखे जाते समय भीड़ ने शव पर पुष्पवर्षा की और मालाएँ चढ़ाईं।

पार्थिव शरीर को कल दोपहर 12 बजे तक 30, डॉ. राजेंद्र प्रसाद रोड, नई दिल्ली में रखा जाएगा।

अंतिम यात्रा अपराह्न 1 बजे शुरू होगी और सायं 4 बजे निगमबोध घाट पर अंत्येष्टि की जाएगी।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री बलराज मधोक, उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री रामप्रकाश और पार्टी के कार्यालय सचिव श्री जगदीश चंद्र माथुर शव के साथ आए थे।

बनारस में पोस्टमार्टम के बाद शव जनसंघ नेताओं को सौंप दिया गया था। भगवा ध्वज में लिपटे शव को ढेरों फूल-मालाओं के साथ अरथी पर रखा गया, जिसे ट्रक से हवाई अड्डे ले जाया गया।

सैकड़ों जनसंघ कार्यकर्ता और बनारस के नागरिक शव के साथ हवाई अड्डे तक आए।

बताया जाता है कि श्री उपाध्याय की खोपड़ी पर चोटें आई थीं और उनकी पसलियाँ, टखने और एक बाँह टूटी हुई थी।

पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मृत्यु का कारण 'खोपड़ी और दाएँ फेफड़े पर चोट लगने से हुआ आघात और रक्तस्राव' था।

बनारस के ज़िलाधीश ने कहा कि शव पसलियों और शरीर के अन्य हिस्सों पर चोटों से भरा हुआ था। श्री उपाध्याय के पाँव भी टूटे हुए थे।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 12, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(iii)

जनसंघ सी.बी.आई. जाँच की माँग करेगा

श्री दीनदयाल उपाध्याय के शव के साथ बनारस से दिल्ली आए जनसंघ नेता बलराज मधोक ने आज रात पालम पर संवाददाताओं से कहा कि जनसंघ श्री उपाध्याय की मृत्यु की जाँच सी.बी.आई. से कराने की माँग करेगा।

श्री मधोक ने कहा कि उनको और उनकी पार्टी के लोगों को पूरा विश्वास है कि यह राजनीतिक उद्देश्य से की गई सुनियोजित हत्या है।

लोकसभा में जनसंघ के नेता श्री ए.बी. वाजपेयी ने कहा कि वह कल संसद् में श्री उपाध्याय की मृत्यु का मुद्दा उठाएँगे।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 12, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(iv)

उपाध्याय की दुःखद मृत्यु से नेताओं में शोक

मुग़लसराय के निकट जनसंघ अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु के समाचार से यहाँ लोग अत्यंत स्तब्ध और शोकाकुल हैं।

राष्ट्रपति जाकिर हुसैन ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु के बारे में सुनकर वे स्तब्ध हैं। राष्ट्रपति ने एक संदेश में कहा कि 'मैं दीनदयालजी की अचानक मृत्यु से स्तब्ध हूँ। उनके परिवार के सदस्यों के साथ मेरी गहरी संवेदनाएँ हैं।'

उप राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि ने कहा कि 'भारत की योग्य संतानों में एक श्री उपाध्याय की मृत्यु के बारे में सुनकर वे दुःखी हैं। वह पक्के राष्ट्रवादी और विशेष रूप से समर्पित कार्यकर्ता थे।'

श्री गिरि ने कहा कि 'उनकी मृत्यु से हमने निःसंदेह भारत का एक महान् पुत्र खो दिया है।'

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कहा कि वह अत्यंत स्तब्ध हैं।

एक वक्तव्य में उन्होंने कहा कि 'मैं समझती हूँ कि इस त्रासद और दुःखद घटना की जड़ तक जाने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार हरसंभव प्रयास कर रही है। केंद्र सरकार स्वयं निरंतर राज्य सरकार के संपर्क में है। श्री उपाध्याय देश के राजनीतिक जीवन में अग्रणी भूमिका निभा रहे थे। मुझे दुःख है कि ऐसी दुःखद परिस्थितियों ने उनकी असामयिक और अप्रत्याशित मृत्यु ने उनके राजनीतिक जीवन को संक्षिप्त कर दिया। मेरी गहरी संवेदनाएँ उनके परिवार के साथ हैं।'

संसद् के कांग्रेसी सदस्यों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि जनसंघ की नीतियों और सिद्धांतों के विषय में जो भी मतभेद हों, श्री उपाध्याय 'एक सर्वाधिक सम्मानित नेता थे, जिन्होंने देश की एकता और संस्कृति के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। उनकी मृत्यु से देश निर्धन हो गया है।'

उप प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि श्री उपाध्याय की बीभत्स मृत्यु के बारे में सुनकर वे स्तंभित रह गए। श्री देसाई ने कहा कि श्री उपाध्याय जिन सिद्धांतों पर भरोसा करते थे और जिसके लिए वे समर्पित थे, उनके अनुरूप देश के लिए निरंतर कार्य करते रहे। 'मुझे विश्वास है कि इस जघन्य अपराध के लिए ज़िम्मेदार लोगों की शीघ्र ही पहचान कर ली जाएगी। मेरी संवेदनाएँ मृतक के परिवार और जनसंघ के सभी सदस्यों के साथ हैं।'

केंद्रीय औद्योगिक विकास मंत्री श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद ने एक संदेश में कहा

कि 'मैं इस दुःखद समाचार को सुनकर स्तब्ध हूँ। शिक्षा, व्यापक अनुभव और संयम की प्रतिमूर्ति — उनका जीवन ख़त्म होना निस्संदेह देश के लिए एक अपूरणीय क्षति है।'

निष्काम कार्यकर्ता

गृहमंत्री चह्वाण ने कहा कि वह अत्यंत स्तब्ध और दुःखी हैं।

उन्होंने कहा कि श्री उपाध्याय एक निष्काम कार्यकर्ता थे और उनमें दृढ निश्चय का हौसला था। जनसंघ के अध्यक्ष होने के अलावा श्री उपाध्याय अपनी तरह के एक जननेता थे। उनकी अचानक और असामयिक मृत्यु न केवल उनकी पार्टी, बल्कि पूरे देश के लिए एक अपूरणीय क्षति है।

केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री के.के. शाह ने कहा कि देश को एक बड़ी क्षति हुई है, विशेषकर उस समय, जब देश एक कठिन दौर से गुज़र रहा है। उन्होंने श्री उपाध्याय को आमजनों का नेता और दूरदर्शी व्यक्ति बताया और कहा कि जनसंघ के इस स्वर्गीय नेता ने अपना पूरा जीवन देश की प्रगति में समर्पित कर दिया।

स्वतंत्र पार्टी के नेता एम.आर. मसानी ने कहा कि वे श्री उपाध्याय की मृत्यु का समाचार सुनकर स्तब्ध रह गए।

कांग्रेस अध्यक्ष एस. निजलिंगप्पा ने कहा कि 'मैं श्री उपाध्याय की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत दुःखी हूँ।'

कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री जी.एम. सादिक ने श्री उपाध्याय की 'दुःखद और असामयिक' मृत्यु पर गहरा शोक जताया। उन्होंने कहा कि लोगों की चिंताओं को दूर करने के लिए शीघ्रताशीघ्र उनकी मृत्यु के बारे में तथ्य सामने लाए जाने चाहिए।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के चेयरमैन श्री एन.जी. गोरे ने पूना में कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु के बारे में जानकर वे अत्यंत स्तब्ध हैं। श्री उपाध्याय एक साहसी योद्धा और एक अत्यंत सम्माननीय राजनीतिक कार्यकर्ता थे। मुझे आशा है कि सरकार उनकी मृत्यु का कारण पता लगाने में कोई कसर बाक़ी नहीं छोड़ेगी।

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता मधु लिमये ने कहा कि वे यह 'स्तब्धकारी समाचार' सुनकर 'अवाक्' है। उन्होंने श्री उपाध्याय की मृत्यु के कारणों का पता लगाने के लिए तत्काल जाँच बैठाने की माँग की। श्री लिमये ने कहा कि श्री उपाध्याय एक निष्काम सार्वजनिक कार्यकर्ता थे।

मध्य प्रदेश सरकार के कार्यालय कल बंद रहेंगे। यह घोषणा मुख्यमंत्री गोविंद नारायण सिंह ने बिलासपुर में की। अपने शोक संदेश में श्री सिंह ने कहा कि वह श्री उपाध्याय की मृत्यु का दुःखद समाचार जानकर स्तब्ध हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश को

ऐसे समय में एक महान् राजनीतिज्ञ खोना पड़ा, जब उसकी सेवाओं की सर्वाधिक आवश्यकता थी। यह निस्संदेह देश के लिए गहरी क्षति है। भोपाल में जनसंघ नेताओं ने शोक और दु:ख जताया।

मध्य प्रदेश के गृहमंत्री वी.के. सकलेचा ने कहा कि इस समाचार ने उन्हें अत्यंत शोकाकुल करने के साथ ही अवाक् कर दिया है। दीनदयालजी एक महान् विचारक, सम्मानित अर्थशास्त्री और अव्वल दर्जे के देशभक्त थे। उनकी मृत्यु से देश को अपूरणीय क्षति हुई है।

मध्य प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष श्री एन.के. शेवालकर ने कहा कि यह मृत्यु इतनी दु:खद है कि शब्दों में बयान नहीं की जा सकती। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह राजनीतिक उद्देश्य से की गई हत्या का मामला है।

भारतीय क्रांति दल के सचिव श्री एस. गोपाल शास्त्री ने कहा कि श्री उपाध्याय की 'दु:खद और अचानक मृत्यु' से देश ने एक महान् समर्पित संतान को खो दिया है। यह मात्र जनसंघ की नहीं बल्कि देश में सभी विपक्षी दलों की क्षति है। मैं स्वयं और अपने दल की ओर से इस मृत्यु पर शोक व्यक्त करता हूँ।

लोकतंत्र का सूरमा

श्री के.एम. मुंशी ने कहा, 'उनमें हमने एक महान् सुपुत्र, जनसंघ ने एक विशिष्ट नेता और देश ने एकता और लोकतंत्र का सूरमा खोया है।'

हरियाणा राज्य जनसंघ के सचिव श्री बी. प्रभाकर ने उन रहस्यमय परिस्थितियों, जिनके कारण उनकी दु:खद मृत्यु हुई, की उच्चस्तरीय जाँच की माँग की।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री एम.एस. गोलवलकर ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु 'शब्दों से परे एक झटका' है।

प्र.सो.पा. के महामंत्री श्री प्रेम भसीन ने गहरा शोक व्यक्त करते हुए कहा कि देश ने एक महान् देशभक्त और समर्पित आत्मा को खो दिया है।

देश के प्रति समर्पित उनकी लंबी सेवाओं को देशवासी सदैव याद रखेंगे।

जिन परिस्थितियों में श्री उपाध्याय की मृत्यु हुई, वे संदेहास्पद हैं और तीव्र इच्छा के साथ सत्य का पता लगाने के प्रयास होने चाहिए।

श्री उपाध्याय एक योग्य संगठनकर्ता थे और उनकी मृत्यु से रिक्त स्थान को भरना जनसंघ के लिए मुश्किल होगा।

स्वतंत्र पार्टी के नेता श्री सी. राजगोपालाचारी ने कहा कि मैं श्री उपाध्याय की मृत्यु से अत्यंत शोकसंतप्त हूँ। वह राजनीतिक क्षेत्र के हमारे सबसे बड़े बुद्धिजीवियों में एक थे।

पूर्व राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु के बारे में जानकर वह दु:खी हैं।

उत्तर प्रदेश विधानमंडल में कांग्रेस पार्टी के महामंत्री श्री नवल किशोर ने कहा कि श्री उपाध्याय की त्रासद मृत्यु अत्यंत स्तब्धकारी है। वह जनसंघ के एक समर्पित और दृढप्रतिज्ञ कार्यकर्ता थे और संयमी तथा विचारशील तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते थे।

उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष श्री जगदीश शरण अग्रवाल ने कहा, 'यह अत्यंत अवाक् करनेवाला समाचार है। राष्ट्र ने इस कठिन समय में एक महान् नेता खो दिया है। श्री उपाध्याय की क्षमता और कर्तव्यनिष्ठा की भरपाई करना अत्यंत कठिन होगा।'

बड़ा झटका

कल से थाणे में सम्मेलन में व्यस्त महाराष्ट्र जनसंघ कार्यसमिति को इस समाचार से गहरा झटका लगा। समिति ने स्वर्गीय नेता को श्रद्धांजलि अर्पित की और तत्काल बैठक स्थगित कर दी।

जालंधर में आज एक सर्वदलीय जनसभा में श्री उपाध्याय की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया गया। वक्ताओं ने उनकी मृत्यु की परिस्थितियों की जाँच की माँग की। उन लोगों ने उन्हें एक सच्चा देशभक्त, लोकतंत्र के प्रति दृढविश्वासी और एक अनथक पार्टी नेता बताया।

पंजाब जनसंघ ने कल पूरे राज्य में एक शोक हड़ताल का आह्वान किया है। उपाध्यक्ष लाल चंद्र सभरवाल ने कहा कि श्री उपाध्याय उस समय इस दुनिया से दूर चले गए, जब देश को उनकी सर्वाधिक आवश्यकता थी।

कम्युनिस्ट पार्टी (आर.) की राष्ट्रीय परिषद् ने पटना में बैठक में गहरा शोक व्यक्त किया। परिषद् द्वारा पारित शोक प्रस्ताव में कहा गया कि भारत के सार्वजनिक जीवन में श्री उपाध्याय एक महत्त्वपूर्ण स्थान पर थे। सी.पी.आई. कांग्रेस ने श्री उपाध्याय के सम्मान के रूप में अगले दो दिन के लिए अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों को रद्द कर दिया।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के संसदीय दल ने आज दिल्ली में बैठक में श्री उपाध्याय की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया और उन्हें 'एक देशभक्त तथा समर्पित सार्वजनिक कार्यकर्ता' बताया।

संसदीय दल ने श्री उपाध्याय की मृत्यु की परिस्थितियों का पता लगाने के लिए विस्तृत जाँच की माँग की।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री चरण सिंह ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु से सार्वजनिक जीवन निर्धन हो गया है।

मेरठ के बाजार बंद रहे। सायंकाल एक शोकसभा हुई।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 12, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(v)

जनसंघ के शक्ति-स्तंभ

नई दिल्ली, 11 फरवरी (यू.एन.आई.)।

मुग़लसराय के निकट कल रात मृत पाए गए श्री दीनदयाल उपाध्याय एक आडंबरहीन व्यक्तित्व थे। उन्हें जनसंघ का शक्ति-स्तंभ माना जाता था।

श्री उपाध्याय का जन्म 1917 में उत्तर प्रदेश के मथुरा ज़िले के गाँव में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। कानपुर और इलाहाबाद में अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूर्णकालिक प्रचारक हो गए।

1951 में जब जनसंघ का गठन हुआ तो श्री उपाध्याय ने पार्टी को अपनी सेवाएँ दीं और उत्तर प्रदेश इकाई के महामंत्री के रूप में कार्य किया। बाद में पार्टी के संस्थापक अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने श्री उपाध्याय को पार्टी का अखिल भारतीय महामंत्री बनाया।

अमरीका की यात्रा

श्री उपाध्याय 1953 में 'भारत के साथ कश्मीर के एकीकरण' अभियान के पीछे मुख्य शक्तिस्रोत थे।

फ्रेंड्स ऑफ़ इंडिया कमेटी के आमंत्रण पर उन्होंने व्याख्यान दौरे पर अमरीका की यात्रा की। उन्होंने ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी और पूर्वी अफ्रीका का भी दौरा किया।

श्री उपाध्याय हिंदी और अंग्रेज़ी में विभिन्न पुस्तकों के लेखक भी थे। वे पाँच वर्षों तक लखनऊ के राष्ट्रधर्म प्रकाशन के निर्देशक बोर्ड में भी रहे।

पिछले वर्ष के अंत में वे पार्टी के निर्विरोध अध्यक्ष निर्वाचित हुए और दिसंबर के आख़िर में कालीकट सत्र में उन्होंने कार्यभार सँभाला था।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, 12 फरवरी, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(vi)

राष्ट्रपति ने संबोधन निरस्त किया

नई दिल्ली, 11 फरवरी (यू.एन.आई.)।

मुख्य कार्यकारी सभासद श्री विजय कुमार मल्होत्रा ने आज यहाँ घोषणा की कि जनसंघ के अध्यक्ष दीनदयाल उपाध्याय की दुःखद और असामयिक मृत्यु के कारण राष्ट्रपति ने परिषद् के सदस्यों को कल दिया जानेवाला संबोधन निरस्त कर दिया है।

एक शोक संदेश में श्री मल्होत्रा ने कहा कि 'हमने एक अतुलनीय देशभक्त, उत्साही कार्यकर्ता और एक महान् नेता खो दिया है और देश को अपूरणीय क्षति हुई है।'

—द हिंदुस्तान टाइम्स, 12 फरवरी, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(vii)

कई क़सबों में हड़ताल

लखनऊ, 12 फरवरी।

जनसंघ के अध्यक्ष स्वर्गीय श्री दीनदयाल उपाध्याय की स्मृति एवं सम्मान में आज उत्तर प्रदेश में सभी सरकारी कार्यालय बंद रहे।

लखनऊ में बाज़ार बंद रहे। बरेली, बलिया, मथुरा, आगरा, फिरोजाबाद, सहारनपुर, बहराइच, दोगड्डा, कोटद्वार, नजीबाबाद और लैंसडाउन से भी इसी तरह के समाचार मिले हैं।

लखनऊ विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और विद्यार्थियों की बैठक में श्री उपाध्याय की मृत्यु पर एक शोक प्रस्ताव पारित किया गया।

भोपाल : प्रदेश में सभी सरकारी कार्यालय और शैक्षणिक संस्थान आज बंद रहे।

भोपाल शहर में हड़ताल रही और जनसंघ के कार्यकर्ताओं तथा नागरिकों ने शहर की सड़कों पर जुलूस निकाला। जुलूस के अंत में एक सभा हुई, जिसमें श्री उपाध्याय को श्रद्धांजलि दी गई।

शिमला : शिमला और इसके निकटवर्ती क्षेत्रों में आज हड़ताल रही।

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, हिंद मजदूर पंचायत और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, हिमाचल ने श्री उपाध्याय की मृत्यु पर शोक जताते हुए प्रस्ताव पारित किए।

पटियाला : पंजाब प्रदेश जनसंघ के आह्वान पर व्यावसायिक समुदाय पूर्ण हड़ताल

पर रहा।

यहाँ मिले समाचारों के अनुसार ज़िले के अन्य क़सबों में भी व्यापारी समुदाय ने हड़ताल की।

पी.टी.आई. के अनुसार

अंबाला : पंजाब और हरियाणा के लगभग सभी क़सबों में सभी व्यावसायिक प्रतिष्ठानों और बाज़ारों ने आज अपने व्यवसाय स्थगित रखे। अंबाला शहर और छावनी में व्यवसायियों ने पूर्ण हड़ताल रखी।

शाम को आयोजित होने के लिए प्रस्तावित शोक जुलूस और सार्वजनिक रैलियों के बारे में लोगों को सूचित करने के लिए काले झंडे लिए और बाँहों पर काली पट्टी बाँधे संघ कार्यकर्ताओं के जत्थे मुख्य बाज़ारों में घूमे।

जालंधर : यहाँ आंशिक हड़ताल रही।

होशियारपुर में प्रमुख बाज़ार बंद रहे।

जम्मू : जम्मू में आज व्यावसायिक प्रतिष्ठान, शॉपिंग सेंटर, होटल और सिनेमाघर बंद रहे।

— द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 12, 1968
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(viii)

राज्यसभा में श्रद्धांजलि

नयी दिल्ली, 12 फरवरी।

राज्यसभा के सभापति वी.वी. गिरि ने आज जनसंघ अध्यक्ष दीनदयाल उपाध्याय, पूर्व सिंचाई मंत्री हाफ़िज मोहम्मद इब्राहिम और श्री एम.एस. अणे का भावपूर्ण उल्लेख किया।

बाद में राज्यसभा के सदस्यों ने इन नेताओं को श्रद्धांजलि स्वरूप खड़े होकर एक मिनट का मौन रखा।

श्री गिरि ने कहा कि श्री उपाध्याय निस्संदेह ईमानदार व्यक्ति थे और देश के लिए पूरे हृदय से समर्पित थे, उनके निधन से जनसंघ को एक बड़ा झटका लगा है। उन्होंने कहा कि जिन परिस्थितियों में श्री उपाध्याय की मृत्यु हुई, उसने उनके निधन को और दुःखद बना दिया।

श्री गिरि ने स्वतंत्रता आंदोलन और ख़िलाफ़त आंदोलन में हाफिज इब्राहिम की भूमिका, जिसके लिए वे कई बार कारावास भी गए, की सराहना करते हुए कहा कि

राज्यसभा के यह पूर्व नेता एक सच्चे राष्ट्रवादी, अच्छे सांसद और एक ऐसे व्यक्ति थे, जिसने हिंदू-मुसलिम एकता के लिए काम किया। श्री गिरि ने कहा कि श्री अणे भारत के एक महान् बुजुर्ग, खाँटी राष्ट्रवादी और एक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी थे।

सभापति ने कहा कि श्री उपाध्याय के लिए उल्लेख का आग्रह श्री विमल कुमार चोरडिया (जनसंघ) और श्री राजनारायण (सं.सो.पा.) की ओर से आया और यह सहमति बनी कि वे सदन की ओर से उल्लेख करेंगे।

बाद में सचिव ने आज सुबह संसद् के संयुक्त सत्र में राष्ट्रपति के संबोधन की एक प्रति सदन के पटल पर रखी, जबकि उप गृहमंत्री के.एस. रामास्वामी ने 26 अक्तूबर, 1962 को जारी आपातकाल की घोषणा को रद्द करने 10 जनवरी की राष्ट्रपति की घोषणा की प्रति सदन के पटल पर रखी।

महे (बेदख़ली की कार्रवाई पर स्थगन) नियमन दिल्ली म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन (संशोधन) अध्यादेश और संशोधन (अध्यादेश) की प्रतियों के साथ ही साथ राज्यसभा के पिछले सत्र में पारित विधेयकों को प्रदर्शित करनेवाले वक्तव्य और राष्ट्रपति द्वारा दी गई मंजूरियों की प्रतियाँ भी सदन के पटल पर रखी गईं।

श्रीमती वायलेट अल्वा ने केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा विधेयक पर संयुक्त समिति की रिपोर्ट राज्यसभा में प्रस्तुत की। इसमें कुछ औद्योगिक प्रतिष्ठानों की बेहतर संरक्षण और सुरक्षा के लिए केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल की स्थापना और नियमन के लिए प्रावधान उपलब्ध कराए गए हैं।

—द *हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 12, 1968*
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(ix)

खोए बिस्तर से उपाध्याय की मृत्यु का रहस्य गहराया

लखनऊ, 12 फरवरी।

जनसंघ के स्वर्गीय नेता श्री दीनदयाल उपाध्याय का बिस्तर ग़ायब है।

एक यात्री रविवार को जब प्रथम श्रेणी के उस कूपे में घुसा, जिसमें बैठकर श्री उपाध्याय पटना जा रहे थे, तो साफ़ करने पर उसे एक अटैची मिली, जिसे उसने रेल अधिकारियों के सुपुर्द कर दिया। कूपे में कोई बिस्तर नहीं था।

कोई नहीं जानता कि शनिवार शाम को जब श्री उपाध्याय लखनऊ से रवाना हुए तो उन्होंने बिस्तर लिया था या नहीं। परंतु यह मानने का कारण है कि वे इस सर्दी में बिस्तर के साथ यात्रा कर रहे थे।

यदि यह हत्या का मामला है तो बिस्तर सर्वाधिक विश्वसनीय सुराग उपलब्ध कराएगा। उस पर ख़ून के छींटें होंगे और संघर्ष के प्रमाण होंगे। इसलिए बिस्तर का ग़ायब होना महत्त्वपूर्ण है।

एक संभावना यह भी हो सकती है कि किसी को बिस्तर मिला हो, जिस पर किसी ने दावा नहीं किया।

श्री उपाध्याय की मृत्यु से जुड़े रहस्य में अब तक बिस्तर का ग़ायब होना और शव मिलने के समय उनकी मुट्ठी में पकड़ा पाँच रुपए का नोट, यह दो सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं। श्री उपाध्याय बनारस तक जीवित थे। कंडक्टर-गार्ड से उनकी बात हुई थी, वही स्वर्गीय नेता द्वारा बोले गए अब तक ज्ञात अंतिम शब्द थे।

दो यात्रियों श्री एम.पी. सिंह और मेजर आर.के. शर्मा को बनारस में उतरना था। कंडक्टर-गार्ड ने श्री सिंह को जगाया, परंतु मेजर शर्मा वहाँ नहीं थे। श्री उपाध्याय ने उन्हें बताया कि मेजर शर्मा पहले ही पड़े स्टेशन शाहगंज में उतर गए थे।

मृत्यु की जाँच करने के लिए रेलवे के सहायक पुलिस महानिदेशक और बनारस के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, जो पहले से ही वहाँ थे, के अलावा तीन सी.आई.डी. अधिकारियों को टीम के साथ बनारस भेजा गया है।

श्री उपाध्याय जिस बोगी में यात्रा कर रहे थे, उसे सियालदह में सील कर दिया गया और आगे जाँच के लिए बनारस लाया गया है।

राज्य सरकार के आदेशानुसार स्वर्गीय नेता के सम्मान में पूरे राज्य में सभी सरकारी कार्यालय दिनभर बंद रहे।

पी.टी.आई. के अनुसार : केंद्र सरकार ने जनसंघ अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु की जाँच में सहयोग के लिए दो फोरेंसिक विशेषज्ञों को मुग़लसराय भेजा है।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 13, 1968
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(X)

सांसदों का उपाध्याय की मौत की केंद्रीय जाँच का आग्रह

नई दिल्ली, फरवरी 12 (यू.एन.आई.)।

लोकसभा के विपक्षी सदस्यों ने आज जनसंघ के अध्यक्ष दीनदयाल उपाध्याय की मौत की परिस्थितियों की केंद्र सरकार से जाँच कराने की माँग की। माँग उस समय

उठाई गई, जब संसद् के चार अन्य पूर्व और वर्तमान सदस्यों एवं श्री उपाध्याय की मौत पर शोक व्यक्त किया जा रहा था।

बिना किसी कामकाज के सदन को स्थगित करने से पूर्व मृतकों के सम्मान में दो मिनट का मौन रखा गया।

लोकसभा अध्यक्ष संजीव रेड्डी और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा व्यक्त भावनाओं के साथ खुद को जोड़ते हुए स्वतंत्र पार्टी के सांसद दल के नेता एन.जी. रंगा और जनसंघ के सांसद दल के नेता ए.बी. वाजपेयी ने जाँच के लिए कहा।

अन्य जिन लोगों को श्रद्धांजलि दी गई, उनमें वर्तमान सदन के सदस्य श्री चरणजीत सिंह और श्री रूपनाथ ब्रह्मा शामिल थे।

श्री वाजपेयी भावुकता के साथ बोले, उन्होंने कहा कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य यह मानने को विवश करते हैं कि श्री उपाध्याय की मौत एक साधारण रेल दुर्घटना के कारण नहीं हुई। जाँच मौत के सभी पहलुओं की होनी चाहिए, इसमें यह भी शामिल किया जाना चाहिए कि क्या मुग़लसराय रेलवे स्टेशन के कर्मचारियों ने अपने कर्तव्यों का ठीक से पालन किया और कैसे जनसंघ के स्वर्गीय अध्यक्ष अपनी मुट्ठी में पाँच रुपए का एक नोट पकड़े हुए पाए गए।

श्री वाजपेयी ने श्री रंगा के साथ सहमति व्यक्त की, जिन्होंने इससे पहले कहा था कि यह जाँच इसलिए आवश्यक है, ताकि नागरिकों और राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं, अकेले आवागमन करनेवाले प्रतिष्ठित राजनीतिक नेताओं का जीवन सुरक्षित हो।

लोकसभा अध्यक्ष ने श्री उपाध्याय की 'दुःखद और असामयिक' मौत का उल्लेख किया और कहा कि श्री उपाध्याय निष्काम और समर्पित कार्यकर्ता थे। उनकी मृत्यु से देश और निर्धन हो जाएगा।

लोकसभा अध्यक्ष ने कहा कि श्री चरणजीत राय और श्री रूपनाथ ब्रह्मा संसद् की कार्रवाई में सक्रिय रूप से भाग लेते थे।

उन्होंने कहा, श्री अणे अपनी 'आयु' और कमजोर स्वास्थ्य के बावजूद पिछली लोकसभा में बहुत ही नियमित रूप से मौजूदगी दर्ज कराते थे और 'युवाओं जैसे उत्साह' के साथ कार्रवाई में भाग लेते थे।

लोकसभा अध्यक्ष ने कहा कि हाफिज मोहम्मद इब्राहिम जटिल समस्याओं से निपटने में संयत, सहनशील और धैर्यवान व्यक्ति थे।

सदन के नेता के रूप में मृतकों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि श्री चरणजीत राय ने खेल और उद्योग जगत् में अपनी छाप छोड़ने के बाद संसद् में अपना कैरियर शुरू किया था। श्री ब्रह्मा ने आसाम, विशेष रूप से इसके जनजातीय

लोगों के लिए अपनी महती सेवाएँ प्रदान की थीं। उन्होंने कहा कि श्री अणे लोकमान्य तिलक के समय से ही जबरदस्त जोश वाले और अग्रिम पंक्ति के राष्ट्रीय नेता रहे थे।

प्रधानमंत्री ने एक पुराने सहयोगी के रूप में श्री इब्राहिम का उल्लेख करते हुए कहा कि वह ख़िलाफ़त आंदोलन के समय से देश की समर्पित सेवा कर रहे थे।

दृढ़ आदर्श

श्रीमती गांधी ने कहा कि श्री उपाध्याय, जिनका 'अचानक और दुःखद परिस्थितियों, में निधन हो गया था, ने सार्वजनिक जीवन में एक प्रमुख स्थान बना लिया था। वह दृढ आदर्शों वाले व्यक्ति थे, जिसके लिए उन्होंने अपनी पूरी ऊर्जा लगा दी। उनकी मृत्यु दुःखी करती रहेगी।

श्री एच.एन. मुखर्जी (सी.पी.आर.) ने कहा कि राष्ट्र श्री उपाध्याय की मौत की परिस्थितियों पर गंभीर रूप से चिंतित है। श्री मुखर्जी ने उनकी 'सादगी और पूर्णसमर्पण' के लिए उनकी प्रशंसा की। उन्होंने गहन जाँच की माँग भी की।

श्री एस.एम. जोशी (एस.एस.पी.) ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु न केवल दर्दनाक थी बल्कि ख़तरनाक ख़बर थी। उन्होंने उच्च स्तरीय जाँच की माँग की।

श्री पी. राममूर्ति (सी.पी.एल.) ने भी श्री उपाध्याय की मृत्यु की गहन जाँच का आग्रह किया।

श्री नाथ पई (प्र.सो.पा.) ने कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु न केवल जनसंघ के लिए बल्कि पूरे देश के लिए एक क्षति है। वह भारत के एक महान् सपूत थे, जिन्होंने अपने तरीक़े से भारतीय राष्ट्रवाद की क्रांति को आगे बढ़ाने की कोशिश की थी।

श्री पई ने केंद्र सरकार द्वारा जाँच कराए जाने की माँग का समर्थन किया।

श्री प्रकाश वीर शास्त्री (निर्दलीय) ने कहा कि श्री उपाध्याय 'बदली हुई परिस्थितियों' में जनसंघ को एक नया आकार देना चाहते थे।

सरकार के एकात्मक स्वरूप के लिए उनके सुझाव का अर्थ देश की एकता को मजबूत करने से था। श्री शास्त्री ने भी उनकी मृत्यु की जाँच केंद्र द्वारा कराए जाने की माँग का समर्थन किया।

श्री जे.बी. कृपलानी (स्वतंत्र) ने डॉ. अणे को महान् व्यवहार और उदारता वाला व्यक्ति बताया।

उन्होंने कहा कि श्री उपाध्याय की मौत की परिस्थितियाँ दुःखद थीं। इसकी न केवल यूपी सरकार बल्कि केंद्र सरकार द्वारा भी जाँच की जानी चाहिए। श्री उपाध्याय अपने स्वभाव से सरल और अपने दृष्टिकोण में निश्छल थे।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 13, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xi)

अंत्येष्टि में हज़ारों लोग सम्मिलित हुए

हिंदुस्तान टाइम्स संवाददाता

नई दिल्ली, 12 फरवरी। निगमबोध घाट पर आज शाम 7:15 बजे जब जनसंघ के नेता दीनदयाल उपाध्याय का अंतिम संस्कार किया गया तो हज़ारों लोग रो पड़े। श्री प्रभु दयाल ने उनकी चिता को अग्नि दी।

इस मौक़े पर सांसद अटल बिहारी वाजपेयी, मेयर हरबंश गुप्ता, मुख्य कार्यकारी पार्षद विजय कुमार मल्होत्रा, बख्शी ग़ुलाम मोहम्मद, आचार्य जे.बी. कृपलानी, संसद् के कई सदस्य और राज्यमंत्री उपस्थित थे।

भारतीय वायुसेना के विमान से यहाँ लाए गए शव को राजेंद्र प्रसाद रोड स्थित श्री वाजपेयी के घर से निगमबोध घाट तक एक ट्रैक्टर से लाया गया। अंतिम यात्रा के दौरान सड़क के दोनों ओर भारी संख्या में भीड़ थी।

चाँदनी चौक में न सिर्फ़ सड़कों पर बल्कि छतों तक पर लोगों की भीड़ थी। कई लोग पेड़ों की डालों पर बैठे थे। भीड़ इतनी अधिक थी कि आधा मील की अंतिम यात्रा पूरी करने में 45 मिनट लग गए।

अंतिम यात्रा में सबसे आगे मोटरसाइकिल सवार थे और उनके पीछे जनसंघ के कार्यकर्ता 'भारत माता की जय' और 'दीनदयाल अमर रहें' के नारे लगाते जा रहे थे। कई स्थानों पर अरथी रखे वाहन पर फूल बरसाए गए और पार्थिव शरीर पर माल्यार्पण किया गया।

वाहन के आगे पड़ोसी राज्यों के मंत्रियों, कार्यकारी पार्षदों, संसद् सदस्यों, महानगर परिषद् और दिल्ली निगम के सदस्यों समेत जनसंघ के नेता चल रहे थे। कई लोग स्वर्गवासी नेता के सम्मान में नंगे पाँव चल रहे थे।

शोकाकुलों की क़तार

अपराह्न 1:30 बजे शुरू हुई अंतिम यात्रा को निगम बोध घाट पहुँचने में लगभग पाँच घंटे लगे। अंत्येष्टि स्थल पर शव को निगम द्वारा निर्मित 6.5 फुट ऊँचे प्लेटफॉर्म पर रखा गया।

इससे पूर्व राष्ट्रपति जाकिर हुसैन, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, उप राष्ट्रपति वी.वी. गिरि और उप प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई श्री वाजपेयी के आवास पर शोक व्यक्त करने पहुँचे। उन्होंने पार्थिव शरीर पर माल्यार्पण किया।

आवास के बाहर सुबह से ही समाज के हर वर्ग के लोगों की क़तार लगी हुई थी। वे नेता का अंतिम दर्शन करने आए थे।

रामलीला मैदान में कल एक शोकसभा आयोजित की जाएगी। केंद्रीय गृहमंत्री वाई.बी. चह्वाण वक्ताओं में शुमार होंगे।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 13, 1968
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xii)

नेताओं ने उपाध्याय को श्रद्धांजलि दी

नई दिल्ली, 12 फरवरी (पी.टी.आई., यू.एन.आई.) :

देशभर के लाखों शोकाकुल लोगों ने आज जनसंघ के अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय को श्रद्धांजलि दी, जिनका शव कल मुग़लसराय में रेलवे पटरी के निकट पाया गया था।

विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं और गणमान्य नागरिकों ने स्वर्गीय नेता को भावभीनी श्रद्धांजलि दी।

सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने श्री उपाध्याय के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए कहा कि उनकी मृत्यु से देश ने एक योग्य नेता और जनसंघ ने अपना शीर्ष नेता खो दिया है।

नेशनल कॉन्फ्रेंस के नेता बख्शी ग़ुलाम मोहम्मद ने नई दिल्ली में एक संदेश में कहा कि श्री उपाध्याय की अचानक और असामयिक मृत्यु एक बड़ा झटका है। देश ने एक महान् देशभक्त खो दिया।

जमीयत उलेमा-ए-हिंद के महासचिव हजरत मौलाना असद मदनी ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी को भेजे गए शोक संदेश में श्री उपाध्याय के अचानक निधन पर दुःख जताया।

राजस्थान के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया ने श्री उपाध्याय को शीर्ष नेताओं में एक बताया और कहा कि उनकी मृत्यु से उत्पन्न शून्य को भरना मुश्किल होगा।

तमिलनाडु जनसंघ के राज्य संगठन मंत्री श्री के. कृष्णमूर्ति ने मदुरै में कहा कि जिन परिस्थितियों में रेलवे स्टेशन के मार्ग में कई चोटों के साथ उनका शव पाया गया, वह उनकी मृत्यु के कारणों का पता लगाने के लिए गहन जाँच को आवश्यक बनाता है और सरकार को उनकी मृत्यु की परिस्थितियों की जाँच के राष्ट्र के प्रति कर्तव्य को निभाना चाहिए।

दुकानें बंद

'उनकी मृत्यु से अनाथ हुए जनसंघ के लिए राजनीतिक क्षेत्र में हुई क्षति से ज्यादा बड़ी क्षति यह है कि उसने एक स्थिर व्यक्तित्व खो दिया।'

'देश ने आज एक सच्चे स्वयंसेवक के निधन पर शोक जताया है। आइए हम उस बिछुड़ी हुई आत्मा के लिए प्रार्थना करें और भारतमाता की सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित करने का संकल्प करें, जिसके लिए उन्होंने अपना जीवन दे दिया।'

पटना में बिहार प्रदेश जनसंघ की कार्यसमिति ने श्री उपाध्याय के निधन पर गहरा दुःख जताते हुए एक प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव में श्री उपाध्याय को एक महान् विद्वान, विचारक, लोकतंत्र का रक्षक और राष्ट्रीय आम सहमति का प्रतिपादक बताया गया।

अमृतसर में गोलबाग मैदान में हुई एक श्रद्धांजलि सभा में श्री उपाध्याय की मृत्यु की परिस्थितियों की न्यायिक जाँच की माँग की गई।

सभा में श्री उपाध्याय को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करनेवाले में अन्य लोगों के अलावा पंजाब विधानसभा में विपक्ष के नेता श्री गुरनाम सिंह और जनसंघ की पंजाब प्रदेश इकाई के अध्यक्ष डॉ. बलदेव प्रकाश भी शामिल थे।

केरल जनसंघ के उपाध्यक्ष श्री आई.जी. मेनॉकी ने कालीकट में कहा कि श्री उपाध्याय की मृत्यु देश और पार्टी के लिए अपूरणीय क्षति है।

एक वक्तव्य में श्री मेनॉकी ने कहा कि जनसंघ के अध्यक्ष की गद्दी पर आसीन होने के तत्काल बाद श्री उपाध्याय की मृत्यु ने 'लोगों के मस्तिष्क में गहरा निशान' छोड़ा है।

मृत्यु का समाचार जैसे ही यहाँ पहुँचा, पार्टी की राज्य इकाई के कार्यालय पर काला ध्वज फहरा दिया गया। जनसंघ कार्यकर्ताओं ने भी काले बैज पहने थे।

नागपुर में एक जनसभा में विभिन्न राजनीतिक दलों के वक्ताओं ने उनकी मृत्यु की परिस्थितियों की जाँच की माँग की।

वक्ताओं में अभिनेता साहू मोदक भी शामिल थे, जो यहाँ विवेकानंद रॉक मेमोरियल कमेटी के समारोह की अध्यक्षता करने आए थे, जिसे श्री उपाध्याय के सम्मान में रद्द कर दिया गया।

नई दिल्ली में एक संदेश में सांसद श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने कहा कि जनसंघ को मज़बूत बनाने में श्री दीनदयाल उपाध्याय ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वे देश के बदलते वातावरण में जनसंघ को एक नया मोड़ देना चाहते थे। उन्होंने आगाह किया कि जब तक उनकी मृत्यु के कारणों की गहन पड़ताल नहीं की जाती, देश में संकटपूर्ण स्थिति और बदतर हो जाएगी।

एक शोकसभा में जम्मू एवं कश्मीर जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने श्री उपाध्याय को श्रद्धांजलि दी।

अहमदाबाद : अहमदाबाद में गुजरात विधानसभा की बैठक में स्वर्गीय श्री उपाध्याय को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। सदन में दो मिनट का मौन रखा गया।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 13, 1968
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xiii)

महानगर परिषद् ने दी श्रद्धांजलि

नई दिल्ली, 12 फरवरी।

जनसंघ अध्यक्ष श्री दीनदयाल उपाध्याय के सम्मान में महानगर परिषद् और दिल्ली नगर निगम को आज बिना किसी कार्रवाई के स्थगित कर दिया गया। दोनों सदनों ने शोक प्रस्ताव पारित किए।

नई दिल्ली, चाँदनी चौक और अन्य शॉपिंग सेंटरों में कुछ दुकानें बंद रहीं।

भारतीय क्रांति दल ने एक प्रस्ताव में उन्हें 'एक देशभक्त और निष्काम कार्यकर्ता' बताया।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की दिल्ली शाखा, दिल्ली हिंदुस्तान मर्केंटाइल एसोसिएशन, स्कूटर स्पेयर पार्टस डीलर्स एसोसिएशन और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् ने श्रद्धांजलि अर्पित की।

—द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 13, 1968
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

परिशिष्ट-V

ऑर्गनाइज़र में दीनदयालजी की मृत्यु के समाचार

(i)

शहीद योद्धा को वे घर लाए

(शोभायात्रा से शवयात्रा तक)

'पिछले माह कालीकट में, हममें से अधिकतर लोग पंडित दीनदयालजी की विशाल शोभायात्रा (अध्यक्षीय जुलूस) के प्रसन्न सहभागी थे। किसने कल्पना की थी कि इस आयोजन के कुछ ही सप्ताह के भीतर हमें पंडितजी की शवयात्रा में दुःख में डूबे शोकाकुल बनने का दुर्भाग्य सहना पड़ेगा?'

18 फरवरी को दिल्ली में होना था उनका स्वागत

मंगलवार को रामलीला मैदान में सर्वदलीय शोकसभा में श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा बोले गए इन शब्दों ने राजधानी में उन हज़ारों जनसंघ कार्यकर्ताओं की पीड़ा और सदमे को अभिव्यक्त किया, जो इन दिनों अपने प्रिय नेता का यथोचित स्वागत करने की तैयारी में व्यस्त थे। भारतीय जनसंघ का अध्यक्ष निर्वाचित होने के बाद राजधानी में पंडितजी का पहला औपचारिक स्वागत समारोह रविवार, 18 फरवरी को कोटला स्टेडियम मैदान में होना निर्धारित किया गया था। परंतु नियति ने अत्यंत क्रूर ढंग से इसमें हस्तक्षेप किया, अध्यक्ष निर्वाचित होने के बाद दिल्ली में पंडितजी का पहला औपचारिक समारोह उनकी शवयात्रा के रूप में उनका अंतिम समारोह बन गया। 18 फरवरी को पंडितजी की अस्थियाँ प्रयाग में पवित्र संगम में विसर्जित की जाएँगी।

रविवार 11 फरवरी को सुबह 10 बजे के कुछ ही देर बाद का समय था कि मुग़लसराय त्रासदी का समाचार पहले दिल्ली पहुँचा। जनसंघ की संसदीय दल कार्यकारिणी बजट सत्र की योजना तैयार करने के लिए 1, फिरोजशाह रोड पर संसदीय दल कार्यालय

में एकत्र हुई थी। बैठक बमुश्किल अभी शुरू ही हुई थी कि लखनऊ से एक रहस्यमय और उलझन भरा फ़ोन कॉल आया कि ट्रेन से पटना जाते समय पंडित दीनदयालजी के साथ कुछ हो गया है, कि 'उनका शव मुग़लसराय प्लेटफॉर्म पर रखा जा रहा है' और 'उस स्थान पर भीड़ एकत्र हो रही है।'

कार्यकारिणी की बैठक तत्काल स्थगित कर दी गई और श्री वाजपेयी और श्री मधोक तथ्यों की पुष्टि करने रेल राज्यमंत्री श्री परिमल घोष के आवास पर पहुँचे। रेलमंत्री पुनाचा शहर से बाहर थे। घोष ने मुग़लसराय फ़ोन किया और समाचार की पुष्टि की। तब जाकर ये जनसंघ नेता अत्यंत सदमे और निराशा में चले गए कि उलझन भरी फ़ोन कॉल के बारे में उनकी आशंकाएँ सच थीं और कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का निधन हो गया! शीघ्रता से उन्होंने आपस में और लखनऊ में भारतीय जनसंघ नेताओं के साथ विचार-विमर्श किया और यह निर्णय किया कि श्री उपाध्याय का शव दिल्ली लाया जाए और अंत्येष्टि अगले दिन राजधानी में आयोजित की जाएगी।

अब तक साढ़े ग्यारह बज चुके थे और वाराणसी के लिए नियमित वायुसेवा जा चुकी थी। तत्काल गृहमंत्री चह्वाण और पर्यटन मंत्री श्री कर्ण सिंह से संपर्क किया गया और उन्हें इस भीषण त्रासदी के बारे में बताया गया। उन्हें तब तक कोई जानकारी नहीं थी। इन मंत्रियों ने जनसंघ नेताओं के लिए वायुसेना का विशेष विमान प्राप्त करने में सहायता की। अपराह्न 2:10 बजे श्री वाजपेयी, श्री मधोक और श्री जगदीश प्रसाद माथुर एक इल्युशिन ट्रूप विमान से वाराणसी के लिए रवाना हुए। विमान के कॉक-पिट में कैप्टन अहलुवालिया थे।

इस बीच यह समाचार जंगल की आग की तरह फैल गया। आकाशवाणी ने पंडितजी का शव मिलने (तड़के 3:25 बजे) के दस घंटे बाद और उनकी शिनाख्त होने के लगभग पाँच घंटे बाद दोपहर डेढ़ बजे के बुलेटिन में पहली बार इस समाचार को प्रसारित किया। परंतु इस रेडियो बुलेटिन के जारी होने से पहले ही व्याकुल लोग यह जानने के लिए कि उनके प्रिय नेता के साथ क्या और कैसे हुआ 1, फिरोजशाह रोड और 30, डॉ. राजेंद्र प्रसाद रोड और अजमेरी गेट जनसंघ कार्यालय पर एकत्र हो गए। स्थिति का कड़वा सच उनके सामने स्पष्ट हुआ और उन्हें भान हो गया कि अपुष्ट सूचना अब पुष्ट हो गई है। चिंता से व्याकुल भीड़ सदमे से हतप्रभ होकर शांत हो गई और चारों तरफ़ रुदन की आवाज़ से यह शांति टूटने लगी।

सोमवार को शोकसभा में प्र.सो.पा. नेता श्री नाथ पई ने कहा कि पंडितजी की मृत्यु पर केवल जनसंघ के कार्यकर्ता और प्रसंशक ही नहीं रोए, बल्कि 'मुझे लगता है कि दीनदयालजी को या उनके बारे में जाननेवाला शायद ही कोई ऐसा होगा, जो इस महान् नेता के निधन पर अपने आँसू रोक सका होगा।'

रोता जनसमूह

श्री उपाध्याय के पार्थिव शरीर को लेने गए वायुसेना विमान को वाराणसी में अपराह्न 4:00 बजे उतरना था और फिर दो घंटे की उड़ान के लिए शाम 6:00 बजे दिल्ली के लिए रवाना होना था। जैसे ही रेडियो पर घोषणा हुई कि पंडितजी का पार्थिव शरीर रात लगभग 8:00 बजे दिल्ली पहुँचेगा, दिल्लीवासी पालम हवाई अड्डे की ओर जाने लगे। रात आठ बजे तक विमान को जहाँ उतरना था, उस स्थान के बाहर पूरा क्षेत्र लोगों से भर गया। परंतु शोकाकुल वाराणसी से तब तक पार्थिव शरीर को रवाना नहीं किया जा सका, जब तक कि दसियों हज़ार लोगों ने अपनी अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित नहीं कर ली। वाराणसी नियंत्रण कक्ष ने पालम को सूचित किया कि यहाँ हवाई अड्डे पर भारी भीड़ जमा है, इसलिए विमान रवाना होने में समर्थ नहीं हो पाया। तब रात के लगभग 11:30 बजे थे, अंततः विमान दिल्ली आया। कड़ाके की सर्दी में घंटों से प्रतीक्षारत लोगों ने नारे लगाए 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय अमर रहें।' पार्थिव शरीर को लेने के लिए हवाई अड्डे पर जनसंघ नेताओं के अतिरिक्त कांग्रेस संसदीय दल के सचिव श्री चंद्रशेखर और श्री वेंकटसुबैया समेत विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि उपस्थित थे।

पंडितजी का पार्थिव शरीर डी.एम.सी. के वाहन से, राजेंद्र प्रसाद रोड स्थित उस स्थान पर ले जाया गया, जहाँ उपाध्यायजी कभी भी दिल्ली आने पर रहा करते थे। रात के एक बजे थे, जबकि शव वाहन की अगुवाई में बड़ी संख्या में वाहनों का क़ाफ़िला इस स्थान पर पहुँचा। और यहाँ भी हज़ारों शोकाकुल लोग थे, जो अपने मृत नेता के दर्शन के लिए प्रतीक्षारत थे। लोगों ने पंडितजी का अंतिम दर्शन करना शुरू किया, यह लगभग सारी रात चलता रहा और अगली सुबह यह प्रक्रिया जारी रहते हुए दोपहर 1 बजे तक तब तक चलता रहा जब तक कि अंतिम यात्रा शुरू नहीं हो गई।

सोमवार को सुबह 30, राजेंद्र प्रसाद मार्ग पर पंडितजी को श्रद्धासुमन अर्पित करने आए लोगों में राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन, उप राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि, प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी, उप प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई देसाई, लोकसभा अध्यक्ष श्री संजीव रेड्डी, आचार्य और श्रीमती कृपलानी, श्री और श्रीमती जयप्रकाश नारायण, श्री फखरुद्दीन अली अहमद, श्रीमती वायलेट अल्वा, श्री सत्यनारायण सिंह, प्रो. हुमायूँ कबीर, बख्शी ग़ुलाम मोहम्मद, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चरण सिंह, डी.एम.के. और कम्युनिस्ट समेत विभिन्न दलों के नेता एवं बड़ी संख्या में सांसद और राजनेता सम्मिलित थे।

सभी दलों ने अपने झंडे आधे झुका दिए।

अँधेरा छा गया

पंडित दीनदयालजी की अंतिम यात्रा गंभीर शोकमग्न और गतिशील नज़ारा थी। इस दुःखद घटना पर पूरी दिल्ली उमड़ पड़ी थी। सभी बाज़ारों में स्वतःस्फूर्त हड़ताल थी। दसियों हज़ार लोग अंतिम यात्रा में सम्मिलित हुए और आठ मील लंबे पूरे रास्ते भर लाखों पुरुष और महिलाएँ स्वर्गीय नेता को अपनी अंतिम विदाई देने के लिए क़तारों में खड़े थे। पार्थिव शरीर को फूलों से सजाई गई अरथी पर एक ट्रैक्टर के जरिए ले जाया जा रहा था। पार्थिव शरीर के साथ मेयर लाला हंसराज गुप्ता, आर.एस.एस. के सरकार्यवाह श्री बालासाहेब देवरस, श्री पीतांबर दास, श्री ए.बी. वाजपेयी, श्री बलराज मधोक और अन्य बैठे हुए थे। अंतिम यात्रा में अन्य शोकाकुल लोगों के अलावा आचार्य जे.बी. कृपलानी, बख्शी ग़ुलाम मोहम्मद, मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री वी.के. मल्होत्रा, उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री रामप्रकाश और मध्य प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री वी.के. सकलेचा सम्मिलित थे।

अंतिम यात्रा को 30, राजेंद्र प्रसाद मार्ग से निगम बोध घाट, जहाँ अंतिम संस्कार किया गया, तक आठ मील लंबे मार्ग को तय करने में लगभग छह घंटे लगे। रास्ते में कई स्थानों पर विभिन्न व्यापारिक संस्थाओं और संस्थानों की ओर से पार्थिव शरीर पर पुष्पवर्षा की गई। मुसलिमों की बड़ी भीड़ अपनी श्रद्धांजलि देने के लिए नई सड़क पर एकत्र थी। सीसगंज गुरुद्वारा में सिख समुदाय की ओर से पंडितजी को भावभीनी श्रद्धांजलि दी गई। हज़ारों सिख पुरुष और महिलाएँ यहाँ बैठकर घंटों तक गुरुवाणी का पाठ करते रहे और जब दीनदयालजी का पार्थिव शरीर लिये शववाहन पहुँचा, तो पुष्प बरसाए गए और एक सिख बिगुलवादक ने अंतिम सलामी दी। अरथी के निकट कई सिख फूट-फूटकर रोते दिखे।

यमुना के तट पर दिल्ली के केंद्रीय श्मशान घाट निगमबोध घाट पर जब अंतिम यात्रा पहुँची, तो लगभग सूर्यास्त हो चुका था। श्मशान घाट की चारदीवारी के भीतर भीड़ के एकत्र होने की क्षमता बमुश्किल छह से आठ हज़ार की है। इसलिए चारदीवारी के बाहर जनसमुद्र धैर्य के साथ सघन माइक्रोफ़ोन प्रणाली पर अंत्येष्टि के समय पढ़े जानेवाले वैदिक मंत्रोच्चार और अंत्येष्टि से पूर्व विभिन्न संस्थाओं और लोगों द्वारा माल्यार्पण किए जाने की घोषणाएँ सुनने के लिए प्रतीक्षारत था।

शाब्दिक और लाक्षणिक, दोनों रूपों में अँधेरा उतर आया था, जब श्री उपाध्याय के मामा के पुत्र प्रभुदयाल ने मुखाग्नि दी। आठ फुट ऊँचे मंच से वैदिक मंत्रों का उच्चारण तेज़ और दुःखद होता लगने लगा। शोकाकुल लोगों के समूहों ने समवेत स्वर में गायत्री मंत्र का पाठ करना शुरू कर दिया और श्मशान घाट के अंदर तथा बाहर

हज़ारों लोग फफक-फफककर रो पड़े। एक महान् और पवित्र जीवन समाप्त हो गया— 'गरमियों में सूखे उस झरने की तरह, जब हमें उसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है।'

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 18, 1968
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(ii)
परिदृश्य

रहस्यमय मेजर

'श्री दीनदयाल उपाध्याय की जाँच के लिए यहाँ पहुँचे पुलिस और सी.आई.डी. के अधिकारियों को सारी चीज़ों के पीछे किसी गड़बड़ी की बू आ रही थी। उन्होंने दुर्घटना के कोण को द्वितीय स्थान पर रखा।

'उनका संदेह मेजर एस.एल. शर्मा नाम के एक सहयात्री की रहस्यमय ढंग से यात्रा से उत्पन्न हुआ।'

'लखनऊ में मध्य कमान के साथ की गई जाँच से पता चला है कि 'वहाँ दो शर्मा थे—एच.आर. शर्मा और बी.एन. शर्मा—परंतु एस.एल. शर्मा के नाम से कोई भी नहीं था।'

'कोच के कंडक्टर के अनुसार, मेजर शर्मा को वाराणसी में उतरना था। जब कंडक्टर ने उसे जगाने के लिए कैबिन पर दस्तक दी, वह वहाँ नहीं पाया गया। इसकी बजाय, जनसंघ नेता अपने कूपे से बाहर आए और कंडक्टर को बताया कि जिन सज्जन को आप जगाने की कोशिश कर रहे हैं, वह कोई 10 स्टेशन पहले शाहगंज में उतर चुके हैं। मेजर शर्मा के क़ब्ज़े में माने जानेवाले संबद्ध टिकट संख्या 06171 को 11 फरवरी की सुबह या तो शाहगंज या वाराणसी या मुग़लसराय पर जमा किया गया होना चाहिए था। जानकारी के अनुसार उसने श्री उपाध्याय के बाद अपना आरक्षण कराया था। यद्यपि लखनऊ में रेलवे बुकिंग कार्यालयों ने उपर्युक्त संबद्ध नंबर का टिकट जारी किए जाने से इनकार किया है।'

आँसुओं में डूबे गुरुजी

जब यह दुःखद समाचार पहुँचा तो श्रीगुरुजी आर.एस.एस. के संभागीय शीतकालीन शिविर में भाग लेने के लिए प्रयाग में थे। वह यू.पी. संघचालक नरेंद्र जीत सिंह और यू.पी. के प्रांत प्रचारक रज्जू भैया के साथ मोटर से काशी के लिए रवाना हुए। जब उन्होंने मुर्दाघर में प्रवेश किया, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भी उनके साथ थे। उन्हें बेहद पीड़ा हुई

और रोने लगे, 'अरे इसे क्या हो गया' और स्तब्ध खड़े रहे चुपचाप और एक से ज़्यादा बार उन्होंने अपनी आँखें और नाक पोंछी।

पोस्टमार्टम के बाद उन्होंने दिल्ली के लिए रवाना होने से पूर्व विमान में शव को पुन: देखा। उन्होंने प्यार से चेहरे और छाती को छुआ।

भाऊराव देवरस, जो दीनदयालजी के सह प्रांत प्रचारक रहने के दौरान प्रांतीय प्रचारक थे, शव को देखकर विमान में गिर गए।

वे भ्रामक चिह्न

वहाँ एक संक्षिप्त प्रेस की रिपोर्ट थी कि रेल खंभे पर रक्त के कुछ चिह्न पाए गए थे। बहुत निकट से सूक्ष्म निरीक्षण से पता चला कि मूल रूप से खंभे को लाल रंग से रँगा गया था और अभी हाल ही में उसे सफ़ेद रंग से रँगा गया है। लाल निशान पुराने पेंट के थे, जो नए सफ़ेद रंग में दिख रहे थे।

सूटकेस में

पंडितजी का सूटकेस मोकामा में बरामद हुआ। 8-डाउन के कंडक्टर ने अपने मेमो में दिनांक 12.2.68 को जी.आर.पी. / एम.के.ए. द्वारा एस.एम. / एम.के.ए. को लिखा है :

'एफ.सी.टी. 1935 (बी) लखनऊ-हावड़ा कोच में एक सूटकेस (चमड़े का) निचली शायिका के नीचे लावारिस पड़ा है। कृपया उसका ध्यान रखें और आवश्यक कार्रवाई करें। डिब्बा खाली है और सूटकेस में ताला बंद है।

(हस्ताक्षर) डी.एल. यादव

कुछ कपड़ों के अलावा सूटकेस में एक खाकी हाफ-पैंट, चमड़े की एक बेल्ट, टॉर्च, दाढ़ी बनाने का सामान, ड्राइविंग लाइसेंस, पासपोर्ट, फाउंटेन पेन, डॉक्टर की परची और कुछ काग़ज़ात मिले थे।

नाना देशमुख की घड़ी

अपनी मृत्यु के समय पंडितजी 'नाना देशमुख' उत्कीर्णित टिसॉट ऑटोमैटिक घड़ी पहने हुए थे। उन्होंने अपनी निजी घड़ी—बेल्फॉण्ट ऑटोमैटिक—का नानाजी से आदान-प्रदान किया था, क्योंकि बेल्फॉण्ट ऑटोमैटिक का डायल बड़ा था और तारीख़ लाल रंग में प्रमुखता से थी।

नानाजी ने कोई पाँच साल पहले अपनी घड़ी में अपना नाम अंकित कराया था। उन्होंने त्रिपुरा में बेलोनिया का दौरा किया था, जो उस समय पाकिस्तान की बड़ी

छापेमारी का शिकार हुआ था। उन्होंने एक शरणार्थी को संकट में पाया और उसे कुछ पैसे लेने की पेशकश की। दु:खी शरणार्थी ने कहा कि वह काम करना पसंद करेगा और दान के पैसे स्वीकार नहीं करेगा। वह शब्द उत्कीर्ण करने की कला में पारंगत था और उन्होंने उन पैसों के बदले में उससे घड़ी पर 'नाना देशमुख' खुदवा लिया।

—कमल

अंतिम रुदन

युवा और निष्कपट,
बिना किसी प्रयत्न के ही श्रेष्ठ,
और महान् बिना किसी शत्रु के¨,

—बायरन

मृत्यु नहीं हुई उसकी, वह तो बस बिछड़ गया है

—लॉङ्गफेलो

अगर तुम्हारी आँखों में हैं आँसू
तो बस अब झर जाने दो उन्हें

—शेक्सपीयर

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 18, 1968
माघ 29, 1889 शक
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(iii)

पंडित दीनदयाल की हत्या अत्यंत जघन्य

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु की अत्यंत दु:खद घटना ने देश को हिलाकर रख दिया है। उनकी मृत्यु प्राकृतिक नहीं लगती, नि:संदेह उनकी हत्या हुई है और यह कोई सामान्य अपराध की घटना नहीं लगती—पंडितजी के लिए सार्वजनिक जीवन से अलग कोई जीवन नहीं था, इसलिए यह राजनीतिक मामला लगता है। श्री रामप्रकाश, श्री जगदीश माथुर, श्री बलराज मधोक, श्री कैलाशपति, श्रीमती खन्ना एक अग्रणी शल्य चिकित्सक और कई अन्य लोगों से बात करने के बाद 'ऑर्गनाइज़र' यह कह सकता है।

बजट सत्र के पूर्व नई दिल्ली में भारतीय जनसंघ संसदीय दल की बैठक हो रही थी। इसी दिन पटना में बिहार प्रदेश भारतीय जनसंघ कार्यसमिति की बैठक हो रही थी।

10 फरवरी की सुबह लगभग 8 बजे बिहार प्रदेश भारतीय जनसंघ के संगठन मंत्री श्री अश्विनी कुमार ने पटना बैठक में शामिल होने के अपने पूर्व आग्रह को फिर याद दिलाने के लिए दीनदयालजी को फ़ोन किया। पंडितजी ने उनसे कहा कि वे भी ऐसा ही चाहते हैं। यद्यपि उन्होंने यह भी जोड़ा कि यदि सांसद और भारतीय जनसंघ के महामंत्री सुंदर सिंह भंडारी ने संसदीय दल की बैठक में सम्मिलित होने के लिए उन पर जोर डाला तो उन्हें दिल्ली जाना पड़ सकता है।

उनका सामान और कपड़े इत्यादि

उसी दिन सायं 7 बजे पंडितजी पठानकोट-सियालदह एक्सप्रेस में सवार हुए। वे एक छोटा सूटकेस, एक बड़ा होल्डाल और पुस्तकों से भरा कपड़े का झोला तथा खाने का टिफिन लिए हुए थे। वे हमेशा की तरह धोती पहने थे। ऊपर घर का बना बिना बाँह का पॉकेट वाला बनियान था और उसके ऊपर गुलाबी रंग का बिना बाँह का स्वेटर था। इसके ऊपर कारख़ाने का बना पूरी बाँह का बनियान था और इसके ऊपर हल्के गुलाबी रंग का पूरी बाँह का पूरे गले का स्वेटर था। इसके बाद फिर गहरे रंग का पश्मीना का कुरता था और इन सबके ऊपर एक नया ऊनी जैकेट था, जिस पर भूरे और काले रंग में चेक की डिजाइन थी, जिसमें पीली बिंदियाँ थीं। यह जैकेट हजरतगंज, लखनऊ के लीला ब्रदर्स ने बनाई थी और उस पर अपनी स्लिप टाँकी थी। इसके अलावा उनके कंधों पर एक ऊनी शॉल थी।

उनकी शायिका की स्थिति

उनको स्टेशन छोड़ने आए लोगों में उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री श्री राम प्रकाश और भारतीय जनसंघ के पूर्व अध्यक्ष और एम.एल.सी. श्री पीतांबर दास शामिल थे। बोगी का पहला आधा हिस्सा तृतीय श्रेणी था और दूसरा आधा हिस्सा प्रथम श्रेणी था। प्रथम श्रेणी का खंड गलियारे की तरह का था और इसमें तीन डिब्बे—ए, बी और सी थे। इसमें क्रमशः 4, 2 और 4 शायिकाएँ थीं। पंडितजी का आरक्षण ए डिब्बे में था। इस डिब्बे में दूसरे यात्री श्री एम.पी. सिंह थे। अब हमें पता चला है कि सिंह जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया में सहायक निदेशक हैं और तीन महीने के प्रशिक्षण के लिए पटना के नजदीक राखा खदान जा रहे थे। बी डिब्बे में कांग्रेस के एक एम.एल.सी. श्री गौरी शंकर राय थे। और सी डिब्बे में एक मेजर शर्मा थे। श्री राय ने एक मित्र के तौर पर दीनदयालजी से शायिका बदलने का आग्रह किया और वे आसानी से तैयार हो गए। पंडितजी और एम.पी. सिंह पटना जा रहे थे और मेजर शर्मा और राय वाराणसी जा रहे थे।

रात को लगभग 12:30 बजे जौनपुर के राजा के सचिव कन्हैया जौनपुर स्टेशन पर दीनदयालजी से मिले और राजा की ओर से उन्हें एक पत्र दिया।

सियालदह एक्सप्रेस पठानकोट से कलकत्ता गया होकर जाती थी और पटना से नहीं गुजरती थी। ट्रेन तड़के लगभग 2:15 बजे मुग़लसराय में प्लेटफॉर्म संख्या 1 पर पहुँची। बोगी को अलग किया गया, उसकी शंटिंग की गई और प्लेटफॉर्म संख्या 2 पर दिल्ली-हावड़ा तूफान एक्सप्रेस से जोड़ी गई, जो पटना होकर हावड़ा जाने के लिए तड़के 2:50 बजे रवाना हुई।

तड़के 3 बजे के शीघ्र बाद

तड़के 3 बजे के तत्काल बाद एक लाइनमैन ने शॉल में लिपटा एक शव देखा, चेहरा भी शॉल से ढका था—और रेलवे पुलिस को मामले की सूचना दी। यह अफवाह उड़ी कि पुलिस को मृतक के हाथ में पाँच रुपए का एक नोट मिला है। लगभग छह घंटे बाद शव को प्लेटफॉर्म पर लाया गया।

स्थानीय रेलवे कर्मचारी और रेलवे पुलिस इससे अज्ञात शव के मामलों की तरह बरताव करने के इच्छुक थे। परंतु उनके पॉकेट में प्रथम श्रेणी आरक्षण रसीद और उनकी कलाई पर अच्छी घड़ी पर नाना देशमुख नाम खुदे होने से जिज्ञासा बढ़ी। लोग एकत्र हो गए। कुछ लोगों ने उन्हें तत्काल पहचान लिया। उनमें से एक दौड़कर भारतीय जनसंघ के शहर कार्यालय गया। मुग़लसराय जनसंघ ने लखनऊ जनसंघ को फ़ोन किया। लखनऊ जनसंघ ने दिल्ली जनसंघ को फ़ोन किया। इस पूरे दौरान गृह मंत्री तक को इस बारे में कुछ पता नहीं था। संवाद समितियों को भी कोई जानकारी नहीं थी।

पटना स्टेशन पर

इस बीच सुबह 6 बजे बिहार भारतीय जनसंघ के मंत्री श्री कैलाशपति पंडितजी को लेने पटना रेलवे स्टेशन गए। वे ट्रेन के पीछे के हिस्से में लखनऊ बोगी में घुसे, परंतु अंदर कोई नहीं मिला और सभी दरवाजे खुले थे। चूँकि पंडितजी ने अश्विनीजी को कहा था कि यदि भंडारी ने जोर दिया तो दिल्ली जाना पड़ सकता है, कैलाशपति ने सोचा कि पंडितजी आने में समर्थ नहीं हो पाए होंगे। उन्होंने शायिकाओं के नीचे नहीं देखा, क्योंकि उन्हें कोई संदेह नहीं था। निःसंदेह यात्री श्री सिंह कैलाशपति के बोगी में घुसने के तत्काल पहले नीचे उतर गए थे।

मोकामा में सुबह 9:30 बजे के बाद किसी ने बी डिब्बे में एक अज्ञात सूटकेस पाया और इसे रेलवे अधिकारियों को सौंप दिया। यह पंडितजी का सूटकेस था।

क्या हो सकता था?

क्या हुआ था? यह केवल अन्वेषण जाँच ही बता सकती है। परंतु संभावित घटनाक्रम को सिलसिलेवार लिखना असंभव नहीं है।

यह हो सकता है कि दो या अधिक लोग अगर पहले से नहीं तो लखनऊ से उनका पीछा कर रहे हों। वे बनारस में राय और शर्मा के उतरने के बाद प्रथम श्रेणी बोगी में घुसे होंगे और सी डिब्बे को खाली पाकर उसमें बैठे होंगे। यह नहीं जाना जा सकता कि जौनपुर में कन्हैया से मिलने के बाद पंडितजी ने दरवाजे में कुंडी लगाई थी या नहीं। यदि उन्होंने बंद भी किया होगा तो एक दयालु व्यक्ति होने के नाते दरवाजे पर कोई खटखट होने पर यह सोचकर कि शायिका की तलाश में कोई यात्री होगा, उन्होंने सहजता से दरवाज़ा खोल दिया होगा।

यह संभव है कि वाराणसी में उनके कूपे में अधिकृत यात्री होने का दिखावा करते हुए केवल एक व्यक्ति घुसा होगा और दीनदयाल सोने के लिए या बाँईं ओर अपनी शायिका पर लेटने के लिए, जैसा वह चाहते होंगे, पीछे मुड़े होंगे और दीवार की ओर चेहरा किया होगा। इस मुद्रा में और उस उनींदी स्थिति में हत्यारे ने उनके सिर पर एक मजबूत हथौड़े से वार किया होगा और उनकी हत्या कर दी होगी—या लगभग मार डाला होगा—और निश्चित रूप से उन्हें बेहोश कर दिया होगा।

यह भी संभव है कि हत्यारे ने कुंडी खोलने के लिए इस्पात की पतली पत्ती का उपयोग किया हो और जब पंडितजी गहरी नींद में हों, तभी कूपे में घुसा हो और उन पर मरणांतक हमला किया हो।

यह दुर्घटना क्यों नहीं हो सकती

वाराणसी और मुग़लसराय लगभग 10 मील दूर हैं। जब ट्रेन गंगा के ऊपर से गुजर रही होगी तो पुल पर अतिरिक्त शोर में अगर कोई चीख उठी हो तो वह दब गई हो सकती है और इससे ए डिब्बे में सिंह को वह सुनाई नहीं पड़ी होगी। इसके बाद सहअपराधी, जो संभवतः सी डिब्बे में छिपा होगा, आ गया होगा, फिर से दरवाजे में कुंडी लगाई होगी, भारी चोटें पहुँचाई होंगी और शव को वहाँ फेंक दिया होगा, जहाँ से वह मिला।

क्या यह एक दुर्घटना हो सकती है? क्या पंडितजी नीचे उतरे होंगे—और क्या वह ट्रेन पर चढ़ने की कोशिश कर रहे थे?

यह पूरी तरह असंभव है। पंडितजी को रात में उठकर पानी पीने या लघुशंका करने की आदत नहीं थी। श्रीमती लता खन्ना, लखनऊ में ठहरने पर सदैव वह जिनके परिवार के साथ रहते थे, ने उन्हें रात का खाना देने के लिए आग्रह किया था, परंतु उन्होंने उनसे कहा कि चाय-नाश्ते के बाद उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए पंडितजी

भूखे नहीं हो सकते थे।

क्या वे चाय पीने नीचे उतरे थे? नहीं! उन्होंने पहले कभी इस तरह की बात नहीं की थी। और किसी भी स्थिति में एक ऐसा व्यक्ति, जिसे हमेशा ठंड की शिकायत रहती हो, वह ठंड से और पीड़ित होने के लिए एक कप चाय के लिए प्लेटफॉर्म से सौ यार्ड दूर सर्द हवा में आधी रात को अपना कुरता और जैकेट छोड़कर नहीं आया होगा। किसी भी स्थिति में प्रथम श्रेणी का यात्री शंटिंग ट्रेन में नहीं चढ़ता, वे नोट को ध्वज की तरह नहीं फहराते। उनके पास से कुल 26 रुपए बरामद हुए। यदि वे चाय पीना भी चाहते थे, तो वह 5 रुपए का नहीं बल्कि एक रुपए का नोट लेकर आते!

यदि यह एक दुर्घटना थी तो उनके बिस्तरे का क्या हुआ? उनकी किताबों का झोला? उनका कुरता? उनका जैकेट? ये सभी ग़ायब हैं!

क्यों यह साधारण अपराध नहीं हो सकता

दुर्घटना का सिद्धांत अति काल्पनिक है। और शव की स्थिति इसे पूरी तरह खारिज करती है। लोहे का वह बड़ा खंभा, जिसके बारे में आशंका है कि वह बोगी में चढ़ते समय उससे टकरा गए होंगे—उस पटरी से पूरे पाँच यार्ड दूर है, जिसपर बोगी की शंटिंग हुई। और शव खंभे और इस शंटिंग पटरी के बीच नहीं मिला था बल्कि खंभे और उस पटरी के बीच मिला था, जिस पर से ट्रेन वाराणसी से मुग़लसराय के प्लेटफॉर्म संख्या 1 पर आई।

पुलिस को खंभे पर या ज़मीन पर ख़ून के कोई निशान नहीं मिले। शव सीधा पड़ा मिला, चेहरा ऊपर था और टखने के पास पाँव टूटा हुआ था। यह वह तर्कसंगत स्थिति नहीं, जिसमें किसी दुर्घटना में कोई व्यक्ति गिरा पड़ा हो।

क्या यह डकैती का मामला था? नहीं। डकैत सामान ले जाएगा, सोते व्यक्ति की हत्या नहीं करेगा। वह पैसे के लिए पॉकेट तलाशता और महँगी घड़ी ले जाता। वह मामूली मौद्रिक मूल्य के महाकाय बिस्तरे की बजाय बंद सूटकेस को ले जाता, जिसमें कीमती वस्तुएँ हो सकती थीं। परंतु इस मामले में हर चीज़ बिल्कुल विरोधाभासी हुई है।

चोटें क्या कहती हैं

स्पष्टत: बिस्तरा इसलिए हटाया गया, क्योंकि इस पर यहाँ-वहाँ ख़ून के निशान रहे होंगे। झोला, कुरता और जैकेट इसलिए हटाया गया होगा, ताकि आनेवाले यात्री उनका संज्ञान न लें। और चूँकि उनका उद्देश्य चोरी नहीं था, इसलिए वे शायिका के नीचे, जहाँ सूटकेस रखा था, देखना भूल गए।

वाराणसी के डॉ. पटेंकर की पोस्टमार्टम रिपोर्ट अभी उपलब्ध नहीं हुई है। परंतु हम चोटों की प्रकृति और संख्याएँ जानते हैं। जब त्वचा हटाई गई तो सिर पर लगी चोट से पता लगा कि खोपड़ी पर 2.5 इंच का गोल गड्ढा है। यह लोहे के हथौड़े जैसे कुंद हथियार से हुआ होगा।

बहरहाल, इसी तरह सिर में ठीक ऐसे ही पीछे की ओर हथौड़े की एक चोट ही थी, जिसने ट्रॉटस्की को मेक्सिको में निर्वासन के दौरान मौके पर ही मार डाला था। उन पर दिन के दौरान उनके जगने के वक्त स्टालिन के एक एजेंट ने हमला किया था।

दुर्घटनावश मृत्यु दरशाने के लिए पैर, दायाँ हाथ और दाईं ओर आगे की पसलियों को तोड़ा गया लगता है। यद्यपि एक सुयोग्य चिकित्सकीय राय के अनुसार इन चोटों से कोई सूजन या रक्तस्राव न होना यह प्रमाणित करता है कि इन् चोटों से पहले ही उनकी मृत्यु हो चुकी थी और रक्त संचार बंद हो चुका था। दिल्ली के एक अग्रणी सर्जन ने हमें बताया कि दुर्घटना में लगनेवाली ऐसी सर्वाधिक दर्दनाक चोटों से चेहरे पर दर्द और पीड़ा दिखती। परंतु इस मामले में पंडितजी का चेहरा एकदम शांत और निश्चिंत था, ऐसा लग रहा था कि वे गहरी नींद में हैं।

उनकी राय में सिर पर अचानक की गई चोट से तत्क्षण हुई मृत्यु ही बंद आँखों और शांत चेहरे को सही ठहरा सकती है। और हमें यहाँ जोड़ना होगा कि ज़िले के दो महत्त्वपूर्ण अधिकारियों ने कुछ भारतीय जनसंघ नेताओं से अनौपचारिक तौर पर कहा कि 'यह स्पष्ट रूप से हत्या का मामला है।'

ये सभी बातें सरकार की जाँच एजेंसियों के लिए एक चुनौती हैं। उन्हें मामले की जाँच गहराई तक करनी है और महान् नेता को खोनेवाले लोगों की संतुष्टि के लिए रहस्य का उद्‌घाटन करना है। और उन्हें उस व्यक्ति के लिए 1 लाख रुपए के आकर्षक इनाम का प्रस्ताव करना है, जो इस सर्वाधिक रहस्यमय हत्या को सुलझाने के लिए कोई सूचना देगा।

किसी भी संभावना से इनकार नहीं किया जाना चाहिए

खारिज करने की प्रक्रिया के ज़रिए हमें दुर्घटना, डकैती या एक साधारण आपराधिक हत्या से इनकार करना होगा और राजनीतिक हत्या की अत्यधिक संभावना को स्वीकार करना होगा। यदि ऐसा है तो दोषी पक्ष कौन है, हम नहीं जानते। इसलिए, हम कुछ कहना नहीं चाहते। परंतु हम चाहेंगे कि जाँच एजेंसियाँ किसी भी संभावना को खारिज न करें।

लंबे समय से कम्युनिस्ट और मुसलिम लीग का क्षेत्र रहे कालीकट में भारतीय जनसंघ का सम्मेलन अत्यधिक सफल रहा, जिससे उन तत्त्वों को ख़तरा महसूस हुआ

होगा। दूसरी तरफ़, जनसंघ का सभी मुद्दों पर स्वतंत्र राष्ट्रीय रुख का अनुसरण करना हमारे देश को नियंत्रित करने पर आमादा कुछ बड़ी शक्तियों या उनके स्थानीय एजेंटों को तकलीफ दे रहा था।

हम दोहराते हैं कि हम किसी पर आरोप नहीं लगा रहे हैं। परंतु हम निश्चित रूप से यह सुझाव दे रहे हैं कि बहुत मामूली सी दिखनेवाली कोई भी संभावना खारिज नहीं की जानी चाहिए। दीनदयाल की हत्या के मामले में कोई ढुलमुल रवैया सहन नहीं होगा।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 18, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(iv)

दीनदयाल उपाध्याय की राख से सैकड़ों दीनदयाल उत्पन्न करें

(बालासाहेब देवरस का स्वयंसेवकों से आह्वान)

श्री दीनदयाल उपाध्याय को अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए दिल्ली शाखा के हज़ारों स्वयंसेवक एकत्र हुए।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह बालासाहेब देवरस ने भावुक होते हुए भरे गले से स्वयंसेवकों को संबोधित करते हुए कहा कि 'व्यक्ति नश्वर है। हम सभी को मरना है। परंतु दीनदयाल के निधन ने हम सभी को संताप दिया है। उनके बिना स्वयं के बारे में सोचना भी कठिन है।'

इससे पूर्व दिल्ली के संघचालक श्री प्रकाशदत्त भार्गव ने दीनदयालजी को एक आदर्श स्वयंसेवक के रूप में व्याख्यायित किया।

स्वयंसेवकों को दिए गए बालासाहेब के संबोधन का सार इस प्रकार है :

दीनदयालजी हम सभी के प्यारे थे। यदि वह अस्वस्थ हुए होते, तो उनकी सेवा करने के लिए हज़ारों लोगों में एक-दूसरे से होड़ मच जाती। यदि उन्हें रक्त चढ़ाने की आवश्यकता पड़ती, तो फिर हज़ारों लोग अपना रक्तदान करने के लिए प्रतिस्पर्धा करते। यदि उनके प्राण को किसी ख़तरे का ज्ञान होता तो हज़ारों लोग उनके लिए अपने प्राण देने के लिए तैयार हो गए होते। परंतु वह हममें से किसी को भी अपने लिए कुछ करने का अवसर दिए बिना चले गए। निःसंदेह हमारी पीड़ा असहनीय है।

मैं उन्हें 1937 से जानता था, जब वे संघ के स्वयंसेवक बने। उनमें कई गुण थे

और समय के साथ इन गुणों की सुगंध बढ़ती गई।

वे कहते थे, प्रतिभा 10 प्रतिशत प्रेरणा और 90 प्रतिशत पसीना (परिश्रम) है। यह पंडितजी के लिए भी सत्य था, जब अन्य हर व्यक्ति सोने चला जाता था, वे देर रात तक पढ़ना और लिखना जारी रखते।

यह वह आदमी था, जिसे सब प्यार करते थे, जिसे सब चाहते थे। जैसा कि कल जनसभा में श्री नाथ पई ने गीता से उद्धृत किया था : 'वह, जिन्हें लोग चाहते हैं, और जिसके पास लोगों के विरुद्ध कुछ भी नहीं है, जो भय, ईर्ष्या या अहंकार से ऊपर है, वह मुझे बहुत प्यारा है।'

जब पंडितजी नागपुर आते थे तो कार्यालय का रसोइया तक ख़ुश हो जाता था। वह उनके लिए यह-वह बनाता, वह उन्हें एकदम समय पर चाय देता। हर कार्यकर्ता उन्हें खाने के लिए अपने घर ले जाना चाहता। वह मुझे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. हेडगेवार की याद दिलाते थे। डॉ. हेडगेवार का भी कोई खूबसूरत चेहरा-मोहरा या गपशप की कला का लाभ नहीं था। परंतु उनकी खरी ईमानदारी आपको चुंबक की तरह आकर्षित करती थी। ऐसा ही दीनदयाल के साथ था।

मेरा उनके साथ 30 वर्षों का परिचय था। मैंने उनको कभी यह कहते नहीं सुना कि मैंने यह किया या मैंने वह किया। वे 'मैं' शब्द का शायद ही उपयोग करते थे। इस संसार में उनके सामान के नाम पर उनका बिस्तरा, उनके कुछ कपड़े और कुछ पुस्तकें थीं। उन्होंने स्वयं के लिए न कभी कुछ किया, न कभी कहा, उन्होंने किसी से भी कभी कोई खराब बात नहीं कही। वे गुणसागर थे।

ऐसे व्यक्ति की क्षति राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए, भारतीय जनसंघ के लिए और देश के लिए बहुत भारी है। परंतु हम मात्र बैठे रहकर रो नहीं सकते। डॉ. हेडगेवार का निधन भी दीनदयाल जितनी उम्र में ही हुआ था। कुछ लोगों ने सोचा कि डॉक्टर साहब के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ समाप्त हो जाएगा, पर ऐसा नहीं हुआ। इसी तरह दीनदयाल का निधन जनसंघ के लिए रुकावट नहीं बनने दी जा सकती।

दीनदयाल एक स्वयंसेवक थे। उनकी प्राथमिक निष्ठा आर.एस.एस. के लिए थी। वह अन्य प्रांतों के उन कुछ कार्यकर्ताओं में एक थे, जिन्हें डॉ. हेडगेवार से व्यक्तिगत रूप से मिलने और सीधे उनसे प्रेरणा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। डॉ. हेडगेवार अकसर कहा करते थे कि अच्छा स्वयंसेवक वह नहीं है, जिसके बिना संघ कार्य आगे न बढ़ाया जा सके। अच्छा स्वयंसेवक वह है, जो कई अच्छे स्वयंसेवक बनाए, जो उसके बिना भी संघ कार्य को आगे बढ़ा सकें। अच्छा

स्वयंसेवक वह नहीं है, जो स्वयं को अपरिहार्य बना ले, बल्कि वह है, जो शीघ्रता से स्वयं को नगण्य बना ले। दीनदयालजी का लक्ष्य भी समान था। देश भर में उन्होंने कार्यकर्ताओं को नेता के रूप में विकसित किया। दीनदयाल उपाध्याय की राख से हज़ारों दीनदयाल उत्पन्न होंगे।

जब शिवाजी का निधन हुआ, समर्थ गुरु रामदास ने संभाजी को लिखा कि यदि वह अपने पिता के पदचिह्नों का अनुसरण करेंगे तो वह कभी गलत नहीं होंगे। यदि जनसंघ के कार्यकर्ता चिंतन करें कि स्थिति विशेष में पंडितजी ने क्या कहा होता और क्या किया होता, तो वे कभी भी गलत नहीं होंगे।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 18, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(v)

दीनदयाल का निधन : दीनदयाल अमर रहें!

यह विश्वास करना कठिन है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय अब नहीं रहे। मैं न कभी उनका चमकता चेहरा भूल सकता हूँ और न ही कभी उनकी उन्मुक्त हँसी। यह उन सबके लिए एक थाती है, जिन्हें उनके साथ कार्य करने का अवसर मिला।

मथुरा में 51 वर्ष पूर्व एक ग़रीब परिवार में जन्मे दीनदयाल बहुत छोटी उम्र में ही अनाथ हो गए। उनका पालन-पोषण उनके मामा ने किया, जो एक रेल कर्मचारी थे। परंतु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनकी प्रतिभा बिना किसी त्रुटि के प्रदर्शित हो गई। यद्यपि वह गणित के विद्यार्थी थे परंतु वह गणित से अधिक समय संस्कृत को देते थे। 'निश्चित रूप से उन्होंने गणित में प्रथम श्रेणी में स्नातक की उपाधि ली। मेरा मानना है कि वह हमारे उन चुनिंदा राजनीतिक नेताओं में से एक थे, जिन्होंने सभी पंचवर्षीय योजनाओं का पाठ्य पढ़ा था! उन्होंने जो भी किया, पूरी गहनता से किया। उनके भाषण, उनके आलेख और पुस्तकें मात्र विचारों को ही नहीं उकसातीं, बल्कि वे कार्य के लिए भी प्रेरित करती हैं।'

यहाँ तक कि सार्वजनिक जीवन की शुरुआत भी उन्होंने बहुत विनम्रता से उत्तर प्रदेश के लखीमपुर ज़िले में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तहसील प्रचारक के रूप में की। परंतु उनकी अति निस्स्वार्थ भावना, उनकी मधुर समयोचितता और इन सबसे ऊपर उनका कड़ा परिश्रम और उत्कृष्ट मस्तिष्क हमेशा उनके साथ रहा। डॉ. मुखर्जी ने उन्हें जनसंघ के महामंत्री के रूप में चुना और वे उनके काम से इतने प्रभावित हुए कि 1953 में जनसंघ के कानपुर अधिवेशन की समाप्ति पर उन्होंने कहा कि 'यदि मेरे पास केवल

दो और दीनदयाल होते तो मैं भारत के राजनीतिक चेहरे को बदल सकता था।'

इसके शीघ्र ही बाद डॉ. मुखर्जी की मृत्यु हो गई। वे जनसंघ के ज़रिए भारत का राजनीतिक चेहरा बदलने का दायित्व अन्य के मुक़ाबले दीनदयाल पर अधिक छोड़ गए थे और उन्होंने यह किया। आज जनसंघ एक व्यापक शक्ति है—इसके लिए दीनदयाल और जनसंघ में उन्हीं की तरह के अन्य लोगों को धन्यवाद।

पंडित जी—जैसा कि हम उन्हें प्यार से कहते थे—के मन में वैचारिक मकड़जाल के लिए कोई सम्मान नहीं था। वे अकसर कहते थे कि राजनीतिक अवधारणा के रूप में 'वाम' और 'दक्षिण' भारत के लिए बाहरी हैं और भारतीय स्थितियों के लिए अप्रासंगिक हैं। देश पिछड़ा हुआ है और इसका चतुर्मुखी विकास केवल राष्ट्रवाद के मजबूत और पवित्र आह्वान से ही हो सकता है। यह उनका दृढ विश्वास ही था कि उन्होंने गठबंधन सरकारों के गठन का समर्थन किया। वे आशा करते थे कि विभिन्न दलों के लोग, भले ही वे किसी भी विचारधारा को मानते हों, देश के लिए काम करेंगे। उन्होंने जनसंघ के कालीकट अधिवेशन में कहा था कि स्वामी दयानंद ने सामाजिक अस्पृश्यता के विरुद्ध युद्ध लड़ा था, अब जनसंघ को राजनीतिक अस्पृश्यता के विरुद्ध लड़ना है।

और कुछ ही सप्ताह पूर्व उन्होंने मुझसे कहा था 'कुछ लोग हैरत में हैं कि भिन्न विचारधाराओं के दल एक साथ कैसे काम कर सकते हैं। परंतु उन्होंने एक साथ काम किया। और वे सरकारें वैचारिक मतभेदों के कारण नहीं गिरीं। उन्हें इच्छुक पक्षों ने पैसे के उपयोग और जातिवादी अपील के ज़रिए गिराया। और इन सबने मुझे बहुत दुःखी किया है।'

पंडितजी विचारों से परिपूर्ण थे। कोई भी उनसे अधिक हिंदी का प्रेमी नहीं था। उन्होंने अपनी अधिकांश पुस्तकें हिंदी में लिखीं। परंतु वे अन्य भारतीय भाषाओं को कम प्यार नहीं करते थे। जनसंघ के ऐतिहासिक कालीकट अधिवेशन में यह कहनेवाले वही थे कि सरकारी सेवाओं में चयन के लिए किसी को अंग्रेज़ी या हिंदी जानने की आवश्यकता नहीं है; उस चरण में मातृभाषा जानना ही पर्याप्त है।

वे मानते थे कि जबकि केंद्र पर्याप्त रूप से मजबूत नहीं है, कई राज्य लोगों द्वारा किसी प्रभावी सरकार की दृष्टि से बहुत बड़े हैं। इसलिए उन्होंने कुछ ज़िलों को शामिल कर निर्मित जनपदों में शक्ति के विकेंद्रीकरण के साथ एकात्मक केंद्र की पैरवी की थी।

हाल ही में उन्होंने कहा था कि अल्पसंख्यकों की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और अन्य रायों की दृष्टि से एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों की वर्तमान निर्वाचन प्रणाली उचित नहीं है। इसलिए उन्होंने बहु सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों के ज़रिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व का सुझाव दिया।

और उन्होंने सूची प्रणाली की पैरवी की, जिसमें पार्टी को मिले वोट के अनुपात में

पार्टी की सूची से शीर्ष प्रत्याशियों को निर्वाचित घोषित किया जाए।

एक अन्य दिन उन्होंने राजनीतिक आंदोलनों तक के लिए आचार संहिता का सुझाव दिया।

भारतीय राष्ट्रीयता के बारे में पंडितजी अपने मस्तिष्क में पूरी तरह स्पष्ट थे। अभी हाल ही में उन्होंने कहा कि 'हिंदू' एक धार्मिक शब्द नहीं है, यह एक राजनीतिक शब्द है, जिसके दायरे में सभी निष्ठावान भारतीय नागरिक सम्मिलित हैं।

हमने महान् राजनीतिक विचारकों, महान् राजनीतिक संगठनकर्ता, महान् राजनेता के बारे में सुना है। परंतु पंडितजी के रूप में एक व्यक्ति में ये सभी बातें समाहित थीं। वे ज़िला और तहसील स्तर तक के जनसंघ कार्यकर्ताओं के मित्र, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक थे।

उनकी महान् सरलता और विनम्रता ने उन्हें महानतम बनाया। उन्हें विशेष रूप से सर्दी का मौसम़ नहीं भाता था। हाल ही में एक शाम मैं उनसे मिला तो उन्हें उनकी रजाई में लिपटा पाया। मैंने कहा, 'पंडितजी, आपका कमरा बहुत ठंडा है, आपको एक रूम हीटर रखना चाहिए।' वे मुसकराए और बोले, 'भाई, आदमी की आवश्यकताओं का कोई अंत नहीं है।' उनका कमरा सर्दियों में बिना गरम किए रहता था और गरमियों में बिना ठंडा किए रहता था।

और अब हमने उस रत्न रूप इनसान को खो दिया है। यह क्रूरतम झटका है, ज़ो जनसंघ को लगा है। इससे भी अधिक यह देश के लिए गहरी क्षति है। वे स्वतंत्रता पश्चात् के नेतृत्व के देदीप्यमान नई पीढ़ी के नेता थे। अब मात्र यही आशा की जा सकती है कि संदेहास्पद परिस्थिति में उनकी मृत्यु का रहस्य खुलेगा। इसके बिना देश में मुक्त राजनीतिक जीवन कठिन हो जाएगा। अंत में मैं मात्र यही कह सकता हूँ कि वे आदर्श अमर रहें, जिनके लिए दीनदयालजी जीए, परिश्रम किया और मरे।

(के.आर.एम.सी.ए.आई.आर.)

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 18, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(vi)

समाचार-पत्रों की टिप्पणियाँ

नेतृत्व के सर्वोत्कृष्ट गुण

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष दीनदयाल उपाध्याय पार्टी में जिस तरह से मृदुल या संयमित करनेवाली भूमिका निभा रहे थे, उसे देखते हुए उनका निधन एक त्रासद परिमाण

का रूप ले लेता है। श्री उपाध्याय को कालीकट अधिवेशन में जनसंघ का अध्यक्ष चुना गया था जहाँ से पार्टी ने स्वयं को एक क्षेत्रीय संगठन से ऊपर उठाकर राष्ट्रीय स्तर पर खड़े होने के प्रयास शुरू किए और इनमें उसे कुछ सफलता भी मिली। और इस प्रक्रिया में पार्टी राष्ट्रभाषा के मुद्दे पर भी थोड़ी उदार हुई ताकि उसे अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी स्वीकार्यता मिल सके। हिंदी को लेकर जनसंघ के कठोर रुख के अतिरिक्त कई अन्य समसामयिक मुद्दों पर अपने तेवर नरम करने व सामंजस्य बैठाने का श्रेय काफ़ी हद तक श्री उपाध्याय को जाना चाहिए।

जनसंघ के लिए यह संकट की घड़ी है। उसे ऐसे समय में नए अध्यक्ष का चुनाव करना है, जब कई तरह की राजनीतिक समस्याएँ तात्कालिक ध्यान की माँग कर रही हैं। इस तरह का व्यक्ति ढूँढ़ पाना कठिन होगा, जो पार्टी के सभी प्रतिद्वंद्वी धड़ों को स्वीकार हो सके। जो भी चुना जाता है, उसके लिए श्री उपाध्याय के उदाहरण का अनुकरण करना ही सर्वश्रेष्ठ होगा, जिन्होंने अपने निजी व सार्वजनिक जीवन में किसी भी महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर सर्वाधिक लोगों का समर्थन जुटाकर सदैव नेतृत्व के सर्वोत्कृष्ट गुणों का प्रदर्शन किया।

(द हिंदुस्तान टाइम्स, फरवरी 13)

वे लाल बहादुर जैसे थे

श्री दीनदयाल उपाध्याय का असामयिक निधन केवल भारतीय जनसंघ की ही क्षति नहीं है, जिसके वे इस वर्ष अध्यक्ष बने थे, वरन् पूरे देश की है। सार्वजनिक जीवन में उनका प्रवेश उसी तरह से था जैसा कि लालबहादुर शास्त्री का। यद्यपि कितनी भी ग़रीबी और वंचना उनकी योग्यता को लंबे समय तक दबाकर नहीं रख सकी। प्रशिक्षण के कुछ ही वर्षों में उनकी योग्यता दिवंगत श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी के संज्ञान में आ गई, जिन्होंने उन्हें जनसंघ का महामंत्री नियुक्त किया और श्री उपाध्याय 1953 से 1967 तक निरंतर 14 वर्ष तक जनसंघ के महामंत्री रहे, जो यह दिखाता है कि उन्होंने किस तरह से स्वयं को पार्टी के साथ एकाकार कर लिया था और उनके प्रेरक नेतृत्व ने किस तरह ऊपर से नीचे तक कार्यकर्ताओं में विश्वास का संचार किया। उन्हें इस पद से तभी हटाया गया, जब उन्हें पार्टी का अध्यक्ष बनाना था। सात सप्ताह से कुछ ही अधिक समय पहले उन्होंने केरल के कालीकट में जनसंघ के वार्षिक सत्र की अध्यक्षता की थी।

श्री उपाध्याय अभी मुश्किल से 50 वर्ष के थे एवं अभी उनके जीवन का सबसे फलदायी समय आरंभ ही हुआ था। इसीलिए त्रासद परिस्थितियों में उनके इस असामयिक निधन से पूरे देश में चौतरफा गहन शोक दिखा। स्वाभाविक है कि जनता का ध्यान अब जाँच के परिणामों पर लगा रहेगा, जिसके शीघ्र ही उपलब्ध हो जाने की अपेक्षा की जा रही है।

(द ट्रिब्यून, फरवरी 13)

स. एक संभावना का असामयिक अंत

इक्यावन वर्ष की अवस्था में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का निधन किसी भी स्थिति में त्रासदी होती, पर रेल यात्रा के दौरान जिन परिस्थितियों में यह हुआ, उससे शोक दोगुना हो गया है। जनसंघ के कई कार्यकर्ताओं ने संदेह व्यक्त किया है कि यह दुर्घटना नहीं अपितु हत्या का मामला है। कई परिस्थितिजन्य सबूतों से भी इस संदेह को बल मिलता है। ऐसे में यह अत्यावश्यक है कि इस त्रासदी की पूरी समग्रता एवं अधिकतम तीव्रता से जाँच हो, जैसा कि उत्तर प्रदेश सरकार पहले ही आदेश दे चुकी है और श्रीमती गांधी ने केंद्र की ओर से हरसंभव सहायता का वचन दिया है।

वर्षों तक महासचिव के रूप में जनसंघ को अविराम एवं गौरवशाली सेवाएँ देनेवाले श्री उपाध्याय केवल चंद महीने पहले ही पार्टी के अध्यक्ष बने थे। उनके निधन से न केवल एक संभावनापूर्ण राजनीतिक यात्रा की असामयिक मृत्यु हुई है वरन् इससे जनसंघ नेतृत्व में ऐसे समय शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो गई है, जब वह स्वतंत्र पार्टी के साथ विलय के प्रस्ताव जैसे मुद्दों पर वैचारिक मंथन में व्यस्त थी, जो कि देश के राजनीतिक भविष्य पर काफ़ी गहरा प्रभाव डाल सकते हैं।

(द स्टेट्समैन, फरवरी 13)

दशक के वास्तविक नेता

दीनदयाल उपाध्याय की अकाल मृत्यु देश के लिए घोर क्षति है। इस विनम्र व मृदुभाषी पौधे को राजनीति में श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने रोपा था। अपेक्षाकृत थोड़े से समय में ही उन्होंने एक छोटे से समूह का विस्तार कर इसे सशक्त राष्ट्रीय पार्टी बना दिया। यह उनका ही वैशिष्ट्य था कि उन्होंने चमक-दमक के बजाय चुपचाप पार्टी के महामंत्री के रूप में कार्य किया और अन्यों को जनसंघ के राजनीतिक मंच पर केंद्रीय भूमिका निभाने और समाचार-पत्रों की सुर्खी बनने के लिए छोड़ दिया। वे अभी चंद महीने पहले ही पार्टी के अध्यक्ष बने थे, परंतु पिछले एक दशक से भी अधिक समय से वे पार्टी के असली नेता थे।

उपर से विनम्र दिखनेवाले दीनदयाल में दृढता और सिद्धांतों के प्रति आस्था कूट-कूट कर भरी थी और उनकी चारित्रिक शक्ति असाधारण थी। उन चीज़ों के प्रति, जिन्हें वे राष्ट्र का वास्तविक हित समझते थे, उनका समर्पण असीम था। उनकी राजनीतिक आस्था एवं विचारधारा के बारे में कोई जो भी सोचे, परंतु उनके विरोधियों को भी उनके चरित्र की मूलभूत शुद्धता और सत्यनिष्ठा को स्वीकार करना पड़ा। यदि 51 साल की अपेक्षाकृत कम आयु में उनका असमय निधन नहीं हुआ होता तो निश्चित रूप से

आनेवाले वर्षों में उनका राष्ट्रीय कद और बढ़ता। उनकी मृत्यु की परिस्थितियाँ अवश्य ही सबकी चिंता का विषय होनी चाहिए।

(द इंडियन एक्सप्रेस, फरवरी 13)

—द ऑर्गनाइज़र, फ़रवरी 18, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(vii)

दिल्ली का दीनदयाल को नमन

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की स्मृति में 13 फरवरी को सायंकाल दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विशाल जनसभा हुई, जहाँ जनता ने उन्हें श्रद्धांजलि दी। इस सभा में सभी अग्रणी राजनीतिक दलों के नेताओं ने पंडित दीनदयाल के उजास चरित्र और उनके उत्तुंग व्यक्तित्व को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इसमें दिल्ली के मेयर श्री हंसराज, स्वतंत्र पार्टी के आचार्य कृपलानी और सांसद एन.जी. रंगा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर कार्यवाह श्री बालासाहेब देवरस, भा.क.पा.-दक्षिण के सांसद प्रोफेसर हिरेन मुखर्जी, भारत के उपप्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई, गृहमंत्री श्री वाई.बी. चह्वाण, प्र.सो.पा. के सांसद श्री नाथ पई, मा.क.पा. के सांसद श्री पी. राममूर्ति, सांसद श्री निर्मल चंद्र चटर्जी एवं अन्य लोग सम्मिलित थे। यह सभा लोकसभा अध्यक्ष श्री संजीव रेड्डी की अध्यक्षता में हुई।

उनका जीवन खुली किताब था

दिल्ली प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष डॉ. भाई महावीर की परिचयात्मक टिप्पणी के बाद दिल्ली के मेयर श्री हंसराज गुप्ता ने दिवंगत श्री दीनदयाल की जनता के बीच लोकप्रियता का स्मरण कराया, इतनी विशाल शवयात्रा इस बात का प्रमाण है कि जनता के बीच उनके प्रति कितना प्रेम और सम्मान था। प्रारंभ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक सामान्य कार्यकर्ता के रूप में अपनी यात्रा आरंभ करने के पश्चात् उन्होंने अपने जीवन को कड़े अनुशासन के साँचे में ढाला और अंत में वे विविध आभाओं वाले व्यक्तित्व के रूप में निखरे। परंतु अंततोगत्वा जो जीवन उन्होंने जिया, वह अतिशय सरल व सादा था। उनका जीवन एक खुली किताब है, जिससे हर कोई काफ़ी कुछ सीख सकता है।

कृपलानी ने कहा, 'दैवीय पुरुष'

आचार्य कृपलानी ने दिवंगत श्री उपाध्याय को दैवीय गुणों वाले उत्कट देशभक्त के रूप में चित्रित किया। उनका देश की एकता व अखंडता में पूर्णरूपेण विश्वास था।

इस क्षण उनका निधन एक अपूरणीय राष्ट्रीय क्षति है, इसकी भरपाई कठिन है। अत्यंत दु:खद व त्रासद परिस्थितियों में उनका निधन देश में एक भयावह रुझान को परिलक्षित करता है, जो लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है।

प्रोफेसर एन.जी. रंगा ने श्री दीनदयालजी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में व्याख्यायित किया, जो समर्पण और अविरल कठिन परिश्रम से इस श्रेष्ठ पद पर पहुँचे। उन्होंने जनसंघ को एक महान् राष्ट्रीय पार्टी बनाने में महती भूमिका निभाई। उनका निधन एक राष्ट्रीय त्रासदी है। उनका अचानक व असामयिक निधन एक पीड़ादायी रहस्य है, जिसकी एक उच्चस्तरीय न्यायिक जाँच की आवश्यकता है, जैसी कि लोकसभा के सदन में विभिन्न क्षेत्रों से माँग उठाई जा चुकी है।

भारतीय संस्कृति के मूर्त प्रतीक

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर कार्यवाह श्री बालासाहेब देवरस ने उनके साथ अपने पुराने संबंधों का स्मरण किया, जिसका प्रारंभ 1937 में हुआ था, जब वे एक सामान्य कार्यकर्ता के रूप में संघ में सम्मिलित हुए थे। यद्यपि स्वभावत: वे राजनीति के दोहरे खेल के लिए अनुपयुक्त प्रतीत हो रहे थे, परंतु इन्होंने जिद की कि यह शुचिता एवं सत्यनिष्ठा के मैदान में भी खेला जा सकता है। अंततोगत्वा अपने जीवन में इसको व्यावहारिक धरातल पर दिखाकर उन्होंने अपने अभिकथन को प्रमाणित कर दिया।

भा.क.पा.-दक्षिण के सांसद प्रोफेसर हिरेन मुखर्जी ने कहा कि दिवंगत श्री उपाध्याय को अजातशत्रु (जिसके शत्रु ने जन्म ही न लिया हो) की संज्ञा दी जा सकती है। अपनी अतिशय सादगी, निष्कपटता व सरलता के कारण समाज के सभी वर्गों में उन्हें काफ़ी आदर की दृष्टि से देखा जाता था। एक राजनीतिक संगठन के रूप में जनसंघ से मुखर्जी के अपने मतभेदों के बावजूद उन्होंने कहा कि इसमें एक महान् विशेषता थी, जो सभी को आकर्षित करती थी। और वह है भारतीयता की असली जड़ों की खोज; क्योंकि अपने अतीत को जाने बिना हम भविष्य का निर्माण नहीं कर सकते। यह सचमुच दु:खद है कि इतने विलक्षण व्यक्तित्व का इस तरह असमय एवं त्रासद परिस्थितियों में अंत हो गया।

एक ऐसा व्यक्ति, जिसका कोई शत्रु नहीं

भारत के उप प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने उनके प्रति अपने प्रशंसा भाव को अभिव्यक्ति देते हुए कहा कि श्री उपाध्याय ने निष्काम भाव से राष्ट्र की सेवा की। देश की एकता व एकात्मता में उनका मजबूत और असांशयिक विश्वास था। भारतीय संस्कृति उनकी प्रेरणास्रोत थी और वे इसी के अनुरूप देश का विकास चाहते थे। उनका जीवन कर्तव्य के प्रति निष्काम आस्था एवं ध्येय के प्रति नि:शेष समर्पण का उदाहरण है। त्रासद व रहस्यमय परिस्थितियों में हुए उनके निधन को देखते हुए इसकी विस्तृत जाँच की

आवश्यकता स्पष्ट दिखती है और वे आश्वस्त हैं कि इससे रहस्य को उजागर करने में सहायता मिलेगी।

भा.क.पा.-वाम के सांसद श्री पी. रामामूर्ति ने भी श्रद्धांजलि देनेवालों की पांत में सम्मिलित होते हुए कहा कि दलगत मतभेदों के बावजूद दिवंगत नेता के प्रति उनके मन में अत्यंत आदर का भाव था।

द्रमुक सांसद श्री सेझियन का मानना था कि श्री उपाध्याय का निधन केवल एक विशेष राजनीतिक पार्टी का नहीं बल्कि पूरे देश की क्षति है। जनसंघ के कालीकट अधिवेशन में उनकी जो छवि उभरी, वह एक शांत व संयमित दृष्टिकोण वाले सरल, स्पष्टवादी व ईमानदार नेता की थी।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सांसद श्री नाथ पई ने स्मृतियों में जाते हुए बताया कि किस तरह से वे 1964 में पंडित नेहरू के निधन के बाद हुई शोक सभा में ठीक इसी जगह मिले थे। तब उन्हें कतई अंदेशा नहीं था कि उन्हें चार साल बाद ठीक इसी जगह श्री उपाध्याय के निधन पर शोकसभा में सम्मिलित होने के लिए बुलाया जाएगा। यह त्रासदी इसलिए और भी मार्मिक हो जाती है कि वे इस देश की जनता के एकीकरण के महान् ध्येय में जुटे हुए थे, जहाँ सबकुछ है सिवाय एकता के। उनके निधन से उपजे शून्य को भर पाना कठिन होगा। यदि राष्ट्रीय संकट की इस घड़ी में हम सभी अपने मतभेदों को भूलकर एकजुट खड़े हो जाएँ तो यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

चह्वाण ने कहा, 'आदर्श भारतीय'

राष्ट्र के लिए उनकी निष्काम सेवाओं की प्रशंसा करते हुए गृह मंत्री श्री एस.बी. चह्वाण ने कहा कि श्री उपाध्याय ऐसे व्यक्तित्व थे, जिनमें आदर्श भारतीय नागरिक के सारे गुण थे। मूलतः वे एक सहज, सरल व कर्मठ कार्यकर्ता थे, जिससे उन्हें लोगों के साथ अपनापन स्थापित करने में सहायता मिलती थी। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि उसके प्रभाव से कदाचित् ही कोई बच पाता था। वे अपने कठिन परिश्रम से आगे बढ़ते हुए इस उभरते व विस्तृत होते संगठन के सर्वमान्य नेता बने। उन्होंने भारत सरकार की तरफ़ से आश्वासन दिया कि उनकी त्रासद मृत्यु के कारणों की पड़ताल में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी जाएगी।

लोकसभा के अध्यक्ष श्री संजीव रेड्डी ने कहा कि उन्होंने आज तक केवल उपाध्याय की प्रशंसा ही सुनी है। इसलिए उनके अचानक व असामयिक निधन की सूचना से वे अत्यंत दुःखी हैं। उनके निधन की त्रासद परिस्थितियों को देखते हुए यह और भी पीड़ादायक हो गया है। उन्होंने इस दुःखद घटना की त्वरित व समग्र जाँच के लिए उप प्रधानमंत्री व गृह मंत्री की ओर से दिए गए आश्वासन की सराहना की।

तीसरी अस्वाभाविक मृत्यु

निर्दलीय सांसद श्री एन.सी. चटर्जी ने स्मरण किया कि किस तरह जनसंघ के लब्ध प्रतिष्ठित संस्थापक दिवंगत श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने श्री उपाध्याय के अप्रतिम गुणों और योग्यता की प्रशंसा करते हुए कहा था कि अगर उन्हें उनके जैसे कुछ और कार्यकर्ता मिल जाते तो वे देश की सूरत बदल देते।

जनसंघ के पूर्व अध्यक्ष श्री पीतांबर दास ने श्री उपाध्याय को पार्टी के मुख्य शिल्पियों में से एक के रूप में व्याख्यायित किया। उन्होंने स्मरण दिलाया कि किस तरह यह वर्तमान त्रासदी अपनी तरह की तीसरी घटना है, क्योंकि इससे पहले संघ के दो अन्य पूर्व अध्यक्षों—डॉक्टर मुखर्जी एवं डॉक्टर रघुवीर—की भी त्रासद परिस्थितियों में अस्वाभाविक मौत हुई थी।

भारतीय क्रांति दल के श्री गोपाल शास्त्री पूर्व वक्ताओं की बातों से पूरी तरह समर्थन व संबद्धता जताते हुए दिवंगत देशभक्त को श्रद्धांजलि देनेवालों की पाँत में सम्मिलित हुए।

सांसद व भारतीय जनसंघ के पूर्व अध्यक्ष श्री बलराज मधोक ने 21 अक्तूबर, 1951 को जनसंघ की स्थापना के समय से ही दीनदयालजी के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों का स्मरण किया। संघर्ष के इस कठिन वर्तमान में उनकी त्रासद व असामयिक मृत्यु एक असहनीय झटका है और दिवंगत नेता को हमारी यही एकमात्र उचित श्रद्धांजलि होगी कि हम दृढसंकल्प लें कि तब तक विश्राम नहीं करेंगे, जब तक कि हम अंततः अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेते।

सं.सो.पा. के सांसद मधु लिमये का मानना था कि वर्तनाम त्रासदी में इस बात के सारे संकेत मिलते हैं कि यह एक राजनीतिक हत्या है। उनकी धारणा थी कि यह इसलिए और भी निंदनीय है, क्योंकि यह सीधे-सीधे लोकतंत्र के संस्थापन के लिए प्राणघातक ख़तरे का संकेत है।

उन्होंने सहमति के पुल बनाए

सांसद और दिवंगत नेता की जगह लेने के लिए जनसंघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने सभी वक्ताओं के पश्चात् अपने संबोधन में स्मरण दिलाया कि किस तरह कालीकट अधिवेशन में श्री उपाध्याय के अध्यक्षीय जुलूस पर पुष्पवर्षा की गई थी और किस तरह कल उनकी शवयात्रा पर पुष्पांजलि अर्पित की गई। अपार प्रतिभाशाली और बहुमुखी व्यक्तित्व वाले दिवंगत नेता एक जन्मजात देशभक्त थे। पाञ्चजन्य के संपादक के रूप में उन्होंने एक साथ संपादक, अक्षर योजक व मुद्रक की भी भूमिका निभाई। सादा जीवन-उच्च्च विचार के अद्भुत सम्मिश्रण वाले दीनदयालजी

भारतीय संस्कृति के मूर्तमान प्रतीक थे। जनसंघ की वर्तमान प्रतिष्ठा और उसकी स्थिति का श्रेय उन्हें जाता है। उनका होना भर ही आस-पास के लोगों को मृदु व उदार बनाता था और उन्हें मतभेद मिटाने और सहमति के पुल बनाने में महारत थी। अब इस संगठन को उनके उन सपनों व आदर्शों को पूरा करना है, जिनकी प्राप्ति के लिए वे जिए और जी-जान से प्रयासरत रहे।

अटलजी के भाषण से प्रभावित और द्रवित बहुत से लोग रो पड़े। उसके बाद दिवंगत आत्मा के सम्मान में लोगों ने खड़े होकर एक मिनट का मौन रखा।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 18, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(viii)

लिंकन, ट्रॉटस्की, गांधी और कैनेडी, अब दीनदयाल

जब यह आलेख लिखा जा रहा है (26 फरवरी) तो तब तक पंडित दीनदयालजी की कायरतापूर्ण हत्या हुए दो सप्ताह बीत चुके हैं। प्रेस से टुकड़े-टुकड़े में उपलब्ध सूचनाओं से यह लगता है कि जाँच आगे बढ़ रही है, परंतु हद से अधिक मंथर गति से। यह समझ में आने योग्य बात है कि पुलिस अधिकारियों के हाथ में उपलब्ध सभी सूचनाएँ प्रेस को नहीं दी जा सकतीं, परंतु यह समझा जाता है कि पुलिस अब तक वास्तविक हत्यारों तक नहीं पहुँच पाई है—उनके आकाओं तक तो दूर की बात है, और यह कि रहस्यमय 'मेजर शर्मा' का पुलिस को छकाना जारी है।

यह स्मरण किया जा सकता है कि इतिहास में ज्ञात राजनीतिक हत्याओं के अधिकांश महत्त्वपूर्ण मामलों में हत्यारे या तो अपराध स्थल से ही पकड़ लिये गए हैं या कुछ घंटे, नहीं तो कुछ दिनों के भीतर पकड़ लिये गए हैं। 22 नवंबर, 1963 को तब दोपहर बाद के ठीक 12:30 बजे थे, जब डलास राजमार्ग पर तीन गोलियाँ चली थीं और अमरीका के राष्ट्रपति जॉन कैनेडी सिर के पीछे के हिस्से में एक तीव्र गति की गोली के लगने से अपनी खुली नीली लिमोजिन में गिर पड़े थे। आधे घंटे बाद उनकी मृत्यु हो गई। इस बीच हत्यारों की तलाश बिजली की गति से होने लगी और लगभग 1:45 बजे थे कि अपराध स्थल से लगभग सात ब्लॉक दूर टेक्सास सिनेमा पर पुलिस का एक बड़ा दल उतरा, फिल्म के प्रदर्शन को रुकवाया, लाइट जलाने का आदेश दिया और तीसरी पंक्ति से एक आदमी को धर दबोचा। यह आदमी राष्ट्रपति कैनेडी का हत्यारा ली हार्वे ओस्वाल्ड था।

अमरीकी इतिहास में राष्ट्रपतियों की जान पर हमले के आठ प्रयास हो चुके हैं, जिसमें से कैनेडी पर हुए हमले समेत चार सफल रहे। हिंसा में मारे गए तीन अन्य

राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, जेम्स एब्राम गारफील्ड और विलियम मैकिनेली थे।

लिंकन का हत्यारा एक रंगमंच अभिनेता जॉन विल्केस बूथ था, जि ने अपने अपराध स्थल के रूप में एक थियेटर ऑडिटोरियम को चुना था। यह हत्या फोर्डस थियेटर, वाशिंगटन में 14 अप्रैल, 1865 को हुई थी। उसी समय शुरू हुई हत्यारे की तलाश 11 दिन बाद समाप्त हुई जब बूथ और उसका एक सहयोगी डेविड हेरॉल्ड वर्जीनिया में एक खलिहान में पकड़े गए।

16 वर्ष बाद, जुलाई 1881 में राष्ट्रपति गारफील्ड एक पागल कैप्टन चार्ल्स गुटेड की गोलियों के शिकार बने, जो इस बात से क्रुद्ध था कि राष्ट्रपति ने फ्रांस में अमरीकी राजदूत बनाने के उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। यह घटना एक रेलवे स्टेशन पर हुई और एक टिकट एजेंट ने हत्यारे को मौके पर ही दबोच लिया तथा पुलिस के वहाँ पहुँचने तक उसे कसकर पकड़े रखा।

राष्ट्रपति मैकिनेली के मामले में भी हत्यारा लिओर एफ. जॉल्गोजी मौके पर ही पकड़ लिया गया। यह घटना सितंबर, 1901 में तब हुई जब राष्ट्रपति अपने सुरक्षा एजेंटों की राय के विरुद्ध हज़ारों आगंतुकों के साथ हाथ मिलाने के समारोह में सम्मिलित हो रहे थे। इन आगंतुकों में से एक के दाएँ हाथ में 'पट्टी' बँधी थी। पट्टी के नीचे भरी हुई रिवॉल्वर थी। जैसे ही मैकिनेली ने मैत्रीभाव से हाथ बढ़ाया, पट्टी वाले व्यक्ति जोल्गोजी ने दो बार गोली चला दी। जहाँ कुछ सैनिक तत्काल घायल राष्ट्रपति को सहायता के लिए पहुँचे, वहीं सीक्रेट सर्विस एजेंटों ने हत्यारे को पकड़ लिया और मारकर ज़मीन पर गिरा दिया।

गारफील्ड और मैकिनेली की हत्याएँ व्यक्ति विशेष की कार्रवाई मानी जाती हैं। कैनेडी के बारे में भी ऐसा ही समझा जाता है, यद्यपि इस मुद्दे पर एक विवाद यूरोप और अमरीका में जारी है। लिंकन के मामले में लगभग दस से बारह षड्यंत्रकारी थे, जिनमें से तीन (बूथ के अलावा, जो पकड़े जाने पर पुलिस से हमले का प्रतिरोध करते हुए मारा गया—स्वयं की गोली से या पुलिस की गोली से, यह अब भी अनिर्णीत है) को फाँसी दे दी गई।

परंतु इन सबकी तुलना में ट्रॉटस्की की हत्या सबसे व्यवस्थित रूप से सुनियोजित थी। इसे स्टालिन ने रूस की गोपनीय पुलिस की कुख्यात सेक्शन ओएस-2 के माध्यम से अंजाम दिया। यह विशेष कार्यों का विभाग था, जिसके कर्मचारी उनके शत्रुओं द्वारा 'भ्रमणकारी हत्यारों' के रूप में व्याख्यायित किए जाते थे। स्टालिन जानता था कि ट्रॉटस्की के राजनीतिक पराभव के बावजूद उसके पास रूस में प्रसंशकों की एक बड़ी फौज थी और इसलिए स्टालिन की ओर से खुले तौर पर उसकी हत्या से एक ख़तरनाक स्टालिन विरोधी आंदोलन शुरू हो सकता था। इसलिए ट्रॉटस्की को मारा जाना था—

परंतु रूस में नहीं। तब उसे सीमा की ओर भगाया गया और नॉर्वे में शरण लेने के लिए बाध्य किया गया।

ओएस-2 के एजेंटों द्वारा पीछा किए जाने पर ट्रॉटस्की तुर्की चला गया और वहाँ से फ्रांस और अंततः मेक्सिको पहुँचा, जहाँ मेक्सिको के अधिकारियों और उसके स्थानीय समर्थकों ने उसकी सुरक्षा के लिए जहाँ तक समझा, विश्वसनीय व्यवस्था की। मेक्सिको सिटी के निकट उसका घर वास्तव में एक दुर्ग था। बाहरी दीवार के द्वार की सुरक्षा में मेक्सिकन सीक्रेट सर्विस के लोग तैनात थे। दीवार के भीतर सशस्त्र ट्रॉटस्कीवादी दिन और रात निगरानी में जुटे थे। रात में बागीचे पर सर्चलाइट फेंकी जाती थी। छत पर दो मशीनगन की तैनाती की गई थी।

मेक्सिको में ट्रॉटस्की के आने के तीन वर्ष बाद—जब मई, 1940 में ओएस-2 के जवानों ने आक्रमण किया तो सुरक्षा व्यवस्था अपर्याप्त सिद्ध हुई। आक्रमणकारियों को मार भगाया गया और ट्रॉटस्की बच गए। परंतु तीन माह बाद एक गोपनीय कार्रवाई सफल रही। इस कार्रवाई में मुख्य व्यक्ति एक युवा था, जिसने अपना नाम जैकस मोर्नाड बताया, परंतु उसका वास्तविक नाम रैमोन मर्केडर था (मेक्सिकन अधिकारियों को पूरे दस वर्ष बाद यह पता चला)।

अपनी माँ केरिडेड मर्केडर के प्रभाव के तहत ओएस-2 एजेंट बना रैमोन मर्केडर ने मैडम ट्रॉटस्की की एक निकट मित्र, जिसे ट्रॉटस्की घर के लोगों में एक मानते थे, सिल्विया एगेलॉफ से सफलतापूर्वक विवाह कर के ट्रॉटस्की परिवार तक पहुँच प्राप्त कर ली। यह विवाह दो वर्ष से कुछ अधिक अवधि तक चला, जिसके दौरान रैमोन ने ट्रॉटस्की का भरोसा भी जीत लिया। अगस्त की एक चिलचिलाती दोपहर को यह युवक ट्रॉटस्की के अध्ययन कक्ष में प्रविष्ट हुआ और उस बुजुर्ग को अक़ेला पाकर अपने रेन-कोट से बर्फ तोड़ने का सुआ निकाला और पूरी शक्ति के साथ उसे ट्रॉटस्की के सिर में घुसा दिया। सुरक्षाकर्मी दौड़कर कक्ष में पहुँचे और रैमोन को गिरफ़्तार कर लिया। आक्रमण के 24 घंटे बाद ट्रॉटस्की की मृत्यु हो गई। मेक्सिको में जुरमाने की सज़ा नहीं है; इसलिए मर्केडर, बल्कि मोनार्ड रैमोन ने अपने जिस वास्तविक नाम को कभी उद्घाटित नहीं किया, को 20 वर्ष कारावास की सज़ा दी गई। सज़ा सुनाए जाने के कुछ ही समय बाद, मास्को ने रैमोन मर्केडर की इस 'वीरतापूर्ण कार्रवाई' के लिए सोवियत यूनियन के ऑर्डर ऑफ़ हीरो के सम्मान की घोषणा की। लगभग इसी समय कैरिडेड मर्केडर नामक बुजुर्ग महिला को स्टालिन के आदेश पर स्टालिन द्वारा सम्मानित किए जाने के लिए क्रेमलिन ले जाया गया।

स्वतंत्र भारत की पहली बड़ी राजनीतिक हत्या 30 जनवरी, 1948 को हुई। उस शाम 5 बजे जब महात्मा गांधी बिरला हाउस में अपनी प्रार्थना सभा के लिए जा

रहे थे, उन्हें बिल्कुल निकट से तीन गोलियाँ मारी गईं। मौके पर ही गिर पड़े, महात्माजी को बेहोशी की हालत में उनके कमरे में लाया गया और कुछ ही क्षण बाद उनकी मृत्यु हो गई। हत्यारे नाथूराम विनायक गोडसे को तत्काल पकड़ लिया गया। जब जाँच आगे बढ़ी तो उद्घाटित हुआ कि गोडसे का अपराध किसी एक व्यक्ति की कार्रवाई नहीं थी। धर-पकड़ तेजी से शुरू हुई और वे सभी, जिन पर गोडसे के साथ सह-षड्यंत्रकारी होने का संदेह था, एक पखवाड़े के भीतर पकड़ लिये गए। बाडगे, जो बाद में मामले में सरकारी गवाह बन गया, को 31 जनवरी को हिरासत में लिया गया और गोपाल गोडसे को 5 फरवरी, डॉ. परचुरे को उनके ग्वालियर स्थित आवास से 4 फरवरी को गिरफ़्तार किया गया। शंकर किस्तैया को 6 फरवरी को और आप्टे तथा करकरे को 14 फरवरी को गिरफ़्तार किया गया। निःसंदेह मदनलाल पाहवा को पहले ही बम कांड के बाद गिरफ़्तार कर लिया गया था। न्यायालय ने नाथूराम, गोपाल, परचुरे, शंकर, आप्टे, करकरे और मदनलाल, इन सात लोगों को दोषी पाया। इस मामले में रखे गए आठवें आरोपी श्री सावरकर को दोषी नहीं पाया गया और बरी कर दिया गया। इस तरह इस मामले में भी, क़ानून के लंबे हाथ हत्या के एक पखवाड़े के भीतर अपराध में सम्मिलित सभी प्रमुख लोगों (तीन व्यक्ति फरार घोषित किए गए और उन पर अनुपस्थिति में मुक़दमा चला) तक पहुँचने में समर्थ रहे।

स्वतंत्रता के इन दो दशकों में पंडित दीनदयाल उपाध्याय अखिल भारतीय ख्याति के दूसरे राजनीतिक नेता रहे, जिनकी हत्या की गई। हत्या का उद्देश्य स्पष्ट रूप से राजनीतिक है। परंतु ऊपर संदर्भित किए गए मामलों के बिल्कुल विपरीत हत्यारों ने इस मामले को दुर्घटना का स्वरूप देकर अपना अपराध छिपा लिया। रेलवे दुर्घटना में जहाँ तक पुलिस का संबंध है, अंततः शव की बरामदगी और औपचारिक पोस्टमार्टम इत्यादि पूरे मामले की समाप्ति है। यह जानकारी कि पंडित दीनदयालजी सदैव अकेले यात्रा करते हैं, ने अवश्य हत्यारों को अपने अपराध की योजना इस तरह बनाने के लिए आकर्षित किया होगा, और एक हद तक वे सफल रहे। लगभग 20 घंटे तक काफ़ी भ्रम बना रहा कि यह दुर्घटना का मामला है या हत्या का। दरअसल, अगली सुबह दिल्ली में अंग्रेज़ी दैनिकों में लगभग सभी अग्रणी आलेखों में, जिसमें श्री उपाध्यायजी की मृत्यु पर शोक जताया गया, एक तरीक़े से जनसंघ नेताओं की इस बात के लिए आलोचना की गई कि वे अपने-अपने इस संदेह को अभिव्यक्त कर रहे हैं कि श्री उपाध्याय की मृत्यु हत्या का मामला है। हत्या के पाँच घंटे बाद शव की शिनाख्त हुई। और उसके बाद पुलिस को इस निष्कर्ष तक पहुँचने में बीस घंटे और लगे कि यह प्रथम दृष्ट्या हत्या का मामला है और इसी रूप में दर्ज किया जाए और

हत्यारों का पीछा शुरू किया जाए।

तथापि पूरे देश को आशा है कि उत्तर प्रदेश पुलिस अधिकारियों की शुरुआती कमजोरियों के बावजूद वह केंद्रीय जाँच ब्यूरो की सहायता और निर्देशन से इस जघन्य अपराध के दोषियों का पता लगा लेगी।

(एल.के.ए.)

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 3, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(ix)
आकलन और मित्र

दीनदयाल की हत्या गंभीरतम उत्तेजना का एक कृत्य था। जनसंघ अगर चाहता तो अपने सबसे बड़े राजनीतिक शत्रुओं, राष्ट्र-विरोधी तत्त्वों के विरुद्ध जनाक्रोश को भड़का सकता था। बीस वर्ष पूर्व कांग्रेस बुरी तरह इस प्रलोभन की शिकार हुई थी और 22,000 लोगों को गिरफ़्तार किया गया, करोड़ों की संपत्ति नष्ट हुई और कई मासूम लोगों को ज़िंदा जला दिया गया। परंतु जनसंघ के नेतृत्व ने अपनी उच्चस्तरीय राष्ट्रभक्ति और परिपक्व राजनीतिक बुद्धि की गरिमा और शांति के साथ स्वयं को संयमित किया। जब अपने बिछुड़े हुए नेता के लिए उनका हृदय छलनी हुआ जा रहा था और आँसू सूख नहीं रहे थे, तब उन्होंने स्वयं को और अपने असंख्य कार्यकर्ताओं को कोई क्रोधासिक्त बात बोलने और ऐसी कोई कार्रवाई करने से रोका।

सत्य छिपाने के लिए मिथ्या प्रचार

परंतु इन सबके बीच, राष्ट्रविरोधी तत्त्व एक योजना और उद्देश्य के साथ कहानियाँ गढ़ चुके थे, जो मात्र हत्यारों और उनके बेशर्म आकाओं को मदद और सहूलियत दे सकती थी। यह उन लोगों के स्वास्थ्य के लिए और देश की शांति के लिए अच्छा होगा कि उनके शब्दों या गतिविधियों से राजनीतिक दावानल फैले, इससे पूर्व ही उन्हें सुरक्षात्मक हिरासत में ले लिया जाए।

हम यह कहने की स्थिति में हैं कि सुराग पर सुराग एक निश्चित दिशा की ओर संकेत कर रहे हैं, परंतु हम उनका नाम नहीं लेंगे—कम-से-कम अभी नहीं। हम लगभग एक दर्ज़न लोगों को जानते हैं, जो उस दुर्भाग्यपूर्ण रात को अपने आवासों से संदिग्ध रूप से ग़ायब थे और लगभग इतने ही मुग़लसराय में और उसके आसपास संदिग्ध रूप

से उपस्थित थे। हम जानते हैं कि ये सभी एक विशेष अतिवादी पार्टी से जुड़े हैं। हम अब उन दो लोगों के बारे में जानते हैं, जो पिछले दो माह में गोपनीय ढंग से निकट मित्र बने थे, जो यह महसूस करते थे कि जनसंघ की प्रगति रोकने के लिए दीनदयाल की हत्या अति आवश्यक है। और हम जानते हैं कि वे दोनों एक ही पार्टी के सदस्य हैं। इसलिए हम आसानी से समझ सकते हैं कि उनके मित्रगण लोगों को और यहाँ तक कि पुलिस को भ्रमित करने के लिए झूठ पर झूठ गढ़ने में क्यों लिप्त हैं।

टीपू सेना मुख्यालय से

पंडितजी की मृत्यु दुर्घटना में हुई थी, यह झूठ गढ़नेवाला संभवत: पहला आदमी वाराणसी का यू.एन.आई. संवाददाता था। उससे यह समाचार किसने गढ़वाया? दुर्घटना का सिद्धांत क्षणिक साबित हुआ—यद्यपि आकाशवाणी ने भी यह कहकर कि यह डकैती का मामला था, दूसरा झूठ प्रसारित कर दुर्घटना के सिद्धांत को हवा देने का प्रयास किया। परंतु झूठ बोलनेवाले यह बताना भूल गए कि डकैतों को दीनदयाल जैसे ग़रीब आदमी, जिसके पॉकेट में मात्र 26 रुपए थे, पर क्यों हमला किया, श्री एम.पी. सिंह पर क्यों नहीं, जिनके पास अधिक पैसा और काफ़ी अच्छा माल-असबाब था; डकैतों ने हत्या क्यों की; और डकैतों ने डकैती क्यों नहीं की और वे नकदी या सूटकेस या कलाई घड़ी ले जाना क्यों भूल गए! दुर्योग से, दूसरा झूठ फैलानेवाला भी वही यू.एन.आई. संवाददाता था। किसने फिर से उससे यह समाचार गढ़वाया?

इन दो हास्यास्पद झूठे समाचारों के तत्काल स्वाभाविक मौत मरने के बावजूद प्रेस के एक हिस्से ने तीसरा झूठ प्रस्तुत किया, जो और अधिक हास्यास्पद था। यह झूठ यह था कि पंडितजी को 'भा.ज.स. और आर.एस.एस. के अतिवादियों', जो भी उनका अर्थ था, ने समाप्त कर दिया। उनमें से कुछ ने श्री बलराज मधोक का नाम लिया। इस घृणित अपराध पर टिप्पणी करते हुए श्री वाजपेयी और श्री मधोक ने कहा कि वे इस निर्लज्ज आरोप का खंडन करने की भी परवाह नहीं करते, क्योंकि यह उपेक्षा से भी नीचे का आरोप है। श्री वाजपेयी ने कहा कि 'यह ऐसा कहने के समान है कि गांधी की हत्या के लिए नेहरू और पटेल ने गोडसे को भाड़े पर लिया था।'

'एशिया', 'रेडिएंस' और 'ब्लिट्ज'

हमारे संपूर्ण संज्ञान के अनुसार यह निर्लज्ज आरोप सर्वप्रथम नई दिल्ली के रेस्तराओं में कुछ निश्चित सांसदों द्वारा प्रचारित किया गया, ये सांसद उसी दल से जुड़े हैं, जिस दल का उल्लेख ऊपर दो बार किया गया है। इसे दिल्ली कांग्रेस के नेता मीर मुश्ताक अहमद द्वारा संपादित दिल्ली के उर्दू साप्ताहिक एशिया द्वारा प्रकाशित किया गया। यही

निर्लज्ज आरोप दिल्ली से जमात-ए-इस्लामी के अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'रेडिएंस' में बहुत उल्लास के साथ दोबारा प्रकाशित किया गया। बाद में 'ब्लिट्ज' (2 मार्च) ने इस समाचार को उठाया। और हमें इसी तरह के आरोप के साथ 'टीपू सेना के मुख्यालय' से दो पोस्टकार्ड प्राप्त हुए, जिन पर 'ट्रिप्लीकेन, 1 मार्च' की मुहर लगी थी!

पूरी निर्लज्जता के साथ, डॉ. ए.एम. तनवीर—जिनका दावा है कि वे भी उसी ट्रेन से यात्रा कर रहे थे और उनका यह भी दावा है कि उन्होंने 12 फरवरी को पंडितजी की अंत्येष्टि में हिस्सा लिया था—दोनों बयान संदिग्ध हैं—ने घटना के दस दिन बाद यह खोज की कि आर.एस.एस. और जनसंघ के अतिवादियों ने दीनदयालजी की हत्या की!

पुलिस ने बहुत बुद्धिमानी से तनवीर को हिफाजती हिरासत में ले लिया। कई अन्य लोगों से भी इसी तरह का व्यवहार करने की आवश्यकता है। यह स्पष्ट है कि अपराध पर परदा डालने, लोगों को भ्रमित करने और पुलिस को हत्या की गंध न लगने देने, जाँच की दिशा जिस ओर जा रही है—के लिए वे जानबूझ कर या किन्हीं और कारण से हत्यारों का ही खेल खेल रहे हैं। उनकी सुरक्षा, देश की शांति और जाँच की सफलता के लिए जितनी जल्दी उन्हें निगरानी में ले लिया जाए, उतना ही अच्छा है।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 10, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(x)

उन्होंने हमारे दीनदयाल को कैसे मारा

(हमारे वाराणसी संवाददाता)

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या की जाँच में एक सप्ताह तक कोई प्रगति न होने के बाद, इस सप्ताह फिर कुछ प्रगति हुई है। पंडितजी के कुरता, जैकेट, चश्मे और पुस्तकों के झोले समेत उनके सारे सामान का पता लगा लिया गया है। उसकी औपचारिक शिनाख्त आज (6 मार्च) होनेवाली है।

परंतु यह इस रक्तरंजित नाटक का मात्र एक-तिहाई हिस्सा है। हत्यारों को पकड़ा जाना शेष है और उनके राजनीतिक आकाओं और भुगतानकर्ताओं का पता लगना शेष है।

हमने पिछले सप्ताह लालता और जोगिंदर की गिरफ़्तारी का समाचार दिया था। जोगिंदर सिंह को छोड़ा जा चुका है, क्योंकि उसके पास से कुछ भी जानकारी नहीं मिली। नवीनतम गिरफ़्तारी रेलवे के सफाईकर्मी भरत डोम की हुई है, जिसके पास से जैकेट और कुरता मिला है। इससे पूर्व पुलिस ने रामअवध नामक व्यक्ति को भी

गिरफ़्तार किया था। छोटे लालता ने उसका नाम बताया था कि इसी ने उससे पंडितजी के कूपे में जाकर होल्डाल उठाने को कहा था।

मेजर शर्मा मिले

मेजर शर्मा के रहस्य का भी समाधान हो गया है। मेजर सुरेंद्र मोहन शर्मा सेना में असली मेजर हैं। वह लखनऊ से गोमो के रास्ते राँची जा रहे थे। उनके लिए दो बोगियों में शायिका आरक्षित थी—एक उस बोगी में, जो सीधे गोमो जा रही थी और दूसरी उसमें, जिसमें दीनदयालजी थे। मेजर शर्मा पहली बोगी में बैठे और दीनदयालजी की बोगी में कभी गए ही नहीं। यद्यपि उन्हें पूछताछ के लिए बुलाया जा रहा है।

यद्यपि यह प्रश्न बना हुआ है कि सी डिब्बे में गहरे रंग का, नाटे क़द का और बड़ी मूँछों वाला व्यक्ति कौन था, जो श्री राय के अनुसार फैजाबाद में उतर गया था। उसकी तलाश अभी जारी है।

जौनपुर में क्या हुआ

जैसे-जैसे विवरण मिलते रहे, हमें पता लगा कि जौनपुर में कन्हैया राजा साहब के पत्र के साथ पंडितजी को देखने आया। कन्हैया ने आरक्षण सूची देखी और उसमें पंडितजी का नाम तलाशा तथा प्लेटफॉर्म की ओर से उनकी खिड़की पर खटखटाया। पंडितजी तत्काल नहीं उठे। कन्हैया दरवाज़े की ओर गया और 'अटेंडेंट', 'अटेंडेट' पुकारा। परंतु दरवाज़ा खोलने के लिए कोई अटेंडेंट नहीं आया।

इस बीच कन्हैया द्वारा उनकी खिड़की खटखटाने के कारण दीनदयालजी उठे और नीचे उतरे। कन्हैया ने उन्हें राजा साहेब का पत्र दिया। चूँकि पंडितजी अपना चश्मा अंदर भूल गए थे और पत्र नहीं पढ़ सके, तो वे कन्हैया को अंदर ले गए, पत्र पढ़ा और उसे राजा साहब को यह कहने को कहा कि वह शीघ्र ही उन्हें उत्तर देंगे। चूँकि ट्रेन रवाना होनेवाली थी, इसलिए पंडितजी उठे और कन्हैया को छोड़ने बोगी के निकास तक आए।

शौचालय में हत्या

उसके बाद क्या हुआ? कोई भी निश्चित रूप से कुछ नहीं जानता। इस बात की पूरी संभावना है कि पंडितजी अपने कूपे में जाने से पहले लघुशंका के लिए शौचालय गए होंगे। ऐसा लगता है कि हत्यारों—जो जौनपुर में ट्रेन के खुलते समय चढ़े हो सकते हैं—ने दीनदयालजी को शौचालय में धकेला और वहाँ उनकी हत्या कर दी। यह तथ्य कि जब शव बरामद हुआ तो वह जूते पहने हुए थे—इस अवधारणा को बल देगा। अगला तथ्य कि पोस्टमार्टम में उनके मूत्राशय में मूत्र बिल्कुल नहीं मिला, भी इसकी पुष्टि करता है।

परंतु इससे थोड़ा भिन्न घटनाक्रम भी संभव है। ट्रेन जौनपुर से 12:12 बजे रात को रवाना हुई। इसने गोमती नदी के छोटे पुल को पार किया और 12:21 बजे जाफराबाद में थोड़ी देर के लिए रुकी (यह रात 1:14 बजे वाराणसी पहुँची)। यह संभव है कि हत्यारे जाफराबाद में चढ़े। दीनदयालजी की आदत के अनुसार—यदि ऐसा हुआ होगा (कृपया ऊपर देखें) तो उन्होंने खटखटाने के प्रत्युत्तर में कूपे का दरवाज़ा खोला होगा। एक लंबा गंदा सा भारी-भरकम आदमी चेहरा ढके हुए अंदर प्रवेश किया होगा और तत्काल उनकी बाँह मरोड़ी होगी, उन्हें ज़मीन पर गिराया होगा, उनके ऊपर बैठ गया होगा और उनके सिर पर प्रहार किया होगा, ताकि इसके बाद वे अपना होश खो बैठें और कुछ भी याद नहीं रहे।

प्रथम श्रेणी डिब्बे से तृतीय श्रेणी का शोर

हत्यारे जौनपुर या जाफराबाद, कहीं भी चढ़े हों, यह स्पष्ट है कि घटना का बड़ा हिस्सा शौचालय में घटा। निःसंदेह ऐसा हुआ, क्योंकि पानी और फिनाइल के प्रचुर मात्रा में उपयोग से शौचालय में आसानी से ख़ून धोया जा सका। तथ्य से इसकी पुष्टि होती है कि कूपे में या होल्डाल पर ख़ून का कोई चिह्न नहीं है।

तृतीय श्रेणी की आधी बोगियों में बैठे एक से अधिक यात्रियों ने बताया कि उन्होंने जाफराबाद और वाराणसी के बीच अजीब और तेज़ आवाज़ें सुनी थीं। बल्कि उनमें से एक ने दूसरे से कहा, 'यह प्रथम श्रेणी से तृतीय श्रेणी जैसी आवाज़ें कैसे आ रही हैं?' (वह शौचालय, जिसमें एम.पी. सिंह बहुत देर तक बंद पाए गए, तृतीय श्रेणी डिब्बे से सटा हुआ था)। परंतु यह जाड़े की रात थी और शीघ्र ही सभी लोग सो गए—और पंडितजी चिरनिद्रा में सो गए।

हम नहीं जानते कि पंडितजी चीखने की स्थिति में भी थे या नहीं। परंतु निःसंदेह हत्यारे उनकी जान लेते समय कुछ ज़ोर से चिल्लाए थे।

वाराणसी के एस.एस.पी. श्री राधेश्याम शर्मा के नेतृत्व में स्थानीय पुलिस को अब जाँच से संबद्ध किया जा चुका है और श्री शर्मा और सी.बी.आई. के श्री जॉन लोबो के बीच अच्छा सहयोग है। परंतु यह आश्चर्यजनक है कि रहस्य को सुलझाने में तेज़ी लाने के लिए अब तक पुरस्कार की घोषणा क्यों नहीं की गई है। जनसंघ नेताओं के पास बड़ा इनाम घोषित करने के आग्रह और इसके लिए पैसा देने के लिए अनगिनत पत्र आ चुके हैं। परंतु जनसंघ नेता यह काम नहीं कर सकते, केवल सरकार ही ऐसा कर सकती है। ख़तरा यह है कि समय बीतने के साथ षड्यंत्र की महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ नष्ट हो सकती हैं या नेपाल या पूर्वी पाकिस्तान चली जा सकती हैं।

जनसंघ नेताओं को कोई संदेह नहीं है कि वास्तविक हत्यारे के पकड़े जाने से षड्यंत्र का परदाफाश नहीं होगा। पेशेवर हत्यारों के पास दीनदयाल जैसे क़द के राजनीतिक नेता की हत्या के लिए कोई कारण नहीं होगा। हत्यारों के आकाओं के राजनीतिक उद्देश्य का पता चलने पर ही षड्यंत्र का परदाफाश हो सकता है।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 10, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(*xi*)

दीनदयाल की आत्मा क्या कहती है?

क्या किसी व्यक्ति की आत्मा उसके शरीर में जीवित रह जाती है? हमें नहीं पता। यदि यह बचती है, तो क्या इसे बुलाया जा सकता है? पुन: हम नहीं जानते—और नहीं जान सकते। लेकिन कुछ लोगों को शेक्सपियर के हेमलेट के साथ विश्वास है कि 'स्वर्ग और पृथ्वी में काफ़ी चीज़ें हैं, जो आपकी धारणा में सपने की तरह आती हैं।' दूसरे दिन बंबई में कुछ दोस्तों ने दीनदयालजी की आत्मा के साथ संवाद करने के लिए प्लेनचिट का इस्तेमाल किया। प्रारंभिक दौर के बाद बातचीत निम्नलिखित ढंग से चली। हम इसे प्रकाशित कर रहे हैं, इस नज़रिए से कि शायद यह कुछ महत्त्वपूर्ण हो।

प्रश्न आपकी हत्या कितने लोगों ने की?

उत्तर एक।

प्रश्न वास्तव में क्या हुआ था?

उत्तर दरवाज़े पर एक दस्तक हुई और मैंने दरवाज़ा खोला।

प्रश्न जब आपने दरवाज़ा खोला तो क्या हुआ?

उत्तर उसने मेरा हाथ मरोड़ा और मेरी छाती पर बैठ गया।

प्रश्न और फिर?

उत्तर मैं बेहोश हो गया।

प्रश्न आगे क्या हुआ?

उत्तर उसने मुझे सिर पर मारा।

प्रश्न क्या उसने आपको कुछ सुँघाया या उसने आपको मुँह बंद रखने के लिए मजबूर किया था?

उत्तर उसने मेरे चेहरे पर अपना हाथ लहराया।

प्रश्न क्या आप उस आदमी को पहचान सकते हैं?

उत्तर मैं उसे देखने में सक्षम नहीं था।

प्रश्न क्यों, क्या उसने चेहरा ढक रखा था?
उत्तर हाँ, चेहरा ढका हुआ था।
प्रश्न किस तरीक़े से?
उत्तर एक गंदी चादर से ढका हुआ था।
प्रश्न हत्यारे ने अपने हाथ में क्या ले रखा था?
उत्तर हाथ लपेटा हुआ था।
प्रश्न वह आदमी कैसा था?
उत्तर मेरे पास उसे देखने का कोई मौक़ा नहीं था।
प्रश्न क्या वह लंबा था?
उत्तर वह मुझसे लंबा था।
प्रश्न उसने क्या पहन रखा था?
उत्तर मुझे नहीं पता।
प्रश्न यह कब हुआ—बनारस से पहले या बाद में?
उत्तर बनारस से पहले।
प्रश्न कितना पहले?
उत्तर मैं नहीं कह सकता।
प्रश्न जौनपुर के कितना बाद?
उत्तर जौनपुर के कुछ समय बाद।
प्रश्न ट्रेन चल रही थी या स्थिर थी?
उत्तर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी।
प्रश्न क्या ट्रेन पुल पार कर रही थी?
उत्तर ट्रेन लगभग पुल को पार कर चुकी थी।
प्रश्न आपको किस पर संदेह है?
उत्तर कोई बाहरी व्यक्ति है, यह एक विदेशी भी हो सकता है? मुझे नहीं पता।
प्रश्न क्या आपको लगता है कि यह एक राजनीतिक हत्या थी?
उत्तर मेरा कोई व्यक्तिगत दुश्मन नहीं था।
प्रश्न इसमें किसका हाथ था?
उत्तर (यहाँ उन्होंने एक नाम दिया, जिसे हम दबा रहे हैं)
प्रश्न क्या आप हत्यारे का नाम दे सकते हैं?
उत्तर क्षमा कीजिए। मेरे पास उसे देखने के लिए एक मौक़ा भी नहीं था।
प्रश्न आपको किसने मार डाला, आप सोचिए?
उत्तर मुझे लगता है, मैं एक बहुत ही साधारण आदमी के द्वारा मार डाला गया था।

वह बुरी तरह से महक रहा था।

प्रश्न क्या वह पाखाना की तरह महक रहा था ?

उत्तर नहीं।

प्रश्न क्या उससे मछुआरे की बू आ रही थी ?

उत्तर यह दुर्गंध जैसा था।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 10, 1968
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xii)

जब पंडितजी हमारे साथ लंदन में ठहरे

(सांसद एन.एस. शर्मा की कुछ स्मृतियाँ)

अमरीका की यात्रा से लौटते हुए 1963 में वे जब लंदन में हमारे साथ ठहरे थे, राष्ट्रमंडल कार्यालय से उन्हें एक आधिकारिक निमंत्रण मिला। मैं पंडित दीनदयालजी के साथ लंदन में उनके पहले स्वागत समारोह का कार्यक्रम तय करने राष्ट्रमंडल कार्यालय गया। वहाँ हमारे समक्ष कार्यक्रम की एक मुद्रित प्रति रखी गई, जिसका शीर्षक था—'जनसंघ के महासचिव का कार्यक्रम—एक हिंदू सांप्रदायिक पार्टी।' दीनदयालजी ने मेरी तरफ़ देखा। मैं समझ गया और मैंने सचिव से पूछा, 'आपको कहाँ से यह सूचना मिली कि जनसंघ हिंदू सांप्रदायिक पार्टी है?' 'भारतीय उच्चायोग से', उन्होंने कहा। 'क्यों, क्या इसमें कोई ग़लती है?' दीनदयालजी ने समझाया, 'हमारे विरोधी केवल द्वेषवश हमें ऐसा कहते हैं। हमारी पार्टी राष्ट्रवादी पार्टी है।'

कुछ मिनटों के इस ईमानदार वार्त्तालाप के बाद सचिव अपनी ग़लती समझ गए। उन्होंने क्षमा माँगी और इस मुद्रित कार्यक्रम को रद्द कर संशोधनों के बाद इसे पुनः छपवाने का प्रस्ताव रखा। परंतु कार्यक्रम की सैकड़ों मुद्रित प्रतियाँ पहले ही बाँटी जा चुकी थीं। इसे दोबारा छपवाने एवं बाँटने में असुविधा होती। सचिव ने अधिकारियों को आदेश दिया कि ग़लतियाँ ठीक हो जानी चाहिए और कार्यक्रम को फिर से छपवाया जाए। उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या यह ठीक रहेगा।' मेरा उत्तर था, 'यह सही रहेगा।'

राष्ट्रमंडल कार्यालय में

परंतु दीनदयालजी के लिए यह इतना सहज नहीं था। जैसे ही पता चला कि इसके लिए अतिरिक्त लिपिकीय श्रम की आवश्यकता होगी, उन्हें लिपिकों को होनेवाली असुविधा को लेकर चिंता होने लगी। 'उन्हें अपनी ग़लती का भान हो गया है और यह

पर्याप्त है। आगे से यह नहीं होना चाहिए। अब जो जैसा छप गया है, उसे वैसे ही जाने दें, बेचारे लिपिकों के लिए अतिरिक्त कठिनाई क्यों खड़ी करें?'

लिपिकों की कठिनाइयों को लेकर उनकी इतनी चिंता से मैं सहमत नहीं हो पाया। 'परंतु यह तो मिथ्या दुष्प्रचार को स्वीकृति देने जैसा होगा', मैंने कहा। 'ठीक है, दुष्प्रचार के सही या ग़लत होने पर हम अधिक मंथन नहीं कर सकते। आख़िरकार लिपिक भी मनुष्य होते हैं और सचिव भी अपनी ग़लती देख ही रहे हैं। बस इतनी सी बात है, इससे क्या अंतर पड़ता है।'

जनसंघ कार्यकर्ताओं के साथ दैनंदिन आधार पर अपने मेलमिलाप में उनकी उत्सुकता यही रहती कि उन्हें किसी ग़लती की महत्ता का भान हुआ या नहीं और एक बार जब वे आश्वस्त हो जाते थे, तब किसी तरह के स्पष्टीकरण, तर्क-वितर्क, दोषारोपण या क्षमा-याचना में कदाचित् ही उनकी कोई रुचि दिखी। वे केवल भविष्य की ओर देखते थे। प्रायः वे यही कहते थे, ख़ैर, चलो, ठीक है। उनका दृष्टिकोण इतना रचनात्मक था।

संवाददाता सम्मेलन में

लंदन के वीरास्वामी होटल में उनके लिए एक संवाददाता सम्मेलन का आयोजन किया गया। तब तक यूरोप में जनसंघ के बारे में अधिक नहीं पता था। इसे इसके नाम से नहीं बल्कि नेहरू भक्तों की ओर से दिए गए विशेषण 'एक हिंदू सांप्रदायिक पार्टी' के नाम से ही पुकारा जाता था। यह पहला अवसर था, जब लंदन में जनसंघ का कोई नेता संवाददाता सम्मेलन को संबोधित कर रहा था। मुझे इसके परिणाम को लेकर चिंता हो रही थी। संवाददाता सम्मेलन में बहुत से लोग आए थे। डेढ़ घंटे तक जनसंघ पर विस्तार से विचार-विनिमय हुआ। यहाँ तक कि जो हँसी उड़ाने आए थे, वे भी दीनदयालजी की सत्यता और स्पष्टवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। और कितना आश्चर्यजनक था कि संवाददाता सम्मेलन समाप्त करने की मेरी घोषणा के बाद भी कोई वहाँ से जाने को तैयार नहीं था! वे उनसे व्यक्तिगत रूप से बातचीत करना चाहते थे। हर कोई तनावमुक्त था और वातावरण इतना सहज और मित्रवत् हो गया था कि हर कोई बातूनी हो उठा और लोग लगभग गप मारने को उत्सुक दिखे। मैं उनके कान में फुसफुसाया, 'पंडितजी, आप तो यहाँ इस तरह से आनंद ले रहे हैं, जैसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा में हों' और वे ठठाकर हँस पड़े। 'द मैनचेस्टर गार्डियन' ने संवाददाता सम्मेलन का समाचार छापा, जिसका शीर्षक था—'अ मैन टू बी वाच्ड!'

लंदन में जन संघ फोरम की स्थापना

उनका हास्यबोध विलक्षण था। लंदन में हमारा आवास महिलाओं के केंद्रीय कारागार

के ठीक सामने था। जब भी किसी ने उनसे पूछा कि वे लंदन में कहाँ ठहरे हैं, तो घर या गली का नंबर बताने की बजाय वे कहते कि 'मैं महिलाओं के संघस्थान के ठीक सामने रहता हूँ' और फिर हर कोई हँस देता। उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी कभी दूसरे पर नहीं मढ़ी और उनके सामने यह लगता कि वे सभी चीज़ों के लिए उत्तरदायी हैं तथा हर चीज़ के लिए जवाबदेह हैं। वे अपने बारे में एक शब्द नहीं कहेंगे, परंतु वे संघ के मुख्य विचारक, नीति-नियंता और संगठनकर्ता थे। अपने दृष्टिकोण में वे पूरी तरह आधुनिक थे।

लंदन में उन दिनों वामपंथी रुझानों के लिए कई मंच हुआ करते थे। हज़ारों मेधावी छात्र उच्च शिक्षा के लिए लंदन जाया करते थे और वहाँ से लौटने के बाद वे भारत में उच्च व महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति पाया करते थे। इससे भी कहीं अधिक, एक लाख से अधिक भारतीयों ने लंदन को अपना स्थायी घर बना लिया था। किसी राष्ट्रवादी मंच की अनुपस्थिति में छात्र वामपंथी संगठनों की ओर से आयोजित कार्यक्रमों में जाया करते थे। एक बार उनसे संपर्क साध लेने के बाद ये उच्च शिक्षित मेधावी युवा भारत लौटने के बाद भी स्थायी रूप से वामपंथी एवं समाजवादी विचारधारा की जकड़न में फँसे रहते थे। मैंने दीनदयालजी का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। उन्होंने तत्क्षण मेरे मर्म को समझ लिया, परंतु क्रोधित होने के बजाय उलाहना देते हुए कहा, 'इस बारे में मुझे पहले क्यों नहीं लिख सकते थे? आप सच्चे स्वयंसेवक की तरह बरताव नहीं कर रहे हैं। सच्चा स्वयंसेवक स्वतःस्फूर्त होता है।' उन्होंने कहा, 'जब राष्ट्र के हित जुड़े हों तो स्वयंसेवक को किसी दिशानिर्देश या स्वीकृति की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि इतने दिन से आप यह महसूस कर रहे थे तो आपको इस बारे में कुछ करना चाहिए था। अच्छा हो कि अब इसे करें।' परिणाम यह हुआ कि मैं लंदन में 'जनसंघ फोरम' की स्थापना के प्रयासों में जुट गया। वे हर सप्ताह मुझे पत्र लिखते थे और यहाँ संस्थान की प्रगति के बारे में निर्देशित करते रहे। अब ये पत्र मेरी धरोहर एवं मेरे प्रेरणास्रोत हैं।

गांधीजी के बारे में लिखना

विचार-विमर्श के दौरान मैंने एक बार उनसे कहा कि दुर्भाग्य से एक मूर्खतापूर्ण दुष्प्रचार के कारण हम सभी राष्ट्रवादी तत्त्वों को अपने साथ नहीं ला सके। उन्होंने पूछा, वह क्या है? मैंने कहा, 'वही पुरानी कहानी कि गांधीजी की हत्या में जनसंघ का हाथ है।' 'पर जनसंघ की स्थापना तो गांधीजी की हत्या के बाद हुई थी?' यह सत्य है, परंतु कभी-कभार कुछ लोग कहते हैं कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जिसके कई कार्यकर्ता अब जनसंघ में हैं, इसमें शामिल थे।' वे काफ़ी आश्चर्यचकित दिखे। 'परंतु आपको अच्छी तरह पता है कि गोडसे के मुक़दमे से यह बात पूरी तरह से स्पष्ट हो गई थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का इससे कतई कोई लेना-देना नहीं है।' 'मैं जानता हूँ,' मैंने

कहा, 'पर इस दुष्प्रचार का क्या करें, यदि आप गांधीजी के बारे में कुछ अच्छे लेख लिख सकें तो इससे निश्चित ही मदद मिलेगी।'

अचानक ही वे गांधीजी को लेकर चिंतित हो उठे, 'क्या यहाँ कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ गांधी जी ठहरे थे? मैं उस स्थान को देखना चाहता हूँ।' यह लंदन के पूर्वी छोर पर स्थित है और सुश्री म्युरियल लेस्टर और उनकी बड़ी बहन वहाँ की संचालक हैं। मैं सुश्री म्युरिएल को भलीभाँति जानता था। उन्हें मेरे बच्चों से काफ़ी स्नेह था और वे कई बार मेरे घर आ चुकी थीं।

इसलिए मैंने सुश्री म्युरिएल से भेंट के लिए उन्हें अपने घर बुलाने का निश्चय किया। परंतु वे सहमत नहीं हुए। 'आप इस तरह एक वृद्ध महिला को क्यों तंग करना चाहते हैं? मैं स्वयं उस जगह जाऊँगा और गांधीजी को अपनी विनम्र श्रद्धांजलि दूँगा।' इसके बाद श्री तहमानकर के विशेष निमंत्रण पर वे उस जगह भी गए, जहाँ लंदन में तिलकजी ठहरे थे। इसके बाद मुझे ऑर्गनाइज़र के एक विशेष परिशिष्ट में उनका आलेख पढ़ने का अवसर मिला, जिसमें उन्होंने गांधीजी एवं तिलक को विनम्र श्रद्धांजलि देते हुए गांधीजी को आधुनिक भारत का निर्माता बताया था।

निधन से एक सप्ताह पहले

दीनदयालजी अपने विचारों में हमेशा मौलिक एवं ईमानदार रहे। वे उन लोगों में से नहीं थे, जिनका मानना था कि समाजवाद अपने आप में अभीष्ट है और मानव जीवन की सभी कमियों तथा समस्याओं के लिए रामबाण औषधि है। परंतु अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में वे समाजवाद को एक उपयोगी चीज़ मानते थे। यह उन्होंने ऑर्गनाइज़र में प्रकाशित अपने एक आलेख में छाती ठोककर स्वीकार किया था। उन्होंने प्रायः राजनीतिक सोच में वाम और दक्षिण जैसे फैशनेबल विभाजनों की निरर्थकता पर कटाक्ष किया। कोई भी विचार, जो यदि क्षमतावान राष्ट्रवादी भारत, उनके सपनों के भारत—एकजुट, मज़बूत और जिसका सर्वत्र सम्मान हो—के निर्माण में सहायक हो तो वह चाहे किसी भी समूह का विचार हो, वे उसे अपनाने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। यद्यपि उनका मंच जनसंघ था, परंतु वे उन कुछ महान् लोगों में थे, जो किसी भी संस्थान को एक साधन समझते थे, न कि अपने आपमें साध्य।

जहाँ तक व्यक्तिगत रूप से मेरा संबंध है, उनके असामयिक निधन से मैं स्वयं को अनाथ अनुभूत करने लगा हूँ। अपने पत्रों में वे सदैव मुझे 'परम बंधु' या 'परम मित्र, कह के संबोधित करते थे, परंतु मैं सदैव उन्हें एक तरह से अपना अभिभावक मानता रहा। अन्य कार्यकर्ताओं की तरह मेरे लिए भी दीनदयालजी के शब्द अंतिम होते थे। वे सदैव हमें यह अनुभूति दिलाते थे कि हम उनके परिवार के सदस्य हैं। उनके निधन से

सात दिन पहले बसंतपंचमी को मैंने उन्हें टेलीफ़ोन किया। 'दीनदयालजी मेरे घर पर एक छोटा सा आयोजन है और आपको आना है, और वे अटल जी के साथ आ पहुँचे। वे आए और फ़र्श पर बिछी दरी पर बैठकर मेरी दोनों बेटियों अन्नपूर्णा और योजना से बात करने लगे। हम भी वहीं थे। अन्नपूर्णा ने उनसे चिरौरी की कि वे मुझे फटकार लगाएँ, क्योंकि मैं उसे अपने साथ कालीकट नहीं ले जा पाया था। उसने कहा कि वह अध्यक्ष बनने पर उन्हें बधाई देना चाहती थी, परंतु पिताजी की वजह से ऐसा नहीं कर पाई और दीनदयालजी गंभीर थे। वे वास्तव में इस बात से दु:खी थे कि मैं अन्नपूर्णा को कालीकट नहीं ले जा पाया। उन्होंने कहा कि आगे से आपको जनसंघ के सभी अधिवेशनों में अन्नपूर्णा को साथ ले जाना होगा। अन्नपूर्णा ने जितना माँगा था, उसे उससे अधिक मिल गया। इतने की उसने अपेक्षा भी नहीं की थी। प्रसन्नतावश वह उनके गले लग गई और वे उसे दुलारते रहे। मैं मुदित होकर अपने घर में एक और जनसंघ कार्यकर्ता के निर्माण का यह दृश्य देख रहा था। यह उनका चुंबकीय आकर्षण था कि अनजाने में ही वे लोगों के विश्वास के इकलौते संरक्षक बन जाते थे।

जब उन्होंने चुनाव लड़ने के लिए पूछा

पार्टी के अन्य कार्यकर्ताओं की तरह मैं भी उनके लिए कुछ भी कर सकता था। कोई भी ऐसी बात जिस पर 'दीनदयाजी ने कहा है' का ठप्पा लग जाए, मैं उसे अपने लिए निर्देश समझता था। अब मैं इस बात से आश्चर्यचकित हूँ कि मैं ऐसा क्यों मानकर चलता था। मैं ऐसा क्यों मानता था कि जो कुछ भी उन्होंने कहा है, मेरे हित में होगा। मैं बस्ती से लोकसभा का चुनाव लड़ने के लिए बस इसलिए तैयार हो गया, क्योंकि उन्होंने कहा। मेरे विरोधी केशवदेव मालवीय और उत्तर प्रदेश में स्वतंत्र पार्टी के प्रमुख श्री भानु प्रताप सिंह थे। चुनाव लड़ने का यह मेरा पहला अवसर था, परंतु मैं चिंतित नहीं था। आम चुनाव से कुछ सप्ताह पहले दीनदयालजी मुझसे बनारस में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिविर में मिले। उन्होंने पूछा, 'कैसा लग रहा है आपको? लगता है कि आप जीतेंगे या आप शंकित हैं? यदि आपको डर लग रहा है तो मैं अपको कहीं अन्यत्र भेज सकता हूँ।' मैंने कहा, 'जब आप मेरे बारे में इतना सोच रहे हैं तो फिर मैं क्यों डरूँ? आपका आशीर्वाद मेरी मार्गदर्शक शक्ति होगा'—और सचमुच मेरा अभिप्राय यही था। स्पष्ट कहूँ तो जय-पराजय में मेरी कोई अनुरक्ति नहीं थी। मैं सिर्फ़ वह कार्य कर रहा था, जो दीनदयालजी ने मुझे सौंपा था। मुझे जीवन में पहली बार इसकी अनुभूति हुई—यदि विश्वास हो तो कोई भी व्यक्ति कुछ भी कर सकता है। दीनदयालजी संसद् के सदस्य नहीं थे, परंतु हमारे जैसे जनसंघ के सभी सांसदों की जीत के पीछे वही थे।

वे 14 वर्ष तक जनसंघ के महासचिव रहे। कालीकट में उन्हें अध्यक्ष चुना गया।

परंतु दीनदयालजी और जनसंघ के कार्यकर्ताओं के लिए यह कोई महत्त्व का विषय नहीं था। पद उनके लिए महत्त्वहीन था, और जनसंघ कार्यकर्ताओं को इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था कि वे किस पद पर हैं। हज़ारों-हज़ार कार्यकर्ताओं को उन्होंने व्यक्तिगत रूप से चुना। उन्होंने उनके व्यक्तित्व को निखारा और इस प्रक्रिया में उनके सबसे गहरे मित्र बन गए। उनकी उपस्थिति में हर कोई सहज हो जाता था। सभी का मानना था कि यदि कोई भी कठिनाई हो तो दीनदयालजी से संपर्क किया जा सकता है। इस आश्वस्ति ने जनसंघ कार्यकर्ताओं में अद्‌भुत ऊर्जा का संचार किया, जिसका परिणाम प्रत्येक व्यक्ति इसकी विपुल प्रगति के रूप में प्रत्यक्ष देख सकता है।

उन्होंने मेरी पत्नी की कैसे भरती की

वे अपने दृष्टिकोण में बहुत ही आधुनिक थे। वे चाहते थे कि जनसंघ आंदोलन की जड़ें भारतीय संस्कृति में हों, परंतु साथ ही यह भविष्योन्मुखी भी हो। वे अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए खड़े हुए, जिसकी महत्ता उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक के रूप में सीखी। भारतीय राजनीति के संदर्भ में वे भारत के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में महिलाओं को उनका उचित स्थान दिलाने के लिए उत्कंठित थे। वे सदैव जनसंघ के लिए अधिक-से-अधिक महिला कार्यकर्ताओं की खोज में रहते थे। और उनके पास उनकी भरती का अपना तरीक़ा था। लंदन में हमारे साथ कुछ सप्ताह के ठहराव के दौरान उन्होंने मेरी पत्नी उर्मिला की भरती की। 'आपने विवाह क्यों नहीं किया, आपको विवाह करना चाहिए था,' एक दिन उर्मिला ने उनसे कहा। 'क्यों, इसकी अनिवार्यता क्या थी?' 'ठीक है, पर कौन आपकी देखभाल करेगा?' 'मेरी देखभाल की कोई आवश्यकता नहीं है; और यदि कोई हुई भी तो मेरी माताएँ एवं बहनें कर लेंगी।' 'परंतु माताएँ और बहनें उस तरह से देखभाल नहीं कर सकतीं, जैसा कि पत्नी कर सकती है।' उर्मिला ने दार्शनिक भाव में कहा। 'यदि मैंने विवाह कर लिया तो मेरा ज़्यादातर समय घर-गृहस्थी में चला जाएगा, देश के लिए अधिक समय नहीं बचेगा, और यदि भारत से छह हज़ार मील दूर लंदन में मुझे तुम्हारे जैसी बहन मिल सकती है, जो मेरी देखभाल कर सके तो फिर मैं क्यों चिंता करूँ?' और फिर उन्होंने उर्मिला की ओर देखा और हँसने लगे। मैं देख सकता था कि दीनदयालजी एक महिला कार्यकर्ता की भरती कर रहे हैं!

बाद में मुझे पता चला कि उनकी बस एक चिट्‌ठी पर उर्मिला उड़ान भरकर भारत पहुँच गई ग्वालियर में जनसंघ के शिविर में भाग लेने। वहाँ वह हर समय किसी की बहन की भूमिका निभाने को तत्पर थी, जिसके बारे में उसकी राय थी कि उन्हें देखभाल की आवश्यकता है। रक्षाबंधन और भाईदूज के दिन वे इतने

सजग और उत्सुक रहते थे कि एक बार स्वयं झंडेवालान में उन्होंने उसे याद दिलाया, 'मेरी राखी कहाँ है?' इसके बदले में वह सदैव यह जानती थी कि दीनदयालजी किस तरह की उड़द की दाल चाव से खाते हैं। उसका मानना था कि जिस तरह की चाय दीनदयालजी को पसंद है, वह सिर्फ़ वही बना सकती है। दीनदयालजी के राजनीतिक कामकाज को वह अपना व्यक्तिगत दायित्व समझती थी। दो वर्ष पहले जब जनसंघ के राष्ट्रीय कार्यकारियों की सूची जारी हुई तो उर्मिला इससे असंतुष्ट दिखी, क्योंकि इसमें कोई भी महिला नहीं थी। पहले उन्होंने मुझे दीनदयालजी को इस बारे में लिखने को कहा, परंतु मैं उस मामले में हस्तक्षेप को तैयार नहीं था, जिससे मुझे कोई लेना-देना नहीं था। परंतु बहन अपने भाई से भयभीत नहीं थी। उन्होंने चिट्ठी लिखी और वह भी कड़े शब्दों में। 'यहाँ महिलाएँ 50 प्रतिशत हैं और यदि आप उनके वोट चाहते हैं तो आपको 50 प्रतिशत ध्यान उनकी ओर भी देना होगा।' मैं डर गया था, जब मुझे पता चला कि इस तरह का पत्र भेजा गया है। पर यहाँ भाई की तरफ़ से तत्काल उत्तर आया। उन्होंने पूरी तरह से पुरुष कार्यकारियों की सूची जारी करने की अपनी भूल की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए धन्यवाद दिया और वचन दिया कि आगे ऐसा नहीं होगा। कालीकट में उन्होंने इस वचन को पूरा किया।

ऐसे थे हमारे दीनदयाल। और अब...और अब...वे नहीं हैं।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 10, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xiii)
हत्या की जाँच चिंताजनक रूप से धीमी

(हमारे संवाददाता वाराणसी)

डकैती के लिए हत्या करने के सिद्धांत के साथ थोड़े समय तक मामले को हिलाने-डुलाने के बाद सी.बी.आई. वापस उस स्थिति की ओर अचानक मुड़ गई कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या में उससे कहीं अधिक कुछ था। चिकित्सा विशेषज्ञ की राय ने अपराध स्वीकार कर चुके डाकू-सह-हत्यारे की गवाही को खारिज कर दिया कि उसने पंडितजी को मारने के लिए स्टील रॉड का इस्तेमाल किया।

रामअवध ने पुलिस को बताया है कि 10-11 फ़रवरी की रात को वह वाराणसी में सिनेमा के दूसरे शो से लौटा ही था, जब उसने कुछ चोरी करने का फ़ैसला किया। उसके अनुसार उसने मनहूस बोगी का दरवाज़ा खुला पाया और उसमें प्रवेश किया। पंडितजी ने

उससे पूछा था कि वह कौन है और वह क्या कर रहा है और उसने उनसे कहा था कि वह मालिशिया है। पंडितजी ने उसे पैरों की मालिश करने के लिए कहा। मालिश के बाद पंडितजी पेशाब करने के लिए बाथरूम में चले गए। राम अवध का दावा है कि उसने कूपे की दीवार पर लटकी जैकेट से सौ रुपए का नोट निकाल लिया, और जब पंडितजी लौटे तो और चीज़ें ले जाने के लिए देख रहा था, उन्होंने उस पर चोरी करने का आरोप लगाया और पुलिस को मामले की रिपोर्ट करने की धमकी दी। जब ट्रेन मुग़लसराय पहुँच रही थी, पंडितजी कथित तौर पर बोगी के बाहरी दरवाज़े के पास गए, तभी रामअवध के अनुसार, उसने उनके सिर पर संबल से प्रहार किया और उन्हें बाहर फेंक दिया।

100 रुपए के नोट की फर्जी कहानी

रामअवध द्वारा सदोष मानव हत्या की ज़िम्मेदारी स्वीकार किए जाने के तथ्य से कई लोग उसका वक्तव्य मानने को राजी दिखे। लेकिन उसके पक्ष के गहन परीक्षण से लगता है कि उसने कहीं अधिक गंभीर बात को ढकने के लिए किस्सा गढ़ा है।

भारतीय जनसंघ के केंद्रीय कार्यालय के प्रभारी सचिव श्री जगदीश प्रसाद माथुर के अनुसार, पंडितजी उनसे एक समय में सिर्फ़ 25-30 रुपए की छोटी राशि ही लेते थे; वे यह राशि खद्दर की अपनी बनियान की जेब में एक लिफाफे में रखते थे। यह राशि—26 रुपए—पुलिस ने उनके पास से बरामद की। दुर्लभ अवसरों पर ही वह अधिक राशि लेते थे, जिसे वह सदैव अपनी अटैची में सबसे नीचे रखते थे। जो आदमी अपनी बनियान की जेब में थोड़ी राशि रखता हो, वह अपनी जैकेट की बाहरी जेब में बड़ी राशि रखकर फिर इसे लटका नहीं देगा।

लखनऊ के साथ टेलीफ़ोन पर बात भी इसकी पुष्टि करती है कि उन्होंने कोई भी राशि नहीं ली थी। 100 रुपए लेते भी तो या तो भारतीय जनसंघ के स्थानीय कार्यालय से या लता बहन से, जिनके साथ वह हमेशा उस शहर में रुकते थे।

डॉक्टरों ने कहानी खारिज की

साथ ही यह अविश्वसनीय बयान है कि उसने पंडितजी की मालिश की। एक बेहद सर्द रात में एक मालिश करनेवाले को बुलाना किसी के लिए भी अविश्वसनीय होगा, वह भी दीनदयाल जैसे एक शांत आदमी के लिए।

हैदराबाद से विशेष रूप से बुलाए गए चिकित्सा विशेषज्ञ के अनुसार, पंडितजी के सिर पर चोट संबल (स्टील की छोटी रॉड) की वजह से नहीं हो सकती थी। यह केवल किसी ऐसे हथौडे की वजह से हो सकती थी, जिसकी त्रिज्या संबल से लगभग दोगुनी हो, जिसके आकार में उनकी खोपड़ी गोलाकार धँसी हुई थी।

यदि पंडितजी बाहर फेंके गए होते, जैसा कि रामअवध द्वारा दावा किया गया था, तो वह सुव्यवस्थित स्थिति में नहीं पड़े होते, जिसमें वह पाए गए थे। यदि बाहर फेंके गए होते, तो शरीर वाराणसी-मुग़लसराय ट्रैक से कुछ फुट दूर गिरा होता, वास्तव में यह एक फुट के भीतर पाया गया! और अगर पंडितजी पुलिस को रिपोर्ट करने के लिए जा रहे थे, तो वह पाँच रुपए के उस नोट को अपनी जेब में क्यों ले जा रहे थे?

झूठ का मकड़जाल

रामअवध ने दावा किया है कि अपराध करने में भरत डोम उसका सहायक था। डोम ने इसका खंडन किया और कहा कि उसने तभी चीज़ें चुराईं, जब मुग़लसराय में बोगी को खाली पाया। भरत डोम काफ़ी कुछ लड़के लालता जैसा दिखता है, जिस कारण से एम.पी. सिंह को विशेष रूप से पहचान करने के लिए बुलाया गया है कि क्या यह वही है या अन्य, जिसे उन्होंने बिस्तर हटाते हुए देखा था।

ज़ाहिर है रामअवध का बयान झूठ का मकड़जाल है। उसने हत्या के आरोप से बचाने के लिए सदोष मानव हत्या की बात स्वीकार कर ली है; और मालिश की कहानी पुलिस को चकमा देने के लिए गढ़ी है, ताकि पुलिस उसे पैसा देनेवाले खिलाड़ी से दूर रहे। हम नहीं जानते कि रामअवध ने वास्तव में हत्या की या नहीं। वह पैसे के लिए इतना कुछ कर सकता था; या वह कुछ ऐसा करने की ताक में था कि पैसे की खातिर फिर कुछ न करना पड़े। उसके जैसे लोग ज़ेल में कुछ साल बिताने में हिचकेंगे नहीं, फिर चाहे उसने अपराध किया है या नहीं, अपराध स्वीकार करने के लिए उन लोगों ने उसे लंबे समय के लिए भुगतान किया होगा।

दोनों कम्युनिस्ट थे

रामअवध और भरत दोनों वाराणसी के अंडरवर्ल्ड से संबंध रखते हैं। लेकिन हर बार जब वहाँ चुनाव होते हैं, दोनों कम्युनिस्ट उम्मीदवारों के लिए सक्रिय कार्यकर्ता बन जाते हैं। दोनों ने पिछले साल फिर ऐसा किया था, जब उन्होंने विधानसभा के लिए सी.पी.आई. (आर) के उम्मीदवार के लिए और लोकसभा के लिए सी.पी.आई. (एल) के उम्मीदवार के लिए काम किया था। वाराणसी के एक स्थानीय साप्ताहिक 'गांडीव' के मुताबिक जब रामअवध और भरत डोम को गिरफ़्तार किया गया, वाराणसी शहर के सी.पी.आई. सचिव भोलानाथ ने उनकी रिहाई के लिए जमानत की पेशकश की।

राय के डिब्बे में छोटे कद के घनी मूँछों वाले आदमी के होने का पता लगा और उसकी पहचान प्रशिक्षण के लिए फैजाबाद जा रहे एक नायब सूबेदार के रूप में हुई।

उसके पास कोई आरक्षित शायिका नहीं थी, इसलिए उसे फैजाबाद में उतार दिया गया था और उसके ट्रेन में रात बिताने की बात सामने नहीं आई।

बदनसीब बोगी अभी भी मुग़लसराय में सील पड़ी है, अंगुली की छाप लेनेवाले एक विशेषज्ञ को नए सिरे से जाँच करने के लिए कलकत्ता से बुलाया जा रहा है।

एक महीने से ज़्यादा समय के बाद हत्या, की जाँच आज भी जहाँ की तहाँ है।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 17, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xiv)

पंडितजी के सामान, जो अब भी लापता हैं

पंडितजी के निजी सामान में से काफ़ी कुछ अभी भी लापता हैं। और जो बरामद सामान प्रस्तुत किया गया है, उसमें से कुछ उनका नहीं पाया गया है।

तकिया के लिहाफ की प्रामाणिक रूप से पहचान की गई है; लेकिन तकिया नकली साबित हुआ है। पंडितजी के तकिया में सफ़ेद रेशमी वस्त्र का अस्तर था; जो बरामद तकिया प्रस्तुत किया गया, उसका आकार और आकृति न केवल अलग है, बल्कि इसका अस्तर हल्का रंगीन है।

पुस्तकें आदि जिस कपड़े के झोले में रखी थीं, अभी भी लापता हैं। पुलिस द्वारा बरामद जो झोला प्रस्तुत किया गया, वह उनका नहीं था। और जहाँ तक किताबों की बात है, रामअवध के अनुसार, उसने उन्हें गंगा में फेंक दिया।

पंडितजी के बिस्तर की सफ़ेद बॉर्डर की धारियों वाली भूरे रंग की चादर भी ग़ायब है।

पुलिस ने जो टूथ पाउडर बरामद बताया है, वह भी गलत हो सकता है। उन्होंने हमेशा दिल्ली की जैना ऐंड कंपनी द्वारा निर्मित 'गोल्डन टूथ पाउडर' का प्रयोग किया है। पुलिस ने जो टूथ पाउडर दिखाया है, वह अलग है और कानपुर का बना है।

पंडितजी के चश्मे की पहचान उसकी क्षमता के परीक्षण द्वारा की गई; लेकिन वह बुरी हालत में है। इसे जलाने का प्रयास किया गया था, इस प्रक्रिया में फ्रेम का प्लास्टिक का हिस्सा जल गया और केवल धातु वाला हिस्सा बाक़ी रह गया। चश्मे का एक शीशा चटक भी गया था।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 17, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xv)

दीनदयाल उपाध्याय स्मृति कोष

भारतीय जनसंघ ने अभी-अभी दीनदयाल उपाध्याय स्मृति समिति का पंजीकरण करा लिया है। समिति पंडितजी की स्मृति के संरक्षण और उनके आदर्शों को बढ़ावा देने के लिए स्मृति फंड एकत्र करेगी। विचार यह है कि एक स्मृति हॉल का निर्माण किया जाए, एक शोध सह प्रकाशन केंद्र चलाया जाए और दीनदयालजी के आदर्शों को दरशाती दूसरे प्रकार की सहायता परियोजनाएँ चलाई जाएँ।

अध्यक्ष के रूप में श्री वाजपेयी, नाना देशमुख (लखनऊ) सचिव के रूप में और श्री राम कुमार बत्रा (बंबई) कोषाध्यक्ष के रूप में समिति के अगुआ हैं। स्मारक के कार्यालय सचिव एम.पी. श्रीनारायण स्वरूप शर्मा होंगे।

चंदा एम.ओ., पी.ओ., ड्राफ्ट या रेखांकित चेक द्वारा 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मृति समिति' नाम से द्वारा श्री एन.एस. शर्मा, एम.पी., नंबर 9, पंडित पंत मार्ग, नई दिल्ली-1 को भेजा जा सकता है।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 17, 1968
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xvi)

बेल्जियम के समाचार-पत्रों में पंडितजी की हत्या

द स्पेक्टेटर ऑफ़ ब्रसेल्स, बेल्जियम (25 फरवरी), लिखता है :

'पत्रकारों से अकसर कहा जाता है कि तथ्यों से मत खेलो; यहाँ तक कि उनमें से कुछ तथ्यों को भी पार कर जाते हैं। बेल्जियम के कुछ दैनिक समाचार-पत्रों में यह कहा गया था कि जनसंघ के नेताओं के यह घोषित करने कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय की हत्या में मुसलिमों का हाथ था, के बाद अब मुसलमानों और हिंदुओं के बीच ख़ूनी निपटान अपरिहार्य हो गया है। (वास्तव में, यद्यपि वे यह नहीं मानते कि यह एक दुर्घटना है, उन्होंने कभी मुसलमानों पर आरोप नहीं लगाया।) एक पत्रिका ने इस हद तक दावा कर दिया है कि पाकिस्तान इस तरह के नरसंहार के सामने निष्क्रिय नहीं रह सकता और वह अपने सहधर्मियों की सहायता करने की जल्दी में होगा।'

'सौभाग्य से तथ्यों ने इन भविष्यवाणियों को झुठला दिया है। हालाँकि वे दुःखी हो सकते हैं, परंतु जनसंघ के हिंदुओं ने उपाध्याय जैसे जाने-माने नेता की मौत का बदला लेने की माँग नहीं की है। जाँच की जा रही है। यह एक बड़ी जीत है।

'बीस साल पहले उपाध्याय की मौत के परिणाम कम शांतिपूर्ण होते···

'भारत दीनदयाल उपाध्याय को सबसे बड़ा सम्मान चिह्न दे सकता है, जिन्होंने उस पार्टी का नेतृत्व किया है, जो बहुमत वाले धर्म का प्रतिनिधित्व करती है और जिसका वह आँख बंद करके बचाव करते हैं, लेकिन जो उसी के साथ एक मध्यस्थ और एक समझौताकारी भी थे। वह हिंदुओं की सबसे व्यापक रूप से पढ़ी जानेवाली पवित्र पुस्तक भगवद्गीता का शब्द 'ॐ' नहीं भूले, जो एक रहस्यमय अक्षर है, जिसके बाद तीन बार 'शांति, शांति, शांति' बोला गया है।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 31, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xvii)

पंडित दीनदयाल और सांसद यज्ञदत्त शर्मा की तीन झलकियाँ

पंडित दीनदयालजी को उनकी मृत्यु के बाद भारत भर में एक रचनात्मक सोच और कई अन्य गुणों से संपन्न व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। उपाध्यायजी ने स्वतंत्र भारत के वास्तविक नीति निर्माता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के विचारों को आकार दिया। जनसंघ द्वारा अपनाए गए 'सिद्धांत और नीति' केवल उन विचारों का विस्तारण है। इस महान् व्यक्ति ने न केवल सिद्धांतों को स्थापित किया, बल्कि उन्हें ठोस आकार देने के उद्देश्य से अपनी कड़ी मेहनत और अगणित प्रेरित कार्यकर्ताओं के साथ एक अखिल भारतीय संगठन सँभाला। मुझे भी श्रद्धेय उपाध्यायजी के प्रभाव में आने का सौभाग्य मिला और उनके असामान्य जीवन की कई स्मृतियाँ दिमाग में आती हैं।

यह दिल्ली रेलवे स्टेशन पर हुआ। हमने एक साथ मध्य प्रदेश के लिए अपनी यात्रा के लिए मेल ट्रेन के तृतीय श्रेणी के स्लीपर कोच में प्रवेश किया। आधे घंटे के बाद ट्रेन रवाना हुई तो डिब्बे में केवल कुछ यात्रियों ने ही अपनी सीटें ली थीं। दो महिला भिखारी अंदर आईं और भीख माँगने लगीं। एक पुलिस कांस्टेबल तत्काल उनका पीछा करते हुए आया और उन्हें गाली देते हुए पीटना शुरू कर दिया।

एक पल में पुलिस कांस्टेबल उन्हें प्लेटफार्म पर दूर ले गया। यह सब इतनी जल्दी हुआ कि हम शायद ही समझ सके कि क्या हुआ है। पंडितजी ने कुछ समय तक यह बरदाश्त किया, लेकिन तभी अचानक, वे उठे, पुलिसकर्मी के समीप गए और उत्तेजित पंडितजी ने नरम तरीक़े से पुलिसकर्मी को महिलाओं को पीटने से रोकने की कोशिश

की। पुलिसकर्मी ने रूखेपन से कहा, 'वे चोर हैं और आपको परेशानी में डाल देंगी। तुम जाओ और अपनी सीट लो। यह मेरी ड्यूटी है और आप इसमें हस्तक्षेप न करें।'

अब ज़्यादा हो गया था। पंडितजी अत्यधिक क्रोधित हो गए। मैंने उन्हें अपने जीवन में पहली और आख़िरी बार उस मूड में देखा था। उन्होंने पुलिसकर्मी का हाथ पकड़ा और कहा, 'अब मैं देखूँगा कि आप उन्हें कैसे पीटते हैं।' तब तक भीड़ जुट चुकी थी और लोगों ने कई तरह की बातें करनी शुरू कर दीं। दीनदयालजी ने उन सबको आगाह किया और कहा कि इन महिलाओं को उनके असामाजिक कृत्यों के लिए न्यायालय दंडित कर सकता है, लेकिन एक औरत को इस तरह सार्वजनिक रूप से पीटा जा रहा है, वह यह नहीं बरदाश्त कर सकते। आखिरकार महिला मानवता के सम्मान की प्रतीक है।' पुलिसकर्मी ने अपनी गलती स्वीकार की और माफ करने की विनती की।

पंडितजी जौनपुर संसदीय उपचुनाव के लिए जनसंघ के उम्मीदवार थे। उनके सभी भाषण अपनी ही रचनात्मक और शिक्षाप्रद शैली में हुआ करते थे। अभियान के दौरान मैंने एक बार कहा, 'पंडितजी, आपको अपने सार्वजनिक भाषणों में आक्रामक शैली को अपनाना चाहिए; यह मतदाताओं पर प्रभाव डालेगा।' पंडितजी ने हमेशा की तरह अपने तरीक़े से कहा, 'मैं चुनाव से नाम वापस ले सकता हूँ, लेकिन कुछ वोट हथियाने की आशा में अपनी भाषा में विष नहीं घोल सकता। मैं व्यक्तिगत आधार पर किसी भी प्रतिद्वंद्वी की आलोचना को राजनीतिक अनैतिकता मानता हूँ। इसलिए मैं ऐसा नहीं कर सकता।'

वे चुनाव हार गए लेकिन अपने सिद्धांतों पर अड़े रहे

भारतीय जनसंघ की अखिल भारतीय कार्यसमिति का सत्र शिमला में था। केंद्र और राज्यों में संभावित राजनीतिक स्थिति का मुद्दा इसमें उठा। हरियाणा के आयोजन सचिव श्री कृष्णलाल शर्मा ने विशाल हरियाणा के नारे का उल्लेख किया और कहा, 'हमें इस माँग का खुले तौर पर समर्थन करना चाहिए और आगे ले जाना चाहिए।' उनकी दलील थी कि 'विशाल हरियाणा' की माँग ने हरियाणा के लोगों के दिलों को छुआ है और सभी के द्वारा समर्थन किया गया था। यदि जनसंघ इसके बारे में चुप रहा, या आधे मन से समर्थन किया तो जनसंघ अलग-थलग हो जाएगा। अगर आंदोलन को गति मिल गई और भारत सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया, तो जनसंघ को ख़ुशी से इसे स्वीकार करना पड़ेगा। ऐसे में हम राज्य की एकता और राजनीतिक श्रेय दोनों खो देंगे।

पंडितजी यह सब बहुत गंभीरता से सुन रहे थे। समिति के कई सदस्यों ने या तो पक्ष में या उसके विरोध में अपनी राय व्यक्त की। चर्चा अनावश्यक रूप से लंबी हो रही

थी। मैंने पंडितजी को अपनी राय देने का सुझाव दिया, ताकि चर्चा बंद की जा सके। और उन्होंने कहा, 'भाई, मुझे आपका रवैया पसंद नहीं है। मुझे राजनीतिक आधार पर अलगाववादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने या उसके सामने झुकने के इस दृष्टिकोण पर दु:ख महसूस हो रहा है, भले ही वे पार्टी के लिए फायदेमंद हों, क्योंकि अगर राष्ट्र को नुकसान होगा तो उसकी एकता और अखंडता ख़तरे में पड़ जाएगी। यह एकता ख़तरे में है, हमें इसे बचाने के लिए जी-जान से लग जाना चाहिए।'

विषय पर विराम लग गया। जनसंघ ने 'विशाल हरियाणा' का समर्थन नहीं किया।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 7, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

(xviii)

'मेरा बहुत बड़ा परिवार है।' ऑस्टिन, टेक्सास, संयुक्त राज्य अमरीका में पंडितजी

(डॉ. एस.वी. तत्त्ववादी, प्रौद्योगिकी कॉलेज, बी.एच.यू. के कुछ संस्मरण)

सितंबर 1963 में, जब मैं टेक्सास, ऑस्टिन, संयुक्त राज्य अमरीका के विश्वविद्यालय में था, मुझे एक दोस्त द्वारा सूचित किया गया था कि पंडितजी कुछ हफ्तों के सद्भावना दौरे पर राज्य में आ रहे हैं। स्थानीय भारतीय छात्र संघ के सचिव के रूप में मैंने ऑस्टिन में उनके कुछ कार्यक्रमों की व्यवस्था की।

उनके आगमन के समय में कुछ परिवर्तन किया गया था, जिसकी सूचना हमें इंडिया कमेटी के मित्रों से नहीं मिल पाई, और पंडितजी शाम को 5 बजे पहुँचने के बजाय शाम को 6.40 बजे अगले हवाई जहाज से पहुँचे। हम स्वाभाविक रूप से बहुत ज़्यादा चिंतित थे और पहले नमस्ते के बाद मैंने तुरंत उनसे पूछा कि यह परिवर्तन कैसे हुआ? मैंने उनसे कहा कि हम पहले ही भारतीय छात्रों के साथ 6.15 का कार्यक्रम छोड़ चुके हैं और यदि हम जल्दी नहीं करते हैं तो शायद राजनीतिक विज्ञान के छात्रों के साथ 7.30 बजे की बैठक के लिए देर जाएगी। प्रो. रोच ने भारतीय कार्यक्रमों में समयबद्धता के अभाव के बारे में लापरवाही भरी टिप्पणी की थी, जो मुझे बहुत चुभी थी। पंडितजी अचंभित हो गए, क्योंकि उनको कार्यक्रम की जो प्रति भेजी गई थी, उसके अनुसार वह सही समय से थे। हालाँकि, मेरी कठिनाई को भाँपते हुए उन्होंने तुरंत हवाई अड्डे से सीधे बैठक कक्ष की ओर ड्राइव करने की पेशकश की। लंबी यात्रा की थकान के कारण उन्हें निश्चित रूप से आराम की ज़रूरत थी। इसलिए हम उन्हें घर लेकर पहुँचे, मुश्किल

से 15 मिनट में अपनी चाय समाप्त की और इस तरह जब हम हॉल में पहुँचे, हम लगभग समय से थे।

राष्ट्रपति चुनना आसान है अपेक्षाकृत…

प्रो. रोच को विमान के देर से आने के बारे में पहले से ही सूचित किया गया था। हालाँकि पंडितजी थके हुए थे, पर उन्होंने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया और भारतीय परिदृश्य तथा भारतीय जनसंघ की नीतियों के बारे में अमरीकी मेहमानों के समक्ष एक घंटे तक विस्तार से बोले। बाद में वहाँ अगले एक घंटे तक भारतीयों के साथ सवाल और जवाब हुए, जिसमें उन्होंने श्रोताओं को इतना प्रभावित किया कि श्रोताओं में हर भारतीय ने पंडितजी के लिए प्रशंसा के शब्द कहे। मुझे अपराध-बोध हो रहा था कि मैंने उन्हें बिल्कुल भी आराम नहीं करने दिया। उन्होंने हालाँकि, असुविधा का बुरा नहीं माना और हमेशा की तरह प्रसन्न मन:स्थिति में थे। जब हम एक पार्किंग स्थल की ओर बढ़ रहे थे, किसी ने अमरीका में पार्किंग कठिनाइयों के बारे में टिप्पणी की और उन्होंने कहा, 'हाँ, अमरीका में राष्ट्रपति को चुनना आसान है, अपेक्षाकृत कार पार्क करने के!'

आराम करने के स्थान पर मैंने उनका सूटकेस खोला। उन्होंने मुझे अपना कोट और पैंट दिखाया और मासूमियत से पूछा, 'क्यों भाई, आपको नहीं लगता कि ये बिल्कुल ठीक हैं?' मैंने कपड़े देखे, जिन्हें सफ़ाई और इस्त्री की सख्त ज़रूरत थी। बाद में मुझे पता चला कि न तो सूटकेस उनका अपना था और न ही कपड़े। 'क्यों कुछ दिनों के लिए उन पर पैसा बरबाद किया जाए?'

यू.एस.ए. में उन्हें किस चीज़ ने प्रभावित किया…

ऑस्टिन में उनके उल्लेखनीय कार्यक्रमों में से एक ऑस्टिन नगर परिषद् में उनका भाषण था। परिषद् इस मुद्दे पर चर्चा कर रही थी कि क्या रंगभेद को सार्वजनिक स्थानों पर क़ानूनी रूप से प्रतिबंधित कर दिया जाना चाहिए। अमरीकियों के सामने इससे ज्वलंत समस्या नहीं हो सकती और इसलिए हॉल ठसाठस भरा हुआ था।

स्थानीय प्रथाओं के अनुसार आम नागरिकों को भी मेयर और उसकी परिषद् के सदस्यों (संभवत: पुरानी यूनानी प्रणाली जैसी व्यवस्था) के समक्ष अपना मत व्यक्त करने की अनुमति दी गई है और पंडितजी इसकी बहुत ही ज़्यादा सराहना करते दिखे। कुछ भाषणों के बाद बैप्टिस्ट मिशनरी मिस यूनिस पार्कर, जो हमें परिषद् की बैठक में ले गई थीं, खड़ी हुईं और टेक्सास विश्वविद्यालय के गीत (टेक्सास की आँखें तुम पर हैं··) की चर्चा करते हुए टिप्पणी की। न केवल टेक्सास की आँखें हम पर लगी हैं, बल्कि पूरी दुनिया हमें देख रही है। इसके बाद उन्होंने मेयर के अनुरोध पर एक उभरती

भारतीय राजनीतिक पार्टी भारतीय जनसंघ के महासचिव के रूप में पंडितजी का परिचय सदन से कराया। मेयर ने पंडितजी से बोलने का अनुरोध किया।

सदन और एकत्र भद्रजनों को संबोधित करते हुए बहुत संक्षिप्त और बिना किसी पूर्व तैयारी के दिए भाषण में पंडितजी ने टिप्पणी की : 'पिछले कुछ हफ्तों से मैं संयुक्त राज्य अमरीका में भ्रमण कर रहा हूँ, मैंने बड़ी इमारतों, गगनचुंबी इमारतों और कई अन्य चीज़ों को देखा है, लेकिन आपको बताना चाहूँगा कि इन सबने मुझे शायद ही प्रभावित किया है। तथापि मैं यह देखकर बहुत ज़्यादा प्रभावित हूँ कि आप यहाँ दिल से दिल के विचार विमर्श के द्वारा सबसे अधिक मानवीय समस्याओं में से एक का समाधान करने के लिए इकट्ठे हुए हैं।' संक्षिप्त संबोधन ने सबको प्रभावित किया और सदन ने उनका शानदार अभिनंदन किया। उस रात टेलीविज़न समाचारों में श्री उपाध्याय—पैंट और बंद गले का ठेठ भारतीय कोट तथा शानदार भाषण—ही छाए हुए थे।

ऑस्टिन में अपने प्रवास के दौरान पंडितजी को स्थानीय नेताओं से मिलने का अवसर मिला। उन्हें गवर्नर कार्यालय द्वारा 'टेक्सास की मानद नागरिकता' प्रदान की गई। अन्य देशों के गण्यमान्य व्यक्तियों का सम्मान करने का यह टेक्सास का तरीक़ा था। उस समय जॉन को नॉली टेक्सास के गवर्नर थे।

स्थानों के बजाय उन्हें लोग पसंद

अगले दिन पंडितजी ने स्थानीय नीग्रो कॉलेज के कर्मचारियों और छात्रों को संबोधित किया। उन्होंने उस संबंध पर बल दिया, जो दो बड़े लोकतांत्रिक देशों, भारत और संयुक्त राज्य अमरीका को जोड़ता है। उन्होंने कहा कि कोलंबस अमरीका की खोज तभी कर पाया, जब वह भारत का एक नया मार्ग खोजने के लिए प्रयास कर रहा था और इसीलिए स्थानीय लोगों को अभी भी भारतीय (रेड) कहा जाता है।

स्पष्ट रूप से यू.एस.ए. घूमने का उनका इरादा, जितना संभव हो, ज़्यादा से ज़्यादा व्यक्तियों से संपर्क और विचारों का आदान-प्रदान करने का था। वे काले मुसलमानों, लाल भारतीयों आदि के नेताओं से मिलने और उनकी गतिविधियों के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। एक व्यक्ति जो पहली बार यू.एस.ए. की यात्रा पर आया हो, वह दर्शनीय स्थलों को देखने के लिए बहुत ज़्यादा उत्सुक होता है। पंडितजी को उसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी और वास्तव में बहुत बार उन्होंने दर्शनीय स्थलों को देखने के अपने कार्यक्रम (इंडिया कमेटी के मित्रों द्वारा आयोजित) लोगों और व्यक्तित्वों से मिलने के क्रम में रद्द कर दिए।

हम उन्हें कॉफी पीने के लिए एक अमरीकी परिवार के यहाँ ले गए। ठेठ अमरीकी शिष्टाचार के साथ घर में महिला ने मुझसे पूछा कि श्री उपाध्याय के परिवार में अन्य

कौन सदस्य हैं। मैंने उनसे कहा कि वे अविवाहित हैं और अपना खुद का परिवार नहीं है। पंडितजी ने मुसकराकर मुझे संशोधित किया : नहीं-नहीं, आप ऐसा कैसे कहते हैं? मैंने सचमुच शादी नहीं की, लेकिन मेरा एक बहुत बड़ा परिवार है। कितनी सच्चाई से उन्होंने भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व किया।

—ऑर्गनाइज़र, मई 5, 1968

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

द टाइम्स ऑफ़ इंडिया में दीनदयालजी के हत्यारों के बारे में समाचार

दोनों आरोपी बरी : दीनदयाल हत्याकांड

'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' न्यूज सर्विस।

वाराणसी, 9 जून। दीनदयाल उपाध्याय की हत्या के मामले में दोनों आरोपी भरत और रामअवध को आज विशेष सत्र न्यायाधीश श्री मुरलीधर ने हत्या के आरोप से बरी कर दिया।

मुख्य आरोपी भरत चोरी के आरोप का दोषी पाया गया और चार साल के सश्रम कारावास की सज़ा सुनाई गई। रामअवध सभी आरोपों से बरी कर दिया गया।

न्यायाधीश ने कहा कि अभियोजन पक्ष आरोपी के ख़िलाफ़ हत्या का आरोप साबित करने में विफल रहा था। हत्या का आरोप न्यायिक दायरे से बाहर भरत की स्वीकारोक्ति पर टिका है। लेकिन इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। मामले में कोई परिस्थितिजन्य साक्ष्य नहीं था, जो हत्या के आरोप में आरोपी की संलिप्तता साबित करता हो। मामला सिर्फ़ इस आधार पर बनाया गया कि काशी रेलवे स्टेशन पर एक चाय दुकानदार ने स्टेशन पर आरोपी को देखा था और यह कि बाद में उन्हें मुग़लसराय के कुछ रिक्शाचालकों द्वारा देखा गया था।

श्री मुरलीधर बचाव पक्ष के इस विचार के साथ नज़र आए कि जाँच एजेंसी ने जान-बूझकर अपराध के राजनीतिक स्रोत की अनदेखी की और चोरों द्वारा बिना किसी पूर्व योजना के हत्या किए जाने की झूठी कहानी गढ़ी, जो कि कहीं से उपयुक्त नहीं लगती।

साक्ष्य की कमी

अभियोजन पक्ष मामले को मुख्यतः सबूत की कमी के चलते साबित करने में

सक्षम नहीं रहा। जाँच के दौरान काफ़ी कमियाँ रहीं। लेकिन एक कहानी जो लचर क़ानूनी सबूत और एक झूठी कहानी द्वारा समर्थित थी; दोनों भिन्न चीज़ें थीं।

मैं संकेत करते हुए यह कहना चाहूँगा कि मेरे समक्ष जो तथ्य लाए गए, उससे मुझे यह संदेह करने के लिए कोई आधार नहीं मिला कि जाँच एजेंसी को ही प्रामाणिक रूप से यह विश्वास नहीं है कि आरोपी ही दोषी हो सकते हैं या कि इसने जान-बूझकर एक झूठी कहानी का सहारा लेने की कोशिश की थी या जानबूझकर राजनीतिक 'हत्या' के सिद्धांत की उपेक्षा की गई।

न्यायाधीश ने कहा कि आरोपी के ख़िलाफ़ हत्या का अपराध साबित नहीं हो पाया है, सच्चाई का पता लगाने का प्रश्न बरकरार है। उन्होंने टिप्पणी की कि आपराधिक मुक़दमा घटना के बारे में सच की जाँच नहीं था। अदालत के समक्ष एकमात्र सवाल यह है कि सबूत आरोपी के अपराध की पुष्टि करते हैं या नहीं।

समझा जाता है कि यू.पी. सरकार ने मामले की जाँच और मुक़दमे पर 2.5 लाख रुपए ख़र्च किए, जिसे सत्र न्यायालय में पूरा होने में लगभग नौ महीने लगे।

श्री उपाध्याय का शव 11 फरवरी, 1968 को मुग़लसराय रेलवे स्टेशन से कुछ सौ गज़ की दूरी पर रेलवे पटरी के पास पाया गया था। सी.आई.डी. ने तुरंत जाँच शुरू कर दी थी। राज्य सरकार के अनुरोध पर बाद में जाँच केंद्रीय जाँच ब्यूरो को सौंप दी गई थी।

दो आरोपियों के ख़िलाफ़ आरोप पत्र पिछले साल 4 मई को अतिरिक्त ज़िला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) की अदालत में दायर किया गया था। निचली अदालत में सुनवाई दो महीने चली, इस दौरान दर्ज़नों गवाहों का परीक्षण किया गया। मजिस्ट्रेट ने दोनों आरोपियों को दोषी पाते हुए मामला अगस्त में सत्र न्यायालय के लिए भेज दिया।

अभियोजन पक्ष की परिकल्पना के अनुसार दो चोरों, जो पूर्व में दोषी थे, ने जनसंघ के नेता को पिछले साल 10 और 11 फरवरी के बीच रात को चलती ट्रेन से बाहर धक्का दे दिया। आरोपी दोषी नहीं पाए गए।

8 अक्तूबर को शुरू हुई सुनवाई के बाद सत्र न्यायालय द्वारा कुल मिलाकर अभियोजन पक्ष के 128 गवाहों का परीक्षण किया गया। सुनवाई के लिए राज्य सरकार ने विशेष न्यायाधीश के रूप में श्री मुरलीधर को नियुक्त किया। वहाँ पाँच अदालती गवाह भी थे, जिन्हें बचाव पक्ष के वकील श्री चरण दास सेठ के अनुरोध पर तलब किया गया था।

उनमें भारतीय जनसंघ के सचिव श्री नानाजी देशमुख, जो जाँच से संतुष्ट नहीं थे और स्पष्ट रूप से न्यायालय को बताया कि उनकी पार्टी इसे एक राजनीतिक हत्या समझती है, भी शामिल थे। इन गवाहों के बयान लगभग 2000 पृष्ठों में दर्ज हैं।

जिस तरीक़े से हत्या की गई थी, उसके बारे में बचाव पक्ष ने कोई सकारात्मक रुख नहीं अपनाया था। बचाव पक्ष ऐसा कोई भी तथ्य रिकॉर्ड में नहीं ला पाया, जो किसी प्रतिद्वंद्वी सिद्धांत के समर्थन में हो, जिसे सी.बी.आई. खारिज कर सकती है।

इन सीमाओं के साथ और अभिलेखित सामग्री की रोशनी में न्यायाधीश ने कहा कि वह कोई ऐसा ठोस तथ्य पाने में सक्षम नहीं हुए, जिससे राजनीतिक हत्या का प्रारंभिक संदेह साबित होता हो।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, जून 10, 1969

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-VII

पं. दीनदयाल उपाध्याय की पोस्टमार्टम रिपोर्ट

I

डॉक्टर पटेंकर, सिविल सर्जन, अल्मोड़ा द्वारा प्रस्तुत

मैं फरवरी 1968 में बनारस में एडीशनल सिविल सर्जन था। 11 फरवरी को मैंने शाम को 5:30 बजे उपाध्यायजी की लाश का मरणोत्तर पोस्टमार्टम किया था। परीक्षा के पूर्व शव के कुछ फ़ोटो लिये गए थे। एक्स क 30, एक्स क 30 व 31 वह फ़ोटो है। परीक्षा के पहले मैंने डी.एम. से अनुमति ली थी कि लांग आरटीफिशल लाईट में किया जाए। एक्स क 4 एस.आई. का सिविल सर्जन के नाम पडा है। उसी पर डी.एम. का वारंट के बारे में नोट है। शव परीक्षा पेट्रोमेक्स की रोशनी में की गई थी। शव को एस.आई. फतेह बहादुर सिंह, को. नं. 1662 जी.आर.पी. मोहम्मद जहूर तथा को.नं. 1865 अब्दुल गफूर थाना मुग़लसराय से लाए थे। उन्होंने ही शिनाख़्त की थी। मृतक की आयु लगभग 50 साल थी। मरे हुए क़रीब आधा दिन व्यतीत हो गया था। संभव है कि मृत्यु 10–11 की रात को 2.2:30 बजे हुई हो। शरीर की बनावट औसत दर्ज़े की थी। रीगर मार्टिस गरदन के ऊपर और नीचे के हिस्से में थी। बाहरी जाँच दाहिनी आँख के चारों तरफ़ स्याही थी। दाहिना कान और मुँह से और बाएँ नथुने से ख़ून बह रहा था। मुझे मृत्यु के पूर्व की निम्नलिखित चोटें शव पर मिलीं—

1. चिथरा हुआ जख्म सीधा वर्टिकल 7 से.मी. × 1 से.मी. हड्डी की गहराई सर के दाहिनी तरफ़ दाहिने कान से 5 से.मी. ऊपर से शुरू होता हुआ।
2. निलगु निशानमय खराश के 20 से.मी. × 8 से.मी. दाहिने कंधे के पीछे और दाहिने पखौरे की हड्डी पर।
3. निलगु निशान मय खराश 18 से.मी. म 7 से.मी. पीठ के दाहिनी तरफ़ निचले हिस्से में।
4. खराश 4 से.मी. म 1 से.मी. बाएँ पंखुरे की हड्डी के बीच में।

5. 7 सेमी. म 5 से.मी. के क्षेत्रफल में कई खराशें। दोनों पखरों की हड्डियों के बीच में।
6. खराश 10 से.मी. म 5 से.मी. पीठ के बीच में।
7. निलगु निशान मय खराश 416 सेमी. म 8 से.मी. दाहिने कंधे पर
8. खराश 3 से.मी. म 2 से.मी. बाएँ कंधे के पीछे।
9. बाईं टिबिया तथा फिबुला के नीचे हिस्सों की सादी टूट।
10. दाहिने टिबिया व फिबुला के निचले हिस्से की सादी टूट।
11. खराश 2 से.मी. × 1 से.मी. दाहिने घुटने के बाहर।

चोट नं. 1, 2 व 3 किसी कुंद आले से पहुँचाई गई थी। नं. 4, 5, 6, 7, 8 व 11 रगड़ की थी। नं. 9 व 10 पर कोई निलगु निशान नहीं था।

इसलिए ये चोटें इनडाइरेक्ट इंज्योर से हुई थीं। एक्स 77 फोटम्स का डायग्राम मैंने 09.3.68 को बनाया था। मुझे सी.बी.आई. वाले ट्रैक्शन पोल दिखाने के लिए मुग़लसराय यार्ड में ले गए थे। तारीख़ याद नहीं है। मेरे साथ डॉ. भूषण राव भी थे।

मेरी राय में चोट 1, 2, 3 ट्रैक्शन पोल से ज़ोर से टक्कर लगने से आ सकती है।

मेरी राय में न. 9, 10 पैर स्थिर और बाक़ी शरीर गतिमान हो तो आ सकती है। यदि पैर पर धमाका भी लगे तो संभव है कि ये सभी चोटें एक ही समय की हो सकती हैं। खोपड़ी की अंदरूनी जाँच पर मैंने यह पाया—दीवार उलटने पर कनपटी पर चोट नं. 1 के चारों तरफ़ 11 से.मी. × 9 से.मी. निलगु निशान पाया। सर के पीछे 9 से.मी. म 8 से.मी. का एक दूसरा निलगु निशान का दायरा मिला। ओसिप्टेड रीजन में भी दाहिने पेरटल पर दाहिने टेंपरल हड्डी का चिथरा तथा घिसा हुआ फ्रैक्चर मिला तथा स्फेनायड हड्डी के दाहिने हिस्से में चटकी हुई टूट मिली।

उपर्युक्त डिप्रेस्सड फ्रैक्चर के नीचे घिसी हुई, छितराई हुई लेकेरेटेड वाउंड मिली और दिमाग के दाहिने हिस्से पर जमा हुआ ख़ून मिला। खोपड़ी के आधार का अगला और बीच का गट्ठा टूट गया था। दाहिनी 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 पसली टूट गई थी। 4, 5 पसली टूट जाने के कारण उसके नीचे की झिल्ली फट गई थी। दाहिने प्लुयरल स्पेस में क़रीब 10 औंस ख़ून जमा था। दाहिने फेफड़े के बीच का हिस्सा छितरा गया था। यह पसलियों की उपर्युक्त टूट बाहरी चोट नं. 2 के फलस्वरूप हो सकती है। बाक़ी अवयव नॉर्मल थे। पेट तथा मूत्रालय खाली थे। मेरी राय में मृत्यु खोपड़ी की टूट तथा फेफड़े की चोट के बाद से ख़ून बहने व सदमे से हुई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट एक्स क 1 मैंने पोस्टमार्टम के समय ही तैयार की, जो मेरे हाथ की लिखी है और दस्तखती है। मेरी राय में मृत्यु तत्क्षण हुई होगी।

शरीर में चोट नं. 1,2,3, व 5, 6 और 7 एक इंपेक्ट से आना ज़्यादा संभव है। एक्स

क 78 चोटों का स्केच बाद में मैंने बनाया था। यह मैंने सी.बी.आई. वालों को समझाने के लिए अपनी पोस्टमार्टम रिपोर्ट तथा मेमोरी से बनाया था। इसमें प्वॉइंट्स ब॰.कर चोटें दरशाई हैं। एक्स क 2 चालान लाश पर मेरा इंडोरसमेंट है और दस्तखती है। इसमें लाश आने का समय नोट है। क 3 एस.आई. फतेह बहादुर के दस्तखत पर नोट बाबत पोस्टमार्टम है। उस पर मेरे··· हैं। एक्स क 4 पर भी मेरे इनटाइटल्स क 4 ए है। एक्स क 28 लेकर कहा, यह लाश का फ़ोटो है। दाहिने हाथ की हालत में मालूम होता है। मैं 1936 से यू.पी. मेडिकल सर्विस में हूँ और 1959 से मैं पोस्टमार्टम करता हूँ। इसके पहले भी पोस्टमार्टम में मदद करता रहा। ठीक संख्या याद नहीं है। मेरा अंदाज है 50-60 तो पोस्टमार्टम हुए ही होंगे। मेरा बयान काउंटिंग कोर्ट में भी हुआ था।

क-28 में दाहिने हाथ का अँगूठा मुड़ा है और उसकी अगली पोर नज़र नहीं आती है। मैं यह नहीं कह सकता कि अंगुलियों के नाख़ून दिखाई दे रहे हैं या सफ़ेदी महज मुड़ी अंगुलियों के बीच के पोरने पर रोशनी पड़ने से आ गई है।

इस फ़ोटो में दाहिना हाथ खड़ा तथा निराधार सा लगता है। ऐसी स्थिति बिना स्पाज़्म के संभव नहीं है और कोई कारण मेरी समझ में नहीं है। बायाँ हाथ भी मुड़ा है। ऐसा लगता है कि कोई सफ़ेद चीज़ हाथ में है। पर कह नहीं सकता क्या है?

दाहिने हाथ में भी कुछ है सफ़ेद सा, पर पता नहीं क्या है। बाएँ हाथ में कैलेटेरिक स्पाज़्म है या नहीं, मैं कह नहीं सकता। भिंची हुई उँगलियाँ स्पाज़्म का एक लक्षण हैं। फ़ोटो में बाएँ हाथ की उँगलियाँ भी भिंची मालूम होती हैं। दाहिने हाथ में स्पाज़्म इसलिए बताता हूँ कि यह हाथ ऐसे उठा है, जैसे साधारणतया शव का हाथ नहीं उठेगा। मैं नहीं कह सकता कि दाहिना हाथ किसी चीज़ के सहारे है या नहीं। सादे मोर्लिश में उँगलियाँ हल्की मुड़ी हुई रहती हैं। (टू कोर्ट) मुट्ठी बंदी की हालत में नहीं रहती, ढीली मुट्ठी की हालत में भी नहीं रहती। मुझे निश्चयपूर्वक याद नहीं है, पर 8-10 केस केडवैरिक स्पाज़्म मैंने देखे हैं। कुछ हाथों के और एक पैर का। एक हाथ वाला केस मुझे याद है कि हाथ में लाठी का टुकड़ा पकड़े था। वह टुकड़ा आसानी से खींच लिया जा सकता था। ऐसे में भी केडवैरिक स्पेस को ही मानना होगा; क्योंकि यह भी सोचें कि लाठी का टुकड़ा मरने के बाद थमा दिया गया तो भी उँगलियाँ पकड़ने की हालत में नहीं की जा सकतीं। इस वजह से थोड़ा-बहुत कंट्रक्शन हो जाता है। सेकेंडरी कंट्रक्शन किसी चीज़ को आप काहे को कह रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आ रहा है। रेज़र मार्टिश से पहले रेलेक्शन की स्टेज में शरीर को किसी भी रूप में मोड़ा जा सकता है। मैं नहीं कह सकता कि केडवैरिक स्पाज़्म में ग्रिप या मुट्ठी की पकड़ जैसी मरने के पहले थी, उतनी ही रहेगी या बढ़ जाएगी या कम भी हो सकती है। केडवैरिक स्पाज़्म पैदा करनेवाला एक फैक्टर है।

यदि किसी आदमी को धक्का दिया जाए तो यह संभव है कि वह सहारा लेने की कोशिश करे। यह मैं नहीं कह सकता कि ऐसी हालत में यदि वह हाथ में कुछ चीज़ पकड़े हो तो उस चीज़ की क्या स्थिति होगी। मुझे हृदय के किसी चैंबर में ख़ून नहीं मिला। यह ज़ाहिर होता है कि या तो कंट्रेक्टेड स्टेज में जब हार्ट था, तब मृत्यु हुई या ख़ून ज़्यादा बह गया। हार्ट के दोनों चैंबर एक के बाद एक कंट्रेक्ट करते हैं, पर वह··· फजेज है। सीवर शाक की दशा में दोनों चैंबर खाली रह जाते हैं। क्योंकि ख़ून सर्कुलेशन में रुक जाता है।

दोनों अँतड़ियों में पचने की हालत में खाना और मल था। इससे यह अंदाज़ा नहीं लग सकता कि मरने के कितने पहले खाना खाया होगा। आमाशय खाली होने से यह कहा जा सकता है कि मरने के डेढ़ घंटे पहले से खाना नहीं खाया। इससे अधिक समय की बाबत निश्चय से नहीं कह सकता। खाना आमाशय से आगे बढ़ चुका था। कम-से-कम घंटे डेढ़ घंटे में खाना आगे बढ़ता है। यह भी सही है कि औसतन खाने को आमाशय से बाहर निकलने पर ढाई व तीन घंटे लगते हैं।

मेरे अंदाज़ से गरदन में रीमर मार्टिश घटना वाली रात के 11-12 बजे से लेकर सुबह 5-6 बजे तक के बीच में शुरू हुई होगी। (टू कोर्ट) आधा दिन मृत्यु का समय जो मैंने दिया है, उसमें 5-6 घंटे का फ़र्क़ दोनों ओर हो सकता है। मृत्यु से उस मौसम के अनुसार रीमर मार्टिश शुरू हो जाती है।

जो मैंने अंदरूनी जाँच पर सिर के पीछे चोट बताई है, उसके··· कोई बाहरी चोट नहीं मिली। यह चोट मेरी राय में 'डाइरेक्ट इंपेक्ट' से आई होगी और अन्य जो चोटें मुझे मिली हैं, उनमें से किसी का 'इनडाइरेक्ट रिजल्ट' नहीं है। खोपड़ी में ऐसी अंदरूनी चोट बाहर स्पष्ट निशान न होते हुए भी आ सकती है। शरीर के अन्य भागों में आम तौर पर ऐसा संभव नहीं है। कारण यह है कि खाल मोटी होती है और उस पर बालों का आवरण भी होता है। मेरी समझ में यदि शरीर के अन्य भागों पर, जैसे टखनों पर चमड़ा लपेट दिया जाए तब बिना खाल पर बाहरी चोट आए भी भीतर हल्की सी चोट आ सकती है।

यदि गिरते समय पैर किसी गड्ढे में फँस जाए और बाक़ी शरीर गतिमान हो तो पैर की टूट हो सकती है। यदि लोहे की किसी भारी चपटी चीज़ पर कोई आदमी ज़ोर से गिरे तो चोट नं. 1 जैसी चोट आ सकती है। चोट नं. 2 भी आ सकती है ऐसे ही गिरने से। ऐसी ही भारी चीज़ इन भागों पर ज़ोर से गिरे तो ऐसी चोटें आ सकती हैं।

दाहिनी आँख के चारों तरफ़ की स्याही आँखों के चारों तरफ़ 'लूज टिश्यूज' में ख़ून आने के कारण (थी) हो सकते हैं। चोट नं 1 का असर हो सकता है।···चंद सेकंड में ही मृत्यु हो जाती है। चंद सेकंड का मतलब 20-25 सेकंड हो सकते हैं। इस शव

की सर और पसली दोनों चोटों से 'इंस्टेंटेनियस डेथ' हो सकती है। (टू कोर्ट)—ये चोटें बहुत गंभीर हैं, इसलिए ऐसा कहता हूँ। यह सही है कि ऐसी गंभीर चोटों वे बाद भी कभी-कभी कुछ देर तक प्राण रहते हैं।

कमर के दाईं और बाईं ओर जो चोटें हैं, ये सब यदि एक ही इंपैक्ट से हुई हों तो जिस चीज़ से इंपैक्ट हुई हो, उसका आकार इतना ही चौड़ा होना चाहिए। मेरे अंदाज़ से दोनों तरफ़ की चोटों का अंतर 12 इंच से लेकर 14 इंच तक होगा। पीठ के बल यदि घायल को घसीटा जाए तो पीठ वाली खराशें आ सकती हैं। चोट नं. 1 और 2 के आने के बाद भी इन चोटों का चंद सेकंड के अंदर आना संभव है। 20-25 सेकंड भी हो सकता है···? फ्रैक्चर व पोस्टमार्टम फ्रैक्चर में टूटे सिरों में और आसपास ख़ून के करने या न करने के आधार पर फ़र्क़ किए जाते हैं और कोई 'नोटेड आई डेट' नहीं है।

(टू कोर्ट)—फ्रैक्चर या कांटीजिअस भाग को काटकर देखता हूँ कि उसमें ख़ून है या नहीं और यदि ख़ून है तो धोकर देखता हूँ कि वह धुल जाता है या कुचले या टूटे भाग में जमा हो जाता है। यदि जमा रहता है तो यह चोट मृत्यु के पूर्व मानता हूँ। मैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि 25-30 सेकंड में फ्रैक्चर में आनेवाले ख़ून में क्या अंतर होगा। परंतु मेरा खयाल है कि हृदय की गति रुकते ही कुचले या टूटे जगह के अंदर ख़ून जमा होना कठिन होगा। (टू कोर्ट)··· कांटीजिअस में भी यही हालत है। उससे अधिक मैं नहीं कह सकता कि पोसिबिलिटी मृत्यु के बहुत थोड़ी देर की चोटें होने की जा सकती है या नहीं। (टू कोर्ट)—यह बात कि फ्रैक्चर या कांटीजिअस का ख़ून काटकर और धोकर देखा गया और तब कट··· पोस्टमार्टम की राय क़ायम की गई। रिपोर्ट में स्पेसीफिकली नहीं लिखी गई है, मगर यह मेरी नॉर्मल प्रैक्टिस है। यह मृत्यु 3 और 3-30 की भी हो सकती है। एक्स-क 31 फ़ोटो में दाहिने कंधे पर जो दो काली सी लकीर दिखाई पड़ रही हैं, ये कटे हुए बाल हैं। यानी सिर के जो बाल घाव के पास काटे गए थे, वे हैं। पोस्टमार्टम के समय दोनों हाथों में अकड़न है या नहीं, देखा था। चोट है या नहीं यह भी देखा था। माइक्रोस्कोपी एक्ज़ामिशन मैंने नहीं किया। मैं नहीं कह सकता कि हाथों पर डस्ट पार्टिकल्स थे या नहीं। उसी प्रकार इंज्योरी नं. 1 पर भी नहीं देखा कि डस्ट पार्टिकल्स हैं या नहीं। (टू कोर्ट) मैंने इंज्योरी नं. 1 के किनारे कुचले हैं या कटे हैं, यह जाँचने के लिए मैग्नीफाइंग ग्लास से देखा था। लिचरेटेड वाउंड में एड्जेस से डाइरेक्शन का अंदाज़ नहीं होता। ···वाउंड में या फ्रैक्चर वाउंड में डेप्थ डाइरेक्शन से वीपून ड्राइंग हो तो एड्जेस के डाइरेक्शन के प्वाइंट्स··· एड्ज के रूप में मिलेगी। अनकांशियस का हाथ ढीला हो जाएगा और पकड़ी चीज़ गिर पड़ेगी। यदि होश दुरुस्त न हो तो हाथ में पकड़ी रह सकती है; क्योंकि होश-हवाश दुरुस्त न होने का मतलब अनकांशियस होना नहीं है। (टू कोर्ट)—मेरा खयाल चोटें का फोटो खिंचने

की ध्यान नहीं था, इसलिए चोटों के फ़ोटो का उतना पेशा नहीं था। शव के फ़ोटो का यदि ध्यान होता कि चोटों का फ़ोटो लिया जा रहा है तो सभी चोटों का फ़ोटो लिया होता। पर ऐसी बात मेरे जेहन में नहीं।

चोट नं. 1, 2, 3 के बाद तत्क्षण मृत्यु होना ही संभव था, परंतु यदि ऐसा सोचा जाए कि मृत्यु नहीं हुई तो होश-हवाश ग़ायब हो जाना भी संभव था। यह नहीं कह सकता कि केवल चोट नं. 9 व 10 से होश ग़ायब हो जाने की उतनी संभावना थी या नहीं। चार्ट एक्स क 78 देखकर कहा कि चोट नं. 8 बाएँ कंधे के पीछे है। यह चार्ट चोटों का अंदाज़न दिखाता है किंतु एक्ज़ेक्ट पोज़िशन या साइज़ नहीं दिखाता। न स्केली बनाने की कोशिश की गई है। एक्स क 77 मैंने 09-03-68 को बनाया। 11.02 और 09.03 के बीच मैंने कितने पोस्टमार्टम किए, न यह याद है न यह कि कौन-कौन से पॉस्टपोन किए। मैंने सिवाय पोस्टमार्टम के कोई नोट तैयार नहीं किए थे। 11.02 व 09.03 के बीच में शायद सी.बी.आई. वाले मुझसे मिलते थे और डिस्कस करते थे। बयान नहीं लिया। डिस्कस का मतलब चोटों के बारे में··· आदि पूछा करते थे। जब मुग़लसराय डॉ. राव के साथ मुझे ले जाया गया तो मुझसे कहा गया कि चोट की जगहों के बारे में डॉ. राव को यदि आवश्यकता हो तो बताऊँ। यह मैं जानता था कि डॉ. राव··· में अधिकारी व्यक्ति हैं, इसलिए उनकी राय शायद सी.बी.आई. वाले जानना चाहते हैं। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अलावा, जहाँ तक मुझे याद है, मैंने कुछ नहीं बताया। मुझे याद नहीं कि रिपोर्ट के अलावा जो बातें आज मैंने बयान में कही हैं, यह पहले कभी कही हैं या नहीं। पोस्टमार्टम लिखते-लिखते मैंने सरसरी नज़र से पंचायतनामा पढ़ लिया था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के लिखने के पहले मैंने पंचायतनामा सरकारी निगाह से पढ़ लिया था। पंचायतनामा देखकर कहा, इसमें 5 रुपए के नोट के हाथ में होने का ज़िक्र है। पोस्टमार्टम करते समय हाथ शरीर के बगल में पड़े थे, इसलिए केडवैरिक स्पाज़्म का मुझे ख़याल आने का कोई कारण नहीं था। चोटों को देखते हुए यह ख़याल ज़रूर हुआ कि मृत्यु तत्क्षण हुई होगी। यह बात पोस्टमार्टम रिपोर्ट में नहीं लिखी। पोस्टमार्टम करने के पहले जितने काग़ज़ात आते हैं, उन्हें देखने की पुष्टि है। पंचायतनामे में दाहिनी बाजू में फ्रैक्चर लिखा है। वह मुझे पोस्टमार्टम में नहीं मिला। जिस हालत में मैंने बॉडी देखी, उस हालत में उनके हाथ में नोट नहीं था। पर अब यह नहीं बता सकता कि हाथ की दशा ऐसी थी कि उसमें नोट हो सकता था या नहीं। उस वक्त रीगर मार्टिश हाथों में भी था।

केडवैरिक स्पाज़्म वाले लिंब की क्या दशा होगी, जब रीगर मार्टिश शुरू हो जाए, इस बारे में मैं क्लीयर नहीं हूँ। किंतु यदि रीगर मॉर्टिस शुरू होने से स्पाज़्म वाली पोज़ीशन हटा दी गई है तो मेरे ख़याल से रीगर मॉटिस साधारण रूप से प्रभाव करेगी।

तत्क्षण मृत्यु में सदा केडवैरिक स्पाज़्म का होना आवश्यक नहीं है। मगर 'केडवैरिक स्पाज़्म स्टैंडिंग' डेथ का इंडीकेशन है। ख़ून शरीर में मृत्यु के बाद कई घंटे तक तरल रूप में रहता है और ग्रेविटी के सिद्धांत पर रिसता रहता है। नाक, कान और मुँह में जो ख़ून रिसता पाया गया, मेरी राय में यह खोपड़ी के निचले हिस्से की टूट से निकला होगा।

चोट नं. 1 एक से.मी. ख़ून बहा होगा। थोड़ा-बहुत जिस चीज़ से चोट नं 1 आई, उससे ख़ून होने की संभावना के बारे में नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह इस पर निर्भर होगा कि वह कितनी देर शरीर के कंट्रेक्ट में थी। चोट नं 1 कड़ी उठी हुई जगह पर ज़ोर से गिरने पर आ सकती है; क्योंकि शरीर लचीला है, इसलिए एक टक्कर से उन कई भागों में चोटें आ सकती हैं, जो एक तल में न भी हो। यदि विक्टिम बाईं करवट सोया हो और सर का दायाँ हिस्सा तथा कंधा एक लेवल में हो तो चोट नं 1 व 2 एक वार से पहुँचाई जा सकती है। यह संभव है कि तकिया लगाकर सिर और कंधे का लेवल एक हो जाए। (टू कोर्ट)—सिर की चोट से ब्लीडिंग बहुत होता है, यदि हृदय की गति रुक न जाए।...

यदि इंस्टेंटेनियस डेथ हो तो चोट नं 1 से अधिक ख़ून नहीं आएगा। मेरी राय में दो-चार चम्मच भी निकलकर बंद हो सकता है। इन चोटों के लगने के बाद यह संभव नहीं है कि मृतक स्वयं जाकर कहीं लेट जाए।

रिएक्जामिनेशन बार स्पेशल कौंसिल—यदि टखनों के ऊपर कोई प्रोटेक्शन हो तो भी 9, 10 जैसी गहरी चोटों के पहुँचने पर खाल पर भी चोट का निशान होगा। अगर ये चोटें डाइरेक्टली पहुँचाई जाएँ तो रिपोर्ट में मैंने यह नहीं लिखा है कि फ्रैक्चर की शक्ल क्या थी। अब मेरी मेमोरी रिफ्रेश हो गई है, इसलिए फ्रैक्चर की शक्ल बता सकता हूँ। डाइग्राम और फ़ोटो से यह 'मेमोरी रिफ्रेश' हुई है।

□

II

न्यायिक आदेश

आरोपी भरत दोषी पाया और धारा 379, आई.पी.सी.के तहत दोषी ठहराया गया है। अपराध के लिए सज़ा धारा 75, आई.पी.सी.के तहत आरोप पर विचार के बाद पारित हो जाएगी................................ धारा 302 और 382, आई.पी.सी.के तहत आरोपों से बरी................................आरोपी अवध सभी आरोपों से बरी कर दिया जाता है, क्योंकि..............................ज़ेल में है और तत्काल रिहाई तय होनी चाहिए..............................कुछ अन्य मामले में वांछित है। अपील की अवधि की समाप्ति पर प्रदर्शित सामग्री 1 से 8, 10 से 15, 19 से 32, 34, 55 (सामग्री 35 क से 3523 के साथ सूटकेस), 40 (रुई के साथ तकिए का गिलाफ), 45 (लेंस) और 58 (क्लिप फ़ाइल), जो श्री उपाध्याय के सामान हैं और जाँच के दौरान उस व्यक्ति से पाए या बरामद किए गए हैं, भारतीय जनसंघ के महामंत्री श्री नानाजी देशमुख, को सौंप दिए जाएँगे। प्रदर्शित सामग्री संख्या 18 पेन बालक रन को लौटा दिया जाएगा, सामग्री संख्या 42 कॉपी और करेंसी नोट सामग्री संख्या 9 कपिल को, कपड़े सामग्री संख्या 37 से 39 लालता को और कपड़े सामग्री संख्या 48 से 50 मुन्नी को, मुहरबंद सामग्री संख्या 43, 44 और 46 संबंधित पुलिस अधिकारियों को लौटा दी जाएगी। नोट-बुक सामग्री संख्या 36 पी.डब्ल्यू. कन्हैया लाल मिश्रा को लौटा दी जाएगी। रैपर सामग्री संख्या 33 डब्ल्यू के साथ कैनवास बैग सामग्री संख्या 33, जूट का थैला सामग्री संख्या 41 और मौके से बरामद ख़ून से सने हुए और सादे सामान सामग्री संख्या 52 से 57 नष्ट कर दिया जाएगा। पत्र सामग्री संख्या 16, 17 और 51 और डॉ. चौधरी के नोट्स सामग्री संख्या 47 प्रमाण वाली फ़ाइल में बने रहेंगे। अपील की स्थिति में, प्रदर्शित सामग्री का निपटान अपीलीय अदालत के आदेश पर होगा, लेकिन रुई के साथ प्रदर्शित संख्या 19 से 34 और 40 मामले के रिकॉर्ड के साथ-साथ माननीय उच्च न्यायालय को अग्रसारित कर दिया जाएगा, अन्य सामान सिर्फ़ विशेष रूप से

माँगे जाने पर ही भेजे जाएँगे।

जून 9, 1969

(मुरली धर)
विशेष सत्र न्यायाधीश
वाराणसी

आज खुली अदालत में निर्णय पर हस्ताक्षर किए, दिनांकित किया और सुनाया

विशेष सत्र न्यायाधीश,
वाराणसी

9.6.69

आरोपी भरत को दोषी ठहराने और निर्णय की घोषणा के बाद आई.पी.सी. की धारा 75 के तहत आरोप पढ़े गए और आरोपी को समझाए गए। वाराणसी के न्यायिक अधिकारियों के न्यायालयों से दिनांक 5.12.64, 8.11.65 और 22.11.67 की पिछली तीन दोषसिद्धियाँ आई.पी.सी. की धारा 379 के तहत थीं, जिसमें क्रमश: 6 महीने, 5 महीने और 3 महीने के सश्रम कारावास की सज़ा थी। चौथी दिनांक 7.7.66 की दोषसिद्धि तीन महीने की सज़ा के साथ ए.डी.एम. (न्यायिक), वाराणसी की अदालत द्वारा थी। ज़िला ज़ेल, वाराणसी के डिप्टी जेलर ए.एल. मिश्रा द्वारा प्रमाणित ज़ेल रजिस्टर के अंश प्रदर्शित सामग्री संख्या के ए 105 से ये सभी पूरी तरह से साबित हो रहे हैं। भरत ने भी इन सभी दोष सिद्धि को स्वीकार लिया है। इसलिए आई.पी.सी. की धारा 75 के तहत आरोप निर्धारित होते हैं।

प्रदर्शित सामग्री संख्या के ए 105 दरशाता है कि आरोपी ज़ेल में नियमित रूप से आता-जाता रहता है। वह दिसंबर 1964 और फरवरी 1968 के बीच उपर्युक्त चार दोषसिद्धि के अलावा भी आई.पी.सी. की धाराओं 379 और 411 के तहत अपराध के लिए सी.आर.पी.सी. की धारा 109 के तहत लगभग दस महीनों के लिए ज़ेल में बंद था। अतीत में उसे छह महीने की हल्की और तीन महीने के सश्रम कारावास की सज़ा सुनाई जा चुकी है

लेकिन लगता है कि सज़ा का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। वर्तमान अपराध की प्रकृति और उसके पूर्ववृत्त को ध्यान में रखते हुए मैं समझता हूँ कि चार साल के सश्रम कारावास की सज़ा न्याय की दृष्टि से उचित होगी और तदनुरूप उसे चार साल के सश्रम कारावास की सज़ा सुनाई जाती है।

(मुरली धर)
विशेष सत्र न्यायाधीश
वाराणसी

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

भारत के पुण्यक्षेत्र

शक्तिपीठ

हिंदू धर्म के पुराणों के अनुसार जहाँ-जहाँ सती के अंग या शरीर के टुकड़े, धारण किए वस्त्र या आभूषण गिरे, वहाँ-वहाँ तीर्थ बन गए। यही तीर्थ शक्तिपीठ कहे जाते हैं। शक्तिपीठ शाक्त मत के अनुसार साधना के अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। ये तीर्थ पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैले हुए हैं।

देवी पुराण में 51 शक्तिपीठों का वर्णन है। यद्यपि देवी भागवत में 108 तथा देवी गीता में 72 शक्तिपीठों की चर्चा मिलती है। तंत्र चूडामणि में शक्तिपीठों की संख्या 52 बताई गई है। भारत-विभाजन के बाद इनमें से एक शक्ति पीठ पाकिस्तान में चला गया और 4 बांग्लादेश में। इनके अतिरिक्त 1 शक्तिपीठ श्रीलंका, 1 तिब्बत तथा 2 नेपाल में हैं। इस प्रकार आज के भारत में केवल 42 शक्तिपीठ हैं।

51 शक्तिपीठों का संक्षिप्त विवरण

1. किरीट शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल में हुगली नदी के तट पर लालबाग कोट पर स्थित है किरीट शक्तिपीठ। यहाँ सती माता का किरीट अर्थात् मुकुट गिरा था। यहाँ की शक्ति विमला अथवा भुवनेश्वरी तथा भैरव संवर्त हैं। कुछ विद्वान् मुकुट का निपात कानपुर के मुक्तेश्वरी मंदिर में मानते हैं।

2. कात्यायनी पीठ वृंदावन : उत्तर प्रदेश मथुरा जनपद स्थित वृंदावन में स्थित है कात्यायनी वृंदावन शक्तिपीठ। यहाँ सती का केशपाश गिरा था। यहाँ की शक्ति देवी कात्यायनी हैं। यहाँ माता सती 'उमा' तथा भगवान् शंकर 'भूतेश' के नाम से जाने जाते हैं।

3. करवीर शक्तिपीठ : महाराष्ट्र के कोल्हापुर में स्थित 'महालक्ष्मी' अथवा 'अंबाई का मंदिर' ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता का त्रिनेत्र गिरा था। यहाँ की शक्ति 'महिषमर्दिनी' तथा भैरव क्रोधिश हैं। यहाँ महालक्ष्मी का निवास माना जाता है।

4. श्रीपर्वत शक्तिपीठ : यहाँ की शक्ति श्रीसुंदरी एवं भैरव सुंदरानंद हैं। कुछ विद्वान् इसे लद्दाख (जम्मू-कश्मीर) में मानते हैं, तो कुछ असम के सिलहट से 4 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम स्थित जौनपुर में मानते हैं। यहाँ सती के 'दक्षिण तल्प' (कनपटी) का निपात हुआ था।

5. विशालाक्षी शक्तिपीठ : उत्तर प्रदेश, वाराणसी के मीरघाट पर स्थित है। यहाँ की शक्ति विशालाक्षी तथा भैरव कालभैरव हैं। यहाँ माता सती के दाहिने कान की मणि गिरी थी।

6. गोदावरी तट शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ आंध्र प्रदेश के राजमुंद्री ज़िले में गोदावरी नदी के तट पर अवस्थित है। यहाँ माता का बायाँ कपोल गिरा था। यहाँ की शक्ति विश्वेश्वरी तथा भैरव दंडपाणि हैं।

7. शुचींद्रम शक्तिपीठ : तमिलनाडु में तीन महासागर के संगम-स्थल कन्याकुमारी से 13 किमी दूर शुचींद्रम में स्थाणु शिव का मंदिर है। उसी मंदिर परिसर में यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के ऊपरी दाँत गिरे थे। यहाँ की शक्ति नारायणी तथा भैरव संहार हैं।

8. पंचसागर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ वाराणसी के निकट स्थित है। यहाँ माता के निचले दाँत गिरे थे। यहाँ की शक्ति वाराही तथा भैरव महारुद्र हैं।

9. ज्वालामुखी शक्तिपीठ : हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा में स्थित है यह शक्तिपीठ, जहाँ सती का जिह्वा गिरी थी। यहाँ की शक्ति सिद्धिदा व भैरव उन्मत्त हैं।

10. हरसिद्धि शक्तिपीठ (उज्जयिनी शक्तिपीठ) : इस शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ उज्जैन के निकट शिप्रा नदी के तट पर स्थित भैरव पर्वत को, तो कुछ गुजरात के गिरनार पर्वत के सन्निकट भैरव पर्वत को वास्तविक शक्तिपीठ मानते हैं। अतः दोनों ही स्थानों पर शक्तिपीठ की मान्यता है। इस स्थान पर सती की कोहनी गिरी थी। अतः यहाँ कोहनी की पूजा होती है।

11. अट्टहास शक्तिपीठ : अट्टहास शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के लाबपुर (लामपुर) रेलवे स्टेशन वर्द्धमान से लगभग 95 किलोमीटर आगे कटवा-अहमदपुर रेलवे लाइन पर है, जहाँ सती का निचला होंठ गिरा था। इसे अट्टहास शक्तिपीठ कहा जाता है।

12. जनस्थान शक्तिपीठ : महाराष्ट्र के नासिक में पंचवटी में स्थित है जनस्थान शक्तिपीठ, जहाँ माता की ठुड्डी गिरी थी। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव विकृताक्ष हैं। मध्य रेलवे के मुंबई-दिल्ली मुख्य रेलमार्ग पर नासिक रोड स्टेशन से लगभग 8 कि.मी. दूर पंचवटी नामक स्थान पर स्थित भद्रकाली मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव विकृताक्ष हैं।

13. कश्मीर शक्तिपीठ : कश्मीर में अमरनाथ गुफ़ा के भीतर हिम शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती का कंठ गिरा था। यहाँ सती महामाया तथा शिव त्रिसंध्येश्वर कहलाते हैं। श्रावण पूर्णिमा को अमरनाथ के दर्शन के साथ यह शक्तिपीठ भी दिखता है।

14. नंदीपुर शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बोलपुर (शांतिनिकेतन) से 33 किमी दूर सैंथिया रेलवे जंक्शन के निकट ही एक वटवृक्ष के नीचे देवी मंदिर है। यहाँ देवी का कंठ हार गिरा था। यहाँ की शक्ति नंदिनी तथा भैरव नंदिकेश्वर हैं।

15. श्रीशैल शक्तिपीठ : आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद से 250 कि.मी. दूर कुर्नूल के पास श्रीशैलम है, जहाँ सती की 'ग्रीवा' गिरी थी। यहाँ की सती महालक्ष्मी तथा शिव संबरानंद हैं।

16. नलहाटी शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले में है यह शक्तिपीठ। यहाँ माता की उदरनली गिरी थी। यहाँ की शक्ति कालिका तथा भैरव योगेश हैं।

17. मिथिला शक्तिपीठ : यहाँ माता सती का बायाँ कंधा गिरा था। यहाँ की शक्ति उमा या महादेवी तथा भैरव महोदर हैं। इस शक्तिपीठ के स्थान को लेकर मतांतर हैं। मिथिला शक्तिपीठ के तीन स्थान माने जाते हैं। एक जनकपुर (नेपाल) से 51 किमी. दूर पूर्व दिशा में उच्चैठ नामक स्थान पर वन दुर्गा का मंदिर है। दूसरा बिहार के सहरसा स्टेशन के पास उग्रतारा और तीसरा समस्तीपुर के निकट जयमंगला देवी का मंदिर है। इन तीनों स्थानों को विद्वज्जन शक्तिपीठ मानते हैं।

18. रत्नावली शक्तिपीठ : रत्नावली शक्तिपीठ का निश्चित स्थान अज्ञात है, किंतु बंगाल पंजिका के अनुसार यह तमिलनाडु के मद्रास (चेन्नई) में कहीं है। यहाँ सती का दायाँ कंधा गिरा था। यहाँ की शक्ति कुमारी तथा भैरव शिव हैं।

19. अंबाजी शक्तिपीठ : यहाँ माता सती का उदर गिरा था। गुजरात में जूनागढ़ के गिरनार पर्वत पर स्थित माँ अंबाजी का मंदिर ही शक्तिपीठ है। मान्यता है कि इसी स्थान पर माता सती का ऊपरी होंठ गिरा था। यहाँ की शक्ति अवंती तथा भैरव लंबकर्ण है।

20. जालंधर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पंजाब के जालंधर में स्थित है। यहाँ माता सती का बायाँ स्तन गिरा था। यहाँ की शक्ति त्रिपुरमालिनी और भैरव भीषण के रूप में जाने जाते हैं। इसे त्रिपुरमालिनी शक्तिपीठ भी कहते हैं।

21. रामगिरि शक्तिपीठ : रामगिरि शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर मतांतर हैं। कुछ विद्वान् मैहर स्थित शारदा मंदिर को शक्तिपीठ मानते हैं, तो कुछ चित्रकूट के शारदा मंदिर को। दोनों ही स्थान मध्य प्रदेश में हैं। यहाँ देवी के दाएँ स्तन का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति शिवानी तथा भैरव चंड हैं।

22. वैद्यनाथ का हार्द शक्तिपीठ : झारखंड के गिरिडीह जनपद में स्थित वैद्यनाथ का हार्द या हृदय पीठ शिव तथा सती के ऐक्य का प्रतीक है। यहाँ सती का हृदय गिरा था। यहाँ की शक्ति जयदुर्गा तथा भैरव वैद्यनाथ हैं।

23. बक्रेश्वर शक्तिपीठ : माता का यह शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के बीरभूम ज़िले में स्थित है, जहाँ माता का त्रिकूट (दोनों भौंहों के मध्य का स्थान) गिरा था। यहाँ की शक्ति महिषासुरमर्दिनी तथा भैरव बक्रनाथ हैं।

24. कन्याकुमारी शक्तिपीठ : तमिलनाडु में तीन सागरों—हिंद महासागर, अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के संगम स्थल पर कन्याकुमारी का मंदिर है। यहीं भद्रकाली का शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की पीठ गिरी थी। यहाँ की शक्ति शर्वाणी तथा भैरव निमिष हैं।

25. बहुला शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बर्दवान जनपद में स्थित है बहुला शक्तिपीठ, जहाँ सती के वाम बाहु का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति बहुला तथा भैरव भीरुक हैं।

26. भैरव पर्वत शक्तिपीठ : इस शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ उज्जैन के निकट शिप्रा नदी तट स्थित भैरव पर्वत को, तो कुछ गुजरात के गिरनार पर्वत के सन्निकट भैरव पर्वत को वास्तविक शक्तिपीठ मानते हैं। यहाँ माता सती की कुहनी का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति अवंती तथा भैरव लंबकर्ण हैं।

27. मणिवेदिका शक्तिपीठ : राजस्थान में अजमेर से 11 किलोमीटर दूर पुष्कर सरोवर के एक ओर पर्वत की चोटी पर स्थित है सावित्री मंदिर, जिसमें माँ की आभायुक्त, तेजस्वी प्रतिमा है तथा दूसरी ओर स्थित है गायत्री मंदिर। यह गायत्री मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के मणिबंध (कलाई) का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति गायत्री और भैरव सर्वानंद हैं।

28. प्रयाग शक्तिपीठ : तीर्थराज प्रयाग में माता सती के हाथ की अंगुली गिरी थी। यहाँ की शक्ति ललिता तथा भैरव भव हैं।

29. विरजा शक्तिपीठ : उत्कल (ओडीशा) में माता सती की नाभि गिरी थी। पुरी में जगन्नाथजी के मंदिर परिसर में स्थित विमला देवी का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ की शक्ति विमला तथा भैरव जगत् हैं।

30. कांची शक्तिपीठ : तमिलनाडु में काँचीपुरम स्थित काली मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती का कंकाल गिरा था। यहाँ की शक्ति देवगर्भा और भैरव रुद्र हैं।

31. कालमाधव शक्तिपीठ : कालमाधव में सती के वाम नितंब का निपात हुआ था। इस शक्तिपीठ के बारे में कोई निश्चित स्थान ज्ञात नहीं है। माना जाता है कि यह

मध्य प्रदेश में कहीं है। यहाँ की शक्ति काली तथा भैरव असितांग हैं।

32. शोण शक्तिपीठ : मध्य प्रदेश के अमरकंटक स्थित नर्मदा मंदिर भी एक शक्तिपीठ है। यहाँ सती के दक्षिण नितंब का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति नर्मदा तथा भैरव भद्रसेन हैं।

33. कामाख्या शक्तिपीठ : असम के कामरूप जनपद में गुवाहाटी के पश्चिम भाग में नीलाचल पर्वत पर स्थित शक्तिपीठ कामाख्या के नाम से सुविख्यात है। यहाँ माता सती की योनि गिरी थी। यहाँ की शक्ति कामाख्या और भैरव उमानंद हैं।

34. जयंती शक्तिपीठ : मेघालय की जयंतिया पहाड़ी पर है जयंती शक्तिपीठ। यहाँ माता के वाम जंघा का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति जयंती और भैरव क्रमदीश्वर हैं।

35. मगध शक्तिपीठ : बिहार की राजधानी पटना में स्थित पटनेश्वरी देवी को भी शक्तिपीठ माना जाता है, जहाँ माता की दाहिनी जंघा गिरी थी। यहाँ की शक्ति सर्वानंदकरी तथा भैरव व्योमकेश हैं।

36. त्रिस्तोता शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी जनपद अंतर्गत बोदागंज के निकट स्थित मैनागुड़ी में तीस्ता नदी के तट पर त्रिस्तोता शक्तिपीठ है। जहाँ सती के वाम-चरण का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव ईश्वर हैं।

37. त्रिपुरसुंदरी शक्तिपीठ : त्रिपुरा राज्य के राधा किशोरपुर ग्राम के निकट पर्वत पर यह शक्तिपीठ स्थित है। यहाँ माता सती का दक्षिण पद गिरा था। यहाँ की शक्ति त्रिपुर सुंदरी तथा भैरव त्रिपुरेश हैं।

38. विभाष शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के मिदनापुर में है। यहाँ माता सती का बायाँ टखना गिरा था। यहाँ की शक्ति कपालिनी और भैरव सर्वानंद हैं।

39. देवीकूप शक्तिपीठ : हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र नगर में द्वैपायन सरोवर के पास कुरुक्षेत्र शक्तिपीठ स्थित है, जिसे श्रीदेवीकूप भद्रकाली पीठ के नाम से जाना जाता है। यहाँ माता सती का दाहिना टखना गिरा था। यहाँ की शक्ति सावित्री तथा भैरव स्थाणु हैं।

40. युगाद्या शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल में वर्धमान जनपद के क्षीरग्राम में स्थित है युगाद्या शक्तिपीठ। तंत्र चूड़ामणि के अनुसार यहाँ माता सती के दाहिने चरण का अँगूठा गिरा था। यहाँ की शक्ति हैं युगाद्या तथा भैरव क्षीर कंटक।

41. विराट शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ राजस्थान की राजधानी जयपुर से उत्तर में महाभारतकालीन विराट नगर के प्राचीन ध्वंसावशेष के निकट एक गुफ़ा में है। इसे भीम की गुफ़ा कहते हैं। यहीं के वैराट गाँव में शक्तिपीठ स्थित है, जहाँ सती के दाएँ पाँव की अंगुलियाँ गिरी थीं। यहाँ की शक्ति अंबिका तथा भैरव अमृतेश्वर हैं।

42. कालीघाट काली मंदिर : पश्चिम बंगाल कि राजधानी कलकत्ता के काली घाट स्थित काली माता का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की शेष अंगुलियाँ गिरी थीं। यहाँ की शक्ति कलिका तथा भैरव नकुलेश हैं।

43. मानस शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ तिब्बत में मानसरोवर के तट पर है। यहाँ माता सती की दाहिनी हथेली गिरी थी। यहाँ की शक्ति दाक्षायणी तथा भैरव अमर हैं।

44. लंका शक्तिपीठ : श्रीलंका के उत्तरी प्रांत में एक स्थान है नैनातिवु। यहाँ स्थित श्री नागपूशानी अम्मन मंदिर भी एक शक्तिपीठ है। यहाँ सती का नूपुर गिरा था। यहाँ की शक्ति इंद्राक्षी तथा भैरव राक्षसेश्वर हैं।

45. गंडकी शक्तिपीठ : नेपाल में गंडकी नदी के उद्गमस्थल पर गंडकी शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के दक्षिण गंड का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति गंडकी तथा भैरव चक्रपाणि हैं।

46. गुह्येश्वरी शक्तिपीठ : नेपाल में पशुपतिनाथ मंदिर से थोड़ी दूर बागमती नदी की दूसरी ओर गुह्येश्वरी शक्तिपीठ है। यह नेपाल की अधिष्ठात्री देवी हैं। मंदिर में एक छिद्र से निरंतर जल बहता रहता है। यहाँ माता सती के घुटने गिरे थे। यहाँ की शक्ति महामाया और भैरव कपाली हैं।

47. हिंगलाज शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत के हिंगलाज में है। हिंगलाज कराची से 144 किलोमीटर दूर उत्तर-पश्चिम दिशा में हिंगोस नदी के तट पर है। यहाँ माता सती का ब्रह्मरंध्र गिरा था। यहाँ की शक्ति कोट्टरी तथा भैरव भीमलोचन हैं। यहाँ एक गुफ़ा के भीतर जाने पर माँ आदिशक्ति के ज्योति रूप के दर्शन होते हैं।

48. सुगंधा शक्तिपीठ : बांग्लादेश के बरीसाल में सुगंधा नदी के तट पर स्थित उग्रतारा देवी का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। इस स्थान पर सती की नासिका का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति सुगंधा और भैरव त्र्यंबक हैं।

49. करतोया घाट शक्तिपीठ : यह स्थल भी बांग्लादेश में है। बोगड़ा स्टेशन से 32 किलोमीटर दूर करतोया नदी के तट पर यह शक्तिपीठ स्थित है। यहाँ माता सती का वाम तल्प गिरा था। यहाँ की शक्ति अपर्णा तथा भैरव वामन हैं।

50. चट्टल शक्तिपीठ : बांग्लादेश में चटगाँव से 38 किमी. दूर सीताकुंड स्टेशन के पास चंद्रशेखर पर्वत पर भवानी मंदिर है। यह भवानी मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की दाहिनी बाँह गिरी थी। यहाँ की शक्ति भवानी तथा भैरव चंद्रशेखर हैं।

51. यशोर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ बांग्लादेश के खुलना ज़िले के जैसोर नामक नगर में स्थित है। यहाँ सती की बाईं हथेली गिरी थी। यहाँ की शक्ति यशोश्वरी एवं भैरव चंड हैं।

सप्तपुरी

सप्तपुरी पुराणों में वर्णित सात मोक्षदायिका पुरियों को कहा गया है। इन पुरियों में काशी, कांची (कांचीपुरम), माया (हरिद्वार), अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवंतिका (उज्जयिनी) की गणना की गई है।

'काशी काँची च माया यातवयोध्याद्वारातऽपि, मथुराऽवन्तिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदाः';
'अयोध्या-मथुरामायाकाशी काञ्चि अवन्तिका, पुरी द्वारावतीचैव सप्तैते मोक्षदायिकाः।'

पुराणों के अनुसार इन सात पुरियों या तीर्थों को मोक्षदायक कहा गया है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. अयोध्या : अयोध्या उत्तर प्रदेश में सरयू नदी के तट पर स्थित एक क़सबा है। भगवान् श्रीराम का जन्म यहीं हुआ था। यह हिंदुओं के प्राचीन और सात पवित्र तीर्थस्थलों में से एक है। अयोध्या को अथर्ववेद में ईश्वर का नगर बताया गया है और इसकी संपन्नता की तुलना स्वर्ग से की गई है। रामायण के अनुसार अयोध्या की स्थापना मनु ने की थी। कई शताब्दियों तक यह नगर सूर्य वंश की राजधानी रहा। इसे मंदिरों का शहर कहा जाता है। यहाँ आज भी हिंदू, बौद्ध, इसलाम और जैन धर्म से जुड़े अवशेष देखे जा सकते हैं। जैन मत के अनुसार यहाँ आदिनाथ सहित पाँच तीर्थंकरों का जन्म हुआ था।

2. मथुरा : पुराणों में मथुरा के गौरवमय इतिहास का विषद विवरण मिलता है। अनेक धर्मों से संबंधित होने के कारण मथुरा में बसने और रहने का महत्त्व क्रमशः बढ़ता रहा। ऐसी मान्यता है कि यहाँ रहने मात्र से लोग पापरहित हो जाते हैं तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं। वराह पुराण में कहा गया है कि इस नगरी में जो लोग शुद्ध विचार से निवास करते हैं, वे मानव के रूप में साक्षात् देवता हैं। मथुरा में श्राद्ध करनेवालों के पूर्वजों को आध्यात्मिक मुक्ति मिलती है। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने मथुरा में तप करके नक्षत्रों में स्थान प्राप्त किया था। वराह पुराण में मथुरा की माप बीस योजन बताई गई है। इस मंडल में मथुरा, गोकुल, वृंदावन, गोवर्धन आदि नगर, ग्राम एवं मंदिर, तड़ाग, कुंड, वन एवं अगणित तीर्थों के होने का विवरण है। इनका विस्तृत वर्णन पुराणों में मिलता है। गंगा के समान ही यमुना के गौरवमय महत्त्व का भी विशद वर्णन किया गया है। पुराणों में वर्णित राजाओं के शासन एवं उनके वंशों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

3. हरिद्वार : हरिद्वार उत्तराखंड में स्थित भारत के सात सबसे पवित्र तीर्थस्थलों में एक है। भारत के पौराणिक ग्रंथों और उपनिषदों में हरिद्वार को मायापुरी कहा गया है। हरिद्वार का अर्थ ही है, हरि तक पहुँचने का द्वार। सबसे पवित्र नदी गंगा के तट पर बसे इस शहर को धर्म की नगरी माना जाता है। सैकड़ों वर्षों से लोग मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य से इस पवित्र भूमि में आते रहे हैं। पवित्र नदी गंगा में डुबकी लगाकर अपने पापों का नाश

करने के लिए साल भर यहाँ श्रद्धालुओं का आना-जाना हमेशा लगा रहता है। गंगा नदी पहाड़ी इलाकों को पीछे छोड़ती हुई हरिद्वार से ही मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करती है। उत्तराखंड क्षेत्र के चार प्रमुख तीर्थस्थलों का प्रवेशद्वार हरिद्वार ही है। संपूर्ण हरिद्वार में सिद्धपीठ, शक्तिपीठ और अनेक नए-पुराने मंदिर बने हुए हैं।

4. काशी : वाराणसी, काशी अथवा बनारस उत्तर प्रदेश का एक प्राचीन और धार्मिक महत्ता रखनेवाला शहर है। गंगा नदी के किनारे बसे वाराणसी का पुराना नाम काशी है। दो नदियों वरुणा और असि के मध्य बसा होने के कारण इसका नाम वाराणसी पड़ा। यह विश्व का प्राचीनतम बसा हुआ शहर है। यह शहर हज़ारों वर्षों से उत्तर भारत का धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र रहा है। संस्कृत पढ़ने के लिए प्राचीन काल से ही लोग वाराणसी आया करते थे। वाराणसी के घरानों की संगीत में अपनी ही शैली है।

5. कांचीपुरम : कांचीपुरम तीर्थपुरी दक्षिण की काशी मानी जाती है, जो चेन्नई से लगभग 68 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। कांचीपुरम को कांची भी कहा जाता है। यह आधुनिक काल में कांचीवरम के नाम से भी प्रसिद्ध है। अनुश्रुति है कि देवी के दर्शन के लिए ब्रह्माजी ने इस क्षेत्र में तप किया था। इसकी गणना मोक्षदायिनी सप्तपुरियों में की जाती है। कांची हरिहरात्मक पुरी है। इसके दो भाग शिवकांची और विष्णुकांची हैं।

6. अवंतिका : उज्जयिनी (उज्जैन) का प्राचीनतम नाम अवंतिका, अवंति नामक राजा के नाम पर था। इस जगह को पृथ्वी का नाभि देश कहा गया है। महर्षि संदीपन का आश्रम भी यहीं था। उज्जयिनी महाराज विक्रमादित्य की राजधानी थी। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में देशांतर की शून्यरेखा उज्जयिनी से प्रारंभ हुई मानी जाती है। इसे कालिदास की नगरी के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ हर 12 वर्ष पर सिंहस्थ कुंभ मेला लगता है। भगवान् शिव के 12 ज्योतिर्लिंगों में एक महाकाल इस नगरी में स्थित है।

7. द्वारका : द्वारका का प्राचीन नाम कुशस्थली है। पौराणिक कथाओं के अनुसार महाराजा रैवतक के समुद्र में कुश बिछाकर यज्ञ करने के कारण ही इस नगरी का नाम कुशस्थली हुआ था। बाद में त्रिविक्रम भगवान् ने कुश नामक दानव का वध भी यहीं किया था। त्रिविक्रम का मंदिर द्वारका में रणछोड़जी के मंदिर के निकट है। ऐसा लगता है कि महाराज रैवतक (बलराम की पत्नी रेवती के पिता) ने प्रथम बार समुद्र में से कुछ भूमि बाहर निकाल कर यह नगरी बसाई होगी। हरिवंश पुराण के अनुसार कुशस्थली उस प्रदेश का नाम था, जहाँ यादवों ने द्वारका बसाई थी। विष्णु पुराण के अनुसार, आनर्त के रेवत नामक पुत्र हुआ, जिसने कुशस्थली नामक पुरी में रह कर आनर्त पर राज्य किया। विष्णु पुराण से सूचित होता है कि प्राचीन कुशावती के स्थान पर ही श्रीकृष्ण ने द्वारका

बसाई थी—'कुशस्थली या तव भूप रम्या पुरी पुराभूदमरावतीव, सा द्वारका संप्रति तत्र चास्ते स केशवांशो बलदेवनामा'।

द्वादश ज्योतिर्लिंग

द्वादश ज्योतिर्लिंगों के संबंध में शिव पुराण की कोटि 'रुद्रसंहिता' में निम्नलिखित श्लोक दिया गया है—.

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्॥
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्॥ 1॥
परल्यां वैदयनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्॥
सेतुबन्धे तुरामेशं नागेशं दारुकावने॥ 2॥
वाराणस्यांच विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥ 3॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरूत्थाय यः पठेत्॥
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥ 4॥

शिव पुराण के कोटिरुद्र संहिता में वर्णित कथानक के अनुसार भगवान् शिवशंकर प्राणियों के कल्याण हेतु जगह-जगह तीर्थों में भ्रमण करते रहते हैं तथा लिंग के रूप में वहाँ निवास भी करते हैं। कुछ विशेष स्थानों पर शिव के उपासकों ने महती निष्ठा के साथ तन्मय होकर भूतभावन की आराधना की थी। उनके भक्तिभाव के प्रेम से आकर्षित भगवान् शिव ने उन्हें दर्शन दिया तथा उनकी अभिलाषा भी पूरी की। उन स्थानों में आविर्भूत दयालु शिव अपने भक्तों के अनुरोध पर अपने अंशों से सदा के लिए वहीं अवस्थित हो गए। लिंग के रूप में साक्षात् भगवान् शिव जिन-जिन स्थानों में विराजमान हुए, वे हुए सभी तीर्थ के रूप में महत्त्व को प्राप्त हुए।

शिव द्वारा शिवलिंग रूप धारण

संपूर्ण तीर्थ ही लिंगमय है तथा सब कुछ लिंग में समाहित है। वैसे तो शिवलिंगों की गणना अत्यंत कठिन है। जो भी दृश्य दिखाई पड़ता है अथवा हम जिस किसी भी दृश्य का स्मरण करते हैं, वह सब भगवान् शिव का ही रूप है, उससे पृथक् कोई वस्तु नहीं है। संपूर्ण चराचर जगत् पर अनुग्रह करने के लिए ही भगवान् शिव ने देवता, असुर, गंधर्व, राक्षस तथा मनुष्यों सहित तीनों लोकों को लिंग के रूप में व्याप्त कर रखा है। संपूर्ण लोकों पर कृपा करने की दृष्टि से ही वे भगवान् महेश्वर तीर्थ में तथा विभिन्न जगहों में भी अनेक प्रकार के लिंग धारण करते हैं। जहाँ-जहाँ जब भी उनके भक्तों ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका स्मरण या चिंतन किया, वहीं वे प्रकट होकर विराजमान हो

गए। जगत् का कल्याण करने हेतु भगवान् शिव ने स्वयं अपने स्वरूप के अनुकूल लिंग की परिकल्पना की और उसी में वे प्रतिष्ठित हो गए। ऐसे लिंगों की पूजा करके शिवभक्त सब प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। भूमंडल के लिंगों की गणना तो नहीं की जा सकती, किंतु उनमें कुछ प्रमुख शिवलिंग हैं।

शिव पुराण के अनुसार प्रमुख द्वादश ज्योतिर्लिंग इस प्रकार हैं, जिनके नाम श्रवण मात्र से मनुष्य का किया हुआ पाप दूर भाग जाता है—

1. सोमनाथ : प्रथम ज्योतिर्लिंग सौराष्ट्र में अवस्थित सोमनाथ का है। यह स्थान गुजरात प्रांत के काठियावाड़ के प्रभास क्षेत्र में है।

2. मल्लिकार्जुन : आंध्र प्रदेश के कुर्नूल ज़िले में कृष्णा नदी के तट पर श्रीशैलम पर्वत पर श्रीमल्लिकार्जुन विराजमान हैं। इसे दक्षिण का कैलाश कहते हैं।

3. महाकालेश्वर : तृतीय ज्योतिर्लिंग महाकाल या महाकालेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। यह मध्य प्रदेश के उज्जैन नामक नगर में है, जिसे प्राचीनकाल में अवंतिका पुरी के नाम से भी जाना जाता रहा है।

4. ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग : चतुर्थ ज्योतिर्लिंग का नाम ओंकारेश्वर है। इन्हें ममलेश्वर और अमलेश्वर भी कहा जाता है। यह स्थान भी मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में ही है। यह प्राकृतिक संपदा से भरपूर नर्मदा नदी के तट पर अवस्थित है।

5. केदारनाथ : पाँचवाँ ज्योतिर्लिंग हिमालय की चोटी पर विराजमान श्री केदारनाथजी का है। श्री केदारनाथ को केदारेश्वर भी कहा जाता है, जो उत्तराखंड में केदार नामक शिखर पर विराजमान है। इस शिखर से पूरब दिशा में अलकनंदा नदी के किनारे भगवान् श्री बद्री विशाल का मंदिर है।

6. भीमशंकर : छठवें ज्योतिर्लिंग का नाम भीमशंकर है, जो डाकिनी पर अवस्थित है। यह स्थान महाराष्ट्र में मुंबई से पूरब तथा पूना से उत्तर की ओर स्थित है, जो भीमा नदी के किनारे सह्याद्रि पर्वत पर है। भीमा नदी भी इसी पर्वत से निकलती है।

7. विश्वनाथ : काशी (वाराणसी) में विराजमान भूतभावन भगवान् श्री विश्वनाथ को सातवाँ ज्योतिर्लिंग कहा गया है। कहते हैं, काशी तीनों लोकों में न्यारी नगरी है, जो भगवान् शिव के त्रिशूल पर विराजती है।

8. त्र्यबंकेश्वर : आठवें ज्योतिर्लिंग को त्र्यबंक के नाम से भी जाना जाता है। यह नासिक ज़िले में पंचवटी से लगभग अठारह मील की दूरी पर है। यह मंदिर ब्रह्मगिरि के पास गोदावरी नदी के किनारे अवस्थित है।

9. वैद्यनाथ : नवें ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथ हैं। यह स्थान झारखंड प्रांत के देवघर जनपद में जसीडीह रेलवे स्टेशन के समीप है। पुराणों में इस जगह को चिताभूमि कहा गया है।

10. नागेश : नागेश नामक ज्योतिर्लिंग दसवें हैं। यह गुजरात के बड़ौदा क्षेत्र में गोमती द्वारका के समीप है। इस स्थान को दारुका वन भी कहा जाता है।

11. रामेश्वर : ग्यारहवें ज्योतिर्लिंग श्रीरामेश्वर हैं। रामेश्वर तीर्थ को ही सेतुबंध तीर्थ कहा जाता है। यह स्थान तमिलनाडु के रामनाथम जनपद में स्थित है। यहाँ समुद्र के किनारे भगवान् श्रीरामेश्वरम् का विशाल मंदिर शोभित है।

12. घुश्मेश्वर : बारहवें ज्योतिर्लिंग का नाम घुश्मेश्वर है। इन्हें कोई घृष्णेश्वर तो कोई घुसृणेश्वर के नाम से पुकारता हैं। यह स्थान महाराष्ट्र क्षेत्र के अंतर्गत दौलताबाद से लगभग अठारह किलोमीटर दूर बेरूलठ गाँव के पास है। इस स्थान को शिवालय भी कहा जाता है।

भारत के चार धाम

भारत के चारों कोनों पर स्थित हिंदू धर्म की चार प्रमुख पीठों को ही चार धाम कहते हैं। चारधाम की स्थापना जगद्‌गुरु आदि शंकराचार्य ने की थी। इनमें तीन— बद्रीनारायण, द्वारका और पुरी वैष्णव मठ हैं, जबकि एक रामेश्वरम् शैव मठ है। भूगोल की दृष्टि से देखें तो ये चारों धाम मिलकर एक विशुद्ध चतुर्भुज का निर्माण करते हैं। इनमें उत्तर में स्थित बद्रीनारायण और दक्षिण में स्थित रामेश्वरम् एक ही देशांतर पर स्थित हैं, जबकि पूरब पुरी और पश्चिम में द्वारका एक ही अक्षांश पर अवस्थित हैं। इस प्रकार राष्ट्र के चारों कोनों पर स्थित ये मठ भारत की सांस्कृतिक सीमा भी निर्धारित करते हैं। विद्वानों का मत है कि इनकी स्थापना के पीछे आदि शंकराचार्य का उद्‌देश्य यही रहा होगा कि लोग उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों दिशाओं में स्थित इन धामों की यात्रा कर संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक विरासत को जानें-समझें। संभवत: इसीलिए प्रत्येक हिंदू के लिए चार धाम की यात्रा अनिवार्य कही जाती है।

1. पुरी (गोवर्धन पीठम्) : यह भारत के ओडिशा राज्य में बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित है। यहाँ वैष्णव संप्रदाय का मंदिर है, जो भगवान् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को समर्पित है। भगवान् श्रीकृष्ण को ही यहाँ जगन्नाथ के रूप में पूजा जाता है। यह भारत का अकेला मंदिर है, जहाँ भगवान् जगन्नाथ अपने अग्रज बलभद्र और भगिनी सुभद्रा के साथ पूजे जाते हैं। जगन्नाथ शब्द का अर्थ जगत् का स्वामी होता है। इस मंदिर का वार्षिक रथयात्रा उत्सव प्रसिद्ध है। इसमें मंदिर के तीनों मुख्य देवता—भगवान् जगन्नाथ, उनके बड़े भ्राता बलभद्र और भगिनी सुभद्रा, तीन अलग-अलग भव्य और सुसज्जित रथों में विराजमान होकर नगर की यात्रा को निकलते हैं। मध्य-काल से ही यह उत्सव अतीव हर्षोल्लस के साथ मनाया जाता है। इसके साथ ही यह उत्सव भारत के ढेरों वैष्णव कृष्ण मंदिरों में मनाया जाता है तथा यात्रा निकाली जाती है। यह मंदिर वैष्णव परंपराओं और संत रामानंद से जुड़ा हुआ है। यह गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के लिए विशेष

महत्त्व रखता है। इस पंथ के संस्थापक श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् की ओर आकर्षित हुए थे और कई वर्षों तक पुरी में रहे भी थे।

2. रामेश्वरम् (श्रृंगेरीशरदापीठम्) : पवित्र तीर्थ रामेश्वरम् तमिलनाडु के रामनाथपुरम् ज़िले में स्थित है। यह तीर्थ चार धामों में से एक है। यहाँ स्थापित शिवलिंग द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक माना जाता है। भारत के उत्तर में काशी की जो मान्यता है, वही दक्षिण में रामेश्वरम् की है। रामेश्वरम् चेन्नई से लगभग सवा चार सौ मील दक्षिण-पूर्व में है। यह हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी से चारों ओर से घिरा हुआ एक शंख आकार का एक सुंदर द्वीप है। बहुत पहले यह द्वीप भारत की मुख्य भूमि के साथ जुड़ा हुआ था, परंतु बाद में सागर की लहरों ने इस मिलानेवाली कड़ी को काट डाला, जिससे वह चारों ओर पानी से घिरकर टापू बन गया। भगवान् राम ने लंका पर चढ़ाई करने से पूर्व यहाँ पत्थरों के एक सेतु का निर्माण करवाया था, जिस पर चढ़कर वानर सेना लंका पहुँची और विजय पाई। बाद में राम ने विभीषण के अनुरोध पर धनुष कोटि नामक स्थान पर यह सेतु तोड़ दिया था। आज भी इस 48 कि.मी लंबे आदि-सेतु के अवशेष सागर में दिखाई देते हैं। यहाँ के मंदिर के तीसरे प्रकार का गलियारा विश्व का सबसे लंबा गलियारा है।

3. द्वारका (द्वारकापीठम्) : द्वारका गुजरात की देवभूमि द्वारका ज़िले में स्थित एक नगर तथा तीर्थस्थल है। यह चार धामों के साथ-साथ सप्तपुरियों में भी एक है। यह नगरी भारत के पश्चिम में अरब सागर के किनारे बसी है। धर्मग्रंथों के अनुसार इसे श्रीकृष्ण ने बसाया था। यह श्रीकृष्ण की कर्मभूमि है। आधुनिक द्वारका एक शहर है। क़सबे के एक हिस्से के चारों ओर चाहरदीवारी खिंची है, इसके भीतर ही कई भव्य मंदिर हैं। काफ़ी समय से जाने-माने शोधकर्ता पुराणों में वर्णित द्वारका के रहस्य का पता लगाने में लगे हुए हैं, लेकिन वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित कोई भी अध्ययन कार्य अभी तक पूरा नहीं हो सका है। 2005 में द्वारका के रहस्यों से परदा उठाने के लिए अभियान शुरू किया गया था। इस अभियान में भारतीय नौसेना ने भी मदद की। अभियान के दौरान समुद्र की गहराई में कटे-छँटे पत्थर मिले और यहाँ से लगभग 200 अन्य नमूने भी एकत्र किए, लेकिन आज तक यह तय नहीं हो पाया कि यह वही नगरी है या नहीं, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने बसाया था। श्रीकृष्ण मथुरा में उत्पन्न हुए, गोकुल में पले, पर राज उन्होंने द्वारका में ही किया। यहाँ श्रीकृष्ण की पूजा रणछोड़जी के रूप में होती है।

4. बदरीनारायण धाम (ज्योतिर्मठपीठम्) : बदरीनारायण धाम जिसे बदरीनाथ मंदिर भी कहते हैं, उत्तराखंड राज्य में अलकनंदा नदी के किनारे स्थित है। यह मंदिर भगवान् विष्णु के रूप बदरीनाथ को समर्पित है। यह चार धाम में से एक है। ऋषिकेश से यह 294 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में स्थित है।

भारत की सात पवित्र नदियाँ

हिंदुओं द्वारा स्नान एवं धार्मिक कृत्यों के समय यह श्लोक याद किया जाता है :

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

अर्थात् गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कावेरी इन सातों नदियों के जल का सद्प्रभाव इस जल में व्याप्त हो।

यह केवल इन सात पवित्र नदियों का धार्मिक महत्त्व ही नहीं, भारत की सीमाओं का विस्तार भी बताता है। इनमें गंगा, यमुना और सरस्वती उत्तर से पूरब तक, गोदावरी, नर्मदा और कावेरी पश्चिम से दक्षिण तथा सिंधु पश्चिम से उत्तर तक भारत की सीमाएँ निर्धारित करती रही हैं।

वेद शब्द संस्कृत भाषा के 'विद्' धातु से बना है 'विद्' का अर्थ है—जानना, ज्ञान इत्यादि। 'वेद' हिंदू धर्म के प्राचीन पवित्र ग्रंथों का नाम है, इससे वैदिक संस्कृति प्रचलित हुई। ऐसी मान्यता है कि इनके मंत्रों को परमेश्वर ने प्राचीन ऋषियों को अप्रत्यक्ष रूप से सुनाया था। इसलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है। वेद प्राचीन भारत के वैदिक काल की वाचिक परंपरा की अनुपम कृति है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी पिछले चार-पाँच हज़ार वर्षों से चली आ रही है। वेद ही हिंदू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रंथ हैं। वेद के असल मंत्र भाग को संहिता कहते हैं।

'सनातन धर्म' एवं 'भारतीय संस्कृति' का मूल आधार स्तंभ विश्व का अति प्राचीन और सर्वप्रथम वाङ्मय 'वेद' माना गया है। मानव जाति के लौकिक (सांसारिक) तथा पारमार्थिक अभ्युदय हेतु प्राकट्य होने से वेद को अनादि एवं नित्य कहा गया है। अति प्राचीनकालीन महा तपा, पुण्यपुंज ऋषियों के पवित्रतम अंत:करण में वेद के दर्शन हुए थे, अत: उसका 'वेद' नाम प्राप्त हुआ। ब्रह्म का स्वरूप 'सत-चित-आनंद' होने से ब्रह्म को वेद का पर्यायवाची शब्द कहा गया है। इसीलिए वेद लौकिक एवं अलौकिक ज्ञान का साधन है। 'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये' तात्पर्य यह कि कल्प के प्रारंभ में आदिकवि ब्रह्मा के हृदय में वेद का प्राकट्य हुआ।

वेद के प्रकार

ऋग्वेद : वेदों में सर्वप्रथम ऋग्वेद का निर्माण हुआ। यह पद्यात्मक है। यजुर्वेद गद्यमय है और सामवेद गीतात्मक है। ऋग्वेद में मंडल 10 हैं,1028 सूक्त हैं और 11 हज़ार मंत्र हैं। इसमें 5 शाखाएँ हैं—शाकल्प, वास्कल, अश्वलायन, शांखायन, मंडूकायन। ऋग्वेद के दशम मंडल में औषधि सूक्त हैं। इसके प्रणेता अथर्शास्त्र ऋषि हैं। इसमें औषधियों की संख्या 125 के लगभग निर्दिष्ट की गई है जो कि 107 स्थानों पर पाई जाती है। औषधि में सोम का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में च्यवन ऋषि को पुन: युवा करने

का कथानक भी उद्धृत है और औषधियों से रोगों का नाश करना भी समाविष्ट है। इसमें जल चिकित्सा, वायु चिकित्सा, सौर चिकित्सा, मानस चिकित्सा एवं हवन द्वारा चिकित्सा का समावेश है

सामवेद : चार वेदों में सामवेद का नाम तीसरे क्रम में आता है। पर ऋग्वेद के एक मंत्र में ऋग्वेद से भी पहले सामवेद का नाम आने से कुछ विद्वान वेदों को एक के बाद एक रचना न मानकर प्रत्येक को स्वतंत्र रचना मानते हैं। सामवेद में गेय छंदों की अधिकता है, जिनका गान यज्ञों के समय होता था। 1824 मंत्रों के इस वेद में 75 मंत्रों को छोड़कर शेष सब मंत्र ऋग्वेद से ही संकलित हैं। इस वेद को संगीत शास्त्र का मूल माना जाता है। इसमें सविता, अग्नि और इंद्र देवताओं का प्राधान्य है। इसमें यज्ञ में गाने के लिए संगीतमय मंत्र हैं, यह वेद मुख्यत: गंधर्व लोगो के लिए होता है। इसमें मुख्य 3 शाखाएं हैं, 75 ऋचाएँ हैं विशेषकर संगीतशास्त्र का समावेश किया गया है।

यजुर्वेद : इसमें यज्ञ की असल प्रक्रिया के लिए गद्य मंत्र हैं, यह वेद मुख्यत: क्षत्रियों के लिए होता है। यजुर्वेद के दो भाग हैं—

1. कृष्ण : वैशंपायन ऋषि का संबंध कृष्ण से है। कृष्ण की चार शाखाएँ हैं।
2. शुक्ल : याज्ञवल्क्य ऋषि का संबंध शुक्ल से है। शुक्ल की दो शाखाएँ हैं।

इसमें 40 अध्याय हैं। यजुर्वेद के एक मंत्र में 'ब्रीहिधान्यो' का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अलावा, दिव्य वैद्य एवं कृषि विज्ञान का भी विषय समाहित है।

अथर्ववेद : इसमें जादू, चमत्कार, आरोग्य, यज्ञ के लिए मंत्र हैं, यह वेद मुख्यत: व्यापारियों के लिए होता है। इसमें 20 कांड हैं। अथर्ववेद में आठ खंड आते हैं, जिनमें भैषज वेद एवं धातु वेद, ये दो नाम स्पष्ट प्राप्त हैं।

छह शास्त्र : मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, वेदांत।

अठारह पुराण : ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, पद्म पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, अग्नि पुराण, मार्कंडेय पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, स्कंद पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्मांड पुराण।

अखंडता के प्रतीक भारत के पुण्यक्षेत्र

अष्टविनायक

अष्टविनायक से अभिप्राय है आठ गणपति। यह आठ अति प्राचीन मंदिर भगवान् गणेश के आठ शक्तिपीठ भी कहलाते हैं, जो कि महाराष्ट्र में स्थित हैं। महाराष्ट्र में पुणे के समीप अष्टविनायक के आठ पवित्र मंदिर 20 से 110 किलोमीटर के क्षेत्र में स्थित हैं। इन मंदिरों का पौराणिक महत्त्व और इतिहास है। इनमें विराजित गणेश की प्रतिमाएँ स्वयंभू मानी जाती हैं, यानि यह स्वयं प्रगट हुई हैं। यह मानव निर्मित न होकर प्राकृतिक हैं। 'अष्टविनायक' के ये सभी आठ मंदिर अत्यंत पुराने और प्राचीन हैं। इन सभी का

विशेष उल्लेख गणेश और मुद्गल पुराण, जो हिंदू धर्म के पवित्र ग्रंथों का समूह हैं, में किया गया है। इन आठ गणपति धामों की यात्रा अष्टविनायक तीर्थ यात्रा के नाम से जानी जाती है। इन पवित्र प्रतिमाओं के प्राप्त होने के क्रम के अनुसार ही अष्टविनायक की यात्रा भी की जाती है। अष्टविनायक दर्शन की शास्त्रोक्त क्रमबद्धता इस प्रकार है—

1. श्री मयूरेश्वर मंदिर : यह मंदिर पुणे से 80 किलोमीटर दूर स्थित मोरेगाँव में है। मयूरेश्वर मंदिर के चारों कोनों में मीनारें हैं और लंबे पत्थरों की दीवारें हैं। यहाँ चार द्वार हैं। ये चारों दरवाज़े चारों युग सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग के प्रतीक हैं। इस मंदिर के द्वार पर शिवजी के वाहन नंदी बैल की मूर्ति स्थापित है, इसका मुँह भगवान् गणेश की मूर्ति की ओर है। मंदिर में गणेशजी बैठी मुद्रा में विराजमान है तथा उनकी सूँड़ बाएँ हाथ की ओर है तथा उनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। मान्यताओं के अनुसार यहाँ गणेशजी ने मोर पर सवार होकर सिंधुरासुर से युद्ध किया था। इसी कारण यहाँ स्थित गणेशजी को मयूरेश्वर कहा जाता है।

2. सिद्धिविनायक मंदिर : अष्ट विनायक में दूसरे गणेश हैं सिद्धिविनायक। यह मंदिर पुणे से करीब 200 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। समीप ही भीम नदी है। यह क्षेत्र सिद्धटेक गाँव के अंतर्गत आता है। यह पुणे के सबसे पुराने मंदिरों में से एक है। मंदिर करीब 200 साल पुराना है। सिद्धटेक में सिद्धिविनायक मंदिर बहुत ही सिद्ध स्थान है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ भगवान् विष्णु ने सिद्धियाँ हासिल की थीं। सिद्धिविनायक मंदिर एक पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है। जिसका मुख्य द्वार उत्तर दिशा की ओर है। मंदिर की परिक्रमा के लिए पहाड़ी की यात्रा करनी होती है। यहाँ गणेशजी की मूर्ति 3 फीट ऊँची और ढाई फीट चौड़ी है। मूर्ति का मुख उत्तर दिशा की ओर है। भगवान् गणेश की सूँड़ सीधे हाथ की ओर है।

3. श्रीबल्लालेश्वर मंदिर : अष्टविनायक में अगला मंदिर है श्री बल्लालेश्वर का। यह महाराष्ट्र के रायगढ़ जनपद अंतर्गत पाली गाँव में है। इस मंदिर का नाम गणेशजी के भक्त बल्लाल के नाम पर पड़ा है। प्राचीन काल में बल्लाल नाम का एक लड़का था, वह गणेशजी का परम भक्त था। एक दिन उसने पाली गाँव में विशेष पूजा का आयोजन किया। पूजन कई दिनों तक चलता रहा। पूजा में शामिल कई बच्चे घर लौटकर नहीं गए और वहीं बैठे रहे। इस कारण उन बच्चों के माता-पिता ने बल्लाल को पीटा और गणेशजी की प्रतिमा के साथ उसे भी जंगल में फेंक दिया। गंभीर हालत में बल्लाल गणेशजी के मंत्रों का जप कर रहा था। इस भक्ति से प्रसन्न होकर गणेश जी ने उसे दर्शन दिए। तब बल्लाल ने गणेशजी से आग्रह किया अब वे इसी स्थान पर निवास करें। गणपति ने आग्रह मान लिया।

4. श्रीवरदविनायक : अष्टविनायक में चौथे गणेश हैं श्रीवरदविनायक। यह मंदिर

महाराष्ट्र के रायगढ़ ज़िले के कोल्हापुर क्षेत्र में स्थित है। यहाँ एक सुंदर पर्वतीय गाँव है महाड़। इसी गाँव में है श्री वरदविनायक मंदिर। यहाँ प्रचलित मान्यता के अनुसार वरदविनायक भक्तों की सभी कामनाओं के पूरा होने का वरदान प्रदान करते हैं। इस मंदिर में नंददीप नाम का एक दीपक है, जो कई वर्षों से प्रज्वलित है। वरदविनायक का नाम लेने मात्र से ही सारी कामनाओं के पूरा होने का वरदान प्राप्त होता है।

5. चिंतामणि गणपति : अष्टविनायक में पाँचवें गणेश हैं चिंतामणि गणपति। यह मंदिर पुणे ज़िले के हवेली क्षेत्र में स्थित है। मंदिर के पास ही तीन नदियों का संगम है। ये तीन नदियाँ हैं भीम, मुला और मुथा। यदि किसी भक्त का मन बहुत विचलित है और जीवन में दुःख ही दुःख प्राप्त हो रहे हैं तो इस मंदिर में आने पर ये सभी समस्याएँ दूर हो जाती हैं। ऐसी मान्यता है कि स्वयं भगवान् ब्रह्मा ने अपने विचलित मन को वश में करने के लिए इसी स्थान पर तपस्या की थी।

6. श्री गिरजात्मज गणपति : अष्टविनायक में अगले गणपति हैं श्री गिरजात्मज। यह मंदिर पुणे-नासिक राजमार्ग पर पुणे से करीब 90 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। क्षेत्र के नारायण गाँव से इस मंदिर की दूरी 12 किलोमीटर है। गिरजात्मज का अर्थ है गिरिजा यानी माता पार्वती के पुत्र गणेश। यह मंदिर एक पहाड़ पर बौद्ध गुफ़ाओं के स्थान पर बनाया गया है। यहां लेनयादरी पहाड़ पर 18 बौद्ध गुफ़ाएँ हैं और इनमें से 8वीं गुफ़ा में गिरजात्मज विनायक मंदिर है। इन गुफ़ाओं को 'गणेश गुफ़ा' भी कहा जाता है। मंदिर तक पहुँचने के लिए करीब 300 सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। यह पूरा मंदिर ही एक बड़े पत्थर को काटकर बनाया गया है।

7. विघ्नेश्वर गणपति : अष्टविनायक में सातवें गणेश हैं विघ्नेश्वर गणपति। यह मंदिर पुणे के ओझर ज़िले में जूनर क्षेत्र में स्थित है। यह पुणे-नासिक रोड पर नारायण गाँव से जूनर या ओजर होकर करीब 85 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। प्रचलित कथा के अनुसार विघनासुर नामक एक असुर था, जो संतों को प्रताणित कर रहा था। भगवान् गणेश ने इसी क्षेत्र में उस असुर का वध किया और सभी को कष्टों से मुक्ति दिलवाई। तभी से यह मंदिर विघ्नेश्वर, विघ्नहर्ता और विघ्नहार के रूप में जाना जाता है।

8. महागणपति : अष्टविनायक मंदिर के आठवें गणेशजी हैं महागणपति। मंदिर पुणे के रांजण गाँव में स्थित है। यह पुणे-अहमदनगर राजमार्ग पर 50 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस मंदिर का इतिहास 9-10वीं सदी के बीच माना जाता है। मंदिर का प्रवेश-द्वार पूर्व दिशा की ओर है जो कि बहुत विशाल और सुंदर है। भगवान् गणपति की मूर्ति को माहोतक नाम से भी जाना जाता है। यहाँ की गणेशजी प्रतिमा अद्भुत है। प्रचलित मान्यता के अनुसार मंदिर की मूल मूर्ति तहख़ाने की छिपी हुई है। पुराने समय में जब विदेशियों ने यहाँ आक्रमण किया था तो उनसे मूर्ति बचाने के लिए उसे तहख़ाने में छिपा दिया गया था।

9. उच्ची पिल्लैयार मंदिर, रॉकफोर्ट : दक्षिण भारत का प्रसिद्ध पहाड़ी क़िला मंदिर तमिलनाडु राज्य के त्रिची शहर के मध्य पहाड़ के शिखर पर स्थित है। चोल राजाओं की ओर से चट्टानों को काटकर इस मंदिर का निर्माण किया गया था। यहाँ भगवान् श्री गणेश का मंदिर है। पहाड़ के शिखर पर विराजमान होने के कारण गणेशजी को 'उच्ची पिल्लैयार' कहते हैं। यहाँ दूर-दूर से दर्शनार्थी दर्शन करने के लिए आते हैं।

10. कनिपक्कनम विनायक मंदिर, चित्तूर : आस्था और चमत्कार की ढेरों कहानियाँ खुद में समेटे कनिपक्कम विनायक का यह मंदिर आंध्र प्रदेश के चित्तूर ज़िले में मौजूद है। इस मंदिर की स्थापना 11वीं सदी में चोल राजा कुलोतुंग चोल प्रथम ने की थी। बाद में इसका विस्तार 1336 में विजयनगर साम्राज्य में किया गया। जितना प्राचीन यह मंदिर है, उतनी ही दिलचस्प इसके निर्माण के पीछे की कहानी भी है। कहते हैं, यहाँ हर दिन गणपति का आकार बढ़ता ही जा रहा है। साथ ही ऐसा भी मानते हैं कि अगर कुछ लोगों के बीच में कोई लड़ाई हो, तो यहाँ प्रार्थना करने से वह लड़ाई ख़त्म हो जाती है।

11. मनाकुला विनायगर मंदिर, पांडिचेरी : भगवान् श्रीगणेश का यह मंदिर पांडिचेरी में स्थित है। पर्यटकों के बीच ये मंदिर आकर्षण का विशेष केंद्र है। प्राचीन काल का होने के कारण इस मंदिर की बड़ी मान्यता है। कहते हैं कि क्षेत्र पर फ्रांस के क़ब्ज़े से पहले का है यह मंदिर। दूर-दराज से भक्त यहाँ भगवान् श्रीगणेश के दर्शन करने आते हैं।

12. मधुर महा गणपति मंदिर, केरल : इस मंदिर से जुड़ी सबसे रोचक बात यह है कि शुरुआत में यह भगवान् शिव का मंदिर हुआ करता था, लेकिन पुरानी कथा के अनुसार पुजारी के बेटे ने यहाँ भगवान् गणेश की प्रतिमा का निर्माण किया। पुजारी का यह बेटा छोटा सा बच्चा था। खेलते-खेलते मंदिर के गर्भगृह की दीवार पर बनाई हुई उसकी प्रतिमा धीरे-धीरे अपना आकार बढ़ाने लगी। वह हर दिन बड़ी और मोटी होती गई। उस समय से यह मंदिर भगवान् गणेश का बेहद खास मंदिर हो गया।

13. गणेश टोक (गंगटोक) सिक्किम : गणेश टोक मंदिर गंगटोक-नाथुला रोड से करीब 7 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह यहाँ करीब 6,500 फीट की ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इस मंदिर के वैज्ञानिक नजरिए पर गौर करें तो इस मंदिर के बाहर खड़े होकर आप पूरे शहर का नजारा एक साथ ले सकते हैं।

14. मोती डूँगरी गणेश मंदिर, जयपुर : मोती डूँगरी गणेश मंदिर राजस्थान में जयपुर के प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है। यह मंदिर भगवान् गणेश को समर्पित है। लोगों की इसमें विशेष आस्था तथा विश्वास है। गणेश चतुर्थी के अवसर पर यहाँ काफ़ी भीड़ रहती है और दूर-दूर से लोग दर्शनों के लिए आते हैं। भगवान् गणेश का यह मंदिर जयपुर वासियों की आस्था का प्रमुख केंद्र है। इतिहासकार बताते हैं कि यहाँ स्थापित

गणेश प्रतिमा जयपुर नरेश माधोसिंह प्रथम की पटरानी के पीहर मावली से 1761 में लाई गई थी। मावली में यह प्रतिमा गुजरात से लाई गई थी। उस समय यह पाँच सौ वर्ष पुरानी थी। जयपुर के नगर सेठ पल्लीवाल यह मूर्ति लेकर आए थे और उन्हीं की देखरेख में मोती डूँगरी की तलहटी में गणेश जी का मंदिर बनवाया गया था।

भारत के प्रमुख सूर्य मंदिर

भारत में सूर्योपासना की परंपरा बहुत पुरानी है। वैदिक वाङ्मय में सूर्य को ऊर्जा के अक्षयस्रोत और तेजपुंज के रूप में देखा गया है। वेदों में भगवान् सूर्य को पृथ्वी पर समस्त जीवन का स्रोत तथा संरक्षक कहा गया है और इनकी स्तुति में असंख्य ऋचाएँ हैं। इस तरह देखें तो भारत में सूर्य पूजा की परंपरा सहस्राब्दियों पुरानी है। पुराणों में सूर्योपासना के कई संदर्भ पाए जाते हैं। रामायण में महर्षि अगस्त्य भगवान् राम को सूर्य की उपासना के क्रम में आदित्य हृदय स्तोत्र के पाठ के लिए कहते हैं। सूर्यार्चन का यह क्रम संपूर्ण भारत में हमेशा विद्यमान रहा है, इसका प्रमाण पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में प्रतिष्ठित सूर्य मंदिर हैं। जहाँ तक द्वादश सूर्य मंदिरों की बात है, इस संबंध में जिन मंदिरों का उल्लेख मिलता है, वे हैं—देवार्क, पुण्यार्क, उलार्क, पंडार्क, कोणार्क, अंजार्क, लोलार्क, वेदार्क, मार्कंडेयार्क, दर्शनार्क, बालार्क और चाणार्क। यद्यपि इनमें से अधिकतर के बारे में अब ठीक-ठीक जानकारी उपलब्ध नहीं है। जनश्रुति के अनुसार इन सभी मंदिरों का निर्माण भगवान् श्रीकृष्ण एवं माता जांबवंती के पुत्र सांब ने करवाया था। पौराणिक मान्यता है कि श्री सांब को ऋषि दुर्वासा के शाप से कुष्ठरोग हो गया था। इससे मुक्ति के लिए उन्होंने लंबे समय तक सूर्यनारायण की तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर सूर्यनारायण ने उनका रोग हर लिया। तदुपरांत भगवान् सूर्यनारायण के प्रति अपना आभार प्रकट करने के लिए सांब ने तीन स्थानों पर सूर्य मंदिरों का निर्माण कराया। ये स्थान हैं—कोणार्क, कालपी और मुलतान। इनमें कोणार्क में उन्होंने प्रातःकालीन सूर्य की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई, जबकि कालपी में मध्याह्नकालीन और मुलतान में सायंकालीन। मुलतान में स्वर्ण प्रतिमा वाले भव्य सूर्य मंदिर का वर्णन ह्वेनसांग ने भी किया है। सूर्य के प्रमुख मंदिरों का विवरण इस प्रकार है—

1. कोणार्क : यह सूर्य नारायण का सर्वाधिक प्रसिद्ध मंदिर है। पुरी ज़िले के अंतर्गत एक छोटे से क़सबे में बंगाल की खाड़ी के समुद्रतट पर मौजूद यह मंदिर ओडिशा की राजधानी भुवनेश्वर से केवल 65 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ मूल मंदिर त्रेतायुगीन बताया जाता है, लेकिन वर्तमान निर्माण राजा नरसिंहदेव-प्रथम के समय में हुआ। यह यूनेस्को द्वारा घोषित विश्व धरोहरों में से एक है। यह स्थापत्य कला का एक अद्वितीय नमूना है। यहाँ हर साल कोणार्क नृत्य महोत्सव भी होता है। हालाँकि

अब मंदिर के मूल स्थापत्य के केवल भग्नावशेष ही शेष हैं, जिनकी देखरेख भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा की जाती है।

2. कालप्रियनाथ : यह मंदिर उत्तर प्रदेश के कालपी नामक क़सबे में है। जालौन ज़िले में स्थित कालपी कानपुर शहर से केवल 65 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ कालप्रियनाथ के रूप में भगवान् सूर्य नारायण का भव्य मंदिर है। इस मंदिर का निर्माण कब हुआ, इस बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन ऐसा कहा जाता है कि विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक रहे महान् गणितज्ञ एवं ज्योतिर्विद् वाराहमिहिर यहीं से नक्षत्रमंडल का अध्ययन किया करते थे।

3. आदित्य सूर्य मंदिर : यह मुलतान (अब पाकिस्तान) में स्थित था। मुलतान का मूलनाम कश्यपपुर था, जो बाद में यहाँ सूर्य मंदिर स्थापित होने के कारण मूल स्थान हो गया और यही बदल मुलतान बन गया। यहाँ सांब ने भगवान् सूर्य की सायंकालीन प्रतिमा स्थापित कराई थी। यूनानी सेनापति स्कायलैक, जो 515 ई.पू. में इधर से गुज़रा था, ने यहाँ अत्यंत भव्य सूर्य मंदिर होने का ज़िक्र किया है। बाद में हेरोडोटस, ह्वेनसांग और अलबरूनी ने भी यहाँ के भव्य सूर्यमंदिर का वर्णन किया है। ह्वेनसांग ने यहाँ भगवान् सूर्य की प्रतिमा प्रतिष्ठित होने तथा साथ ही भगवान् शिव और भगवान् बुद्ध की प्रतिमाएँ होने का भी वर्णन किया है। इस मंदिर को मुसलिम आक्रांता महमूद गज़नवी ने सन् 1026 में नष्ट कर डाला।

4. सूर्य पहाड़ मंदिर : यह असम के ग्वालपाड़ा कसबे के निकट है। यहाँ एक वृत्ताकार प्रस्तर खंड पर सूर्य की 12 छवियाँ स्थापित हैं। पुराणों में सूर्य के 12 रूपों का वर्णन है, जिन्हें द्वादशादित्य कहा जाता है। कालिका पुराण के अनुसार सूर्य पहर आदिकाल से ही सूर्य का स्थान है। यहाँ भगवान् सूर्य के अलावा उनके पिता कश्यप और माता अदिति की भी प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

5. सूर्यनार मंदिर : यह तमिलनाडु के कुंभकोणम में स्थित है। इस मंदिर परिसर में काशी विश्वनाथ और विशालाक्षी की प्रतिमाएँ भी हैं। इनके अलावा अन्य आठ ग्रहों—चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु की प्रतिमाएँ भी यहाँ हैं।

6. सूर्य मंदिर, मोढेरा : भगवान् सूर्यनारायण का यह मंदिर गुजरात में है। मेहसाना से 25 किलोमीटर और राज्य की राजधानी अहमदाबाद से 102 किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह मंदिर पुष्पावती नदी के तट पर है। इसका निर्माण सन् 1026 में सोलंकी राजवंश के शासक भीमदेव ने कराया था। इस मंदिर में अभी भी पूजा-पाठ होता है और यह भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की देखरेख में है।

7. कनकादित्य मंदिर : यह महाराष्ट्र के सिंधुदुर्ग ज़िले में कशेली नामक गाँव में है। यहाँ स्थापित सूर्य प्रतिमा गुजरात से लाई गई थी। यहाँ सूर्य मंदिर के अलावा महाकाली, सरस्वती और महालक्ष्मी के मंदिर भी हैं।

8. बेलाउर सूर्य मंदिर : यह मंदिर बिहार के भोजपुर ज़िले के बेलाउर गाँव में अवस्थित है। इसे बेलार्क, उलार्क और उलार सूर्य मंदिर भी कहा जाता है। इस मंदिर का निर्माण राजा सूबा ने करवाया था। बाद में बेलाउर गाँव में कुल 52 पोखरे (तालाब) का निर्माण करानेवाले राजा सूबा को राजा बावन सूब के नाम से पुकारा जाने लगा। राजा द्वारा बनवाए 52 पोखरों में एक पोखर के मध्य में यह सूर्य मंदिर स्थित है।

9. झालरापाटन सूर्य मंदिर : राजस्थान में झालावाड़ का जुड़वाँ शहर है झालरापाटन। शहर के मध्य स्थित सूर्य मंदिर यहाँ का प्रमुख दर्शनीय स्थल है। वास्तुकला की दृष्टि से भी यह मंदिर महत्त्वपूर्ण है। इसका निर्माण 10वीं शताब्दी में मालवा के परमार वंशीय राजाओं ने करवाया था। मंदिर के गर्भगृह में भगवान् विष्णु की प्रतिमा विराजमान है, इसीलिए इसे पद्मनाभ मंदिर भी कहा जाता है।

10. औंगारी सूर्य मंदिर : नालंदा का प्रसिद्ध सूर्यधाम औंगारी और बडगाँव के सूर्य मंदिर देश भर में प्रसिद्ध हैं। ऐसी मान्यता है कि यहाँ के सूर्य तालाब में स्नान कर मंदिर में पूजा करने से कुष्ठ रोग सहित कई असाध्य व्याधियों से मुक्ति मिलती है। ऐसा कहा जाता है कि इस मंदिर का निर्माण भी सांब ने करवाया था। इसे बकोणार्क सूर्य मंदिर भी कहते हैं।

11. ब्रह्मण्य देव मंदिर : यह मध्य प्रदेश के दतिया ज़िले में स्थित गाँव उनाव में है। इस मंदिर में भगवान् सूर्य की पत्थर की मूर्ति है, जो एक ईंट से बने चबूतरे पर स्थित है। जिस पर काले धातु की परत चढ़ी हुई है। साथ ही, साथ 21 कलाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले सूर्य के 21 त्रिभुजाकार प्रतीक मंदिर पर अवलंबित है।

12. रनकपुर सूर्य मंदिर : राजस्थान के रनकपुर नामक स्थान में अवस्थित यह सूर्य मंदिर, नागर शैली में सफ़ेद संगमरमर से बना है। भारतीय वास्तुकला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता यह सूर्य मंदिर जैनियों के द्वारा बनवाया गया था, जो उदयपुर से क़रीब 98 किलोमीटर दूर स्थित है।

13. सूर्य मंदिर, राँची : राँची से 39 किलोमीटर की दूरी पर राँची-टाटा रोड पर स्थित यह सूर्य मंदिर बुंडू के समीप है। संगमरमर से निर्मित इस मंदिर का निर्माण 18 पहियों और 7 घोड़ों के रथ पर विद्यमान भगवान् सूर्य के रूप में किया गया है। 25 जनवरी को हर साल यहाँ विशेष मेले का आयोजन होता है।

14. दक्षिणार्क सूर्य मंदिर : यह मंदिर बिहार के गया नामक स्थान पर है। यहाँ सूर्य मंदिर गया के प्रसिद्ध विष्णुपाद मंदिर के निकट स्थित है। पूर्वाभिमुख सूर्य मंदिर के सामने ही सूर्य कुंड है। गर्भगृह के सामने एक विशाल सभा मंडप है, जिसमें बने स्तंभों पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा और सूर्य की सुंदर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इसके अलावा यहाँ सूर्य

के दो और मंदिर हैं। इनमें एक है उत्तरक मंदिर, जो उत्तर मानस मंदिर के समीप है और दूसरा है गयादित्य मंदिर, जो फल्गु नदी के तट पर अवस्थित है।

15. पुण्यार्क सूर्य मंदिर : यह बिहार में बाढ़ से करीब 13 किलोमीटर की दूरी पर है। कहा जाता है कि यह मंदिर भी सांब द्वारा स्थापित है। देश भर में स्थापित अधिकतर सूर्य मंदिर पोखर और तालाबों के किनारे हैं, जबकि पुण्यार्क सूर्य मंदिर को इकलौते सूर्य मंदिर माना जाता है जो कि गंगा नदी के तट पर अवस्थित है।

16. देव सूर्य मंदिर : यह बिहार के देव (औरंगाबाद ज़िला) में स्थित सूर्य मंदिर है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख न होकर पश्चिमाभिमुख है। यह मंदिर अपनी अनूठी शिल्प कला के लिए प्रख्यात है। पत्थरों को तराश कर बनाए गए, इस मंदिर की नक्काशी उत्कृष्ट शिल्प कला का नमूना है। प्रचलित मान्यता के अनुसार इसका निर्माण स्वयं भगवान् विश्वकर्मा ने किया है। इस मंदिर के बाहर संस्कृत में लिखे श्लोक के अनुसार 12 लाख 16 हजार वर्ष त्रेतायुग के गुजर जाने के बाद राजा इलापुत्र पुरूरवा ऐल ने इस सूर्य मंदिर का निर्माण प्रारंभ करवाया था। शिलालेख से पता चलता है कि पूर्व 2007 में इस पौराणिक मंदिर के निर्माणकाल का एक लाख पचास हजार सात वर्ष पूरा हुआ। पुरातत्त्वविद् इस मंदिर का निर्माण काल आठवीं-नौवीं सदी के बीच का मानते हैं। कहा जाता है कि सूर्य मंदिर के पत्थरों में विजय चिह्न व कलश अंकित हैं। विजय चिह्न यह दरशाता है कि शिल्प के कलाकार ने सूर्य मंदिर का निर्माण कर के ही शिल्प कला पर विजय प्राप्त की थी। देव सूर्य मंदिर के स्थापत्य कला के बारे में कई तरह की किंवदंतियाँ हैं। मंदिर के स्थापत्य से प्रतीत होता है कि मंदिर के निर्माण में उड़िया स्वरूप नागर शैली का समायोजन किया गया है। नक्काशीदार पत्थरों को देखकर भारतीय पुरातत्त्व विभाग के लोग मंदिर के निर्माण में नागर एवं द्रविड़ शैली का मिश्रित प्रभाव वाली वेसर शैली का भी समन्वय बताते हैं।

17. कटारमल सूर्य मंदिर : कटारमल सूर्य मंदिर उत्तराखंड में अल्मोड़ा के 'कटारमल' नामक स्थान पर स्थित है। इस कारण इसे 'कटारमल सूर्य मंदिर' कहा जाता है। यह सूर्य मंदिर न सिर्फ़ समूचे कुमाऊँ मंडल का सबसे विशाल, ऊँचा और अनूठा मंदिर है, बल्कि उड़ीसा के 'कोणार्क सूर्य मंदिर' के बाद एकमात्र प्राचीन सूर्य मंदिर भी है। 'भारतीय पुरातत्त्व विभाग' द्वारा इस मंदिर को संरक्षित स्मारक घोषित किया जा चुका है। यह मंदिर नौवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में निर्मित हुआ माना जाता है।

18. मार्तंड सूर्य मंदिर : यह जम्मू-कश्मीर में अनंतनाग से 9 किलोमीटर उत्तर-पूर्व दिशा में एक पठार पर स्थित है। ऐसा माना जाता है कि मार्तंड कश्यप ऋषि के तीसरे पुत्र का जन्मस्थान है। यद्यपि अब इस मंदिर के केवल अवशेष ही हैं, मुख्य मंदिर को

मुसलिम आक्रांताओं ने ढहा दिया, लेकिन खँडहर इस बात के साक्षी हैं कि कभी यह बहुत ही भव्य मंदिर रहा होगा। इसका निर्माण 7वीं से 8वीं शताब्दी के बीच सूर्यवंशी राजा ललितादित्य ने कराया था। इसमें 84 स्तंभ हैं, जो नियमित अंतराल पर रखे गए हैं। मंदिर को बनाने के लिए चूने के पत्थर की चौकोर ईंटों का प्रयोग किया गया है। खँडहर हो चुके इस मंदिर की ऊँचाई अब केवल 20 फुट रह गई है। आक्रांता सिकंदर बुतशिकन को इस मंदिर की दीवारें ध्वस्त करने में ही एक साल लग गया था।

19. बिरंचिनारायण मंदिर : बुगुडा-बुगुडा नामक क़सबा ओडीशा के गंजम ज़िले में है। यह ऐतिहासिक क़सबा ओडीशा के प्रमुख शहर बरहामपुर से केवल 70 किलोमीटर दूर है। यहाँ स्थित सूर्य मंदिर का निर्माण राजा श्रीकर भंजदेव ने सन् 1790 में कराया था। लेकिन यहाँ प्रतिष्ठित सूर्य प्रतिमा अत्यंत प्राचीन है। यह प्रतिमा मालतीगढ़ के खँडहरों से प्राप्त की गई थी। यहाँ अर्चन के लिए सूर्य की मुख्य प्रतिमा लकड़ी की बनी हुई है। यह सूर्य मंदिर पश्चिमाभिमुख है।

20. बिरंचिनारायण मंदिर, पलिया : ओडीशा के भद्रक ज़िले में पलिया एक गाँव है। यह भद्रक से 15 किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा में है। यहाँ स्थापित सूर्य प्रतिमा के दोनों हाथों में दो कमलपुष्प हैं। स्थापत्य की दृष्टि से यह मंदिर 13वीं शताब्दी का बताया जाता है। इसका पुनरुद्धार 20वीं शताब्दी के आरंभ में के स्थानीय ज़मींदार ने कराया।

21. अरसावल्ली सूर्य मंदिर : अरसावल्ली आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम शहर का बाहरी हिस्सा है। इसका मूल नाम हर्षावल्ली है, हर्षावल्ली का अर्थ हर्ष का स्थान होता है। यहाँ स्थापित सूर्य मंदिर 7वीं शताब्दी में कलिंग शासक देवेंद्र वर्मा ने कराया था।

सात पर्वत

1. महेंद्र पर्वत
2. मलय पर्वत (नीलगिरि)
3. सह्याद्रि पर्वत
4. हिमालय पर्वत
5. रेवतक पर्वत (गिरनार)
6. विंध्याचल पर्वत
7. अरावली पर्वत

सात वन

1. दंडकारण्य
2. खंडकारण्य
3. चंपकारण्य
4. वेदारण्य
5. नैमिषारण्य
6. ब्रह्मारण्य
7. धर्मारण्य

पंच सरोवर

1. बिंदु सरोवर
2. नारायण सरोवर
3. पंपा सरोवर
4. पुष्पक झील सरोवर
5. मानसरोवर

सप्त द्वीप

1. जंबूद्वीप
2. प्लक्षद्वीप
3. शाल्मलद्वीप
4. कुशद्वीप
5. क्रौंचद्वीप
6. शाकद्वीप
7. पुष्करद्वीप

सप्त सागर

1. क्षीर सागर
2. दुधी सागर
3. घृत सागर
4. पायान सागर
5. मधु सागर
6. मदिरा सागर
7. लहू सागर

सप्त पाताल

1. अतल
2. वितल
3. नितल
4. गभस्तिमान
5. महातल
6. सुतल
7. पाताल

सप्त लोक

1. भूर्लोक
2. महर्लोक
3. भुवर्लोक
4. जनलोक
5. स्वर्लोक
6. तपोलोक
7. सत्पलोक (ब्रह्मलोक)

सप्त वायु

1. प्रवह
2. आवह
3. उद्वह
4. संवह
5. विवह
6. परिवह
7. परावह

□

संदर्भिका

अ

आ

ग

च

छ

ज

झ

ट

ड

त

र

ल

व

श

□□□

परिचय

भूमिका लेखक

श्री मा. गो. वैद्य

महाराष्ट्र के वर्धा ज़िले के गाँव तरोडा में 11 मार्च, 1923 को जन्म। प्राथमिक शिक्षा गाँव में ही, तदुपरांत नागपुर से उच्च शिक्षा। कई विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्यापन। नागपुर से प्रकाशित 'तरुण भारत' के संपादकीय विभाग में कार्य तथा नरकेसरी प्रकाशन के प्रबंध संचालक रहे। 1978 से 1984 तक विधान परिषद् सदस्य भी रहे। साहित्य एवं पत्रकारिता के लिए कई पुरस्कारों-सम्मानों से विभूषित। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रवक्ता रहे।

अवसान लेखक

श्री रामबहादुर राय

1 जुलाई, 1946 को गाजीपुर में जन्म। 1969 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से पत्रकारिता में स्नातकोत्तर। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में सक्रियता से जुड़े रहे। बिहार में छात्र-आंदोलन की नेतृत्वकारी जमात में भी रहे। आपातकाल के दौरान मीसा के तहत जेल में बंदी रहे। बांग्लादेश की आजादी के आंदोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लिया। 'जनसत्ता' के समाचार संपादक के रूप में 2004 में सेवानिवृत्त हुए। 'प्रथम प्रवक्ता' के संपादक रहे। 'शाश्वत विद्रोही आचार्य जे.बी. कृपलानी' सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। 'पद्मश्री' से सम्मानित। संप्रति 'यथावत' के संपादक एवं 'इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र' के अध्यक्ष।

समर्पण परिचय लेखक

श्री जितेंद्र कुमार बजाज

पंजाब में 21 मार्च, 1952 को जन्म। भौतिक विज्ञान में एम.एस-सी. एवं पी-एच.डी.। गांधी के हिंद स्वराज पर चिंतन-मनन। 'शिड्यूल्ड ट्राइब्स ऑफ इंडिया : रिलिजियस डेमोग्राफी एंड रिप्रेज़ेंटेशन' सहित कई पुस्तकों का संपादन व सह-संपादन।

अनुसंधान एवं संपादन सहायक

श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

- श्री राजेश राजन
- डॉ. विकास द्विवेदी
- श्रीमती सुमेधा मिश्रा
- श्री देवेश खंडेलवाल
- श्री राम शिरोमणि शुक्ल
- डॉ. अरुण भारद्वाज

टंकण एवं सज्जा

- श्री प्रेम प्रकाश राय
- श्री राकेश शुक्ल
- श्री नरेंद्र कुमार
- श्रीमती दीपा सूद

...शुक्ल ४ शके १८७७, र. उ. ७।१७, र. अ. ६।२१

जानेवारी ता. १७ वार मंगळ पोष शुद्दी ४ संवत २०१२

2.. TUESDAY 17th JANUARY 1956

संघ का कार्य हिन्दू संगठन का है। भावात्मक हिन्दुत्व ...
... हिन्दू शब्द से ...
... लक्षण ...

१. ज्ञान का लक्षण = एकत्व का बोध है; ... का बोध - अज्ञान। एकात्मता का बोध कराने का प्रयत्न करना होगा।

अपने हृदय में सबके लिये समान ... आदर होना चाहिये ...
... हिन्दुत्व के लक्षण सबमें समान रूप से मिलेंगे।
भगवान् का दर्शन सभी कर सकते हैं।
सभी भाषाओं में एक ही भाव व्यक्त होता है।
100 वर्ष पूर्व Father Goodwin ने ...
प्रचार किया। किन्तु ...

Import of ... during 18 months ... to the tune of 4.3... value of imports of ... machinery in 19... 325 crores.

Some industries ... licensed for a cap... excess of the ... some have cap... near the target ... for the end of the ...

These are su... rubber, tyres & ... alcohol, soda ... soda, refract... transmitter fo... and rayon f...
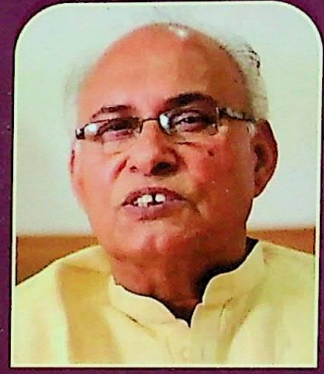
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जन्म : राजस्थान के चुरू कस्बे में 7 सितंबर, 1948 को।

शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. एवं पी-एच.डी. (राजनीति शास्त्र)।

कृतित्व : 1973 में प्राध्यापक की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बने। आपातकाल में अगस्त 1975 से अप्रैल 1977 तक जयपुर जेल में 'मीसा' बंदी रहे। सन् 1977 से 1983 तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में उत्तरांचल के संगठन मंत्री, 1983 से 1986 तक राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक जीवन चरित—कर्तृत्व व विचार सरणी' विषय पर शोधकार्य। 1983 से साप्ताहिक 'विश्ववार्ता' व 'अपना देश' स्तंभ नियमित रूप से भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में लिखते रहे।

सन् 1986 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। 1986 से वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। 1996 से 2002 तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 2002 से 2004 तक नेहरू युवा केंद्र के उपाध्यक्ष। 2006 से 2008 तक भाजपा राजस्थान के अध्यक्ष। 2008-2009 राजस्थान विकास एवं निवेश बोर्ड के अध्यक्ष। 1999 से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष। पंद्रह खंडों में प्रकाशित 'पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के संपादक।
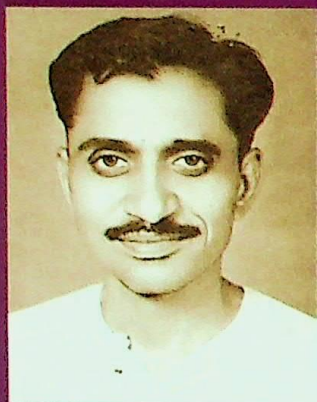
पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लड़ाई को आवृत्त कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाड़ी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशी वादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।

ISBN 978-93-86231-30-7
9 789386 231307
₹ 400/-